

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य

[प्रथमाह्न]

लेखक

डॉ० देवीप्रसाद गुप्त

एम० ए०, एल एल० बी०, पी एच० डी०

प्राध्यापक स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

गवर्नमेन्ट पोस्टग्रेजुएट डूंगर कॉलेज

बीकानेर (राजस्थान)



प्रकाशक

गाडोदिया पुस्तक भण्डार, बीकानेर

प्रकाशक
किशनलाल गाडोदिया
गाडोदिया पुस्तक भण्डार
फड बाजार
घोकानेर (राजस्थान)
फोन न० १०८०
शाच
स्टेशन रोड चूल् (राजस्थान)

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रेस
राजामण्डी
भागरा २

© डा० देवीप्रसाद गुप्त

मूल्य पंतीस रुपये

प्रथम संस्करण १९७३

SWĀTANTRYOTTRA HINDĪ MAHĀKĀVYA
(Part I)

[A Critical Study of Hindi Epics of Post Independence Era]

By
Dr. Devi Prashad Gupta
M A LL B Ph D
GOVT POSTGRADUATE DUNGAR COLLEGE
BIKANER (RAJASTHAN)

Price Rs Thirty Five Only

'सारथी' महाकाव्य
के
प्रणेता
डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'
को
सादर समर्पित

भूमिका

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य विकासात्मक एव प्रवृत्तिमूलक सचेतना

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी साहित्यिक संरचना में काव्य और कथा साहित्य के क्षेत्र में गौरवान्वित कृतियों का प्रणयन हुआ है। काव्य प्रभेदों में महाकाव्यों की सृजन परम्परा उल्लेखनीय है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा का समारम्भ सन् १९१४ में कवि सम्राट् हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' महाकाव्य के प्रकाशन से होता है। 'प्रियप्रवास' से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक जिन महाकाव्य कृतियों की रचना हुई, वे हैं— साकेत, रामचरित चिंतामणि, तक्षशिला, नल नरेश, कौशल विशोर, कामायनी, नूरजहा, सिढाय, श्री राम चन्द्रोदय, वदेही घनवास, हल्दी घाटी, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण चरितमानस कुरक्षेत्र, आर्यावत्त, कृष्णायन जौहर, साकेत सन्त, महामानव आदि। इनमें शिल्पगत वैशिष्ट्य एव जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियों की दृष्टि से प्रसादकृत कामायनी को महाकाव्यालोचकों ने एकमत से आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट हिन्दी महाकाव्य स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हिन्दी में महत्वपूर्ण महाकाव्य-कृतियों की रचना हुई है जिनकी विकासक्रम (कालक्रमानुसार) की दृष्टि से सूची निम्नांकित प्रकार है—

महाकाव्य	महाकाव्यकार	प्रकाशन तिथि
१ मेघादी	राजेश राघव	१९४७
२ विक्रमादित्य	गुरुमत्तसिंह	१९४७
३ दैत्यवंश	हरदयालुसिंह	१९४७
४ रामकथा कल्पलता	नित्यानन्द शास्त्री	१९४९
५ अगाराज	आनन्दकुमार	१९५०

(४)

६	वद्धमान	अनूपशर्मा	१९५१
७	कवेयी	केदारनाथ मिश्र प्रभात	१९५१
८	रावण	हरदयालुसिंह	१९५२
९	जय भारत	मधिलीशरण गुप्त	१९५२
१०	जगदालोक	गोपालशरणसिंह	१९५२
११	देवाचन	श्री करील	१९५२
१२	पावती	रामानन्द तिवारी	१९५५
१३	भासी की रानी	श्याम नारायण प्रसाद	१९५५
१४	हनुमच्चरित	रणवीरसिंह	१९५५
१५	वनस्थली	नाथूलाल अग्निहोत्री	१९५५
१६	ऋतम्बरा	केदारनाथ मिश्र प्रभात	१९५७
१७	दमयन्ती	ताराचन्द्र हारीत	१९५७
१८	रश्मिरेयी	रामधारीसिंह दिनकर	१९५७
१९	मीराँ	परमेश्वर द्विरेफ	१९५७
२०	नारी	अतुलकृष्ण गोस्वामी	१९५७
२१	प्रताप	रणवीरसिंह	१९५७
२२	तारकबध	गिरिजादत्त गुवल	१९५८
२३	एकल य	रामकुमार वर्मा	१९५८
२४	ऊर्मिला	बालकृष्ण नवीन	१९५८
२५	सेनापति कण	लक्ष्मीनारायण मिश्र	१९५८
२६	युगद्रष्टा प्रेमचन्द	परमेश्वर द्विरेफ	१९५९
२७	बाणाम्बरी	रामावतार पोद्दार अरुण	१९६०
२८	लोकायतन	सुमित्रानन्दन पत्त	१९६०
२९	रामराज्य	वल्लदेव प्रसाद मिश्र	१९६०
३०	शिवचरितामत	विष्णुदत्त शास्त्री	१९६१
३१	सारथी	रामगोपाल शर्मा दिनेश	१९६१
३२	उवशी	रामधारीसिंह दिनकर	१९६१
३३	शक्तिशखनाद	लक्ष्मीचन्द्र मिश्र	१९६२
३४	नदिशाम	गयाप्रसाद द्विवेदी	१९६३
३५	सरदार भगतसिंह	श्रीकृष्ण सरल	१९६४
३६	प्रियमिलन	नन्द किशोर या	१९६४
३७	चन्द्रगुप्त मौर्य	राम खेलावन वर्मा	१९६४

३८	कानिदास	श्री तिलक	१९६५
३९	मानवेन्द्र	रघुवीर शरणमित्र	१९६५
४०	निराला	श्री तिलक	१९६६
४१	श्री गुरु गाविर्दसिंह	श्याम नारायण प्रसाद	१९६७
४२	गाधी पारायण	अविका प्रसाद दिव्य	१९६९
४३	ककेयी	चादमल चन्द्र	१९६९
४४	देव पुरुष गाधी	रमशचन्द्र शास्त्री	१९६९
४५	कमला	परमेश्वर द्विरेफ	
४६	काव्य पुरुष	रमाशकर शुक्ल रमाल	
४७	छत्रसाल	लालधर त्रिपाठी	
४८	जयमानव	ब्रह्मदत्त दीक्षित	
४९	परम-योति महावीर	ध य कुमार जन	
५०	गाधी चरित मानस	विद्याधर महाजन	

स्वातन्त्र्योत्तर-काल में प्रकाशित हिन्दी के उपर्युक्त महाकाव्यों की विस्तृत सूची देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी में महाकाव्यों की रचना विपुल परिमाण में हुई है। यही स्वभावतः यह प्रश्न भी हो सकता है कि क्या ये सभी काव्यग्रन्थ सचमुच 'महाकाव्य' की सना से सम्बोधित किये जा सकते हैं? इनमें से कौन से ग्रन्थ मात्र प्रबन्ध काव्य, एकांश काव्य तथा कथित महाकाव्य या बहुत खण्ड काव्य अभिधान के अधिकारी हैं? वस्तुतः ये प्रश्न बलग से विचारणीय हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध महाकाव्य के रूपविधायक तत्वों, लक्षणा परिभाषा एवं रूप-सरचना से है। इस विषय पर मैंने अपनी पूर्व प्रकाशित तीन पुस्तिका में विस्तारपूर्वक विवेचन भी किया है।* यहाँ यही निवेदन कहूँगा कि महाकाव्य रचना के परम्परागत माध्य प्रतिमानों तथा महाकाव्यालोचन के नवीन निष्पत्तियों के समन्वित सैद्धांतिक आधार पर उल्लिखित काव्य ग्रन्थों को सामान्य महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। समकालीन साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति महाकाव्य की रूप रचना में भी आपातक परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन क्रम का महाकाव्यों की क्या संयोजन विधि, नायक को परिवर्तन चारित्रिक विनियोजन, शिल्पक

* १ हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन

२ आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य

३ हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य (गोध प्रबन्ध)

प्रतिमानों की नवीनता, प्रतिपाद्य के वशिष्ट्य और जीवन-दशन सम्बन्धी अवधारणाओं में स्पष्टतः देखा जा सकता है। वस्तुतः 'नवलेखन-युग' में रहे महाकाव्यों में शिल्प सगठना से अधिक महत्वपूर्ण उनका प्रतिपाद्य ही है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यों की रचना विधि के परिवर्तित स्वरूपको देखते हुए महाकाव्यालोचन के मानदण्डों में भी सशोधन परिवर्तन अपेक्षित है। नए महाकाव्यों के समीक्षण में कथारमक लाक विश्रुति उदात्त चरित्र सृष्टि, छन्द वैविध्य, षणन-वचित्र्य, मापा-मीष्ठय, शलीगत गरिमा आदि से अधिक महत्वपूर्ण महाकाव्यों की सजन प्रेरणा के स्रोत, युग प्रेरक प्रवृत्तियों की समाहृति, युग जीवन के समुन्नत बोध का प्रतिफलन, मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का काव्य सक्लप सामाजिक चेतना के गतिशील स्तरों के रूपांकन की अदम्य आकांक्षा, सांस्कृतिक निष्ठाएँ तथा समकालीन जीवनादर्शों के अनुरूप युगीन प्रश्नों के समाधान की विराट चेष्टा का निदर्शन विवेचनीय और अनुसंधेय होना चाहिए। वस्तुतः महाकाव्यालोचन के नवीन निकष यही 'मानक विचार बिन्दु' बन सकते हैं। इन पक्षितया के लेखक ने स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यों के मूल्यांकन में इसी प्रकार का विनम्र प्रयास किया है। इस प्रयास की सफलता विफलता तथा उपलब्धियों अभावा का निणय तो विज्ञ पाठक करेंगे, किन्तु मुझे इतना सतोय अवश्य है कि महाकाव्यालोचन के क्षेत्र में यह प्रयास अपने ढंग का है और समीक्षण प्रविधि के नए आयाम उद्घाटित करता है। इस अध्ययन क्रम में आलोच्य महाकाव्यों की जो सामान्य प्रवृत्तियाँ परि-सक्षित हुई, वे इस प्रकार हैं—

१ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यों के इतिवत्त विधान के स्रोत इतिहास पुराण और समकालीन जीवन रहे हैं। सरचना में कथा-उत्त्व का अधिग्रहण आधार भूमि की निमित्त हेतु ही किया गया है, कथा-कथन या आख्यान निरूपण के लिए नहीं। काव्यों का कालवर विस्तार युग जीवन की आवश्यकता मुसार प्रेरक प्रसंगों की परिकल्पना द्वारा किया गया है। महाकाव्यकारों की एतद्विषयक सूझ-बूझ का परिचय मौलिक घटनात्मक प्रसंगों की सृष्टि में सखत्र दृष्टिगत हाता है। परम्परागत इतिवत्त विधान से सखवा मुक्त काव्य का उगाहरण डॉ० रागय राधक कृत मयावी महाकाव्य है। काव्यनिक कथा विस्तार की दृष्टि से एकपथ्य काव्यगत 'सारथी' 'साकायनन आदि महाकाव्य उद्भरनीय हैं।

२ आलोच्य महाकाव्यों में अधिकांश चरित्रमूलक हैं। नायक की परिकल्पना में महाकाव्यकारों ने नितांत प्रगतिशील क्रिया आन्तिकारी रचना

दृष्टि का परिचय दिया है। दैवी पात्रों के दबत्व का प्रक्षालन कर तथा दानवीय पात्रों के दानवत्व का परिष्कार कर उन्हें मानवीय घरातल पर अधिष्ठित किया गया है। धीरोदात्तता से च्युत, उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्रों पर महाकाव्य रचना कर महाकाव्यकारों ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रभूत परिचय दिया है। अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान होने के कारण नारी जागरण की जीवन्त चेतना को मुखरित करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं। चरित्र-निरूपण में मनोवैज्ञानिक सस्पेंस और पूर्वाग्रह मुक्त तटस्थ मूल्यांकन-वृत्ति सामान्यतः सबत्र परिलक्षित होती है।

३ स्वातंत्र्योत्तर कालीन महाकाव्यकारों ने परम्परित रचनादर्शों (यथा—सग-सख्या, सर्गान्त छन्द परिवर्तन, छन्द वैविध्य, मगलाचरण, वणन-वशिष्ट्य, भाषात्मक-अलकृति आदि) का बहिष्कार कर नवीन शिल्पक प्रतिमानों का अधिग्रहण किया है जिसे मुक्त-छन्द—प्रयोग, अलकरण व्यामोह से मुक्त संप्रेषणीय भाषात्मक संयोजना, शैलीगत ऋजुता नाटकीय तत्त्वों की समाहृति, आवर्तित कथा प्रस्तुति, मनोवैज्ञानिक चरित्र विश्लेषण आदि में देखा जा सकता है।

४ आलोच्य महाकाव्यों में आधुनिक युग की प्रमुख विचारधारायाँ (यथा समाजवाद, साम्यवाद, गांधीवाद, सर्वोदय, लोकतंत्र, मानवतावाद आदि) तथा समुन्नत युग बोध के नाना रूपों का (यथा—आधुनिकता बोध, अस्तित्वबोध, मृत्यु बोध, कालबोध, क्षणबोध, यौनबोध, अहंबोध, नवीन भावबोध एवं सौंदर्य बोध आदि) समकालीन जीवन की ज्वलन्त समस्याओं के निरूपण और निदान के परिप्रेक्ष्य में सशक्त प्रतिफलन हुआ है।

५ स्वातंत्र्योत्तर कालीन महाकाव्यों की संरचना के मूल में बलवती सृजन प्रेरणा और महती रचनात्मक सोद्देश्यता क्रियमाण रही है। उदाहरणार्थ—स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय गौरव की व्यंजना युगपुरुषों और लोकनायकों की धार्मिक गरिमा का निरूपण, मानवीय चेतना और संवेदना के गतिशील स्तरों का रूपांकन धिर तन मानवीय जीवन मूल्यों की प्रस्थापना का आग्रह, नारी जागरण का उद्बोध तथा मानवता के परम मार्गलिक एवं सुखद भविष्य की अदम्य आकांक्षा आलोच्य महाकाव्यों की संरचना के संप्रेरक तथा सजक तत्त्व रहे हैं।

६ आलोच्य महाकाव्यों की दार्शनिक पीठिका के परिनिर्माण में परम्परित दार्शनिक मतवादों के स्थान पर युग जीवन के चिन्तन से प्रतिफलित

विचारधाराओं का विरोध अनुदान रहा है। इसीलिए इन महाकाव्यों की विचारणा को 'दशन' के स्थान पर 'जीवन दशन' अभिधान से अभिहित किया गया है। 'जीवन दशन' की निमित्त म. दशन के अतिरिक्त घम, सस्वृति, इतिहास, कला, मनाविधान तथा शास्त्र (यथा—समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, तकशास्त्र, नृत्यशास्त्र, अयशास्त्र, राजनीति शास्त्र, सगीतशास्त्र, धनुर्वेदशास्त्र आदि) की समवित्त भूमिका रही है। आलोच्य महाकाव्यों के समवित्त दार्शनिक अनुचिन्तन को सहज म. ही 'मानवतावादी जीवन दशन' की सज्ञा प्रदान की जा सकती है।

७ स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी महाकाव्यों की रचयिता चाहे भारतीय परम्परा की बाल्मीकि व्यास कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहृष, अश्वघोष, स्वयंभू, पुष्पदन्त, चन्द्रबरदाई, तुलसी, प्रसाद अथवा पश्चात्य-परम्परा के बज्रिल, दान्ते, हामर, गेटे, मिल्टन, स्पेन्सर, एरिआस्टो, टसी आदि महाकाव्यकारों के समान मनीषी महाकवि न हों किंतु वे सज्जनात्मक प्रतिभा एवं प्रखर काव्य मेधा से सम्पन्न सचेतन रचनाकार अवश्य हैं। इन महाकाव्यकारों की जीवित कला चेतना और जागरूक काव्य मेधा का प्रमाण ऐतिहासिक-पौराणिक कथानकों के जर्जरित बलेवर म. युग जीवन के प्रखर चेतनालाक. समकालीन मावबोध की सदोषित मूल्यगन सन्नमणशीलता के विघटनकारी तत्त्वों म. सज्जनात्मक सदस्यों की आयाजना तथा आणविक युग की विनाशकारी वज्ञानिक उपनिषदा म. मानवता के मागलिक भविष्य की रचनात्मक समावनात्रा को साकार करने म. द्रष्टव्य है।

८ प्रयत्नमूत्रक वैशिष्ट्य एवं रचनात्मक गौरव के कारण स्वातंत्र्योत्तर कालीन महाकाव्य कृतियाँ हिन्दी महाकाव्य की सुनीष गौरवाचिन परम्परा का अविद्धि न अग. यन गई हैं। भारतीय जन जीवन के चेतना विकास का व्यापक युगो न सन्मों म. अवतरित करने क कारण इन कृतियों का महत्व साहित्यिक भी है और सांस्कृतिक भी।

इस पुस्तक के प्रथमाद म. स्वातंत्र्योत्तर काल की जिन २० महाकाव्य कृतियों का समीक्षात्मक मूल्याहन प्रस्तुत किया गया है उम उल्लिखित प्रवृत्तियाँ उभ्राणर हुई हैं। द्वितीयाद म. खेप ३० महाकाव्य कृतियों का मूल्याहन प्रस्तुत किया जान की योजना है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी महाकाव्य के समष्टि परक व्यवस्थित मूल्याहन क. इस विनम्र प्रयास क. यन्ति हैं। महाकाव्यानाधन एक महाकाव्यानुसंधान का पय प्रगमन हुआ तो मैं अपना धन सापक मानूँगा।

इस अवसर पर मैं अपने मित्र डॉ० पुष्कर दत्त शर्मा के प्रति उनके रचनात्मक सुझावा के लिए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । मेरी सहर्षामिणी श्रीमती सरला गुप्ता ने 'घर गृहस्थ' के सम्पूर्ण श्रित्वो का स्वतः संवहन कर मुझे न केवल एकनिष्ठ लेखन का अवसर प्रदान किया अपितु वे निरन्तर संप्रेरिका भी बनी रही । उनकी संप्रेरक निष्ठाएँ मेरे रचनाधर्मों प्रयासों का अमिन्न अग्न बल गई हैं, अतः आभार प्रदर्शन व्यथ की औपचारिकता ही होगी । इस पुस्तक की सुरक्षिपूण प्रकाशन व्यवस्था के लिए मैं श्री विश्वनलाल गाडोदिया एवं आकपक मुद्रण के लिए श्री रघुनन्दनसिंह चौहान के प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

अतः मैं अपनी श्रुतियों के प्रति विन पाठका से क्षमा याचना करते हुए अपनी श्रम-साधना का सुमन मा भारती के महालय में अर्पित करता हूँ ।

बोकानेर (राजस्थान)

देवीप्रसाद गुप्त

२५वाँ स्वाधीनता रजत जयती पव

१५ अगस्त १९७२

अनुक्रम

भूमिका

स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी महाकाव्य विकासारमक एव प्रवृत्तिमूलक सचेतना	पृ० ६-८
१	
'मेधावी' महाकाव्य मानवीय चेतना के गतिशील स्तरों का रूपान्तरण	१-२४
२	
अङ्गराज' महाकाव्य प्रसस्त कमवीर का जीवन काव्य	२५-५६
३-४	
'रावण' और 'दरपवश' महाकाव्य मानवीय जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के काव्य संकल्प	५७-६६
५	
'जयभारत' महाकाव्य कथाशिल्प संयोजन विधि का विशिष्टय	६७-७६
६	
'पावती' महाकाव्य मानवतावादी संस्कृति की युगीन अवधारणाएँ	७७-९२
७	
'कालिदास' महाकाव्य मानवीय संवेदनाओं के गायक की गौरव गाथा	९३-११४

(२)

८

भौती की रानी महाराष्ट्र	११५-१३२
अप्रतिम शोभ की आगेप टूटति	

९

'वसन्ती' महाकाव्य	१३३-१५०
नलोपाख्यान के विकासक्रम में एक काव्योपलब्धि	

१०

'रश्मि' महाकाव्य	१५१-१६६
युग चेतना का शाश्वत उद्घोष	

११

'ऊर्मिला' महाकाव्य	१६७-१८२
आय सस्कृति के उदात्त जीवनादर्शों की अभिव्यञ्जना	

१२

'एकलव्य' महाकाव्य	१८३-२१०
गुरु भक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान	

१३

'सारथी' महाकाव्य	२११-२२४
त्रिपुर-कल्पना का युग सापेक्ष काव्य रूपक	

१४

'उवशी' महाकाव्य	२२५-२४२
नारी के नाना रूपों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा	

१५

'जननायक' महाकाव्य	२४३-२७२
स्वाधीनता सगर में राष्ट्रपिता के आदान का आख्यान	

१६

'मानवेन्द्र' महाकाव्य	२७३-३१८
सोवनायक नेहरू की श्राव्य सतीत्य कीर्ति-कथा	

१७

श्री गुरु गोविंद वसिष्ठ' महाकाव्य ३१६-३३०
आत्मोत्सर्ग का जीवन्त समाख्यान

१८

रामराज्य महाकाव्य ३३१-३४२
राम कथा के परिवेश में विश्वजनीन शासनादर्शों की व्याख्या

१९

'लोकामृतन' महाकाव्य ३४३-४३०
विकासकामी मानवता के जीवन सत्य की भागवत कथा

२०

'ककेयी' महाकाव्य ४३१-४४८
पद्मचात्ताप पुता नारी की मनो-यथा का पुनमूल्यांकन



‘मेधावी महाकाव्य’

मानवीय-चेतना के गतिशील स्तरो का रूपाकन

१

‘मेधावी’ महाकाव्य मानवीय-चेतना के गतिशील स्तरों का रूपांकन

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की परम्परा में डा० रामय राघव वृत्त ‘मेधावी’ प्रबन्ध काव्य का प्रणयन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ‘मेधावी’ का प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, द्वारा भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के वर्ष में हुआ। यह विलक्षण संयोग है कि परोक्षतः ‘मेधावी’ के कथ्य का सम्बन्ध मानवता के स्वातन्त्र्य युग के चिरन्तन जालोक से विकीर्ण होन वाली चेतना रश्मिया की विकास गाथा से है। ‘मेधावी’ काव्य की सृजन प्रेरणा के मूल में कवि की वह अदृश्य आकांक्षा क्रियमाण रही है जिसके द्वारा वह मानवीय चेतना के गतिशील स्तरों का रूपांकन इतिहास की महागति के परिसर में करना चाहता है। इतिहास के सत्य को कवि ने घटनात्मक तिथिक्रम की शृंखलाओं में ही निबद्ध नहीं माना वरन् अनुभूति और चिन्तन के धरातल पर अधिष्ठित कर सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान विज्ञान की अन्वयुत्थानमूलक गति से सम्बन्धित माना है। इसी लिए उसने मानवता विकास की ऐतिहासिक गति के अन्तर्गत ही काव्य कला, संगीत, भूगोल, समाजशास्त्र राजनीति, दर्शन तथा विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति के अवश्यम्भावी परिणामों का भी भूमिका निरूपण किया है। मानवता के आविर्भाव काल से लेकर विभिन्न युगों में उसके सचेतन विकास तथा सम्यक्ता और ससृष्टि के विभिन्न सोपानों पर संचरण करत हुए ‘वचनानि’ उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में उसके भागलिक भविष्य की कल्पनाओं को आलाच्य काव्य के विराट रचना फलक पर अंकित किया गया है। ‘मेधावी’ की पात्र सृष्टि भी अमूर्त है। ‘इतिहास और गति’ को कवि ने नायक और नायिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। मानवीय चेतना के जिस उदात्त और विराट स्वरूप का महत्त्वांकन कवि का अभिप्रेत है, उसकी सिद्धि में सामान्य भौतिक व्यक्तिव वाले नायक

नायिका सहायक हो भी नहीं सकते थे। इस सम्बन्ध में 'मेधावी' के रचनाकार का यह कथन उल्लेखनीय है कि—“प्रस्तुत काव्य इतिहास की तरह यद्ध नहीं है। अनुभूति और विचार के कारण कही कही इतिहास की तिथियों का ध्यान नहीं रखा गया क्योंकि तिथियाँ का महत्व भी स्वयं अनुभूति में है इस प्रकार का काव्य लिखते समय मात्र। इतिहास, दर्शन, भूगोल, काव्य समाजशास्त्र आदि सबका इसमें सम्मिश्रण है अतः इसकी भूमि बहुत विस्तीर्ण है। एक नायिका एक नायक के चरित्र में इतना रूप समाना असंभव है। इस काव्य के नायक-नायिका इतिहास और गति हैं, और मेधावी के द्वारा वे प्रकट हुए हैं।” नायक-नायिका के अतिरिक्त 'मेधावी' की चरित्र-मृष्टि में अथ पात्र हैं—तारे, सूर्य, पृथ्वी, द्यायापय, न्यून, अग्नि, वायु, जल, उषा, समय, पटक्रतुण कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक और मानव। पात्रों और प्रतिपाद्य की भाँति ही मेधावी की शिल्प संरचना में भी वशिष्ट्य है। मेधावी के रचयिता ने महाकाव्य के रूप विधायक तत्त्वा का भी परम्परित ढंग से समायोजित नहीं किया है। उदाहरणार्थ— मेधावी सगर्भ होते हुए भी आस्थान-तत्त्व की पूर्वापर अविति की दृष्टि से विशृङ्खलित है तथा सुमगठित छन्द-योजना के साथ-साथ नाटकीय गद्यात्मकता से वियस्त है। कथ्यमूलक वविध्य के कारण भाषात्मक संरचना शब्द वियोग और शीघ्र समायोजन में भी पर्याप्त अपेक्ष्य है। किन्तु इस सबके बावजूद भी मेधावी के बलेवर में आद्यत अनुभूति और चिन्तन की गरिमा का ऐसा ऐक्य विद्यमान है जो न केवल पाठक को अभिभूत किए रहता है बरन इस काव्य की महाधना का भी प्रतिपादक है। इस असाधारण वशिष्ट्य के कारण 'मेधावी' को आधुनिक हिंदी महाकाव्य परम्परा की कामायनी 'सुरंग' उबशी लाकायनन सदृश्य श्रेष्ठ प्रसंगकाव्य टुनिया व साथ श्रगीबद्ध किया जा सकता है।

मेधावी महाकाव्य का समारम्भ 'महागति' के स्वरूप विवचन चिन्तन की व्याख्या और मृष्टि-संरचना की मोक्षेयता व सधान सहाता है। काव्यारम्भ में पूर्व प्रथम मग का आशान-संकेत है— एक दिन ध्यात्रुल मेधावी बठकर विगत करन गगा। अपनी पृथ्वी की सधुता से लय कर उमन देगा अनंत ताताग म धनर तारा नृय कर रह थे। मेधावा स्तब्ध मीन गहन गुनसान गहन व हृय का दणकर मगगति व सम्बन्ध में चिन्तन करता हुआ बन्ता है कि—

“महागति जिसका जोर न छोरे
 मृष्टि के जीवन का उल्लास
 नाच री नाच मृज्जन की कोर
 नाच रे नाच ध्वस के छोरे
 आत्मलय जग का बने विनास
 मरण म जम, जम म मृत्यु
 तिमिर का घन निस्तब्धता तोड
 चमक उठ ओ चेतन बन जाग’ (सग १, पृ० २)

मानव की अपराजेय जीवन शक्ति पर विचार करते हुए मेघावी ने कहा कि युगा से मानव एक ही सोज म निरत है, वह है—मनुज का ध्येय जोर मृष्टि का उद्देश्य। किन्तु मैं’ (अहंकार) की मेघा से उद्दीप्त मानव आज तक यह नहीं जान पाया कि जीवन का सत्य जोर झूठ क्या है? वास्तव म विक्ल मैं’ का उमाद हा विश्व का केन्द्र और स्फूर्ति है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की भी सापक्ष स्थिति है। प्राण का छोटा सा दीप ही ब्रह्माण्ड के विराट रूप म प्रकाशित है। ‘महागति का परिवर्तन ही अणु’ को गाना रूपो मे अभि-यक्त करना है। वही अणु जो अतीत म सम्राट था, आज मिथ्यारी के तन म जाबद्ध है। रगिणी जा कल गीत थी आज अनुगूज है। कल जो मतवाली चितवन थी, आज झुकी पलकी का अभिशाप है। मुक्ति-बधन तथा पाप पुण्य का भेद भी मनागति का ही उच्छ खल श्वास है। मानव, जिसका विशावधि विस्तार है जोर जिसने सिद्धाथ और चगेज क रूप धरे हैं वह भी महागति’ क अनन्त सत्य जोर रन्स्य को नहीं समझ पाया है। कवि की धारणा है कि मनुष्य का यह दम्भ अकारण है कि वही सवशक्ति सम्पन्न है—

‘अरे मानव क्या इतना गव
 कि तू ही है सबका धिर केन्द्र ?
 बना कर परमेश्वर का दम्भ
 कर रहा अपना तू अपमान ?
 गए वह त्तिन जब ताराधूलि
 देवताभा की छाया म्लान,
 जाज ता वह भी चलते भूत
 कि जस पृथ्वी का अभिमार । (सग १, पृ० ६)

मेघावी क अनुसार निस्साम नम का बल्पना के पक्षों से मानव का मान-विह्वल नहीं तिरभवता है। तूय ही तूय का अपरिमित विस्तार है। इसम

विराट भी उत्प प्रतीत होता है। भूमि तो अगुमालि की छाया मात्र है, स्वय मातण्ड भी एक बिन्दु के समान 'याकुल कलात भ्रमण करता है। वस्तुतः यह सत्र कुछ 'महागति' का ही अतिमुक्ता प्रवाह है—

'और यह सृजना जोर सहार
चल रहा है कितना निर्व्याज ।
एक गति का अतिमुक्ता प्रवाह
उसी म से निरला यह सूर्य
और फिर ग्रह उपग्रह का तास
बचाने अपना सत्ता भाज
सभी गतिमय चलते अथात
आदि अनात, अत अनात
एक यह गति का माध्यम नेप (सग १ पृ० ८)

द्वितीय सग का आर्यान है—'नक्षत्रा का नृत्य स्फुलिंगा के खेल की भांति उसक नयना के जाग पुलकता रहा। नक्षत्रा के गीत नृत्य से ध्वनित होता है कि सौर चक्र म अविरत नसन हो रहा है। एक पिंड या अणु प्रकाश स ही अगणित जगा का आविभाव हुआ है। मघावी नक्षत्र मडल की स्वी कारोकिनयां सुनता है। सूर्य स्वय को जीवन का पोषक कहता है। छायापथ सूर्य की दर्पोक्ति पर व्यग्य करता हुआ कहता है कि मुय म अगणित नक्षत्र समाविष्ट हैं सूर्य ता बहुत छोटा है वह धरणी का वभव दिखला कर अपनी लघुता से उसे छलना चाहता है। तारागण स्वय को सृष्टि सुदरी की मेखला के रजत-वण मानते हैं। किन्तु मघावी ने तारो सहित सभा नक्षत्रो की गतिशीलता पर महागति के ही प्रभाव को स्वीकार किया है—

तारो का प्रिय सुदर नत्तन
गति का नत्तन
नूपुर छन छन

× × ×

सब का नत्तन पग परिवत्तन
गति का नत्तन पग छूम छनन
आन अ अमर प्रत्यावत्तन । (सग २ पृ० २०)

सृताय सग म मघावा न देला कि सृष्टि—सम्पूण सत्ता अपना महानत्य कर रही थी।' इस सत्ता नत्तन म सृष्टि का अणु अणु मग्न था। सभी की

परिधि थी—टूटना, जुड़ना और अपार भ्रमण करना। अचानक मेघावी को घृति लोक से टूटता हुआ तारा दिखाई दिया जो ग्रहों की भ्रमण शक्ति में घूमकर अंतराल में घूर हो गया। यह दृश्य देखकर उसे प्रलय की बना याद आ गई, एक भगावह परिवर्तन से वह बाँप उठा—

“एक दिन क्या यह धरणि अमोल
मूम की गति में खोकर लाज
घूर हो जायगी कर रोल !
एक दिन रवि हो शीत प्राय
ऊष्ण आलिंगन देगा छोड़
और फिर अघनूय में लुप्त
भूमि खोयगी कपित घोर !” (सर्ग ३, पृ० २३)

इसी चिन्तन क्रम में मेघावी की दृष्टि प्रकृति पर गयी। उसे पल्लवित पुष्पित द्रुमा के सुरभि मधु के प्रसार में छवि का सागर आदातित होता हुआ दिखाई दिया। उसे आभास हुआ कि प्रकृति की सत्ता अनन्य है। प्रकृति की प्रशवास में आँधी और जलप्लावन है ता मधु स्नेह का वपण भी है। मानव गर्वोन्नत शीश उठाकर गजन करता हुआ प्रकृति विजय का अभियांत्रिकी करता है किन्तु वह भूल जाता है कि प्रकृति में व्याप्त परिवर्तन का क्रम अनन्य है। जीवन और मृत्यु का नरन्तय भी महागति के ही परिवर्तन का परिणाम है। क्योंकि—

“गति में उछाल रे परिवर्तन
जीवन मारण की चञ्चल विधि
में बदल उमड़ प्रत्यावर्तन
× × ×
मिलत अणु चेतन जीवन बन
दिलराती मृत्यु सुनिर्विकार
अणु फिर मिलत चल परम्परा
ज्या अक्षय विलमित यह खुमार।” (सर्ग ३, पृ० २६)

महागति रूपी विराट सत्ता एक नारा है—जिसके दा उराज, परिवर्तन और मृत्यु हैं। इसके नख तारागण और स्वयं का कशा का मुहाग है। इनकी मेसला में महामूय रूपी रत्न जड़े हुए हैं। महानूय इसका आचल है। महागति की धिरकन, परिवर्तन, जीवन, चिर रहस्य, स्मिति निभय विवास और रूप अखिल महासत्य है। पृथ्वी तो विराट सत्ता के आदालत की झलक मात्र है।

विज्ञान एक अवाक शिगु की भांति इसके अगणित रूपा के सधान में प्रवृत्त है। अरबा वर्षों से सृष्टि का क्रम अविराम गति से चल रहा है और मनुष्य का दम्भ अनेक बार धूँष हुआ है। मैं हूँ' के दम्भ भाव ने उसे सन्ताप ही दिया है। परिवर्तन के सत्य से अनभिन्न मानव ने उससे सघप भी किया, किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। महासत्ता के डर से मनुष्य ने ईश्वर की सृष्टि की। वस्तुतः चिरन्तन सत्य दो ही हैं—

‘और दो ही हैं शाश्वत सत्य
एक सत्ता का अविरत खेल
दूसरा परिवर्तन का नृत्य
उसी की महारौर में मग्न
वही जाती है सृष्टि अवाध
× × ×

सभी ता गति का चिर स्वच्छ द
प्रबल धारा का सुन्दर रूप
अस्ति है स्वयं अस्ति का केन्द्र
नास्ति है केवल दृढ़ता शक्ति
ज्योतिन्तम का यह अविरत खेल

आत्मलय औ विकास का मेल।’ (सग ४ पृ० ३६ २७)

चूँकि परिवर्तन की गति में ही सृष्टि का अपार विकास निहित है जत परिवर्तन ही सर्वात्मरूप है। उसका नत्तन जग का विकास है तो उसी विराट का ऋद्धोध ही ज्वालामुखी के विस्फोट की भांति शक्ति को उमड़ाता है जिससे मस्मीभूत करने वाला विध्वंस हाता है और यह सृष्टि लय ही जाती है। ‘परिवर्तन के महाप्रसार का वणन करता हुआ कवि कहता है—

तू अन्तराल का अदृष्टास, तू वणहीन तू वणलास
तू पल पल के पुल पर चरना, है समय सिन्धु कर रहा पार
अगणित स्वगगा भानु अगन, तुष म स फूटे स्फुलिंग
तुष म अगणित नाटक हा तू महागूय का रगमच।

(सग ४, पृ० ३६)

मघावी के अनुमार जब (वनमान) बल (भविष्य) ऋतुए, अ, कल्प स्थिति गति आदि सब परिवर्तन के नूपुर का हा मणियाँ हैं। पक्ष मास ऋतु भांति उसके अविरत नत्तन के सतत स्फुरण हैं। वन आतर शैल गुहा नदियाँ छाया मारन पत्रय कुम्भ लहरें, कामल मृदु तनु आदि परिवर्तन की

गरिमा की ही पूष छाँट है । जन्म और मृत्यु चिर परिवर्तन के ही दो चरण हैं । सृष्टि के सचेतन विकास और विनाश का कारण भी परिवर्तन ही है—

“तेरे नत्तन म सृष्टि जरा, नव-नव प्रकाश मे चिर नवीन
तेरे चुम्बक से जाग्रति म, है चिर मुपुष्टि का आदि लान
तू अणु स पूट हुआ विराट, फिर भी विराट तू है अणु ही
तू चिर अतन पदाथ म है, व्यस्तता धाम मिथण, विनाश
जा आदि पूय, वह अन्त-पूय, तू ही दाना का एक सत्य
तू आत्म विकास अमर पुलकित, अतर्वाहर का एक गत्य ।”

(सग ४, पृ० ४४)

सृष्टि रचना के क्रम में सबसे प्रथम प्रकृति में पुलक कर निर्माण किया । प्रकृति के कण मानव ने भी निर्माण प्रारम्भ किया और दोनों में द्वन्द्व बढ़ा । सूर्य और नक्षत्र नभ में दौड़े, नदियाँ सागर की ओर चली । सागर बादल में शुद्ध हुए और बादल शला से टकराकर भू पर बरस । मनुष्य ने पृथ्वी का लाहा पृथ्वी में मार कर सोना और जल उत्पन्न किया और फिर निर्माण का जय गीत गूजन लगा । गति रूपी महाशक्ति भी आग बनी । इसी गति शक्ति ने निर्माण के साथ नाश का बल संचित कर सृष्टि में सतुलन स्थापित किया । गति को व्याख्यायित करते हुए कवि कहता है—

‘ गति महानाद, गति ईमन ध्वनि
गति कालमयद, गति है जीवन
है कभी फूटकर सृष्टि बनी
इतनी गम्भीर इतनी विराट

× × ×

गति माया है गति उलझन है
गति भीरु हृदय की जाला है
गति के अणु को जय के स्वर को
गति जीवन है, उजियाला है ।’ (सग ४, पृ० ४६ ५०)

पंचम सग का व्याख्या-संकेत है—‘मेघाद्री ने देखा—आकाश के बीच महाशून्य में धारे धार सौरचक्र बनन लगा और पृथ्वी सूर्य को देखकर मुस्कराने लगी ।’ महाशून्य में विलोडन करता एक महाचक्र घूम रहा था जिससे अणु अणु में ज्वालि जीवित थी । अग्नि रूप सा सूर्य घबकता हुआ अंतराल में घूम रहा था कि आकषण के कारण एक नक्षत्र टूटा और अग्नि गति से घूमने लगा । इस नक्षत्र की ऊष्मा भाप बनकर पिघली और जलरूप हा गयी ।

कालांतर में जल की जड़ता ने धरती का रूप धारण किया। (सग ५, पृ० ५७) पृष्ठ सग के जाखान सकेत में कहा गया है कि— 'धीरे धीरे पृथ्वी पर भूत का स्पन्दन हो उठा और जीव चलने लगा। भूत के स्पन्दन से सृष्टि में प्राणि विकास का समारम्भ हुआ। सबसे प्रथम जल में मृदु-कम्पन हुआ जिसके कारण युग युगात् से निष्प्राण जीवन जागा और फिर जलचर, थलचर, नमचर का क्रमिक विकास हुआ—

जल में जाया मृदु मृदु कम्पन, रे जीवन का हो उठा घोष
स्वप्नो से पापाणी जागी, जीवन-जीवन का हुआ तोष
× × × × ×
जलचर, नमचर थलचर जाये क्रम क्रम विकास रे हुआ सुमन
× × × × ×
वह स्थूल उठा छविमय रूप चेतन की दृष्टि जगी दृग म
चेतन का जीवन खेल उठा, हर तनु-तनु के अंग जग में।'

(सग ६, पृ० ६१ ६२)

इस प्रकार परिवर्तन ने अरूप प्राण का रूप धरा। फिर सुख-दुःख और राग-द्विराग की भावना जगी। प्रकाश की स्वर्णकिरण जागी जिससे मेघो ने झर कर सबंध रस व्याप्त कर दिया। अंधकार और प्रकाश ने दिन रात के पट धुन। इसी से आगे चलकर मांस, वप, और युग बने। वस्तुन गति और परिवर्तन ही ऐसे दा सत्य हैं जो अनेक रूपों में आविर्भूत होते हैं। कवि के अनुसार—

र जन्म मरण दो रहे सत्य
अतविकास औ अतलय
रे बद्ध परस्पर चिन्त रहे
वह अघतमस औ ज्यातिमय।' (सग ६, पृ० ६२)

पृष्ठ सग में ही सृष्टि-तत्त्वा की व्याख्या की गई है। य तत्त्व हैं— अग्नि वायु जल, समय आदि। कवि के अनुसार समय के कारण ही रोल-मदान और मगान उपत्यकाया तथा मरन्मूम में परिवर्तित हान हैं। पता नहीं कब तक प्राण-तत्त्व सिन्धु-तल व गहन तिमिर में विकन ऊर्मिया के घषण में पापित हाना रहा। बड़ी प्राणनूत तत्त्व विभाजित हाकर बढ़ना हुआ मत्स्य बना। जीव विकास का प्रक्रिया में जलचरों का परचान सरीसृप और नमचर हुए। इसके परचान कठारचम और रोमरात्रि स जात्रत शशा टूए। जबकि विकास का यह अपराजित परम्परा जावन का धारा क रूप में निरन्तर

प्रवाहित हाती रही है और प्राण-तत्त्व चिरन्तन होने के कारण सदैव अवस्थित रहता है—

'नही था मानव का जब स्वप्न
भूमि पर थे तब भी तो प्राण
अरु ' यह प्रबल विकास
शक्ति का अनुवर्तन कर नित्य
बदलत रूप और आकार ।' (सग ६ पृ० ७५)

सप्तम सग के आन्यान-संकेत के अनुसार—'मेघावी ने चकित हाकर दखा मनुष्य का इतिहास कितना अल्प था किन्तु अपने प्रति प्यार आन्दोलित हो उठा ।' मृष्टि-संरचना के विकास के पश्चात् मेघावी की दृष्टि मानवता के इतिहास पर गई । एक दिन था, जब आय विजय का घोष पहाडो मे गूजता था और वृषभ घण्टाघरि पर ऋचाआ का म्वर भूमता था । आय आनन्द विमार हाकर गात थे— सत्य की ओर । ज्योति की ओर । फिर देवताओ की खाज और कमवाण्ट विकसिन हुआ और तत्पश्चात् चाबाक कपिल, जाबालि, यास्क, मनु गौतम आदि ने अपनी बात ससार के समक्ष रनी । किन्तु मुन की आशा म विकल मानव ने समी का अनमुना करक विजयोत्कण्ठा म जीवन-सपप किया । मानव मे 'अहवाध इनना प्रबल रहा कि वह स्वय को ही नहीं जान पाया—

'जर मैं हूँ चगज कठार अर मैं हूँ तमू' प्रवीर
सिक्-दर 'नीरा' 'बाबर जादि आज मुक्ष म हूँ उ-मुक्त
अलहजर या 'नालन्ना मव्य कि विक्रम 'तसशिला का पान
लेटता है लहरो सा स्फीत महामेधा चरणा पर गूज
आज मैं 'दाल्मोकि' का गीत, आज मैं 'छ' नाद का प्राण

× × × ×

आज मैं । मैं यह मेरा सत्य आज तू कह सापक्ष पुकार
विश्व सत्ता म मरी लीन किन्तु मैं क्या हूँ ।'

(सग ७ पृ० ८६)

कवि के अनुसार मैं क्या हूँ का उत्तर यह है कि मनुष्य को जीवन' की महान प्रगति को कलीव बनकर भुटवाना नहीं चाहिए । अपानवष हो मनुष्य प्रवृत्ति स सपप करता रहा है । अविश्वासा का पाथय लेने के कारण ही उस त्निभ्रम हुआ । मृगवृण्णा म हाकर वह अपना कुटिल कपाल ठाकता है । गति की सत्ता का सत्य ही शाश्वत सत्य है, और रहेगा । क्योंकि—

न बार्दे ईश्वर या छन छन्द
 न बार्दे आत्मा या अमरत्व
 बल रहा सत्य
 आज भी सत्य
 जीर यह गति त पल पन सत्य
 राह क पथी पग पग सत्य
 राह है नृत्य नृत्य है सत्य । (सग ७ प० ८८)

अस्तु मनुष्य को जघनिष्ठता का परित्याग कर घनमान व प्रति आस्था रखनी होगी। कल्प की नीव का मिटाने पर ही मानव का ज्ञान प्यार की मृदु छाया में स्नात होकर ज्यातित रूपगिरी बन सकता। अष्टम सग में बताया गया है कि आदिम मानव से घोर धीरे मनुष्य जनति की ओर बढ़ा और उसके ज्ञान का परिधि विस्तार हुआ। आदिम मानव की आचरण-पद्धति का बखान करते हुए कवि कहता है कि वह तपे हुए ताव से तन घाला, रोम राजि से जादत्त और चिनुक भाल से हीन वपुष धारण किए था। वह छोट किन्तु सुदृढ़ हाथा से कच्चे पल्लव लाकर घरर घरर की ध्वनि करता सा पानी पीता था। पलभर में वह लघु पशु के पीछे टीले सड्ड और समतल पर पीछा करता हुआ भागता और कब्चा मास चवण करने लगता। उससे नग्न वपुष पर रुधिर टपकता था। आसेट युग के मानव की जीवन चर्या का सविस्तार बणन करने के पश्चात कवि ने स्त्री पुरुष के उस उ मुकन यौन ससग का निरूपण किया है जिससे सामाजिक भावना का उदभाव हुआ—

'जरे नर नारी का सयोग
 बन गया सुख का पहला वेद
 × × ×
 और जय मन में उठनी चाह
 भुजाओं के बंधन में भूल
 घूमते थे व नग गात
 नग्न थे दोनों लज्जाहीन
 परस्पर थे कितने अनिवाय
 सृष्टि का वह पहला भाव
 जहाँ से सामाजिक उदभाव
 परस्पर द्वेष त्रास से दूर
 मानवा का आपस का प्यार ।

(सग ८, पृ० ९६)

आदि मानव अधिकांशतः प्रकृति का दास बना हुआ रहता था। महसूसो मनुष्य प्रकृति की बलिवेदी पर चढ़ जाते थे। प्राकृतिक आपदाओं से जूझता मानव फिर भी जीवित रहा। गुफाआ म छिपकर, पल्लवों को ओढ़कर, शीत में अग्नि से मंत्री कर उसने जीवन रक्षा की। अग्नि के महत्त्व को जानते ही आदि मानव की जीवन चया बदलने लगी। पाषाण युग के मनुष्य ने अस्थियों और पत्थरों से नुकीले औजार बनाकर हिंस्र वंश जीवों से अपनी रक्षा की। युगों के अवेपक प्रयत्नों और अनुभव के पश्चात् मानव बबर से सम्म बना है। कवि के शब्दों में—

“कितने युग युग का अवेपण
कितने वर्षों का अनुभव कर
पाषाण धातु का कर प्रयोग
होगया सम्म सा वह बबर।” (सग ८, प० ११४)

जीवन के प्रति मानव की जडिग आस्था और विश्वास ने ही उसे महागति प्रवाह में सतरण की शक्ति दी और ज्ञान कोष का अभिभावक बनाया—

‘मैं देखूंगा वह गति प्रवाह मैं कालसिन्धु का नाविक हूँ
मैं हूँ मानव की परम्परा, मैं ज्ञान काप अभिभावक हूँ
× × × ×
पर हार नहीं पाया हूँ मैं रोककर भी कब होना निराश
मैं खाल रहा धीरे धीरे युग युग के वह अनिरुद्ध पाण।’

(सग ८, प० ११६ ११७)

नवम सग का जास्यान-मन्त्र है कि— मेधावी ने देखा आकाश में ऊपा फूट रही थी। पृथ्वी पर अपार सौन्दर्य फल रहा था, वह उसमें लय हो गया किन्तु अचानक हा वह स्वप्न भंग हो गया। (प० ११८) इस सग में प्रकृति के अतः विकास श्रम और सौन्दर्यमयी छवियाँ का हेमन्त, शिशिर, यज्ञत ग्रीष्म, वर्षा शीत नामक पञ्चभूतों के माध्यम से स्थापित किया गया है। उल्हाहरणाय शीत भूत का कथन द्रष्टव्य है—

‘मैं ज्योत्स्ना हासिनी अमन मनन

मैं महापूणिमा का हुलास र गृध्र गंगा में तुम्ह श्वास
मधु श्रत हम शतदल सञ्जित, हूँ स्वच्छ अक म शांति लास
मैं धीणावादिनी इडु बदन

मैं म्वर्णाचल से सिहर सिहर, मोठी शीतलता से मृदुतर
वन महा स्वप्न का दीप प्रमा भवरत्नो म लुक्ती आतुर
मैं निमल यामिनी गंध सुमन।’

(सग ९, प० १२६)

मानव सभी ऋतुओं का अभिमान करता है क्योंकि ये उसने जीवन में नवल उत्साह का साधारण करता हैं। ऋतुएँ, वनस्पति और अन्न उत्पादन में सहायक बनने के अतिरिक्त जीवन घटका को अमृत से भी भरती हैं। ऋतुओं ने आदिमानव को अनुग्रह वरदान दिए। ह्मत्त ने मानव के जीवन में नव गाम्भीर्य जगाने, ग्रीष्म ने पीडा का शोषण करने, वर्षा ने जीवन घट को रस से भरने तथा शरद ने तृष्णा क्लृप्त को मुझावर मानस शतल को मृदुमलयानिल से पुलकित करने का वरदान दिया। प्रकृति के वरदानों से मानव धन्य हो गया।

दशम सग में आयों के सिन्धु-नतरण तथा द्रविडा से उनके सपप का चित्रण है। विभिन्न भूभागों में जन्म लेने के कारण मनुज में आदिभिन्न भेद था, भाषा और सस्कृति की भी भिन्नता थी। इन्हीं भिन्नताओं ने वर्गों और जातियों को जन्म देकर सामजस्य और सपप दोनों ही प्रकार की स्थितियों को उत्पन्न किया—

“वग में मानव का विच्छेद, सपिणी सी भरती निद्रा
अपरिचय का वह गहरा सड्ड, स्वाय ऋत्न पर भरता रग
और अब काल शून्य के बीच जातियों की कडियाँ निर्घ्याज
बनाती हैं नव सामजस्य अरे यह परम्परा का साज।”

(सग १०, प० १४०)

आय, मगोल सिमेटिक, हेमेटिक, ईरानी, यूनानी, कल्ट, ट्यूटन स्लाव तुलार आदि का भेद भौगोलिक भिन्नताओं का ही परिणाम है। आयों ने सप्त सिन्धु प्रदेश में पहुँचकर देव वन्दना के अमर गीत गाए। आयों के देव थे— इन्द्र उपा, सूर्य आदि। आयों ने देव वन्दना द्वारा इस प्रकार वर याचना की—

इन्द्र के प्रति— ॐ इन्द्र उल्लास पुरुष जय
ॐ मानव के अभिमान विकट जय
ॐ निवस पितर योद्धा पुरीष जय
शत्रु नष्ट कर, सुख दे जय दे।’

(सग १०, प० १४६)

उपा के प्रति— आलोक्ति जय सुदरि जय जय
तू अनुजा है सूर्य पुरुष की
वह जीवन दे तू प्रवाशिनी।

(सग १०, पृ० १४६)

सूय के प्रति— “आलोक पुरुष, हे स्निग्ध वपुष
चेतना फैला दो, जीवन मे ।”

(सग १०, पृ० १४६)

इसके पश्चान द्रविडो और आर्यों के सघप का वणन है। इस समय मे आय ही विजयी हुए। सिंधु से गंगा तक आर्यों का निर्बाध आधिपत्य स्थापित हो गया—

और बन्नकर जीवन की शक्ति, छीनकर उन द्रविडों की मुक्ति
छा गया आर्यों का वह लास, आय केवल आर्यों का पाश
शर्न प्रसता था यह भूभाग, सिंधु से गंगा तक निर्बाध
भूजती ऋचा प्रतिध्वनि डोल, वन गई जाति, वन गए वण ।”

(सग १०, पृ० १५४)

आर्यों का आधिपत्य स्थापित हुआ किन्तु वण भेद के पाश ने नवीन विडम्बनाओं का भी जन्म दिया। समय समय पर अनेक महापुरुष और दाश निक अवतरित हुए जिन्होंने कम, तप, दान दया चान और योग का उपदेश दिया। किन्तु मेधावी ने देखा कि मानवता आज भी स्रस्त है—

आज मैं देख रहा हूँ मैंने युगांतर से मानवता त्रस्त
‘द्रौपदी सी लुटती अमहाम, शक्तिशाली ‘पाण्डव’ हो मूक
मूख है महापाश मे बद्ध अध है स्वाथ भरा वह ‘याय
और दुशासन करते गरज, चीर हरने का निष्ठुर काम
धम की चाह रहा जो जीत, कृष्ण भी आदर्शों मे लीन
साम्य का देकर भी सदेश, न दे पाया मानव की मुक्ति
मुक्ति ता थी ईश्वर सान्निध्य हत । यह क्या केवल उमाद ।”

(सग १०, पृ० १६२)

एकादश सग के आख्यान से जात होता है कि मानवता की दयनीय दशा देखकर मेधावी ‘याकुल हो उठा। तब समय’ मे से प्रतिध्वनि आने लगी और उसने दखा ” कि कालगति उसे मानवता विकास का बाध करा रही है। सम्पूर्ण एकादश सग मे मेधावी और समय (कालगति) का गम्भीर सवाद प्रस्तुत किया गया है। समय ने प्रश्न किया—

कौन हो तुम उमत्त विभोर
दुखी होकर करत सघप
युगांतर से पथ पर चल किन्तु

रुद्ध हा जाता विकल अमप ।” (सग ११, पृ० १६५)

समय की प्रतिध्वनि का उत्तर देने हुए मेधावी ने कहा कि 'मैं मानव हूँ, मैं अभिराम स्वप्ना का मार लेकर चला था, मैं पहाड़ों, भदानों, नम, सिंधु सभी को छान आया हूँ किन्तु मुझे कहीं भी सुखसार नहीं मिला। मैं उस साधन का सधान नहीं कर पाया जिससे मानवता का कल्याण पथ प्रशस्त हो। मेधावी ने निराशा भरे स्वर में कहा—

'आह मैं मानव हूँ अभिभूत, विजय का करता हूँ अभिमान
रात का तम जाता क्यों भूल, जमी आता है दीप्त विहान
× × × ×
दूर तक भू के उर पर देख, छोड़ आया हूँ मैं पगचिह्न
सतत चलता हूँ मैं निर्बोध ध्वस, निर्माण आहूँ कर दिन।'

(सग ११ पृ० १६७)

'समय ने कहा कि यह मानव अपनी गति के साथ सही छत कर रहा है और फिर शोधित होता है। यह स्वाय की कारा में अभिशप्त होने के कारण घृणा से विद्ध रहता है। 'समय ने बताया कि मानवता का भगल विधान साम्य की भावना में निहित है—

"साम्य मानव की तृष्णा घोर एक ही बिंदु मिटाये आज
बिंदु हर उर का सिंधु समूह किंतु क्या मेधा का उपहार ?
समय थम का—जीवन का सत्य, यही से मानव का कल्याण
एक जग जिसमें दुःख हो स्वप्न घूर हो वर्गों का अभिमान।

(सग ११, पृ० १६८)

इसके पश्चात् समय ने विश्व इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया जो मानव की तृष्णा घृणा दम्भ उमाद नूरता और शोषण की परिचायिका हैं। मिश्र की ममी सिद्धवाद की यात्रा अकेडियन सेमेटिक और अमोराइट्स का गव हिट्टाइट्स का बबरध्वस हिब्रूओं की शोषण क्या जेरसलम, ईरान यूनान फोनेशिया की कथाएँ और दास प्रथा की बुराईयाँ बनायी तथा मनुष्य की उपलब्धियों का उपहास करते हुए कहा कि—

'अभी क्या ही क्या मानव ने अब तक लिपि निर्माण किया है
घर प्रासाद बनाये उसने शस्य उगाये पान किया है
घानु बनाइ वस्तु बनाइ, पोत बनाय शस्य उगाये
अधिकारों के असतोप में अपने सचित कोप लुटाये
तारा की गति को आका है, नारी को दासी ठहराया
और गुलामी में लाखों को वर्गों के हित भरमाया।'

(सग ११, पृ० १७०)

‘समय’ ने बताया कि मानव समाज में वग-सघप, लस प्रथा, शोषण, अनाचार और प्रभुत्व-शामना सम्म्यता विकास की प्रतिभियाएँ हैं, अथवा आदि मानव का जीवन तो स्नेह सद्भाव और मौमास्य से परिपूर्ण था—

“आदि पुरुष जो सरल चित्त था, द्वेष श्रोत्र से वही दूर था उसका सामूहिक स्वरूप भी साम्य शक्ति का प्रथम रूप था सत्र उपजाते, सब ही खात गीत गुजाते, नत्तन करते नर नारी के सग प्रेम की, मुक्त धार में हँस हँस बहते ।”

(सग ११ पृ० १८५)

आरम्भिक समाज मातृ-सत्तात्मक था । नारी को धरती मा की छाया माना जाता था । वह जननी और जादि चतना के रूप में स्वीकृत थी । किंतु जैसे हा पुरुष का यह बोध हुआ कि नारी तो भूमि है और बीज बीज्य है जिसके अभाव में उत्पादन (प्रजनन) असभव है तो उसने नारी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारम्भ किया और अतत नारी की लथा यह हुई कि—

“नारी नर की भोग्या बन गई, यौन योग की अमल मुक्ति भी क्लृपित बघो में सब सडकर, उठा चनी दुग्ध नुद्ध से एक ओर जननी कह छलता उधर बना दता वेश्या बदिनी के आसु ने बहकर, खीचा था सतीत्व का घेरा ।”

(सग ११, पृ० १८६)

मानवता विकासके इतिहासकी नशमतापूर्ण गाथाओं को सुनते-सुनते मेघावी आकुल हानर चिल्ला उठा कि चुप हा जाओ । ‘समय’ ने कहा कि कवि व्यथित क्या हा ? मैं कभी चुप नहीं होता मेरा गीत अमर रागिणी है । तुमने कहा तो मैं ने बताया, अथवा मुझे क्या पडी थी कि मैं अतीत का पुनराख्यान करना । मेघावी तुम प्रयत्न करो कि मानव अपना रूप और कृत्य सुधार ।

द्वादश सग का आख्यान सकेत है— ‘मानव का इतिहास करवटों ले रहा था ।’ मेघावी ने देखा कि व्यथम का गहन चक्र काप उठा, विकल विश्व हून गया और मन्त्र अधकार में उस अगति चित्र लिंग्याई दिए । मानवता का इतिहास एक महानृत्य की भाति उबत रूप में नशा में खेल उठा । उसने अनुभव किया कि जानि राष्ट्र और विशद देश की ग्याएँ दूर हट गयी हैं और उसने विस्मित भाव से देखा—

‘तम गहन पसार था अबल, निबघ अपरिमित विगन सार जो अनराल में काप उठा, यह कभी करणामय पुकार

अतस को छूती जाग बनी, बुएँ सी उठनी धुमड लीक
वह व्यक्ति रूप की चेतनता, भरती युग-युग की एक टीस ।'

(सग १२, पृ० १६४)

सब प्रथम मेधावी ने देखा कि अतन्तम में विजय पियामु वीर सिन्दर की वाहिनी दुर्दांत घोष करती जा रही थी। सनिका के जा-बल्यमान रविनम सण्डो से पृथ्वी काँप रही थी। अपने दुरमिमान से उन्होंने असह्य ललनाओं के जाँसू बहाए। किन्तु पुरु प्रवीर से हुए सवाद से सिल्यूक्स का मोह भग हुआ। इसके पश्चात् पियामार नचिकेता चावाक गीतम के सदेश की अनुगूज भी मेधावी ने सुनी। फिर मीट्य, कुशान पल्लव शक जीर गुप्त साम्राज्यों के उत्थान पतन का क्रम उस दृष्टिगत हुआ। मेधावी ने स्मृति में कलिंग विजय जशाक विराग, सघमित्रा की यात्रा स्व-दगुप्त का बलिदान, अदूरदर्शी बौद्धा के मघारामा के बुचक्र, फानाशियत पीत पर पारसीक सैनिक स्पार्टा के विद्वेपी क्रावसीज की विजय वाहिनी ओलिम्पिक का वभव रोम के विध्वंस के समय फिडिल बजाते नीरो सीजर और पोम्पिआई की रवितम गाथा किलयोपेट्रा की रूपशिक्षा, चीनी दाशनिक कन्फ्यूशियस की वाणी, स्पार्टाक्स के ज्वलित नयन और यूरोपिडोज तथा बर्जिल की वाणी के दृश्या को उभरत हुए देखा। इन दृश्या की मेधावी के मनस जगत में यह प्रतिभिया हुई कि—

यह चलचित्र दस लगता है, मानव है अग्यास कर रहा

× × ×

क्यों है यह मानव गुलाम सा पशु सा दरिद्रता से शोषित
क्या वभव ही इनके धर्म ओ' रघिर नीव पर होना पोषित
में सम्यता कह फिर किसको, जब माग का माग अरचिकर
स्वय बनाए दुख ग्रसते हैं, स्वार्थों में जीवन बन्दी कर

× × ×

क्या विचार भौतिक पय तजकर, व्यक्ति रूप में मुक्त पायगा ?
भूत भूत की घूमित छाया में प्रकाश अब क्या पायगा ?

(सग १२ पृ० २११ २१२)

मेधावी ने कहा कि वर्तमान की स्थविर कल्पना और शून्यवाद की सातल मामा मरघट की ही चरम लक्ष्य मानकर जीवन को सुखी मानती है। सिद्धो की अटपटी वाणी ने भी आत्मा और भौतिकता के सघप चित्रों को अक्षित किया है। इस प्रकार मानव का अघतिमिर में मटकते हुए कितना समय बीत

गया किन्तु मानव की सत्य ज्ञान की पिपासा जमी भी अशांत है । और अतत्त असम्य प्रश्न मेधावी के मनस जगत मे उभरते हैं—

‘मैं मानव हूँ, मैं ईश्वर हूँ ?
निर्मित हूँ या निर्माता हूँ ?
पर मानव क्या ? वह तो निबल
ईश्वर क्या ? मेरा ही चिंतन
क्या हूँ ? क्यों हूँ ?

मैं सागर हूँ, मैं जलधर हूँ
शाली सा दृढ ज्वालामुखी हूँ
सतरण किये, नभ पार किए
सब की जय में सन्तोष नहीं
क्या हूँ ? क्या हूँ ?

ऋषियो की वह गम्भीर गिरा
मिट्टी हूँ मैं अविनश्वर हूँ
मैं तो अगाध का क्षणभर हूँ
पर यह अगाध मेरा अणु है
मैं हूँ, यह मेरा सत्य अटल
सापेक्ष रूप का सत्य अमल
मैं अधिकार, मैं महा ज्योति
छाया मा दीना का विकास
मैं गति का अधिनायक मानव
क्या हूँ ? क्या हूँ ।” (सर्ग १२ पृ० २१४ २१५)

त्रयोदश सर्ग में “अतृप्त मेधावी असन्तोष से भर कर देखने लगता है ।” मेधावी के चेतना पटल पर अतीत के दृश्य पुन उभरने लगते हैं । उसने देखा ‘मक्का’ पुण्य धीवि से अगमिन व्यापारी नारी को नगी करके पशुओं की भाँति मोल भाव कर रहे थे । यह मानवता का भयद भीषण ।पमान था । एक जग स्थल पर गुलामों का मोल ताता हो रहा था । उने दूररी ओर जबू बक्र के मक्का त्याग, मुहम्मद के शब्द और ‘अल्ला हो अकबर का राजन मुना । गौरी खिलजी, सयद, लादी और मुगलों ने इस्लाम के परचम को भारत पर फहराया । विश्व के इतिहास में सामन्तवाद और उसके शोषण की सुदीघ परम्परा मिलती है । किन्तु समय-समय पर बीर, मनस्वी, योद्धा, बधि और गायका ने अत्याय

का प्रतिहार भी अपना शक्ति भर दिया है। अस्तु माया की हाथ में कानि-कारी परिवर्तन भी होते रहें। किन्तु जब तर शोषण जजरित एक मंस्वा बहती नहीं तब तब दूसरी का उदय हो जाता है। इसी कारण मानवता के प्रारम्भ से लेकर आज तक ऊँच गीत और गण भेद का आधार पर किसी-किसी प्रकार की व्यवस्था द्वारा शोषण होता रहा है। किन्तु वर्तमान युग में साम्य भावना के प्रसार द्वारा विद्रोह की जो आग भटकी है उसका कारण नये मानव को भुलावे में नहीं रखा जा सकता—

आज दुःखि बज गई है मातृन में विद्रोह जागा
वास्तविक युग गाति का गुणना नयन में आत जागा
आज कोई भी भुलावा भ्रष्ट पथ से कर न सकता
सृष्टि में सब एक स हैं बस यही कल्याण जगा।'

(संग १३ पृ० २२८ २२९)

वर्तमान युग की जन जागृति में गलोलियो 'यूटन कोमन्स ट्रिबुन ह्योल मायरवाल्ड मार्कस प्रभृति पाश्चात्य कथानिका दाशनिका और विचारका के आदान का कवि ने श्रुततापूर्वक स्मरण किया है।

काव्य के अन्तिम अर्थात् चतुर्दश सग का आख्यान सकेत है— अनन्य जीवन में आज 'माय और अमाय का घोर सघष हा रहा था— और मेघावी तय दखकर मुस्करा उठा कि मणवी ने देखा कि वर्तमान युग के मानव की सत्ता के भिन्न भिन्न स्तर हैं इन स्तरों से गुजरत सभी हैं किन्तु अपना अपना दृष्टिकोण लेकर। एक होटल में बान डा स जीर चुम्पन जालिगन हैं तो दूसरी ओर सती होती हुई नारियाँ हैं। एक ओर मांसल मोत्य का प्रशान और कटाक्ष करती सुदरिया है तो दूसरी ओर विधवाआ का तम रताआ से पूण विवश जीवन यापन है। मोर से सध्या तक मशोनी चविचयो में पिसता मजदूर और कडकडाती सर्प तथा लू से सनप्त किसान है तो भिन्न मालिकों जीर भूमि पतियो की विलासितापूण दनिक चया भी है। सामाजिक जीवन की विसगतियों का मूल कारण साम्राज्यवादी तथा पूँजीवादी व्यवस्था का विडम्बनापूण ढाँचा है। धम और भाग्य की दुहाई देकर पूँजीपति समाज के निम्न मध्यमवर्ग पर अत्याचार करता है। इस वर्ग की चिंतनीय दशा और पूँजीपतियों की नशस ताआ का निरूपण कवि ने इन शब्दों में किया है—

अरे दासा से श्रृंखलाबद्ध, चले जात पिसते मजदूर
पसनियाँ पर टाकर भी चोट हाँपते थम में निरत किसान

× × × ×

भूख से शशव जाता बीत भूख म यावन होता क्षीण
जरा का ही छाता जवसाद, जम से मृत्यु एक ही गीत
निरन्तर श्रम उत्पादन घोर सब रे सवनाश का घोर

× × × ×

उधर मरत हैं भूमे किन्तु, उधर सागर म फसलें डाल
नफा का करते हैं उद्धार अरे ओ महापिशाच ।

(सग १४, पृ० २५० २५१)

कवि की धारणा है कि नये युग के आलाक से उद्दीप्त मानव-समाज अब इन अत्याचारा को नहीं सहेगा । विगत शतान्तिया मे हुई राज्य क्रान्तियाँ इसका प्रमाण हैं । ससार भर म पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की अति का भी वजन स्वत हो जायगा, यथोक्ति—

‘प्रकृति का नियम यही है एक
कि अति का होगा ही विध्वंस
युगो के शोषण का यह क्रोध
अरे ! मानवता का विभोम
सत्य के पय का नव निर्माण
नहीं रक सकता कभी अबाध

नही भुक सकता वह निर्वाधि ।’ (सग १४, पृ० २५३)

कवि ने फ्रांस की राज्यक्रान्ति और लेनिन तथा गाधीजी के साम्राज्य विरोधी महाप्रयत्न का स्मरण तिलात हुए कहा कि पूँजीवाद की मीनार को श्रमिक आन्दोलन ही ध्वस्त कर देंगे । फासिस्टवादी समय शक्तिया स लोहा लेने क लिए कवि ने जनशक्ति का जाह्वान किया है—

‘ह जनशक्ति महान जागो और जगाओ !
हम पृथ्वी स्वयं बनायेंगे, हम दुनिया नइ वसायेंगे
हम महाजागरण गजन कर अविराम चेतना लायग
हे मनदूर किमान जागो और जगाओ !

× × × ×

हम श्रम का बन्दन करत हैं, मधा का गायन करत हैं
हम मानव का निर्माण जमर, लल करमुल्य गनन करत हैं
ह जीवन अमिमान, जागा और जगाओ ।

× × × ×

हम हैं तव युग के जगदूत हम बाल-जतधि-नाविक अभूत
हम साम्य-दीप के नवप्रकाश हम विजयो-मादी प्रान्तिपूत
ह प्रदीप्त गतिमान, जागो और जगाओ ।

(सग १४ पृ० २६०)

इसके पश्चात् कवि ने ओजस्वी वाणी में हिन्द की हूँकार को शब्दबद्ध किया है। इस हूँकार में उदघाप है कि हमारा राष्ट्र अपराजित है। जिस समय विश्व भर में जघकार था तब भी ज्ञान की ज्योति हिन्द चीन ने जगाई थी। हमारा ही गीत की प्रतिध्वनि औरों के जीवन की रागिणी बनी थी। हमारा शक्तिचिह्न अक्षित ध्वज सत्य शक्ति और सौंदर्य की विभास जग को आलोकित करता रहा है। हमारे राष्ट्रोद्दिष्टि में अनेक सांस्कृतिक धाराएँ प्रवाहित हुई, किन्तु हमारा ध्येय विश्व शांति ही रहा। ससार में जत्र जव असत पाशविक शक्तियाँ उन्नत हागी तब-तब हम अपनी सारी शक्ति से उन्हें पराजित कर मानवता के मंगल विधान का माग प्रशस्त करेंगे। हिन्द की हूँकार काव्याश का उत्तम चरण है—

जब जग भर हागा कुटुम्ब सा जब समानता फल सुंदर
जब तारो में कीर्ति मनुज की गूज उठेगी गगन भेद कर
तब भी हमी विश्व पथ दशक ताडेंगे कलुषा की वारा ।
हमन सूष्य बनें अथ तब भी जग भर को आलोक दिया है
अर हमार ज्ञान अंग से मानव अब तब पना जिया है
हम लागे क्यों के पथों के पथों के पथों न जात सत्र अधियारा ।

अपराजित है राष्ट्र हमारा ॥

(सग १६, पृ० २६४)

जग प्रसार मध्याव महाकाव्य का मंग ध्रमानुसार अनुशासन करने के पश्चात् यह स्पष्ट प्रभाव हुआ है कि टा० रागय राघव ने ज्ञानाच्य काव्य के माध्यम से मानवता के विकास का एक विराट् रूप प्रस्तुत किया है। पृथ्वी के प्राक्मभूत और मृष्टि-भरणा के पूरक शक्ति का विकास का महत् सैद्धान्तिक अभिप्राय और विश्व-विकास के मन्त्रित्व आधार पर प्रतिष्ठित करते हुए मानवता विश्व में के शक्ति-सुखान सत्ताना का मन्त्रित्व विवर्ण किया है। विश्व भर को सत्ताना का और मन्त्रित्व का मानव के चेतना के विकास में क्या अनुदान रहा? इस प्रश्न के उत्तर में कवि ने अज्ञाना मौनिक सुभ-सुभ का परिचय

दिया है। सत्सार के महान् दाशनिक्ता, राजनीतिज्ञा, कलाकारो वैज्ञानिका और विचारको के व्यक्तित्व वृत्तित्व और जीवन दशन ने मानवीय चेतना की विकास गति को जिन रूपा म प्रेरित, प्रभावित और जादालित किया है, उसके निरूपण मे भी ‘मेधावी’ के रचयिता का काव्य-कौशल अमिन-दनीय है। ‘मनुज का ध्येय, मृष्टि-सरचना का उद्देश्य’, ‘इतिहास का सत्य’, ‘प्रवृत्ति रहस्य’, ‘जीवन की महागति’, ‘बाल चेतना’, ‘परिवतनशीलता’, और ‘दवो सत्ता की सापेक्ष स्थिति सन्श्य प्रश्नो के परिस-दम मे कवि ने “मानवीय चिन्तन” के अनुदधाटित आयामा का सधान किया है। उल्लिखित प्रश्नो के परम्परा सबलित समाधान से पराडमुख होकर कवि ने जो नवीन विकल्प प्रस्तुत किये हैं, (जावश्यक नही कि उनसे सहमत हुआ जाय) वे ‘मेधावी’ के रचनाकार की गूढ तक पद्धति, जागम्क चितन शक्ति और प्रबुद्ध मधा की सराहना करने के लिए पाठक को बाध्य करते हैं। नव युग चेतना के आविभूत होने म विश्व की राज्य क्रान्तिया, विप्लवी श्रमिक आदोलनो और वज्ञानिक उपलब्धिया के पुष्कल प्रभाव का मूरयाकन कवि ने तटस्थ होकर किया है। मानवता के मगल विधान हेतु उसने वतमान राजनीतिक व्यवस्था मे जिन मूलभूत परिवतनो का प्रस्ताव किया है वह भी कम महत्वपूण नही है। सबसे बडी बात यह है कि सावभौमिक चेतना और विश्वमानवतावादी दृष्टिकोण का समीकरण कवि ने राष्ट्रीय (भारतीय) जीवन मूल्या से स्थापित किया है। ज्ञानालोक के प्रदाता के रूप मे भारत का गुरुता और सर्वोपरिता को सस्थापित कर कवि ने अपने राष्ट्रप्रेम का भी प्रभूत परिचय दिया है।

कथाकार के रूप म डा० रागेय राघव की श्रमिक, पददलित और शोपित बग के प्रति जा सहानुभूति और पूजीवादी व्यवस्था के प्रति जो आक्रोश बद्ध मूल अवधारणाओ के रूप मे उनकी कथावृत्तिया म यथाप्रसग उभरा ह, उसका वचारिक परिप्रेक्ष्य ‘मेधावी’ म द्रष्टय है। साम्य भाव’ के प्रति अगाध विश्वास का जा प्रत्यय का य म स्थान-स्थान पर व्यजित हुआ है वह वाग्मक प्रभाव की अपक्षा कवि की व्यापक प्रनात्मक निष्ठाभा का ही द्योतक है। नारी मनाविज्ञान का सूक्ष्म अनवीक्षण और सामाजिक स-दमों म उसकी परिणतियो क विशनपण मे कवि सफल रहा है। समष्टि रूप म मानवीय चेतना क चिरन्तन विकाम त्रम और उसकी एतिहामिक, सामाजिक सासृत्तिक तथा वैज्ञानिक परिणतिया का विराट आस्थान होने के कारण ‘मेधावी’ वास्तविक अर्थों म एक महाकाव्य है और काय की परिममाप्ति पर मानवता के सुखद भविष्य

‘अगराज’ महाकाव्य
प्रशस्त कर्मवीर का जीवन-काव्य

‘अगराज’ महाकाव्य प्रशस्त कर्मवीर का जीवन-काव्य

महामारत को पात्र मृष्टि म कर्मवीर कण का चरित्र विलक्षण और गौरवाचित है। महारथी कण का चरित्र अद्भुत दवीय विभूति तथा अनुपम मानवीय गुणो का सधान है। कण चरित्र की प्रशस्ति से सम्बन्धित प्रकीर्ण उल्लेख यद्यपि संस्कृत और हिंदी प्रबन्ध काय परम्परा के अनेक काव्य ग्रंथो म यथा प्रसंग समुपलब्ध हैं किंतु कण का काय नायक के रूप म अधिष्ठित करके किसी स्वतंत्र काव्य का प्रणयन आधुनिक काल से पूर्व नहीं हुआ था। इसका एक कारण तो यह भी रहा कि कायशास्त्र की परम्परा के अनुसार केवल सुर, सद्वशीय अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय को ही महाकाय के नायकत्व पद का अधिकारी माना जाता रहा। किंतु आधुनिक काल म नवयुग चेतना के प्रसार और मानवनावादी चिन्तनधारा के द्रुतगामी प्रचार के कारण परम्परा ने जिह नायक के योग्य कमी नहीं समझा, उही अनादृत और उपक्षित पात्रो को बीसवी सदी के कवियों ने महाकाय के सफल नायक पद पर सादर प्रतिष्ठित किया। य व्यक्ति जाति-वश से हान होकर भी चारित्रिक उत्कृष्ट के कारण नायक माने गये।¹ इस दृष्टि से एकलव्य, दत्तवश, रावण, रश्मिरेथी, सेनापति कण, आयावत्त, युगद्रष्टा प्रेमचंद शीपक प्रबन्ध काया के नाम उल्लेखनीय है जिनम चारित्रिक गरिमा के कारण ही नायकत्व प्रदान किया गया है। इसी परम्परा की कायकृति श्री आनंद कुमार विरचित अङ्गराज महाकाव्य है।

अङ्गराज के अतिरिक्त कर्मवीर कण क यशस्वी चरित्र का आधार बनाकर दा और प्रबन्ध काव्या का भी प्रणयन आधुनिक काल म हुआ है। ये

¹ डा० श्यामनन्दन किशोर आधुनिक हिंदी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० २१०

काव्य हैं—श्री रामधारीसिंह दिनकरवृत्त 'रश्मिरथी' और श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र वृत्त सेनापति कण । वस्तुतः पौरुष पराक्रम वक्तव्यपरायणता मत्री, विश्वास जीनाय स्वाभिमान गुरुभक्ति और धमनिष्ठा जाति इतने उदात्त गुण कण के चरित्र में पजीभूत हैं कि उनको महाकाव्य के विराट् कलेवर में ही विधिवत विद्यस्त किया जा सकता था और यह रूप का विषय है कि हिन्दी के समस्त कविपुंगवों की लेखनी कण के प्रशस्य चरित्र का समाख्यान कर धर्य हुई है । कण चरित्र पर काव्य प्रणयन का औचित्य बताते हुए श्री रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि— कणचरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है । क्योंकि— 'यह युग दलितता और उपेक्षितों के उद्धार का युग है । अतएव, यह बहुत स्वामाविक है कि राष्ट्र भारती के जागृत कवियों का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलकित मानवता का मूक प्रतिनिधि बनकर खड़ा रहा है ।

कण चरित्र के उद्धार की चिन्ता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणा की पहचान बढने लगी है । कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है । आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नहीं जो उसके माता पिता या वंश की दन है ।^२ इसके अतिरिक्त आधुनिक युग के— महाकाव्या के रचयिताओं को कण में आज के वय भद्र और वणभ्रम से प्रपीडित समाज के प्रतिनिधि का रूप खिाई दिया और उहाने उसके जीवन् चरित्र को रश्मिरथी अंग राज सेनापति कण जस काव्यो में ला उतारा ।^३ कण को आधुनिक काव्यकत्ताओं द्वारा काव्यनायक के रूप में स्वीकृति प्रदान करने का सबसे बड़ा कारण यही है कि— महाभारत के पात्रों में कण अक्ला पात्र है जो अपने पुरुषाय और पराक्रम के बल पर यशस्वी बनता है । कण की महानता सत्कारजय सद वशीय अथवा राजपुत्र हान के कारण नहीं बरन त्याग पुरुषाय एवं दानशीलता आदि मानवीय गुणा के कारण है ।^४ अस्तु श्री आनन्दकुमार ने कण के प्रशस्य और महिमाविन चरित्र पर काव्य-सरचना करके न केवल स्वकीय काव्य मया और रचनाधर्मों आयाम विस्तृती का परिचय दिया है अपितु हिन्दी

^२ रश्मिरथी भूमिका पृ० १—४ ।

^३ आधुनिक हिन्दी महाकाव्य संस्कृत साहित्य के परिपाश्व में पृ० ११६

^४ डॉ० दवाद्रगा गुप्त हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य पृ० १७६

महाकाव्य परम्परा की अपरिमित मृजल सम्भावनाओं को भी उजागर किया है और इस दृष्टि से 'अङ्गराज' निश्चयतः अभिनन्दनीय प्रयास है।

जहाँ तक 'अङ्गराज' महाकाव्य की मृजल प्रेरणा और महत् प्रयोजनीयता का प्रश्न है, महाकाव्यकार ने 'भूमिका' में 'काव्य प्रयाजन, वीरकाव्य की सामयिकता' और 'अङ्गराज का जीवन शीपका के अंतगत इस पर विस्तार से विचार किया है। अङ्गराज की रचनात्मक सोद्देश्यता के मूल में सामाजिक जीवन की अल्पवृद्धता, जातीय स्वामिमान, सृष्टि संरक्षण, अतीत का गौरव गान और जीवन लाबादर्शों की प्रतिष्ठा कवि का अभिप्रेत रहा है। अङ्गराज वीरकाव्य है और वीरकाव्य की महत्ता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि—'वीर साहित्य से ही वाणी प्रयोजन पूर्णतः साध्य होता है। उससे राष्ट्र के सामाजिक जीवन की अल्पवृद्धता बनी रहती है जाति वंश अपने मूल से समुक्त होकर बढ़ता है सृष्टि और सम्यता का संरक्षण होता है। वीरकाव्य से हमारा सोया हुआ जातीय स्वामिमान जाग्रत होता है हम अपने लोभान्ध का चान हाता है, मरिच्य का वर्तमान माग दिखताई पड़ता है वीर वृत्तान्तों से लोक में वीरधर्म की प्रतिष्ठा होती है। वीर धर्म का पालन रण सन्धिकों के लिए ही नहीं 'वीर भोग्या वसुधरा' के प्रत्येक महत्वाकांक्षी प्राणी के लिए आवश्यक है। इसी अर्थ में वीरकाव्य मृजल की सम-सामयिक उपादेयता पर मन प्रकट करते हुए 'अङ्गराज' के रचयिता ने लिखा है—'सभी दृष्टियों से प्राचीन वीरकाव्यों का अध्ययन और नवीन वीरकाव्यों का निर्माण आजकल के लिए समयानुकूल एवं लोकप्रयोगी सिद्ध होगा। शताब्दियों की पर पद दलित जनता में जा जात्मतुच्छता, चारित्रिक दुर्बलता और भीरुता तथा अरुमध्यता आ गई है उसका निराकरण ऐसे ही साहित्य से हो सकता है। आजकल अपनी हीन दशा पर उठकर रात की प्रेरणा देने वाला साहित्य सामयिक नहीं कहा जायगा। सामयिक वह होगा जो जीवन की अपूर्णता को पूरा करे अमयन को सयत कर भूले मटके को रास्ते पर लादे। कायर को साहस मुख निरीक्षण को कर्मोत्साह और हताश को धैर्य विश्वास देने वाला साहित्य सामयिक होगा।^५ उद्धत मत्तय के परिप्रेक्ष्य में 'अङ्गराज' की रचनात्मक सोद्देश्यता स्वतः व्यञ्जित है।

अङ्गराज का कथात्मक आधार महाभारत है। किन्तु काव्य के घटनात्मक विनियोजन में महाकाव्यकार ने मौलिकता का प्रभूत परिचय दिया है।

^५ अङ्गराज—भूमिका, पृ० १३-१४

प्रस्तुत सन्तुष्ट म कवि का कथन है कि—'अङ्गराज स्वतन्त्र रचना है। इसकी कथा सम्पदा महाभारत की है वाक्य सम्पत्ता मेरी है। वृथा व्यास जी क हैं शत्रुओं मेरी हैं मूल उनका है पत्र पूत्र मेरे हैं, गाथाएँ प्राणी हैं लेकिन पल्लव दल नवीन हैं। महाभारत से बीज रूप म मुझे जो मिला उसको मैं ने स्वामाविव रीतिसे अमृरित एवं पुणित पल्लवित किया है। 'अङ्गराज' मे मैं ने भारत की कथा क प्रचलित रूप का अधानुकरण नहीं किया है। दशम महाभारत के पात्रों का स्वतन्त्र स्वामाविव और यथोचित व्यक्तित्व निरूपण किया गया है। घटनाओं के प्रम वस्तु चित्रण और सवादों म भी मौलिकता मिलेगी।"^६ यह सत्य है कि कवि न कथाविधान म मौलिकता दर्शाये है और कुरुराज तथा कण के चरित्र निरूपण म भी वह सफल रहा है किन्तु पाण्डवों द्रौपदी कुन्ती आदि के चरित्र चित्रण म कतिपय बढमूल धारणा आ एव पूर्वाग्रहों के कारण तटस्थ नहीं रहा है। पाण्डवों को वापुरुप कनीच घृत, दूर भवसरवादी और दुव्यसनी तथा द्रौपदी को कामासक्त, समयहीन दम्भी, असभ्य राण्डमीला के रूप म अवित करना कवि की पाण्डवों के प्रति अनुत्तरता एव कौरवों के प्रति अतिरिक्त व्यामोह को प्रशिक्षण करता है। एव महाकाव्यालोचक ने इस बिन्दु पर आपत्ति करते हुए लिखा है कि—'युधिष्ठिर अजुन भीम और द्रौपदी के चरित्र की कवि ने गिरा दिया है। वस्तुतः पाण्डवों के लोक प्रसिद्ध पावन चरित्र को गिरा कर दुयोंघन और उसने मित्र कण को ऊपर उठाने म कवि का दुस्ताहस लक्षित होता है। कण का चरित्र स्वयमेव इतना उदात्त और शक्तिशाली है कि धर्मराज युधिष्ठिर और सती साध्वी द्रौपदी के चरित्र को गिराए बिना भी उसे महत्ता मिल सकती थी। युधिष्ठिर का, चरित्रहीन और द्रौपदी को पचायती पत्नी बताकर कवि ने चिर प्रतिष्ठित लोक धारणा का विरोध किया है। कथा विश्वास की मौलिकता का प्रमाण कायारम्भ मे ही मिल जाता है। कथानक का समारम्भ सूय लोक म होता है—

एक दिवस मगल प्रभात मे इसी देश म ।

कण मग रवि भ्रमण शील थ नित्य वेव म ॥

× × ×

आत्मरूप म व जग का आभास लिये थे ।

निज आहृनिम युग युग का इतिहास लिये थे ॥ (सर्ग १, पृ० ६)

^६ अङ्गराज भूमिका पृ० १५

^७ डा० गाविंदराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४०३

कण के साथ घ्रमण करते हुए भगवान भास्कर उसे दिव्य दृष्टि प्रदान कर उसके पुत्र जन्म का सम्पूर्ण वृत्त दृश्य रूप में दर्शाते हैं—

‘देते है वरदान तुम्हें हम दिव्य दृष्टि का ।
देखो उसमे गुप्त रहस्य जनत सृष्टि का ॥
देखो सम्मुख खुला हुआ सारा जतीत है ।
भूतकाल भी वत्तमान होता प्रतीत है ॥

× × ×

यदि अभीष्ट हो तुम देखो सारा का सारा ।
व्यक्त मिलेगा यहा लोक व्रत्तात तुम्हारा ॥” (सग १, पृ० ६)

इस प्रकार कवि ने इतिवृत्तात्मक किंबा वणनप्रधान शली का आथ्य न लेकर प्रत्यावत्तन शली (पनण बब स्टाइल) को अधिष्ठीत करते हुए नाटकीय ढंग से घटनाक्रम को प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम सूयदत्त कण को कीर्तिवती भारत भवनी की रचना से अवगत कराते है। नगराज हिमालय, नन्दा राज रत्ना कर सुरसरिता, मगोन काश्मीर मद्रदेश, केकेय, सौराष्ट्र, द्वारिकापुरी, केरल, मलयाचल रामश्वर सिंहल, विदम कामरूप बगप्रत मगध अयोध्या, प्रयाग, नैमिष्यारण्य कणपूर, ब्रजप्रदेश मध्यदेश, मत्स्य आदि की शोभा का बखान करते हुए त्रिभुवन भास्कर पाचाल नगर कुरराज्य इन्द्रप्रस्थ आदि के बभब का सविस्तार वणन करते हैं। प्रथम सग में नगर, प्रदश पवत, नदियो जादि के वगन द्वारा कवि ने न केवल बृहत्तर भारत की भौगोलिक सरचना को व्याप्यायित किया है अपितु स्वर्गाष्ट वदना द्वारा महाकाव्य की मगलाचरण विषयक काव्यशास्त्राय ऋषि का भी सफल निर्वाह किया है। इसके पश्चात कण के जन्म से लेकर युद्ध क्षेत्र में उससे वीरगति प्राप्त करन तक के घटनाक्रम को जपेक्षित परिवर्तना सहित प्रस्तुत किया है। उग्राहरणाय कवि ने कौरवों को बलकित करन वाले घन शीडा, लाभागृह-ग्राह द्रौपदी चौरहरण, पाण्डव दूत पृष्ण के कुम्हराज द्वारा बाधने के विपन्न प्रयास और विराट रूप दशन जैसे महाभारत के अनेक कथा प्रसंगों को कल्पना शक्ति का प्रयोग करके नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। काव्यशास्त्रक कण के चरित्रात्मक के लिए भी कवि ने कति पय घटनाक्रम को जपेक्षित परिवर्तना के साथ जकित किया है। कथानक में कल्पना के प्रयोग के सम्बन्ध में कवि का यह मत प्र उद्धरणीय है कि—
‘अङ्गराज का जीवन काव्य कल्पना प्रसून नहीं, प्रमाण सिद्ध है। कल्पना का उपयोग केवल विषय को सरस और जाकपब बनान के लिय ही किया गया

धय हय हम प्राप्त ऐसे दिव्य कुमार को ।
देता है सुतरल प्रभु, खोल भाग्य के द्वार को ॥

(सर्ग २, पृ० २२)

अधिरथ गृहिणी देव प्रसाद मानकर उस बालक को ले गयी । स्नेह राशि से सींच कर माता पिता ने उसका पालन पोषण किया तथा वसुपेण नामकरण किया । वसुपेण ने मनोयागपूत्रक वेद वेदांग, धर्म, लाकनीति की शिक्षा तथा शस्त्रास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया । विवाह के पश्चात् वसुपेण धनुर्वेद की साधना के लिए पिता के साथ हस्तिनापुर गया । अधिरथ की विनय पर राजकृपा से वसुपेण को राजपुत्रों के साथ गुरुकुल में प्रवेश मिल गया । राजपुत्रों के साथ साथ कर्ण ने भी मंत्र यज्ञ सग्राम शास्त्र गुप्तास्त्र तथा व्यूहरचना का पुण ज्ञान प्राप्त कर बिष्णुपूज ब्रह्मशर प्राप्ति की प्रार्थना की, किंतु द्रोणाचार्य ने अनधिकारी बहकर उसे ब्रह्मास्त्र ज्ञान से वंचित ही रखवा । कर्ण के शस्त्रास्त्र ज्ञान-वैशद्य का परिचय कुन्जराज भवन के रमस्थल पर समायोजित राजवंश समारोह पर मिलता है । इस जायाजन में पाथ ने अनुपम अस्त्र कौशल का प्रदर्शन कर सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया । तभी माहद्रकाय वसुपेण ने वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, पवतास्त्र, वायव्य जम्भ भौमास्त्र, पञ्चयास्त्र अन्नध्यानास्त्र आदि के अद्भुत प्रदर्शन द्वारा पाथ को हतप्रम कर दिया । अजुन ने अनामश्रित हस्तक्षेप के लिए सूनपुत्र को अशिष्ट बहकर उसे दुम्साहस के लिए दण्डित करने के लिए कहा । प्रत्युत्तर में कर्ण ने पाथ को द्वन्द्व के लिए ललकारते हुए कहा—

“यन्ति तुभक्तो अभिमान है निज पुरगाम महत्त्व का ।

सम्मुख आकर द्वन्द्व कर, दे प्रमाण निज स्वत्व का ॥”

(सर्ग २ पृ० २८)

अजुन ने अपमानित अनुभव करते हुए रगभूमि में रणोत्सुख होने का निश्चय किया । तभी कृपाचार्य ने मध्यस्थ बनकर कर्ण से कहा कि तू अनाधिकार चेष्टा कर रहा है क्योंकि राज्यशास्त्रवत् राजपुत्र का प्रतिद्वन्द्वी केवल समकक्ष ही हो सकता है । सुयोधन को वीरपुत्र का अनात्तर जगह था उसने कृपाचार्य के व्यवहार का अनुचित बताते हुए कहा—

‘आय वीर प्रति आय का यह अनुचिन्तित व्यवहार है ।

कभी न आय समाज में होना जानि विचार है ॥

परिचायक है जातिमक तेज स्वनाम धय का ।

स्वयमुज्वल को नहीं चाहिए तेज अय का ॥

जाति वश धर्य नहीं, पुरुष पीछे विधाय हैं ।
 पच गुणी में जो गुणाय है वही आय है ॥
 महापुरुष ही मानिये गुण गरिमामय मून को ।
 हीन न मानो भूलकर विकसित पक् प्रसूत को ॥'

(सर्ग २, पृ० २६)

जब भीम आदि ने दुर्योधन के मन का विरोध किया तो उसने पांडवीय दप का दमन करने के लिए मूनपुत्र को अग राज्य अर्पण कर कण का मानवद्धन ही नहीं किया अपितु अपनी दूरदर्शिता और गुण ग्रहण क्षमता का भी परिचय दिया । कण ने कृतकतापूर्वक सुयोधन की मित्रता को स्वीकार किया तथा ह्य शोक में सच्च मित्र के समान मुहूर्द भाव क निवाह का सकल्य लिया—

'सूय रह साक्षी सदव हम ह्य शोक म ।
 मुहूर्द रूप म तक रहेगे एक लोक म ॥

तुमने हम ऋणी किया अगराज्य देकर अभी ।
 हम होंगे ऋण मुक्त, निज अग तुम्ह देकर कभी ॥'

(सर्ग २, पृ० ३१)

अगराज बनने के पश्चात् कण जब अगनगरी पहुँचा तो जनता द्वारा उसका मय स्वागत किया गया । राज्याभिषेक के पश्चात् अगराज मून सन्तन पहुँचा जहा प्रतीक्षातुर राधा ने नरनाथ और प्रजा प्रमाकर कहकर अभिनन्दन किया, किंतु कण ने स्यन्दन त्यागकर किरीट को मातृ पद में रखकर श्रद्धा व्रतत होकर कहा—

और कहा जननी हम तो वसुपेण वही है ।
 तव समीप हम अग प्रधान कदापि नहीं हैं ॥

× × ×

हम अय जन अगराज ही भले कहेंगे ।
 किन्तु स्वयं हम वने सदा राधेय रहेगे ॥

(सर्ग ३ पृष्ठ ३५)

उपयुक्त कथन कण की मातृ पितृ भक्ति विनयशीलता और उदात्त भावना का ही परिचायक है । राधा ने राधेय को हृदय क गहनतल से शुभाशीप दिए, उसके यशस्वी और सौभाग्यशील होने की मंगलकामना की । इसी सर्ग में कवि ने कण की राज्य-यवस्था और प्रशासनिक दक्षता का भी वर्णन किया है । नव जनपति कण न अगराज्य में स्वराज्य की घोषणा कर जन जीवन में नवजागृति का संचार किया । दासता की मनोवृत्ति का विनष्ट कर प्रजापति ने प्रजातन्त्रीय

शामनपद्धति को सम्स्थापित किया। अबलाओ की दशासुधार, ‘याय घम के सस्थापन, विद्या कीशाल के देश-यापी प्रचार जनोत्थान के लिए राजकोप के व्यय न पशुकि के पुनगठन, गडो देवालयो, उद्यान सरोवर आदि का पुन निमाण कण की प्रशासनिक व्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषताएँ कही जा सकती हैं। कवि के शब्दों में—

“नष्ट दासना-मनोवृत्ति करके जनता की ।
एक एक में मरी भावना स्वनव्रता की ॥
नव विधान से ‘यायवद्ध करके’ शामन को ।
दिए तुल्य अधिकार प्रजापति ने जन-जन को ॥
मिटी अबल अबलाओं की निरलता सारी ।
समाधिकारी बने दरिद्र धनी नर-नारी ॥’

(सग ३ पृ० ३६)

इस प्रकार अंगराष्ट्र के शामन को सु-पवस्थित करके कण ब्रह्मासायक अजन एव उच्चकोटि के शस्त्रास्त्र जानाजन हेतु महद्गिरि पर परशुरामजी के जाश्रम पर गया। कण ने विप्र भेष धारण कर विनेप क्रियायोग द्वारा मुनीन्द्र को प्रसन्न कर मुख्य शिष्यता प्राप्त कर समी जनानात शस्त्रास्त्रा का जाना जन कर लिया—

‘किया क्रियायोग विनेप कण न, अनन्य विद्या ऋण राम से लिया ।
हूण प्रमात्स्य मुनीन्द्र देख के, महागुणोत्कृष नवीन शिष्य का ॥

× × × ×

महास्त्र विज्ञान महे द्रशाम्न के, तथा धुनर्वेद अयववेद के ।
समी बनानात रहस्य युद्ध के, उसे बनाए कृतविद्य विप्र ने ॥
दिया उसे कीर्तिन भागवास्त्र मा, समान ब्रह्मायुव-दान भी किया ॥’

(सग ४, पृ० ४३)

इसके पश्चात् एक दिन कण की अविप्रता का रहस्योद्घाटन हो जाने पर परशुराम ने उसे घोर शाप दिया कि—

‘प्रहारका म बन अप्रमेय तू पराम्न होगा न कल्पि शत्रु से ।
परन्तु जाकम्मिऊ रीति से कभी अवश्य होगा हत वीर क्षेत्र में ॥
प्रयुद्ध में तुल्य अराति-सग तू प्रवृत्त होगा जब प्राण हत में ।
व्ययात होगा स्मृति छष्ट सबधा, अगत ब्रह्मायुध के प्रयाग में ॥’

(सग ४ पृ० ५२)

महर्षि महेंद्र न श्रेष्ठ म भयकर अभिशाप ता अगराज को दे लिया कि-
तु धाम म प्रवृत्तिस्थ होने पर उसे स्वकठ से लगाकर गुमाशीप देते हए विना
किया—

उसे लगा के ऋषि ने स्वकठ से विदा किया यो वह साधु मारती ।
भुपुत्र जा तू अब लोक ग्राम को तुझे मनोवाञ्छित कीर्ति प्राप्त हो ॥
जहा रह तू तुझ को मिले वहाँ, प्रधानता पौरप विशमाजिता ।
बने जयश्रीपद लोक शक्तियाँ मदव तेरी चरणानुगामिनी ॥
महायशस्वी बन सप्रभाव तू प्रशस्य हो भारत भूमि मानु सा ।
रहे तुझे न्यान मनुष्य सूप का प्रनाप सबद्रक आत्म ताप है ॥”

(सग ४, पृ० ५३)

यहा यह उ-त्प्रेक्षणीय है कि महर्षि परशुराम के आश्रम म छदमवेश मे
शस्त्रास्त्र शिक्षा प्राप्त करना कण के समुज-वल चरित्र को गहित करता है
यद्यपि उसने ऐसा महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर ही किया था । डा० गोविंद
राम के शब्दों मे— सबगुण सम्पन कण का द्विजवेश म परशुराम के आश्रम
म अस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करना उसके महिमाय उ-त्कृष्ट चरित्र क
याघात अवश्य पहुँचाता है ।

कण के मन्त्री-आदश जीर वीरत्व कौशल का परिचय पाचवें और छठे सर्गों
मे मिलता है । कलिगाधिव चित्रागद की राजकुमारी को स्वयम्बर से अपहृत
करके दुर्योधन जब ले चला तो कलिग की विशाल वाहिनी जीर स्वयम्बर
म समागन नरेशा न उसका पीछा किया । इस अवसर पर कण ने अदभुत
साहस और शौर्य का प्रदर्शन कर राजाओं को राका जीर मित्र के माग को
निरापद बनाया । कण के युद्ध कौशल का वणन करता हुआ कवि कहता
है कि—

जिधर गया उदृण्ड चण्डतम वह कोदण्डी ।
पहा मुडमालिका उधर नाची रणचण्डी ॥
जपाकुसुम वन सा भितितल शाणित रजिन था ।
अगराज रणराग वहाँ मानो चजित था ॥’

(सग ५, पृ० ५८)

शून श्रीढा म मवस्व हारकर जब पाडव अपातवास कर रह थे तब वे
कीरवो क विरुद्ध नाना प्रकार की योजनाएँ बना रहे थे । कीरव समाज म कुछ

लोग पाथ के पराक्रम, द्रुपदराज की शक्ति और कृष्ण की कूटनीति से आतंकित होकर कुरुराज को पाटवा से सधि करने का प्रस्ताव कर रहे थे। श्राताओं में भीष्म और द्रोण प्रमुख थे, किंतु कण ने सदप कहा कि युग्जना से भयवश प्राप्ति करना नायवना है। राधेय के रहते हुए कुरुराज का भयभीत हान की तनिक भी आवश्यकता नहीं। कण के निम्नोदधृत कथन में उसका जात्मविश्वास और आज द्रष्टव्य है—

“एक एक क्या कोटि कोटि हो, द्रुपद, कृष्ण, वींस्तेय ।

भात न होगा कुरुपति जब तक जीवित है राधेय ॥’

(सग ६, पृ० ८३)

कण ने जो कहा वह कर भी दिवाया। कौरव शक्ति के प्रभाव को जगत विनाशित करने के लिए दुर्योधन ने जगद विजय का प्रस्ताव किया। इस गुह्यतर दायित्व को कण ने सत्प सवहन किया। उसने चतुरगिणी सना लेकर पांचाल, मत्स्य, काश्मीर, शलद्रस्थ, वगदेश, मिथिला, मगध, कलिग, उत्कल काशल, विदम, केरल चेदि, जवती, मध्यदेश जादि प्रदेशों का वीरतापूर्वक विजित करके कुरु साम्राज्य के अधीनस्थ कर दिया। इन प्रदेशों को विजित करने में कण ने अदम्य साहस अपूर्व पराक्रम, अनन्त शौर्य और अदभुत रणकौशल का परिचय दिया। उदाहरणार्थ दक्षिण प्रदेश के यवन मलेच्छ-चवर-समाज से सगरस्थ कण के सम्बन्ध में कवि का कथन है—

“स्य दनस्थ वसुपेण आयो के प्रदश म ।

शस्र वजाता वडा वेग से रणावेश मे ॥

प्रथम आक्रमण से अरि-अग्रानीक भेदकर ।

व्यूहित प्रतिबल जन्तराल में गया वीरतर ॥

सागराम्बरा वहाँ बन गई शोणितवसना ।

रक्तप रण क्षिति बनी यथा चण्डी की रसना ॥

प्राची सदृश्य प्रदीप्त हुई रण दग्ध प्रनीची ।

दण्ड भीत रिपु-हेतु बनी पृथ्वी कालीची ॥

(सग ७, पृ० ६१)

इस प्रकार सम्पूर्ण घराण्ड को युद्धक्षेत्र के चरणाश्रित करके जब जगत् विजेता कण हस्तिनापुरी लौगा ता कण और उसकी मारती जयनी पहरानो जयवता पताकिनी का जनगण और नृपसमाज ने भय स्वामन किया। वसुधरा-सगाट सुयोधन ने कण की जयो भुजा को जयवकण से विभूषित किया,

मलयज कुकुम से तिलक कर बलपति को विजय विरीट धारण कराया । महाभाग घृतराष्ट्र ने महाबली कण का अभिनंदन करते हुए कहा—

'सर्वोपरि तुम आज राज सम्मान पात्र हो ।
मानवेन्द्र, वसुधा वरेन्द्र तुम एक मात्र हो ॥
अगराज तुमने हमको चिरऋणी किया है ।
द न सके जो भीष्म द्रोण वह हमें दिया है ॥'

(सर्ग ७ पृ० ६३)

विष्णु-यज्ञ के याजक न भी अगराज का पुरुरेन्द्र मानकर उसका सविधि अन्नपूजन कर सम्मानित किया । जगद् विजय सदृश्य महोद्योग की सिद्धि के अवसर पर कण ने एक अभूतपूर्व प्रण किया, जिसके कारण वह कमवीर और युद्धवीर के साथ साथ दानवीर के रूप में भी सुविख्यात हो गया—

अगराज ने सिद्धि प्राप्त महोद्योग में ।
महालान प्रण किया कीर्तिनायी सुयोग में ॥
सुजा अकिंचनगण का यज्ञ अभिमत वरदायक ।
राज-सहायक कण हो गया प्रजा सहायक ॥

(सर्ग ७ पृ० ६५)

इस प्रतिज्ञा के पश्चान् कृष्ण नित्यप्रति रवि वन्दन के अनन्तर गंगातट पर मुक्त कर से दीन जनो का दान देना होगा । वसुधैव कुटुम्बकम् इतना विश्रुत हो गया कि उस अवल का बल और अनाथ का पाप कहा जाने लगा । कण के श्लाघनीय दातृय भाव का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

बोला सबसे दानी प्रशस्त हैं उठे हमारे वरद हस्त ।
देकर याचित धन धरा धाम हम तुम्हें करके पूण काम ॥
दना भी हो यदि निज शरीर दत्त विमूल न हागा दानवीर ।
आशामय तो सब प्रकार वर मागो तुम स्वच्छन्दानुसार ॥

× × × ×
दकर सुवर्ण निधि राजरग कर दय निराश निशा मग ।
पतितो मैं जागृति करमहान, अभिव्यथ हुआ वह रवि समान ॥

(सर्ग ८ पृ० ६८)

कण के दानरस की अग्नि पराशा हेतु देवाविराज द्वारराज ने विप्रवेश धारण कर लिया । उत्तान अगराज के नवतुमार के मांस का याचना की और अप्रतिम मन्त्राग्नी ने कर में कृपाण लेकर पुत्र का विगत प्राण कर याचक का अनुष्ठित किया—

“सुत मांसपिण्ड को कर सखण्ड, निभन्न धधवन वन प्रचण्ड ।
सस्वारित कर उसका यथच्छ, दाता न द्विज का दिया भेंट ॥

(सग ८, पृ० ६६)

कण की दानशालता, आत्मत्याग, उपकारवृत्ति और सत्यानुराग से प्रसन्न होकर श्री द्वारिकापोश रकवप त्याग कर प्रकट हो गये और मनोवाधित कर प्राप्ति के लिए कहा । कण ने इस अवसर पर जो वरदान मागा वह उसकी उदात्तता और महानता का परिचायक है—

‘यदि हैं प्रसन्न हे देव, आप तो यह जाशिय दें सप्रताप ।

निधन सुपान-सेवा प्रसंग, हा सुलभ हमें इस विघ्न अभंग ॥

× × × ×

जब तक मम तन में रहे श्वास, हम मात भूमि में करें वास ।

पालन करके निज जाय धम, हम करें श्रेष्ठ कस्तव्य कम ॥’

(सग ८, पृ० १०२)

अङ्गराज के कायनायक की विलक्षण दानवीरता का प्रत्याख्यान नवम सग में पुनः कवि ने किया है । कण के जाराध्यदेव भगवान् भास्कर ने उसे छद्मवशी सुरन्द्र का अपने जन्मजात कवच और कुण्डल न देन के लिये सचेत किया । किन्तु कण ने दानकर्म के प्रति अपनी अडिग आस्था को व्यक्त करते हुए कहा—

परहित करना आत्मत्याग है आयजना की रीति सनातन ।

इस नश्वर जग में मरकर भी रहते जमरइमी विघ्न सज्जन ॥

वस्तुमात्र क्या यदि तन का भी साधु अधिकचन करे प्रयाचन ।

देकर उसे सह्य करेंगे हम कीतद सत्कर्म फलाजन ॥’

(सग ८, पृष्ठ १०६)

व्यास प्रणीत महाभारत में भी कण इसी प्रकार की भावामि यक्ति करता है—

मद्विधस्य यशस्य हि न युक्त प्राणरक्षणम् ।

युक्त हि यशसा युक्त मरण लाकसम्मतम् ॥

(महाभारत, कण पत्र ३००/२८)

निनायकता कण को संचन कर चल गये । जागामी दिवस इन्द्र ने विप्र यश में समुपस्थित होकर कण से कवच कुण्डल की याचना की । जगराज ने साम्निमान गान-सलग्न कवच और कुण्डल का अपना वक्षस्थल विदीण कर इन्द्र का समर्पित कर दिया । वक्षस्थल विदाण कर अवतल कवच के उत्खतन व

कारण अग्राज का शरीर स्थिर मज्जित हो गया। उग मम विचारक हृष्य को देखकर जचला सहित हिमाचल और गम्भूज प्लमटन प्राभिता हा गया। कर्ण के पितृगण प्रसन्न होकर शिष्य कुमुद धरमाने लग। कर्ण का कीर्ति प्रचारित करती हुई दव दुःखिणी बजने लगी। उग समय सयामग्टा मूढुत्र गूढ के समान विभासितहा रहा था। एकस्वरम दवता यगागात कर्ण हुण कह रह ध—

एक स्वर स कहा गुरा त—भहा शक्तिशाली है मानध ।
स्वयमज्जित अमरत्व प्राप्त कर दा है जो हूमें परामय ॥
आयो पा वह दग धय है करज जहाँ तपावत सय ।
विधि त्रिपान त्रिपरीत यशस्था मत्यजाव वनना मृयत्रय ॥
कम भूमि वह परम धय है हाता ग्टी नाम उत्यापा ।
अमरा स मा धय धरा है करत जहाँ दव मिशाटन ॥

(सग ८ पृष्ठ १०८)

वसुपेग व महान त्याग स प्रसन्न होकर शत्रु न उस दिव्यास्त्र प्रता किया और शत्रु न ही उसे कर्ण नाम दिया। तस घटना ने जा पर तानुक्ति व कारण वसुपेग कर्ण नाम स सत्रत्र सुविख्यात हा गया। कवि व शता म—

दुष्कर कम सिद्धि विनापक सता यहा शत्रु स पावर ।
विदित हुआ वसुपेग जगत म कर्ण नाम से ही तन्मन्तर ॥
दिन प्रतिदिन प्रख्यात हुआ बट दाना मरव प्रनाक शक्तिधर ।
नित्य प्रवर्द्धित हुआ जनप्रिय उसका जक्षय कीर्ति सुधावर ॥

(सग ९ पृ० ११०)

कर्ण चरित्र की उत्कृष्ट विधायक गुणात्मक विभूतिया म मित्र धम का अनुपालन भी उत्तमनीय है। कर्ण ने अनक अवसरा पर अपने आचरण द्वारा मन्त्री के उच्छात्शो को प्रस्थापित किया। यही कारण था कि दुर्वोधन अपने सम्बन्धिया और सभासदो म सवाधिन सम्मान कर्ण का हो करता था। जिस समय श्री कृष्ण दूत के रूप म पाण्डवो का सन्धि प्रस्ताव लकर कुण्डमा म समुपस्थित हुए ता कुरुराज न भाष्म द्रोण आदि महिन समी सभासीन नरेशो और महारथिया का परिचय कृष्ण स कराया किन्तु जिस गौरव और गरिमा से कर्ण का परिचय दिया उससे कुरुराज का कर्ण क प्रति उच्च समादर भाव प्रगट होता है। यह परिचय महावली कर्ण के बमव और विजय का भी परिचायक है। दुर्वोधन ने कहा—

समीन हो केशव आप देखिए विराजते वीर वीरद्र अग के ।
वसुधरा म जिनकी प्रशस्त है मनस्विता, अद्वय कमसूरता ॥

स्ववाहु से, अर्जित राज्य कीति के, स्वकम से सचित भाग्य के घनी ।
हठोद्य सत्य, पराक्रमी तथा अनय दानी नरराज कण हैं ॥
स्वय विधाता इनके ललाट की, अदृष्ट लेखा यदि भेटन लगे ।
कभी न होगे मन भ हताश ये, समय जो हैं पुरुपाथ शक्ति से ॥
महान संहार कला प्रवीण ये, महारथी हैं जिनके प्रभाव से ।
विवण होती मम शत्रु मण्डली, शशी यथा कुजर कणताल से ॥”

(सग १२, पृ० १२७)

दुर्योधन की प्रशंसोक्तिया की सत्यता को कण न प्राणपन से अक्षरशः प्रमाणित भी किया । कुरुसभा में ही जत्र माघव ने कुरुराज को पाडवा की युद्ध योजना से अवगत कराते हुए राज्य का कुछ भाग पाडवा को देकर वर विरोध समाप्त करने का परामर्श दिया, तो सुमेरु शृ गायम शीपखण्ड और सुवण बाहु-दण्ड का उठाकर नर रत्न कण ने ओजस्वी वाणी में कहा—हे केशव ! गुणहीन व्यक्तिगो की व्यय प्रशंसा न कीजिये । पाडव छत्र भ्रष्ट हैं । वे महा-अकम्प्य बने स्वपत्नी-अपमान दावते रह वनुधा सतीत्व का सरक्षण किस प्रकार करेंगे ? स्वराष्ट्र रक्षण सामर्थ्यवान द्वारा ही होता है और इसके योग्य केवल कुरुराज हैं, पाडव नहीं । और पाय यदि युद्धाकांक्षी है तो रणक्षेत्र में आए । हम दया या कृपा माव के लिए राजघम का परित्याग नहीं करेंगे—

स्वराष्ट्र के रक्षण हेतु सवन्त, समय का शासन नवमाय है ।
सुयोग्य है कौरवराज सवया, अत उहे है अधिकार राज्य का ॥
यही कहेंगे हम स्पष्ट रूप से प्रभुत्व है दुलभ कमहीन को ।
विशेष हो सगर व्यग्र पाय ता, सट्टप जाए वलिदान भूमि में ॥
दया कृपा भी मन में लिए हुए, न त्याग दग हम राज घम को ।
कहो हर्द पाडव की प्रशस्ति सं न भीत हाग हम जल्पमान भी ॥

(सग १२, पृ० १३२ १३३)

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण न तौटत हुए एकात में कण को बताया कि अब भीषण युद्ध होना अनिवाय है मित्रवत् सम्भवत हम अन्तिम बार मिल रहे हैं । अब घमत सबक लिए क्तव्य प्रश्न विवाय है । ह प्रन् ! तुम निज जन्म तथा से अनभिन्न होने के कारण भूल से घन में पडे हो । वसुधण ! तुम राजवश प्रसूत हो कुंती तुम्हारी जननी और पाण्डव तुम्हारे अनुज ह । श्रीवति न कुमारी कुन्ती की सूर्योपासना वर्याचना और कण जन्म के इतिवृत्त का विस्तार पूर्वक बनाकर अत में कहा—

‘कुलवान गर्भेश्वर स्वयं को मान सब प्रकार से ।
तुम राज्य लक्ष्मी भोग क्यों करत नहीं अधिकार मे ॥
जब कौरवा को त्याग तुम निज राज्य लेकर हाथ मे ।
भोगो अनुजगण जीर श्यामा सुहृदी के साथ मे ॥

(सग १३, पृ० १३६)

प्रत्युत्तर मे बसुपेण न कहा—हरि ! मुझे वश गौरव प्राप्ति का मिथ्या लोभ नहीं है । पृथा से परित्यक्त होने के पश्चात् कौतय के रूप में तो मैं मृत हो गया हूँ । मुझे तो राधय के रूप में पुनर्जीवित किया गया है । घम से मैं पृथा का देव प्रदत्त कुमार होकर भा मित्रघातक कम नहीं कहूँगा । पाण्डवों के निमित्त मैं सुयाधन की मिश्रता नहीं त्यागूँगा । क्योंकि मेरे लिए व ध्रुत्व से भी अधिक महत्वपूर्ण मानवता का संरक्षण है । कण न प्रखर होकर कहा—हे कमयोगी ! मुझे कमध्रष्ट मत कीजिय । भाष जिस प्रकार पाथ के अनय स्नेही हैं उसी प्रकार मैं कुरुराज का सुहृद्-समिन्नु हूँ । जब मेरे दुःख के दिन थे और मैं निरूपाय था तब मेरे एकमात्र सहायक कुरुराज ही बन थे । अब लोभवश उनका त्यागकर मैं मित्रघाती और वृत्तघ्न नहीं बनूँगा । कण के अकाट्य तर्कों को सुनकर श्री हरि ने दूसरा प्रस्ताव किया कि महासयाम होना तो निश्चित है अतः तुम तटस्थ और विरत हो जाओ क्योंकि वसे भी दब-योग से (अभिशाप के कारण तुम विजयी ता हा नहीं सकते हो) और पाथ सम्पूर्ण दवी शक्तिवश से युक्त हान के कारण अतत विजयी हागा ही । यह सुनकर कण उत्तजित हो गया और उगन कहा—

नदिवा विभव कहिए न केशव भूलकर नदराज से ॥
जिस का न चिरवाहित समर होगा हमारा पाथ का ।
तब दक्षिणा जाप अन्तर दबवत पुरुषाय का ॥
वत्तय वश का मान मन्ति राजगनु समाज का ।
हम माग कर दग जकटक मित्रवर कुरुराज का ॥
यत्ति मित्र हिन हमका मित्रता अतगति ही अन्तत ।
तब भा मित्रगी जात्मवनि स आत्म जय ही पूजत ॥

(सग १३, पृ० १४१)

महाभारत में भा कण इसी प्रकार का उक्त मन्त्री भाव प्रकट करत हुए कता है—

वत्याणश्च मनन हि राजा वचिभ्य वीरस्य मुना ममासीत् ।
तस्याप निद्वय मन्त्रयामि प्रियान भागान् कृत्यज्ज जीवित च ॥

(महाभारत कणवच २५/२६)

चतुदश सग मे कण दम्पति का सुन्दर परिसवाद है जिसमे कण भार्या प्रकृति की रमणीयता और सुन्दर दृश्यावली का मादक वणन करती हुई प्रेम भाव प्रदर्शन करती है। प्रिया के प्रेमालाप से अप्रभावित रहकर अधिरथात्मज ने जो उत्तर दिया, वह उसकी कृत व्यनिष्ठा और स्वामाविक वीर मनावृत्ति का व्यजक है—

“सुख विलास तथा रसवाद से हम विमुग्ध न हो सकते यहा।
अरण के परमोज्ज्वल तेज को घनघटा न घटा सकती कभी ॥
गृह विनोद सभी जब भूल के, समर है उनसे करना हम।
भ्रमणशील अभी तक नित्य थे, वन वनीक वनी-कपि तुल्य जो ॥

× × ×

अब न हमको प्रियचन्द्र की रचिरता महुता, बलहासता।
हम उसे मजत जिम भानु की, किरण की रणकीर्ति प्रसिद्ध है ॥

(सग १४, पृ० १५१-१५२)

यह कह कर कण ने सगर प्रस्थान हेतु जब प्रिया से विदा करने को कहा तो कण प्रिया बोली कि अब युद्ध अभीष्ट नहीं है। प्रकृति के सभी उपादान शान्ति उपासना के लिए प्रेरित करते हैं। रण कम जन विनाश का साधन होने के कारण ग्रहण योग्य नहीं है। युद्ध के परिणाम तो व्यथा, भ्रदन, मृत्यु और कदयना हैं। गृह-समृद्धि और जन सम्पदा का महानाश अवाछनीय है। अतः सकल कौरव और पांडव वर्ग का अहतपा वनकर युद्ध की विभीषिका से सभी को वचाना चाहिए। किन्तु दृढव्रता कण ने अपने निश्चय का इन शब्दा मे व्यक्त किया—

‘जाना है हमका उसी कम भूमि मे मान से।
जीवन है मिलता जहा प्राणो के बलिदान से ॥
यदि विजयी हम हुए मिन का मान बढ़गा।
बुद्धपति-मद पर धमराज का शीप चढ़गा ॥
यदि हाग रण प्रहत, कहगा लोक यही नित।
कण घाय था जा गतायु हो गया मिन हित ॥’
दानों मे सतोष है विजय मिले या वीरगति।
अमर रहेगा विश्व मे कीर्ति हमारी नित्य प्रति ॥

(सग १६, पृ० १५३)

दृढ प्रतिपत्ता कण चरित्र का ऐसा विशयता है जा काव्य मे आद्यात दृष्टि गत होता है। वृष्ण प्रयाण के पश्चात् भारत के भवनीय महारण की परि-
करपना से सबसे अधिक अधार और सशस्त कुन्ती थी। पुनः-सह उसे व्यक्तित

“वीरप्रभू इससे तब वीर सुत द्वय कीर्ति प्रसारण होगा ।
एक किमी सुत का जयलाम सदा तब गौरव कारण होगा ॥

× × × ×

अजुन के अतिरिक्त किसी तब आत्मज का हम प्राण न लेंगे ॥
पाथ हुआ विजयी यदि तो सुत-नत्व सभी तब शेष रहेंगे ।
मृत्यु मिली उसको यदि तो हम निश्चय ही तब पुन बनेंगे ॥”

(सग १५ प० १६५)

यह सुनते ही कुती ने स्नेह विमुग्ध हाथ कण को कण्ठ से लगा लिया ।
कण ने भी सादरशील झुकाकर बद्धकरा स प्रेमजोर ममत्व का अकल्पनीय भाव
प्रदर्शन किया । कुती को वर देना तथा उसके प्रति सम्मान व्यक्त करना कण
की सदाशयता और औदार्य का ही परिचायक है । इस कृत्य से कण का चरित्र
मानवीय जाचरण की उदात्त भूमिका पर अधिष्ठित होने का अधिकारी बनता
है । कण और कुती के स्नेह विमुग्ध भाव मिलन को कवि ने इस प्रकार शब्द
बद्ध किया है—

‘होकर स्नेह विमुग्ध वहाँ उसने मुन को निज कण्ठ लगाया ।
भूपति ने अति आनन्द से उसके चरणा पर शीश झुकाया ॥
× × × ×
भूल गया वसुपेण स्वयं उस काल विचार सभी प्रभुता के ।
मानम म उसके जननी प्रति भाव स्वभाव जगे शिशुता के ॥
थानन मस्तक बद्ध कर द्वय यजक थे उसकी लघुता के ।
लोचन प्राण कृताथ हुए अवलोक इसे तप भोज सुता के ॥”

(सग १५, पृ० १६५)

‘अगराज महाकाव्य के द्वितीय खण्ड में दस सग हैं । सोलहवें से पन्चीसवें
सग तक के कथाक्रम म महाभारत के युद्ध और उसमें महारथी कण की गौर
वाचिन भूमिका का कलात्मक महत्वाकन है ।

षोडश सग में महाभारत युद्ध की साज सज्जा का वर्णन है । देश देश के
नरनेतागण मन में रणात्साह लेकर कुरुराज के आमन्त्रण पर राजागण में एकत्र
हुए । कुर्वाहिनी के सनापित्व के लिए जब परिसवाद प्रारम्भ हुआ तो भीष्म
ने अगाधिराज को महाशूद्र होने के कारण सेनापति बनाने पर आपत्ति की ।
कण ने स्वेच्छा से युद्ध-नीति के हित में चमूपति-पद से स्वयं को विलग कर
लिया । भीष्म को यद्यपि वयोवृद्ध होने के कारण कुर्वाहिनी-पति बना दिया

गया, किन्तु दुर्योधन ने अगपति की निन्दा को अक्षम्य मानते हुए भीष्म पिता मह से स्पष्ट शब्दों में कहा —

‘क्षमा सभी है पर अक्षम्य है निन्दा यहाँ अगपति की ।
सभी मानते हैं प्रधानता जिस मनुजेंद्र महामति की ॥
उचित इसी प्रारब्धि केतु को प्रथम बलाघ्न बनाना था ।
इसी दिग्जयी के आश्रय में कुरुभोज को जाना था ॥
पर बयस्कना देख जापकी वृद्धजनों के आप्रह से ।
दी है पर मुष्पना आओ हमने जाति अनुग्रह से ॥

(सग १६, पृ० १७५)

दुर्योधन के उद्धृत कथन से जात होता है कि कण का कुरुसमाज में कितना समादर सम्मान था । सत्रहवें सग में कुरुभोज के लिए प्रस्थान करती हुई विशाल वाहिनी और वाहिनी पतियों का प्रभावशाली वणन है । इसी वृत्त में कण का वणन करता हुआ कवि कहता है—

‘और सुनो वह मनोमिमानी अग देश का राजा कण ।
पतञ्जल बन जो सग गिराता शत्रु शिरो को यथा प्रपण ॥
होती जिसकीध्वजा देखकर दिग गयद बधन मय मुक्त ।
नाग शृङ्खला केनु उडाता जाता यथा नाग निमुक्त ॥
× × ×
चाप किण्किण हैं जिसके कर श्रम चि हाकिन जिसका भाल ।
वह बाल सा बली उठा है लेकर कालपष्ठ विकराल ॥’

(सग १७ प० १८३)

सग अठारह में भीष्म के सेनारतित्व में कुरुवाहिनी और पाडवचमू में हुए सगर का रोमाचक वणन है । दसवें दिन प्रातसंय का नेतृत्व शिखण्डी को करते हुए देखकर भीष्म पितामह की दृष्टि झुक गई, तभी अजुन ने शिखण्डी के रथ के ओट से प्रहार कर उन्हें घराशायी कर दिया । रणोपरात रात्रि के समय शर शय्या पर शयन करने हुए भीष्मपितामह के प्रति सम्मान प्रगट करने के लिए जब कण उनके समक्ष श्रद्धावनत हुआ तो भीष्म ने जो उद्गार व्यक्त किए उनसे जात होता है कि कण के प्रति उनके मन में उच्च भावनाएँ थीं । भीष्म ने कहा—

‘तुम हो वीर जगन के नना । पुरुष रत्न सत्तार विजेना ॥
तुम कीर्तित हो अनुपम दाना । कृष्णाजुन सम रण विनाता ॥
विदित हम तव गुणवत्ता है । स्वीकृत तव जनय सत्ता है ॥
देख रूप गुण कम तुम्हारे । पुलकिन हाने प्राण हमारे ॥

जिससे नप परिवार म, बडे न वयु विरोध ।
तुम पर करते थे प्रगट, हम निज वृत्रिम क्रोध ॥”

(सग १८ पृ० १६६)

उद्धृत का वाश 'महाभारत' मे भीष्म के निम्नांकित कथन से तुलनीय है—

“जानमि समरे वीय शत्रुमिदु सहभुवि ।
ब्रह्मण्यता च शीय च दाने च परामास्थितिम ॥
न त्वया सदृश कश्चित्पुरुषेज्वमरोपम ।
कुल भेद भयाच्चाह सदा पुरुष मुक्तवान ॥

भीष्म के पतन के पश्चात द्रोणाचार्य की यद्यपि सेनानायक नियुक्त किया गया था, किन्तु पाथ से सत्रस्त सनिक जीर महारथी व्याकुल होकर कण के नेतृत्व की आकांक्षा कर रहे थे । कवि के अनुसार—

'कडुने थे सत्र एक स्वर से—कण कहा है ?
महाशक्तिघर देवेश्वर से—कण कहा है ?
रण प्रलयकर वीरेश्वर से—कण कहा है ?
पाथ भुजग हित वीर घर से—कण कहा है ॥'

(सग १६ पृ० १६८)

द्रोणाचार्य के दिवगत होने के पश्चात कुस्वाहिनी का नेतृत्व महारथी महावली अगराज कण ने सम्भाला । कण ने भयकर प्रहारों से पाण्डवों की सैन्य संरचना को ध्वस्त कर दिया । एक अवसर पर वह युधिष्ठिर का वध ही कर देता किन्तु कुन्ती को दिए गए जीवन रक्षा वर का स्मरण आते ही उसे छोड़ दिया । कण के युद्ध कौशल का वणन करते हुए कवि न लिखा है—

'किया घोर सहार कण ने वरी हुए परास्त दृष्टिगत ।
शनु घटाएँ नष्ट हो गई प्रखर वाण शम्भानिल आहन ॥

×

×

×

अधिरथयुत अधिरथसुत अधिरथ, अधिरथ कण निए निज अधिरथ ।
प्रतिरथिया की भीमरथी म बना अधिरथी सम अप्रतिरथ ॥
एक एक को वाण विद्ध कर महारथा का मान विमदन ।
प्रहत पराहत उन्हें बनाकर उसने किया सिंहवत नदन ॥

(सग २० पृ० २१४-२१५)

कण द्वारा कि जा रहे नर सहार को देखकर कृष्ण की सम्मति से पाथ, भीम आदि प्रमुख योद्धागण उसे मण्डलाकार घेर कर शस्त्रास्त्रों का प्रहार

करने लगे । किन्तु सभी देख रहे थे कि अगराज प्रतिपक्षियों की सभी योजनाओं को असफल बनाता हुआ घातक प्रहार कर रहा था । कवि के शब्दों में—

देखा सभी ने प्रभुता दिखाता ब्रह्माण्ड पृथ्वी तल को कैपाता ।
निद्रा द्वेष या लक्ष्य समीप जाता अङ्गार आभाषित अङ्गराजा ॥
गोविन्द के मोरच को मिटाता मद्रेश था स्यन्दन को चलाता ।
यानस्थ था कीर्ति हेतु नाशी नागेन्द्र शिञ्जाकित केतुशाली ॥”

(सग २० पृ० २१८)

कण की सबसे बड़ी विनेपता यह रही कि वह युद्ध क्षेत्र में प्रतिकूल परिस्थितियाँ में भी कभी हतासताहित नहीं हुआ । एक अवसर पर कण के सारथी मद्रेश्वर ने कहा कि अङ्गराज पाथ ऐसा पुरुषोद्भूत है कि जिसकी रक्षा सभी लोकशक्तियाँ कर रही हैं । वह पुरन्दर पुत्र है जो सम्पूर्ण सरायुधों से सज्जित है, और उसके सारथी चक्राणि हैं । उस शूर ने भीष्म द्रोण सहस्र युद्ध दुर्म महारथियों को भी विजित किया है । अब उसका कमाल तुम कपालिका को क्या भेंट करोगे ? कही वह ही तुम्हारा भाल शृगाल को न दे दे । मद्रराज शल्य की योग्यशक्तियों को सुनकर अगराज ने कहा—

‘पाथ हो समृद्ध भले निगिन प्रमाघनों से
सबनिद्रिणायक हमारा पुरुपाथ है ।
आत्मशक्ति व सहारे हम वार वार
स्वयं रगित सुरायुधी अरानि की—
द्रुड व निमित्त नानारत हैं किन्तु वह,
भीरु मम सम्मुख न आ रहा है आज भी ॥

(सग २१, पृ० २२१)

कुहनेत्र में कण ने न केवल स्वर्गीय युद्ध-वीर्यवत्ते प्रतिपत्ति को सप्रस्तुत कर रखा था अन्तितु अग्रिम सनानाथक की मोति वह अपने सनिका का सम्यक उद्बाधन द्वारा समुत्तान्ति करना हुआ प्रयाण व निग प्रेरित कर रहा था । कवि के अनुसार—

‘अभ्य अगराज न प्रयाण वेग स रिया ।
अरानि स्वयं धन को स्वयं पागव म रिया ॥
पुहार व वना—बड़ा सम्भ्र रात्र सनिका ।
करो दिनष्ट भूमि छल पृष्ठ श्व-नाय का ॥
बड़ा सम्भ्र अङ्गराजपुत्र शाप्र शीघ्र ।
बड़ा बनारिहार न सम्यक् द्युत तादने ॥

बचे न दृष्टिमाग मे अमित्र शेष एक भी ।
 बडे चनो रवदेश शत्रुहीन हो रको तमी ॥
 महारथी विलम्ब आज हो न सम्प्रहार म ।
 विपक्ष को करो विलीन काल अघकार म ॥
 बचे न एक शत्रु भाल जो न बाण विद्ध हो ।
 प्रयोग है वही प्रशस्य जो सकाल सिद्ध हो ॥”

(सग २१, पृ० २२८)

बलाग्र कण के निदेश से कुत्वाहिनी सवेग बढ चली । उस अवसर पर घग्-
 सिन्दु प्रकम्पित हो रही थी । जैसे तरंगिता तरंगिणी उमग से बढ़ती है वैसे ही
 अभ्यन्त भारती सेना प्रयाण कर रही थी । कुरुराज की विशाल बाहिनी ने
 पथाज की समस्त व्यूह रचना को अस्त व्यस्त कर दिया । इसके पश्चात् कवि
 ने पाथ और कण के लोमहृत्क मगर का वणन किया है । वसुपेण ने कोटि-
 कोटि शोणित महास्त्रो का प्रयोग करके घमराज का वध दिया, अजुन भी
 रुधिराक्त हो गया । कुपित पाथ ने भी अपने त्रियायुधा के विस्मयकारी प्रयोगों
 द्वारा कुरुचमू को सन्नस्त कर दिया । उस युद्ध मेदिनी म शत्रुबाहिनी के प्रवेग
 को देखकर कण ने अपने सारथी शल्य से कहा कि तुम मेरा स्यदन उस स्थल
 पर शीघ्र पहुँचाओ जहा हरि रक्षित पाथ “बजा उड रही है—

“शल्य करा रथ की गति तीव्र महारण आज घरा पर होगा ।
 भीषण बाण प्रबोध घपण घोष प्रधोष निरन्तर होगा ॥
 ध्वसक, लोमहृत्क कण घनञ्जय का अब सगर हागा ।
 भारत और समाज समक्ष अभी कुरुभूमि स्वयंवर हागा ॥
 घात विघात प्रघात प्रबोधक दारुण दृश्य महायम देखें ।
 नाति विभासक भरव भी मम भरव नर्य रणोरम देखें ॥
 थी प्रलयकर रुद्र भयकर सहति-मृत्यु मनोरम देखें ।
 कंधरवीर, घुरघर घोर पुरंदर सय पराक्रम देखें ॥”

(सग २१, पृ० २३५)

‘महामारु म भी मद्रराज के समथ सेनापति कण का यही वीरोचित
 स्वामिमान प्रकट हुआ है—

नहि कण ममुद्भूतो भयाथ मिह मद्रक ।
 विक्रमाथमहं जातो यशोय च तथात्मन ॥”

(महामारु—कण पव, ४३ ६)

महारथी कण सम्पूर्ण युद्ध क्षेत्र पर छाया हुआ था। उमका एकमात्र लक्ष्य शत्रुपक्ष की झूठ रचना की छस्त करना था। एक स्थान पर कुन्राज को सक्टापन्न स्थिति में फंसे देखकर जब वह उम स्थान पर जा रहा था ता बीच में ही उसे स्वयं सुपेण का वीरगति प्राप्त शव दृष्टिगत हुआ। किंतु कण विवक्षित हुए बिना यह कहता हुआ आगे बढ़ गया कि—

पुत्र हानि शोम से न भूलें हम प्रण का ॥' (सग २१ पृ० २३७)

और निश्चयन यह प्रण अपने मित्र सुयाघन की प्रागरक्षा और मान रक्षा का ही था। किंतु इस प्रणपूर्ति में कण ने कहीं भी अनीति का आश्रय नहीं लिया। एक अवसर पर पाय ने महाचाप से बरुणास्त्र और रद्र महास्त्र का प्रहार कण पर किया। कण ने उन महास्त्रों का प्रभावशून्य बनाने के लिए जिन शरीरों का प्रयोग किया उससे अजुन मूर्च्छित हो गया। इस अवसर पर दुर्योधन ने अजुन के वध करने का परामर्श कण को दिया, किन्तु महारथी कण ने इसे धर्म प्रतिकूल कहकर टाल दिया—

“मूर्च्छित पृथाज हु ॥ योला कुरराज तमी

मिथ वस मार दा उठे न यह स्वाप से ।

रोक प्रहार कण योला—हमे इष्ट नहीं

धम प्रतिकूल स्वाय मिद्धि कभी पाप से ॥’

(सग २१ पृ० २५०)

उदघृत कथन से महाबती कण के चरित्र की महानता ही व्यक्त होती है। एक अवसर पर पुन याल कण को सुभाव देता है कि मुझे बाणस्थ कर घातक प्रहार करो जिससे निश्चयन पाथ हतप्राण हागा किंतु वहाँ पुन अगराज धममय युद्ध का ही समर्थन करता हुआ कहता है कि—

यह सत्य समर है नागराज । है सत्यव्रती यह अङ्गराज ॥

हो जाय भले वह प्राण भुक्त । पर कम करेगा धम युक्त ॥

कर के दूषित शर का प्रयोग । हम नहीं चाहते विनय गोग ॥

हो यहाँ हार या मिले जीति । हागी न कुं । मम युद्धनीति ॥

(सग २१ पृ० २५६)

किन्तु विडम्बना यह है कि उस महाबती कण का वध अनीतिपूर्वक पाथ ने किया। रश्मिरथी प्रबोध काव्य में श्री लिनकर जी ने भी यही दर्शाया है कि युद्ध क्षेत्र में कण क रथ का एक पहिया फम गया था और जब वह पहिया निचाल रहा था तभी कृष्ण के आदेश से अजुन ने कण का वध

कर दिया ।^{११} वस्तुन अजुन ने अधम और अनीतिपूर्वक निशस्थावस्था मे ही कण का वध किया ।^{१२} कण के निधन पर कवि ने उसकी चारित्रिक गरिमा का वणन करते हुए पश्चाताप के स्वर मे कहा है कि—

मानवीय शक्ति का प्रतीक भारतीय वीर,
कण शस्त्र पून होके वीर लोक को गया ।
दीन हीन प्राणियों का चिन्तामणि रत्न था,
रत्नवती रत्न नर रत्नराज खो गया ।
सज्जनो का वत्पट्टक मूल से विनष्ट हुआ,
जागृक द्वारप स्वत यता का सा गया ।
हो गया जजीव राज-अग अगगज विना,
और अगराज दिनराज अस्त हो गया ॥”

(सग २१, छंद २२५)

पांडव पृथा महिन श्रीकृष्ण जब युद्ध क्षेत्र का परिभ्रमण कर रहे थे, तभी मृत कण भाल का लक्षित कर उठाने पृथाज से कण के अपरिमित शीय का प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि—

जयाधिकारी वसुधेन मृत्यु से, हुआ महाभारत ही समाप्त है ।
यही दली था जिस के आस से, प्रवास म द्वादश वष रात्रि म ॥
प्रजागर ग्रस्त नरश आप थे तथा किरीटी हम भी सशक थे ।
किरीटधारी प्रति भूप भाल को झुका दिया था इसी मानवेन्द्र ने ॥
न स्वप्न मे परवीर पास स झुका कभी मस्तक अगराज का ।
नलोक म एक यही ललाट था, महामनस्वी इस शीय मूर्ति का ॥
हुआ न आनत दीन भाव से, कभी किसी के चरणागविन्द मे ।

(सग २१, पृ० २६८)

बाईसवें सग मे कवि ने कणप्रिया के ममस्पर्शी करुण विलाप का वणन किया है । कण भार्या प्राणेश्वर के खडित भात को अक म लेकर उसे दारम्बार विलाकनी हुई करुण श्रद्धन कर रही थी । वह अश्रुसनाता अपनी ममव्यथा को अमिष्यवत करते हुए कह रही थी कि हे चिरसगी ! तुम स्वप्न म भी मेरे साथ थे । आज निर्मोही की भाति प्रणय वधन तोड कर कहा चने गए

^{११} रश्मिरथी—सप्तम सग पृ० १८७ से १९९

^{१२} हिंदी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य पृ० १७८

हो। तुम्हारा तो यह प्रण था कि जब तब नम म चन्द्र-तार हैं, हम साथ हैं और रहेंगे। गुग्गुलु अतीत का स्मरण करती हुई यह कृताङ्गना चन्द्रमा की ओर दृग्नि कर कहने लगी कि यह मन्मथिन् हमारे मधुमय मिनन का साथी है। अहो यह गुधासिन्धु रजनी कितनी गुग्गुली थी जब नम म चन्द्र और अपन समीप तुम्हारा गुग्गुलु देवकर भरे अ तस्तल म पीयूषधार प्रवाहित हो रही थी। ह वीरव्रती उठो और अस्मिन् करो। इस प्रकार निरन्तर आत्तना करती हुई कणवामा को ध्य धारण कराने के लिए गगनध्वनि हुई जिसमें उसने गुना कि—कोई विनना भी महान् नेता या विश्वविजेता हो, किन्तु काल स तो यह भी परास्त होता है। उष्य अस्त और उत्थान-पतन तो नित्य नियति का सतत त्रियमाण अबाध प्रम है जिसका कोई अतिश्रमण नहीं कर सता ? कण महान् वीर था और उसे देवोपम अमरत्व प्राप्त हुआ है। उसके समान कीर्ति कौनैवरधारी प्राणी जग म मिलना दुनम है। तुष हृष्य की जडता और व्याकुलता का परित्याग कर अपन दिवगत पति को नरता को भूलकर उसकी दवीय विभूतियों का पुण्य स्मरण करना चाहिए—

‘कण वीर था महावीर था देवोपम बलधारी।
पुण्यशील मानी सत्य था अनुपम परोपकारी ॥
किन्तु उसे भी काल नियम वश प्राण त्याग करना था।
कमवीर था अत कम करते-करते मरना था ॥

× × ×
कौन भाग्यशाली नर होगा जग म उससे पहले।
परमोन्नति जो करे स्वनिर्मित सापानो पर पहले ॥
परमाह्व मे विजित नहा पर जयी हुआ तब स्वामी।
करवे वह परमस्व प्राप्त ही हुआ स्वग पथगामी ॥

× × ×
मिली परम गति अमराज को अन्तिम जीय। रण म।
एकमात्र वह सफल हुआ है स्वामिमान रक्षण म ॥

(सग २२ पृ० २७२ ७३)

गगन गिरा से कण वामा यद्यपि आश्वस्त हुई किन्तु उसके सन्ताप का सबसे बड़ा कारण यह था कि छत्र प्रयोग तथा हरि योग से शत्रु ने प्राणनाथ का वध किया, अथवा तो वे अविजय थे। कण प्रिया की मनो-यथा कितनी

यथाथ और तलस्पर्शी प्रतीत होती है जब वह कहती है कि कुम्भजीन भारत राज्य की दक्षिण बाहु ही कण निधन से कट गई है—

कुरु कुलाश्रित भारत राज्य की, कट गई अब दक्षिण बाहु ही ।

वहन था करता नपराजता, वह महीभुज ही गुज शक्ति से ॥'

(सग २२, छंद ४२, पृ० २७६)

चौथीसवें सग म हम धमराज युधिष्ठिर का भी महारथी कण के निधन पर मानसिक सन्ताप और आत्मिक सम्मान प्रकट करते हुए पाते हैं। जिस समय गगातट पर कुलाग्रणी पांडवराज सभी मृतजना का शास्त्रोक्त विधान से दाह-संस्कार एवं तपणकर्म कर चुकता कुन्ती ने कणजन्म का रहस्यपूर्ण वृत्तान्त बताते हुए धमराज से कण का तपण करने के लिए अनुरोध किया। इस रहस्यमय इतिवृत्त का परिचय होते ही युधिष्ठिर पश्चात्तापपूर्ण मुद्रा में कहने लग कि यदि पहले पात हा गया होता कि कण हमारे अग्रज हैं, तो हम युद्धकामी न होने, क्याकि—

'अगेश क दशन से हमारी, होनी सदा थी बलवान श्रद्धा ।

विलोकते ही पदथी उसकी विनीत हात हम सबदा थे ॥

होता जहा था वह कापशाली हात बहा थे हम गुप्त स्नेही ।

विचार होता मन म यही था, सुसह्य है पूज्य मनुष्य वाणी ॥'

(सग २४, पृ० २६२)

वाक्य की परिसमाप्ति मातृगण के कण के प्रति इस कथन से होती है कि—

आत्म विजय ही सत्य विजय है हुई तुम्ह जो प्राप्त ।'

(सग २४ पृ० २६६)

इस प्रकार अङ्गराज महाकाव्य के माध्यम से कण चरित की जो विभूतिया व्यजित हुई हैं उनके कारण कण सचमुच 'भारती नायक' सिद्ध होता है। कण के चरितमूलक गुणात्मक उत्कृष्ट का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसकी प्रशंसा कृष्ण, अर्जुन युधिष्ठिर प्रभृति विपक्षियों ने भी मुक्त कंठ से की है। निराधिया द्वारा कण की प्रशंसा 'अङ्गराज' के कवि ने ही नहीं अपितु महाभारत में मर्त्यपि व्यास ने भी करायी है। उदाहरणार्थ महाभारत में थाकृष्ण स्पष्ट शब्दों में अर्जुन से कहते हैं कि मैं कण का तुम से श्रेष्ठ महारथी मानता हूँ—

कर्णो हि बलवा ह्य वृत्तास्त्रश्च महारथ ।

कृती च विनयोचो च देश कालस्य कोविद ॥

बहुतात्र किं युवोः सक्षेपाच्छनु पाण्डव ।
त्वत्सम स्वशिष्टि वा क्व मय महारथम् ॥

(महाभारत कण पत्र)

एव अथ स्थल पर कृष्ण कण की प्रतिभता और कृतास्त्रता के सम्बन्ध में अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध में उसे तुम गाण्डीव से और मैं गुणान धनु से भी जीतने में समर्थ नहीं हो सकूँ—

'गाण्डीव मुद्यम्य भवाश्चक्र चाह गुणानाम् ।
न शक्नो स्वोरण जेतु तथा युक्त नापमम् ॥'

(वही, कण पत्र)

महाभारत युद्ध के प्रक्षय-व्यता समय में तो धृतराष्ट्र को यही तर्क कह दिया कि युद्धक्षेत्र में भीष्म द्राण या अन्य कोई भी योद्धा कण के समान पराक्रम का प्रदर्शन नहीं कर सका—

नय भीष्मो न च द्राणा नाय युधि च तावता ।
चक्रस्म तादृश कम यादृश बद्धत रणे ॥

(वही कण पत्र)

इस दृष्टि से अर्जुनराज के रचयिता का यह कथन सवथा सत्य प्रतीत होता है कि— वीरव-समाज में ही नहीं महाभारत-काल के समस्त मानव समाज में सबसे प्रभावशाली एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व अर्जुन कण का ही मिलता है। "जालाच्यकाव्य में कण के अनेक नाम यथा—वसुपेण कण वृष जीव आदि प्रयुक्त हुए हैं। ये समा नाम कण की गुणवत्ता का व्योतन करने वाले हैं। जन्म जात कवच कुण्डलवारी हाने के कारण सूत अधिरथ न उस वसुपेण कहा शरीर से कवच कुण्डल का उच्छेदन कर दान करने के कारण पुरंदर न उस कण कहा जीर ब्रह्मण्य सत्यवादी तपस्वी धृती जीर रिपु के प्रति भी दयावान होने के कारण उसे वृष अभिधान दिया गया। श्रीकृष्ण के अनुसार—

ब्रह्मण्य सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रत ।
रिपुष्वपि दयावाश्व तस्यात्कर्णो वृष स्मृत ॥'

(महाभारत)

वस्तुतः कण का व्यक्तित्व जीर कृतित्व यथानाम तथा गुण वाली उक्ति के अनुसार गुणामिभूत था। कण के चरित्र में वीरत्व के उत्कृष्ट विधायक आदर्श धर्म (कमवीर युद्धवीर, दानवीर) की अद्भुत समाहृति परिलक्षित

होती है। ‘अगराज’ के रचयिता ने कण के उत्सवमय निधन के कारण उस महान कमवीरा की काटि में परिगणित करते हुए लिखा है कि—“जहाँ दधीचि ने तप करके अस्थिदान किया वही कण ने तप करके जीवन दान किया। कमयज की पूर्णाहुति प्राय कमवीर के बलिदान से हाती है। कृष्ण, कण, दयानन्द गांधी के जीवन से यही सिद्ध होता है।” (भूमिका, पृ० ३६ से उद्धृत) उद्धृत मत य अतिरजित नहीं है, बल्कि इसकी प्रामाणिकता आलोच्य काय के घटनाक्रम और चरित्र विकास द्वारा सिद्ध हो चुकी है। निष्कपत यह कहा जा सकता है कि कण का चरित्र महान् मानवीय गुणा, उपाजित दवीय विभूतियों, कर्तव्यनिष्ठा के उदात्त आदर्शों, जनीति विरोधी सघर्षों तथा कौशल-यत्न की विटम्बनाओं से उत्पाडित शोषित मानवता का सशक्त प्रतिनिधित्व करने के कारण निश्चयत महाघ, युगप्ररब और वरेण्य है। श्री जानदकुमार ने कण के महान् चरित्र पर ‘अगराज’ महाकाव्य की रचना द्वारा भारता के मण्डार का गौरवपूर्ण अभिवृद्धि की है, अतः उनकी यह काव्य कृति सवथा अभिनन्दनीय है।



**‘रावण’ और ‘दैत्यवश’ महाकाव्य
मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा के काव्य सकल्प**

३-४

‘रावण’ और ‘दैत्यवश’ महाकाव्य मानवीय जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के काव्य सकल्प

पौराणिक युग के क्लृप्त, तिरस्कृत एवं उपश्लिष्ट पात्रों के उचित मूल्यांकन और सम्यक् समालोचन की प्रवृत्ति हिन्दी के साहित्यकारों ने बंगला के मानवतावादी लेखकों और युगद्रष्टा कवियों से प्राप्त की। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के ‘काव्ये उपेक्षिता’ लेख ने श्री मधिलीशरण गुप्त को ‘साकेत’ और श्री बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ को ‘ऊर्मिमला’ महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार माईकेल मधुसूदनदत्त के ‘मेघनाद बध’ महाकाव्य में तिरस्कृत और क्लृप्त पात्रों को मानवीय दृष्टि और युगीन सदर्थों में अवलोकन की काव्य दृष्टि प्रदान की। हिन्दी में श्री हरदयालुसिंह विरचित दैत्यवश और ‘रावण’ नामक महाकाव्य इसी प्रेरणा के परिणाम हैं। मानवतावादी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर ही सतपुत्र वंश पर श्री दिनकर ने ‘रश्मिरथी’ और निपाद पुत्र एकलव्य पर डा० रामकुमार वर्मा ने ‘एकलव्य’ नामक महाकाव्यों की रचना की है। प्रसन्नता का विषय है कि इस काटिके काव्यों में कृत्रिमता की मेघा और अनुभूति युग चेतना से अनुसृजित होकर मुखरित हुई है। ऐसे कवियों का प्रयास मानवता के पुरातन कलको का पूत प्रक्षालन है, ऐतिहासिक श्रुतियों का सम्माजन है, चिरन्तन सत्य का अनुसंधान है और साहित्य में मानवतावाद की महान उदघोषणा है।

हिन्दी महाकाव्य लेखन की सुदीर्घ परम्परा में ‘दैत्यवश’ और ‘रावण’ का उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि इन महाकाव्यों में प्रथम बार एक कवि ने दैत्य और दानव कह जाने वाले पात्रों में दवीय गुणों और मानवीय विशेषताओं का संधान किया है। श्री सिंह का यह प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय है।

‘दैत्यवश’ की रचना कालिदास कृत रघुवंश महाकाव्य की शिल्प विधि के आधार पर हुई है। ‘दैत्यवश’ का इतिवृत्तात्मक समाजन श्री मदभागवत

महापुराण तथा रावण का यान्त्रिक रामायण' का आधार पर हुआ है। दत्यवश म दत्यगुल व तिरप्पाश तिरप्पाशित्तु तिराउन बलि, बाण और अस्व-दुमार नामक छ राजाओं की कथा का वणन है। 'रावण महाकाव्य म पुलस्त्य ऋषि के वश का (विश्रवा से लेकर अधयदुमार अरिमदन तक) वणन है। दोनों महाकाव्यों का कथात्मक आधार पौराणिक हान हुए मी नवीन प्रसंगोद्भावनाओं द्वारा कवि ने कथा चयन म मौलिकता का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ दैत्यवश के प्रथम सग म बराह द्वारा हस्ताचन की पुष्प-वाटिका उजाड़ना चतुर्थ सग म सिंगुगुता व रव्यवर म सरस्वती द्वारा विभिन्न दवा और अदेवा का परिचय देना सप्तम सग म इंद्र का हस्त द्वारा शची को स-दश भेजना, दशम सग म वामन व जम तथा बालसीलाओं का चित्रण और प्रयोदश सग म विश्ररता द्वारा अनिरुद्ध का हरण मौलिकता पुण हैं। इसी प्रकार रावण' महाकाव्य म रावण व दव विरोध का कारण, पष्ठ सग म पुत्र प्राप्ति व लिए म-दोदरी द्वारा पावती-पूजन, सप्तम सग म सुनाचना और मघनाद का ग घव विवाह सीता हरण का कारण, विभीषण के चरित्र म बंधु द्रोह एव विश्वासघात तथा १५वें व १६वें सर्गों का सम्पूर्ण कथा विधान कवि कल्पना प्रसूत है। कथा सयाजन म कवि ने परम्परा प्रख्यात कथानक के स्वरूप की रक्षा करते हुए युगीन सादमों के अनुरूप कथासूत्रों को संजोया है। दत्यवश म बलि की राज्य-यवस्या का वणन मर कथन की पुष्टि म दृष्ट्य है।

वस्तुतः दत्यवश' और रावण चरित्र प्रधान महाकाव्य हैं। अदेव, राक्षस और असुर कह जाने वाले पात्रों की चरित्रगत विनोपताओं का मानवतावादी परिप्रेक्ष्य (Humanitarian Perspective) म प्रदर्शन इन महाकाव्यों की रचना का मुख्य प्रयाजन है। इन महाकाव्यों व चरित्र विश्लेषण से पूर्व यह समझ लिया जाय कि दव और दानव कौन हैं? क्या दव और दानव मानवतर जातियाँ हैं। यदि हाँ, तो उनका मानवीय दृष्टि स भूल्यावन कैसे किया जा सकता है? प्रतीय दृष्टि से देवत्व और दानवत्व मानवीय वक्तियाँ हैं। श्री उमेश मिश्र के अनुसार— मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दत्य और सुविकसित रूप दव है। फलतः दत्य प्रकृति का आदि मानव रूप कहा जा सकता है जिसम शारीरिक बल प्रचुर मात्रा म मौजूद है क्योंकि वह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल उसम अधिक नहीं है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्रायः एक-सं अनुपात मे किसी वध म नहीं पायी जाती। विकासक्रम म यह भी दखा गया है कि किसी वध म जस-जसे

मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी होता जाता है। छल, प्रपञ्च घूतना विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बड़े चढ़े हैं पर उनमें सरल विश्वास सत्यनिष्ठा और मिथ्याई विद्यमान है। दवगण शरीर बल में निबल हैं, पर चतुर अधिक हैं वे बात बात में दैत्या को धावा देने हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छत्र लेते हैं।^१

उपयुक्त विवेचन के आलोक में यदि हम देव और दानव के प्रश्नों पर विचार करें तो पायेंगे कि जिन्हें हम दानव कहकर निरस्वार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते आये हैं, वे अनेक मानवीय गुणों और विभूतियों से उपेत हैं। पौराणिकता के प्रभूत प्रभाव रूढ़िवद्ध मान्यताओं की अथ स्वीकृति अवतारवाद की परिवर्तन के व्यामोह एवं तथाकथित धार्मिक प्रतिबद्धता के कारण हमारा दृष्टिकोण जनानिक और अमानवीय रहा है। यदि हम निरपेक्ष जनानिक दृष्टि और जाग्रदुत्त तटस्थ भाव से देव दानव सघप के इतिहास का अध्ययन करें तो पायेंगे कि इस अरादि सघप के लिए दोनों ही उत्तरदायी हैं। यह बात दूसरी है कि इसके दायित्व का कितना प्रतिशत देवा पर है और कितना अदवों पर। देव दानव विरोध के कारणों की 'रावण' और 'दैत्यवश' के आधार पर गोज की जा सकती है।

सष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुत्र मरीचि थे। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। इहीं कश्यप ऋषि के, दिति नामक पत्नी से दैत्य और अदिनि से देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार देव और दानव एक ही पिता की सन्तान थे। दैत्यवश में हिरण्याक्ष शक्तिशाली और पराक्रमी था। देवताओं का उससे बस न चला तो उन्होंने विष्णु से प्रायना की। विष्णु ने वराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष की बाटिका को उजाड़ दिया। फलस्वरूप सघप हुआ जिसमें वराह रूपधारी विष्णु ने हिरण्याक्ष को मार डाला। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु का वध भी उन्होंने किया। दैत्यवश के राजाजा में वनि सरसे चतुर था। राज्यासौन हाते ही उसने सय-सगठन किया तथा प्रजाहित के वाय किये। उसने ६६ अश्वमेध यज्ञ किये। बलि के उत्सव को देखकर देवता मन ही मन बुढ़ते थे। उन्होंने छत्रपूण सधि प्रस्ताव करके दैत्यो के सहयोग से समुद्र मंथन किया। सागर से निकले अमृत को देवता छत्रपूवक अकले पी गये। यद्यपि

^१ दैत्यवश, भूमिका, पृ० ६७

सागर मन्थन में दत्यो का ही श्रम अधिक था। फलस्वरूप युद्ध हुआ जिसमें बलि ही विजयी हुआ। तदन्तर बलि ने इन्द्रासन की प्राप्ति के लिए सौवा जश्नमेत्र यज्ञ प्रारम्भ किया। तभी वामन रूप धरकर विष्णु ने तीन पग पृथ्वी मागकर बलि का सबस्व अपहरण कर लिया। बलि ने दो पगों में सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश देकर तथा तीसरे पग में अपना हिमगिरि के समान उच्च और दक्षिण शीश अर्पित करके दानशीलता का अत्यन्त उदाहरण प्रस्तुत किया। बलि का पुत्र बाण भी महान पराक्रमी था। उसने दिग्विजय कर जीवन के अन्तिम क्षण में राज्य पुत्र को सौंप शिवाराधन के लिए वन गमन किया। बाण का पुत्र अस्त्र दकुमार भी प्रजारक्षक था। उसने प्रजाहित के लिए गुरुकुला यज्ञशालाओं राजमार्गों, वनवीथियों और ग्रामों का पथवेक्षण किया तथा समाज के विभिन्न वर्गों से सम्पर्क स्थापित किया। इसी प्रकार 'रावण' महाकाव्य को देखें तो पात होगा कि रावण का देवों से जन्मजात घटन था। एक दिन पुलस्त्य ने बताया कि देवताओं के अनुरोध से विष्णु ने नानामाली को मार डाला था। यही से रावण देव विरोधी हो गया। उसने देवकुल के सहार का विश्चय किया। जपन् शीघ्र और पराक्रम से रावण ने त्रैलोक्य में विजय का षण्डा फहरा दिया। राम से रावण के द्वेष का कारण यह था कि राम राक्षसकुल के अनिष्ट के लिए तप कर रहे मुनियों के सहायक हुए। राम ने ताडवा का वध किया। जनस्थान की गवन्तर शूपनखा ने जब यज्ञ पर प्रनिष्ठा लगा दिया तो मुनियों ने उसका विरोध किया। फलस्वरूप, खरदूषण को ससय भेजा गया। उनका भी राम ने वध कर लिया। सक्षमण ने शूपनखा के नाक बान भी काट लिये। प्रतिराध की भावना से रावण ने सीता का हरण किया, जो अतन् राम रावण युद्ध का कारण बना।

दोनों महाकाव्यों की प्रमुख घटनाओं के विहंगावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव दानव सघष के मूल में देवों का ईर्ष्याभाव और छल छद्मपूर्ण व्यवहार प्रमुख रहे हैं। इसने विपरीत दत्यो और राक्षसों के चरित्र में दानशीलता शीघ्र साहस पराक्रम तपश्चर्या तेजस्विता शिवाराधन निष्ठा, प्रणामनिक योयना जैसे गुण निहित हैं जिनकी पूर्वाग्रही दृष्टिकोण के कारण सदैव उपेक्षा की गयी है। अतः हम राक्षसों और दत्यों के गुणों का विवेचन करेंगे।

बलि ने राज्यप्राप्ति के लिए हा प्रजाहित के अन्तर्क काय प्रारम्भ कर लिये

'श्रोत्रे गुम्फुन अमित सवनि विद्या पन्वाई
सनिक सिच्छा काज व्यवस्था मवन कराई ।

× × ×

किया स्वास्थ्य रक्षा हित भूपति अमिन उपाई,
दीहौ नगरनि माहि, औपघालय रुतदाई ।

× × ×

दृष्टि विभाग को भूप अमित सम्पन्न बनायो
अरु सहकारी कोप खोलि उतनि करवायो ।'^१

दक्षवश के राजाआ मे अस्वदकुमार ने तो राज्य काय मंत्रियो को
सौंपकर एक-एक गाव का भ्रमण किया और प्रजा के दुख सुख की बातें सुनी—
'खेती सार ग्राम की मर निरन्धरी नरनाह
दृष्टिजन की दुख सुख सुयी सब मह अमित उछाह ।''^२

दक्षवश के राजा प्रजाहितपी हाने के साथ साथ अपार दानो भी थे । गुप्त
शुक्राचार्य के समझाने पर भी कि वामन यदु के रूप में विष्णु आय हैं राजा
बलि ने उन्हें तीन पर पृथ्वी दान देना स्वीकार कर लिया और अपना सबस्व
अपण कर दिया ।^३ दक्ष जितने भोग विलासी थे उतने ही त्यागी, तपस्वी
और बरागी भी । वाणासुर ने विश्वविजय की अपार वैभव से सम्पन्न सौनपुर
नगर बसाया, अनन्त ऐश्वर्य-सुख का भाग किया । यही वाणासुर वृद्धावस्था
आते ही पुत्र का राज्य पन् सौंप कर शिवाग्रघन के लिए चला गया । कठोर तप
करते हुए वाण ने शरीर त्यागा—

'मडो एक पग रह्यो व्योम तिसि हाथ उठाये,
सिउ सिव निज मुख कहत मानु दिसि दीठि लगाय ।
यहि विधि करि तप घोर दिवस विनय नर प्राता
गयो सुन्नाय मरीर सहत हिम आतप वाता ।

× × ×

^१ दक्षवश, मग २ पृ० २५ २६

^२ यही मग १८, पृ० २५५

^३ यही, मग १२ पृ० १८४

सूख गयो नृप गात विनाल
रही ठठरी तन मे अबसेली ।
फोरि क ब्रह्म के रघ्रहि प्रान,
मिल्यो शिव शकर मे सविसेली ।
यो तन जोगु की आग म जारि
गयो सिवधाम बनी हर बेखी । ५

बाण ने यह कृच्छ्र तप साधना किसी मौक्तिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए नहीं की बरन इस तपश्चर्या द्वारा उमने आश्रम घम की व्यवस्था का विधिवत् अनुपालन कर उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया। कठोर तप-साधना सभी नैत्यवशी राजाओं ने की। रावण महाकाव्य मे ककसी अपने पुत्रो (रावण, कुम्भकरण विभीषण आदि) को तप के लिए प्रेरित करती हुई कहती है

‘तप बल ही सौ रचत विश्व प्रपच विधाना
तप बल ही सौ बनत विष्णु वाकी परिश्राना ।
तप बल ही सौ रुद्र ताहि पल में विनसावें,
तप का महिमा और कहाँ लौं तुमहि सुनावैं ।

× × ×

अब विलम्ब जनि होय करहु तप हेतु तयारी,
बसहु जाय बन माहि सिद्धि दहैं त्रिपुरारी ।’ ६

रावण और कुम्भकरण की कठोर तप साधना का वणन कवि न निम्नांकित प्रकार से किया है

‘तीरघ दाघ निदाघ पचागिनि तापि वितायो
बहु दारुण हिम राति सने जल माहि गवायो ।
अरु वीरामन बठि बष्ट बरपा का भेन्थो
इमि तप क घटरन आपु प्रानन प गेल्यो ।
इहू त अति कठिन उग्र त्ममुग्य तप की-ह्यो
निज नव सीमन बाटि हाम दुनभुस्य मह दीह्यो ।’ ७

५ दैत्यवग्न मग १७ पृ० २५१

६ वही मग ३ पृ० ६७

७ वही पृ० ६६

इसी तप साधना के बल पर दत्य और रागस अमोघ शक्ति प्राप्त करते थे। उनके अनन्त शौर्य और पराक्रम का परिचय हमे देवामुर सग्रामो मे मिलता है।

दत्या के समान उनकी स्त्रिया और कन्याएँ भी गुणवती थी। वाणामुर की पुत्री उषा असाधारण सुन्दरी बाला थी। वह चौदह कलाओं की पाता और सगीतशास्त्र में प्रवीण थी। उसका विवाह श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध से विधिवन सम्पन्न हुआ।^६ पौडशी उषा का स्तुति कवि के शब्दो मे द्रष्टव्य है

'या विधि पोत्स वप गये
अधरानि पै वाके ललाई लम लगी।
चन्दन हू के लगाये विना,
सदै अपनि सौरभ सी सरस लगी।
वजन रजन कीह्यौ नही
चल काजर रेख दरस रागी।
बात के आनन सी मुसकानि
सुधा घनसार घनी वरस लगी।'^७

इसी प्रकार पतिपरायणा के रूप में 'रावण' महाकाव्य की मन्दोदरी और सुलाचना, वात्सल्यमयी मा के रूप में ककसी और राजनीति विशारद् कुलबाला के रूप में शूनपनखा के चरित्र दृष्ट्य हैं।

मन्दोदरी मय दानव का पुत्री थी जो हेमा नामक अप्सरा की कोख से उत्पन्न हुई थी। कवि ने उसे अनिरुद्ध सुन्दरी के रूप में अंकित किया है। उसकी रूप छत्र मानसरोवर में खिले हुए सरोज की सुषमा और नीलाम्बर में कलाधर की जुहाई के समान थी। मन्दोदरी के जावक से रगे पकज पत्ता की शोभा के समक्ष जपान्त्र विद्रुम और वधुकन की प्रभा भी मन्द पड जाती थी।^८ पावती को पूजन-अर्चन से प्रसन्न कर उमने मेघनाद के समान बलशाली पुत्र प्राप्त किया।^९ इसी प्रकार मिथवा ऋषि को प्राप्त करने के लिए रावण की

^६ दत्त्यवश, सग १३ पृ० १६६

^७ वही सग १३, पृ० १६६

^८ रावण, सग ६, पृ० ६०

^९ वही पृ० ६१

माँ बचसी बल्लबवतना तपस्विनी बनी ।¹¹ यर्षों की बठोर साधना के बाएँ
 बँवसी को विश्रवा से मानमपुत्र प्राप्ति का बरदान मिला । दूषणमा राजनीति
 में निपुण थी । इसीलिए उसे नृपद्रुत नियुक्त किया गया । अपनी भाव्यता के
 कारण ही वह जनस्थान में चौदह हजार राक्षसों की सेना की अध्यक्षा बनायी
 गयी ।¹² दृग प्रसार सटस्थदृष्टि से देता जाय तो दरय और राक्षस कुल की
 नारियाँ में हम स्त्रियोचित सभी गुण और विनेपनाएँ पाते हैं । इन नारियाँ के
 चरित्र में भारतीय नारी के नाना रूपों (पुत्री, पत्नी, माता, भगिनी आदि)
 की गौरवपूर्ण भाँवियाँ हैं ।

चरित्र निरलेपण के अनन्तर यदि आलोच्य महाकाव्या में दैत्यो और
 राक्षसों के रीति रिवाजों और सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन किया जाय
 तो भारतीय संस्कृति की आधारभूत भाव्यताएँ उनमें प्रतिपादित मिलेंगी ।
 शिवाराधन यज्ञ विधान आश्रम धर्म की मर्यादा का पालन, तपश्चर्यापूर्ण
 जीवन, सत्तान की नाना कलाओं और शास्त्र शस्त्र में शिक्षा-नीक्षा जन्म
 विवाह मृत्यु आदि सस्वारों का विधिवत् सम्पादन दैत्यो और राक्षसों को
 भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग सिद्ध करता है ।

अस्तु 'रावण' और 'दैत्यवश' के रचयिता ने दैत्य और राक्षस कहे जाने
 वाले जिन पात्रों का चारित्रिक अंगत्त और सांस्कृतिक निष्ठा से पूण आचार
 व्यवहार प्रस्तुत किया है वह काव्य लेखन की एक आत्मिकारी एवं प्रगतिशील
 परम्परा का जन्मदाता है । इस प्रयास में कवि की विनेपता यह रही है कि
 उसने अपने नायकों का उत्कृष्ट दिखाने के लिए प्रतिनायकों का अपकृष्ट नहीं
 दिखाया है । वास्तव में महाकाव्य रचना का सर्वप्रमुख प्रयोजन ही यह होता है
 कि उसके माध्यम से युग जीवन की चेतना प्रतिकल्पित हो । इस दृष्टि से
 विचार करें तो 'रावण' और 'दैत्यवश' हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य और
 साहित्यकारों की उस जीवन्त आस्था और चेतना के प्रतीक हैं जो मानवता
 वादी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर सजनों-मुख हुई है यही इन दोनों महा-
 काव्यों की रचना की सबसे बड़ी सिद्धि है । मानव मूल्यों की महिमा से मण्डित
 ये महाकाव्य हिन्दी महाकाव्य परम्परा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के रूप में
 सन्ध भाव्य रहेंगे ।

¹¹ रावण सग २ पृ० ५५

¹² वही सग १० पृ० १४७

‘जयभारत’ महाकाव्य

कथाशिल्प सयोजन विधि का वैशिष्ट्य

५

‘जयभारत’ महाकाव्य

कथाशिल्प सयोजन विधि का वैशिष्ट्य

महाकाव्य के रचना विधान में सर्वप्रमुख स्थान कथानक का है। महाकाव्य सजन में कथा-तत्त्व की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आचार्यों ने महाकाव्य का विवचन करते समय उसे ‘कथाकाव्य अभिधान दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने सब्र ही महाकाव्य (Epic) को कथा-काव्य (Narrative Poetry) का पर्याय कहा है। मायर ने एक स्थान पर लिखा है कि—“महाकाव्य शब्द का व्यवहार सभी समालोचकों द्वारा कथात्मक साहित्य के अर्थ में किया गया है।”¹ वाउरा ने महाकाव्य का परिभाषा देते हुए कहा है कि— महाकाव्य बहुदाकार कथात्मक काव्य रूप है।² साहित्य विश्वकोश में महाकाव्य का अर्थ एक कथात्मक कविता ही दिया गया है।³ श्री कोकिलेश्वर शास्त्री ने महाकाव्य का विकास कथात्मक आख्याना में ही माना है। डॉ० उमाकान्त गोयल का मत है कि— महाकाव्य अतः कथा काव्य है।⁴

¹ Epic is a term applied by them (Critics) all to Narrative Literature. The fundamental distinction of the epic from other species of Literature is that upon which they all agree—its narrative form.

—I T Myers *A Study in Epic Development—Introduction*, p 32

² C M Bowra *From Virgil to Milton*, p 1

³ Cassell's *Encyclopaedia of Literature* Vol 1, p 195

⁴ Kokilleshwar Shastry *A Brief History of Sanskrit Literature (Vedic & Classical)* p 19

^x डॉ० उमाकान्त गोयल *महिलीकरण गुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आस्थाता*, पृ० १५६

उपयुक्त मता से स्पष्ट है कि कथातत्त्व महाकाव्य का अपरिहार्य अंग है। महाकाव्य में कथातत्त्व के संयोजन की निश्चित शिल्प विधि भी है। गान्धियाचार्यों के अनुसार, महाकाव्य का कथानक लोकविश्रुत या प्रचलित होना चाहिए। दण्डी, विश्वनाथ आदि आचार्यों का मत है कि महानाव्य का कथानक इतिहास उद्भूत होना चाहिए।^६ द्रष्टव्य अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु उत्पद्य (काल्पनिक) और अनुत्पद्य (प्रसिद्ध) दोनों ही प्रकार की हो सकती है। किंतु एवरश्राम्बी का मत है कि महाकाव्य की मुख्य विषयवस्तु वास्तविक होनी चाहिए, काल्पनिक नहीं।^७ यह मत उचित भी है। वस्तुतः महाकाव्य जैसे काव्य का गुरुत्व और गाम्भीर्य लोकविख्यात कथानक व अमावस सम्भव मा नहीं है। हा, महाकाव्यकार का इतिहास पुराण प्रसिद्ध कथानक में युग जीवन की प्रवृत्ति के अनुकूल परिवर्तन-परिवर्द्धन का अधिकार अवश्य होना चाहिए। इस परिवर्तनक्रम में वह अपनी कल्पनाविधि का भी परिचय दे सकता है। रस अतिरिक्त उल्लिखित नियमानुसार महाकाव्य की कथावस्तु का विनियोजन भी विशेष विधि से होना चाहिए। कथावस्तु में पंच संधि की याजना और सग्नमानुसार विभाजन होना चाहिए। सग्नम घटनावृत्ति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। मुख्य कथा से अवांतर कथा प्रसंगा का सुमम्बद्ध रहना भी आवश्यक है। नवीन मा यताभा के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु में यद्यपि संधि का निर्वाह और सग्न सत्या आदि के नियम का कठोरता से अनुपालन नहीं किया जाता है तथापि कथावस्तु का समुचित विकास करने की दृष्टि से घटनाओं की पूर्व प्रसंगानुसार अविति एवं प्रस्तुतीकरण-शैली भी

- ^६ (अ) इतिहास कथादभूतमितरदा सदा नयम । दण्डी का मा श, १/१५
(आ) इतिहासादभव वृत्तमयदा सज्जनाथयम ।

—विश्वनाथ साहित्य दण ६/३१८

- ^७ सन्ति द्विधा प्रवच्य काव्य कथारयायिकान्य काय ।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वम भूयोऽपि ॥

—काव्यालंकार अ० १६

- ^८ The prime material of epic poet must be real and not invented. The reality of the central subject is of course to be understood broadly. It means that the story must be founded deep in the general experience of men.

—L. Abercrombie *The Epic* p 55

वाछनीय है। कथा-योजना में मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि और नवीन प्रसंगों की भावनाएँ महाकाव्यकार के कथा विधान कौशल का सशक्त प्रमाण होती हैं।

श्री मथिलीशरण गुप्त विरचित ‘जयभारत’ आधुनिक युग का महाकाव्य है। प्रस्तुत प्रसंग में ‘जयभारत’ के कथा शिल्प पर उपयुक्त परिमर्दों में विचार अभीष्ट है।

‘जयभारत’ की कथा का मुख्य आधार यामरचित ‘महाभारत’ है। महाभारत आर्याणो और उपास्याणो का विराट वन है जिसके एक-एक प्रसंग को लेकर ससृष्ट और हिंदी में अनेक महकाव्यों की रचना हुई है। जयभारत के रचयिता श्री गुप्त जी ने कौरव-पाण्डवों के आर्याण का प्रस्तुत महाकाव्य की रचना के लिए ग्रहण किया है। राजा नहुष के वत्त से लेकर यदुकुल वंश के वंशज कौरव-पाण्डवों के जन्म से लेकर स्वगारोहण तक की समस्त घटनाएँ और कथा प्रसंग जयभारत में संकलित हैं। गुप्त जी ने ‘महाभारत’ की उन्हीं घटनाओं और प्रसंगों को ग्रहण किया है जो कौरव-पाण्डवों की मूलकथा से सम्बंधित हैं। कवि ने अथ प्रसंगों का छोड़ दिया है— यथा सत्यवान सावित्री, नल दमयन्ती, शकुन्तला आदि के उपाख्यान।

‘जयभारत’ का सम्पूर्ण कथानक ७७ सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक का नामकरण प्रतिपाद्य अथवा पात्रों के आधार पर किया गया है, जैसे—नहुष यदु और पुरु, योजनगधा, बधु विद्वेष, एकलव्य परीक्षा, लाक्षागृह, हिडम्बा लक्ष्यभेद इन्द्रप्रस्थ, वनवास आदि।

‘महाभारत’ के विशाल कथानक को जयभारत’ के रूप में महान्यायचित गरिमा प्रदान कराने में गुप्तजी की प्रबल क्षमता वास्तव में सराहनीय है। उन्होंने कौरव-पाण्डवों की मुख्य कथा से सम्बंधित कथा प्रसंगों का चुनकर जयभारत में सुनियोजित किया है। इस प्रयास में गुप्तजी का अपेक्षित सफलता भी मिली है। किंतु अनेक महत्वपूर्ण प्रसंगों को सम्प्लित करने के प्रयास में उन्हें छोड़ना भी पड़ा है। उदाहरणार्थ, नल दमयन्ती सत्यवान-सावित्री, शकुन्तला दुष्यंत आदि के मनोरम उपाख्यान को कवि ने छोड़ दिया है। इसके कारण ‘जयभारत’ में कहीं कहीं इतिवृत्तात्मक स्थिता भी आ गई है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि सम्पूर्ण काव्य का रचनाकाल एक नहीं है। जयभारत के निबंदन’ में कवि ने इस तथ्य को स्वीकार भी किया है। ‘जयभारत’ के ही रचनाकाल में कवि ने महाभारत के कथा प्रसंगों पर अन्य काव्यों की रचनाएँ भी की, किंतु उनका उपयोग इस काव्य में न कर उनका

उसने पुनः सृजन किया। उन्नाहरण के लिए जयद्रथ बंध। कवि ने इस पुनः सृजन को अपनी लेखनी का विकासक्रम कहा है। सत्य यह है कि गुप्तजी की प्रवर्ध शक्ती में निरन्तर विकास भी होता रहा है। जयभारत की अभि व्यञ्जना शक्ती में इस विकासक्रम को हम स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। 'जयभारत' के आरम्भिक सर्गों में वणनात्मकता की अधिकता है, किन्तु मध्य भाग के अनन्तर के प्रररणा में समाप्त शक्ती का ग्रहण किया गया है, जिसका कारण वाक्य रचना में बसाव और विचार गाम्भीर्य आ गया है।

जयभारत' के कथानक की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं

१ 'महाभारत' के कथा प्रसंगा की अलौकिकता का प्रक्षालन कर कवि ने उन्हें युग की भावना और प्रश्रुति के अनुरूप प्रस्तुत किया है। ऐसा करने में गुप्तजी ने नवीन कथा प्रसंगा की सज्जना की अपेक्षा प्राचीन आख्याना को ही नवीनता प्रदान की है। उन्नाहरणाय द्रौपदी चौरहरण, हिडम्बा का रूपा क्त, कीचक कथा, युद्धक्षेत्र की घटनाएँ आदि दृष्ट य हैं।

२ पौराणिक आख्याना को अपनी कला और कल्पनाशक्ति के उपयोग से बुद्धिजीवी पाठक के लिए सहज ग्राह्य बनाया गया है। द्रौपदी चौरहरण के समय वृष्ण द्वारा चौर उन्ने का उल्लेख महाभारत में है। वहाँ दुःशासन धक्कर लज्जित हो बैठ जाता है

यन्तुवाससा शशि समामध्य समाचित ।

तदा दुःशासना श्रांती धीडित समुयाविशान ॥

किन्तु जयभारत में द्रौपदी को करुण श्रद्धा करते हुए दिया गया है। वह असहायवावस्था में दुःशासन को धिक्कारती हुई उसके मन में पाप का भय जागृत कर देती है। द्रौपदी की आत्त वाणी से दुःशासन नीतिमान होकर चारा ओर अ धकार ही अ धकार देखना है और अ तत स्तम्भित होकर बैठ जाता है

'सहसा दुःशासन ने देखा अ धकार सा चारो ओर ।

जान पडा अम्बर सा बन् पट जिसका कोई आर न डार ॥

आकर अस्मान जति भय सा उसके नीतर बैठ गया ।

कर जड हुए और पद काये गिरता-सा वह बैठ गया ॥ ६

इसके बाद माधारी ने समा में प्रवर्ध कर सबका इस कुत्सित आचरण के लिए

धिवक्त्रा । गांधारी के शब्दों में उसके कातर भाव की चरम व्यंजना हुई है, जब वह कहती है

‘हाय लाव’ की लज्जा भी अब नहीं रह गई रक्षित क्या ?

आज बहू का ता बल मरा कटिपट नहीं अरक्षित क्या ? ¹

‘महाभारत’ में धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को बोसा था किंतु उसका अपेक्षित प्रभाव न पड़ा था । यहाँ गांधारी के कथन में नारीत्व की मम वेदना अधिक सक्षमता से साकार हुई है । उपयुक्त कथा प्रसंग का गुणज्ञी ने बड़े मार्मिक और मनो-वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

इसी प्रकार ‘महाभारत’ में हिडम्बा का स्वरूप पाठन के मन में विकल्पण का भाव भरता है । हिडम्बा और भीम के विवाह का ‘महाभारत’ के रचयिता ने सामाजिक मयादा का उल्लंघन बताया है । किंतु जयभारत में हिडम्बा को गुणवती सुंदरी के रूप में चित्रित किया है । गुप्तजा का कवि मानवतावाद का प्रतिष्ठाता है । अथ काव्या की भाँति ‘जयभारत’ का उद्घोष मानवधर्म की जय है । अस्तु हिडम्बा और भीम के वार्त्तालाप में मानव मूल्यों की सुंदर व्याख्या हुई है । हिडम्बा तो यहाँ तक कहती है कि

‘यदि तूम आय हो तो दो हमें भी आयता ?

अपनी ही उच्चता में कौसी कृतकृत्यता ?

× × ×

हाकर मैं राक्षसी भी अत मैं तो नारी हूँ

जन्म में जा भी रहूँ जाति से तुम्हारी हूँ । ²

इसी प्रकार अनातवास के समय कीचक द्वारा अपमानित होने पर द्रौपदी ने जाकर विराट की समा में प्रार्थना की । उसका घम विरुद्ध आचरण की निन्दा करना और राणा के अधिकारों का एक दासी द्वारा चुनौती देना वर्तमान युग की जनन श्रेय भावना का प्रतीक है

‘सज्जा रहती अति कठिन है कुल बधुओं की भी जहाँ

ह भरस्परज, किस भाँति तूम हुए प्रजारजक यहाँ ।

× × ×

¹ जयभारत पृ० १४९

² वही हिडम्बा संग, पृ० ८३

तुम म यदि सामर्थ्य नहीं है जब शासन का,
तो क्या करते नहीं त्याग तुम राजासन का ?
करने म यदि दमन दुजनो का डरने हा
तो छूतर क्यों राजपण्ड दूषित करते हा ?
तुमसे निज पद का स्वाग भी भली माँति चलता नहीं,
अधिकार रहित इस छत्र का भार तुम्हें खलता नहीं ।"¹¹

द्रौपदी के इन शब्दों में युग धर्म की मर्मरूपी व्यञ्जना है। ऐसे अनेक प्रसंगों का चयन गुप्तजी ने अपनी कल्पनाशक्ति से किया है।

३ जयभारत के कथानक के समस्त पात्रों का चरित्र विधान भी नवीन ढंग से किया गया है। सावत जी और यशाधरा का यम उनके पात्र रचना देखी जा चुकी है। गुप्तजी ने पौराणिक पात्रों को भी युग भावना के अनुरूप ही ढाला है। पात्रों की योजना तथा चयन की साधकता को लक्ष्यगत करके हुई है। महाभारत की चरित्र योजना में स गुप्तजी ने कतिपय को ही ग्रहण किया है। उन चरित्रों का परिष्कार करने ही प्रस्तुत किया गया है।

४ जयभारत के इतिवृत्त में महाकाव्य वस्तु की गम्भीरता और व्यापकता भी है। वह कथा परिधि सरणित होते हुए भी जीवन की समग्रता का अंकन करने में सक्षम है। काव्य का मूल प्रतिपाद्य मानवीय महिमा का प्रतिष्ठा और धर्म का जय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति की दृष्टि से ही कथा को विस्तार दिया गया है।

५ जयभारत के कथा सजाजन का सबसे बड़ा अभाव यह है कि विभिन्न प्रकरणा में जिविति के समृद्ध रूप का अभाव है। कथा वर्णन में वह शगवान प्रवाह नहीं है जो महाकाव्य में हाना चाहिए और जिसमें मधिसीकरण की की लेखनी अत्यन्त समर्थ है। खण्ड रूप में लिखी हुई वस्तु में प्रवाह आना सम्भव भी नहीं है।¹² कवि ने प्रकरणों के नाम के अनुरूप अपने ढंग से कथा का विस्तार किया है। इस कारण कथाजिविति में व्यवधान अवश्य आया है किन्तु इससे प्रवधात्मकता खल नहीं हुई है क्योंकि पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाह किसी न किसी रूप में होता रहा है।

¹¹ जयभारत सराधी संग ५० २६८

¹² डा० नगद्वि विचार और विश्लेषण ५० १२३

जयभारत’ और ‘महाभारत’ की इतिवृत्त विधान की दृष्टि से तुलना

‘महाभारत’ का कथानक महान, समृद्ध और शक्ति समन्वित है। उसमें भारतीय जीवन और सस्कृति की विराट योजना है। उसके वर्णु विस्तार में समस्त व्यावहारिक नीति, जीवन ंशन धर्म बोध और परम्पराओं का समाहार हो गया है। ‘जयभारत’ के कथानक में वह गुरत्व गाम्भीय नहीं है। जयभारत का एक निश्चित लक्ष्य है। उसमें नारायण नहीं, तर की महिमा का गौरव गान है। इसीलिए ‘जयभारत’ में असम्भाव्य और धलौकिक घटनाओं का स्थान नहीं मिला है। ‘जयभारत’ के रचयिता के कला चयन का आधार पौराणिक उपान्यास होने हुए भी उसका स्वल्प मनावनातिक, युगान और बौद्धिकतापूर्ण है। जयभारत का कथानक पाठक का उसकी व्यावहारिक उपलब्धिया एव सामयिकता के कारण ग्राह्य है जबकि ‘महाभारत’ के कथानक को पाठक श्रद्धा (पौराणिक जास्था), कौतूहल या आत्सुक्य के कारण ग्रहण करता है। ‘जयभारत’ में भारतीय सस्कृति का उत्कष और प्रकष समसामयिक जीवन परिवेश में चिन्तित किया गया है।

समष्टि रूप में जयभारत का कथानक महाकाव्योचित गरिमा से पूण है। उसमें पौराणिक उपार्याना का नवीन निरूपण ही नहीं, अपितु मौलिक उपलब्धिया भी हैं। उसमें धारावाहिकता का एक सीमा तक अभाव होने हुए भी कथानक की सम्पूर्ण अविधि प्रसगगन सुसम्बद्धता के कारण अक्षुण्ण रही है। सबसे बड़ी बात कथा महाकाव्य के मूल मन्त्र की प्राप्ति में सहायक है। गुप्तजी ने जयभारत के कथानक का युद्ध सग तक ही समाप्त न कर, स्वगा रोहण प्रकरण तक पहुँचाकर अन्तिम सग का विशेष ढग से प्रतिपादित कर कथा के उपसहार का भी पूण गौरव के साथ अकित किया है।

‘पार्वती’ महाकाव्य

मानवतावादी संस्कृति की युगीन अवधारणाएँ

‘पार्वती’ महाकाव्य मानवतावादी संस्कृति की युगीन अवधारणाएँ

वचनिक युग में काव्य-लेखन एक सामूहिक प्रयास है। इस नदर में विरहित होकर किया गया काव्य-मृज्जन हमारे युग की वचनिक प्राप्ति और गद्यात्मक विधाओं के विकास की अपूर्व गति में पिछड़ा हुआ नहीं जा रहा, बल्कि अपने अस्तित्व को उतना ही क्षणिक, निरुद्देश्य, अनपठित और पचासी बना देगा जैसा कि आज अधिकांश हिन्दी कविता के नाम से प्रकाशित होने वाली काव्य रचनाओं के विषय में चरिनाथ हो रहा है अर्थात् प्रकाशन, प्रचार, विमर्श और विनाश। काव्य के स्यायित्व और विमर्श का प्रत्यक्ष जीवन मूल्यों की शाश्वत कल्पना से जुड़ा है। वही काव्य वाङ्मय को स्यासी निधि बन सकते हैं जो मानवीय चेतना के विकसनशील स्तरों का स्थापित करने में सशक्त तथा सामाजिक जीवन मूल्यों के संगठन विषय और मनुष्य की साकार करने की अपूर्व शक्ति संधारण रिय रहते हैं। इस अर्थ का ही युग जीवन का अमित प्रवाह कहा जाता है।

युग-जीवन की स्फूर्ति (शक्ति) की व्यंजना साहित्य और काव्य के विभिन्न रूपों में होती है। किन्तु जीवन-मूल्यों के व्यापक विमर्श का विधाकृत वर्णन की सबसे अधिक क्षमता महाकाव्य नामक काव्य-रूप में होती है। महाकाव्य सच्चे अर्थों में जातीय जीवन और सामाजिक चरित्र का सांस्कृतिक प्रयास है। सज्जन के उपकरणों अर्थात् जीवन कथानक महान नायक परिणामयुक्त उदात्त शैली, महत् उद्देश्य, युग चरित्र के व्यापक चित्रण गम्भीर अर्थव्यंजना शक्ति, रस-परिपाक, विराट् कल्पना द्वारा जीवन-रूप को बलवती प्रेरणा के कारण महाकाव्य निरख ही संशोभित काव्य-रूप है। इसीलिए रामायण महाभारत, कुमारसम्भव, शक्य, किराताजु नींद

यह कथन भी कि यह कविता काव्यकाल का नव गुरुगीतकाल, न काली की भारतीय मान्यता का विरुद्ध सिद्धि का काल है।

यह काल का युग है। यह काल का एक काल्य उदय का ही काल है। श्री. गिब्स का मत है कि अठारवीं शताब्दी में महाकाव्य काल की परम्परा ही समाप्त हो गयी थी। अठारवां शताब्दी के आरम्भ-काल का काल आरम्भ प्रसार हुआ कि काल की रीति-रिवाज में आरम्भ-काल की कविता समाप्त समाप्त का विषय - काल का काल। यह काल के आरम्भ-काल का ही भी जीवन का विषय है। का ही विषय समाप्त हो गया। आधुनिक काल का विषय-काल समाप्त हो गया। १९वीं शताब्दी में महाकाव्य का काल समाप्त हो गया। परिणाम यह हुआ कि फिर भी काल काली काल में महाकाव्यों का काल ही रहा है। तब १९१४ में अठारवीं शताब्दी में ही अठारवां महाकाव्य सिद्धि का है। यह काल का ही अठारवां काल का ही महाकाव्य है।

1 A certain epic tradition expired in eighteenth century the possibility of epic writing in a different tradition was shut out. What happened in 18th century (if not in the second half of the seventeenth) was this: his had become so complicated so much has been added to the stock of human learning there was so much ecumenical freedom to exchange ideas that the epic spanning a total society like Homer's or Dante's became impossible. Any great work of literature however ambitious of universality was forced to be in some degree specialist. Now the speciality that turned out most propitious for the epic was middle class novel that began to flourish in the 18th century. By the nineteenth century the real course of the epic had forsaken the tradition for the novel.

—E. M. W. Tillyard *The Epic Strain in English Novel* pp. 530-31

- 2 (१) प्रियप्रवास (२) साकेत (३) कामायनी (४) वदेही-वनवास (५) कृष्णावन (६) सारंगत सारंग (७) सिद्धाथ (८) दक्षयवण (९) मुरजहाँ (१०) नलनरेश (११) अगाराज (१२) वदमान (१३) जयभारत (१४) पावती (१५) रश्मिरथी (१६) मीरा (१७) एकलव्य (१८) उर्मिला (१९) तारक वध (२०) सनापति कण (२१) कुहमेध

दूसरे शब्दों में इन काव्यों के रचयिताओं ने महाकवि की उपाधि के लिए कतिपय कठ शास्त्रीय लक्षणों का सफल निर्वाह कर रचना को महाकाव्य कह दिया है। तथापि इसी युग में उत्कृष्ट कौटिल्य के महाकाव्य भी लिखे गये हैं। कविवर जयशंकर प्रसाद द्वारा 'कामायनी महाकाव्य' इस युग की अनन्यतम कृति है जिसमें मानवता के जनक मनु के पौराणिक इतिवृत्त को सूत्र रूप में लेकर विराट कल्पना और काव्य प्रतिभा के प्रथम से, मानवोत्पत्ति एवं विकास का अद्भुत चित्रण हुआ है। कामायनी काव्य समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है, इसमें मानव मन के अनद्वन्द्व, हृदय बुद्धि के सघन प्रकृति के प्रेम और प्रकोप, वस्तुओं के स्वायत्त और प्रवचन, अथलोलुपता और काम वासना शोषण और द्रोह नागरी लोल्य एवं अदम्य उत्साह आदि अनेक युगीन समस्याओं का समुचित समाधान एवं व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए प्रसादजी हमारे युग के महान काव्यकार और 'कामायनी' महान रचना मानी जाती है।

डा० रामानन्द तिवारी 'भारतीय-इन' विरचित 'पावती' महाकाव्य भी इसी समृद्ध साहित्यिक परम्परा की रचना है। इस काव्य में भी युगीन जीवन चेतना की विराट व्यञ्जना हुई है। 'पावती' में भारतीय सभ्यता के आदर्श स्वरूप का व्यापक चित्रण हुआ है। पावतीकार ने विज्ञान युग का दिग्भ्रान्त मानव जाति के प्रति शिव सभ्यता का संदेश प्रसारित कर स्वस्थ मानवता धारण जीवन मूल्यों की स्थापना का सफल प्रयास किया है। धर्म और नीति अर्थात् सत्व शील और नय भारतीय सभ्यता के अनिवार्य उपकरण हैं। 'पावती' काव्य में इन स्थायी जीवन मूल्यों (सत्व, शील और नय) का अतिरिक्त महत्वाकन और प्रतिपादन हुआ है।

आधुनिक युग के हिंदी महाकाव्यों में आकार की दृष्टि से 'पावती'

- (२२) इन्दीवारी (२३) आर्यावत्त (२४) विजयामाया (२५) प्रत्यापन्न (२६) महामानव (२७) जगन्नाथ (२८) जोहर (२९) शिवालय (३०) समयती (३१) उषा (३२) सारथी (३३) प्रेमका (३४) श्रीमन्महाकाव्य (३५) रामचरित चिन्तामणि (३६) कृष्णचरित विराट (३७) रामी की रानी (३८) अनन (३९) रामराज्य (४०) विजयामाया का (४१) मेघादी (४२) वानिदास (४३) गुरुगाविर्भार (४४) शक्यी (४५) लाकायन (४६) मानव (४७) प्रियमित्र (४८) रामराज्य (४९) देव पुरण गांधी (५०) चंद्रगुप्त मौर्य (५१) निगमा।

‘पापक’ दृष्टाकार रचना है। ‘पावती’ महाकाव्य का कथात्मक मूल आधार शिव पुराण है। कथारमक संयोजन की दृष्टि से पावतीकार ने कालिदास के ‘कुमारसम्भव’ का अनुकरण किया है। ‘पावती’ के प्रथम १७ सर्गों में ‘कुमार सम्भव’ के १७ सर्गों की सम्पूर्ण कथा गृहीत की गयी है। पावती महाकाव्य के प्रथम १७ सर्गों को काव्य का पूर्वाद्ध कह सकते हैं। उत्तराद्ध खण्ड में प्रौढ़ कवि-कल्पना, विलक्षण काव्य प्रतिभा भाव-सौंदर्य, रस-परिपाक, कलात्मक कौशल और प्रबलत्व प्रवाह आदि दृष्टव्य हैं। साथ ही मौलिक सृजन प्रतिभा, कलात्मक औदात्त वैचारिक निधि और भाव गाम्भीर्य की दृष्टि से भी काव्य का उत्तराद्ध (सर्ग १८ से २७) महत्त्वपूर्ण है। ‘पावती’ महाकाव्य के अंतिम १० सर्ग निश्चय ही कवि की चरम साधना के ज्वलंत प्रतीक हैं। इन सर्गों में कवि के अध्ययन मनन और चिंतन ने जीवन-दशन के रूप में ढलकर बलवती प्रेरणा का रूप ग्रहण कर लिया है। शैवागमों के निगूढ अध्ययन और तत्त्व चिन्तन ने शिव ससृष्टि के रूप में एक महान उपलब्धि करायी है। पावतीकार की शिव ससृष्टि विषयक परिवर्तनान्तात् मौलिक, उपादेय एवं युगानुरूप है।

पावती महाकाव्य के १७वें सर्ग में पावतीपुत्र सेनानी कार्तिकेय द्वारा तारकामुर का वध हो जाता है। यहाँ तक का वस्तु विधान ‘कुमारसम्भव’ पर आधारित है।

१८वें सर्ग में जयंत अभियेक और १९वें सर्ग में विजय पव के आयोजन के साथ साथ तारक के तीन पुत्रों का तप तथा ब्रह्माजी द्वारा वरदान देने का वचन है। सर्ग २०, २१ और २२ में राजतपुर, जायसपुर एवं काचनपुर नामक त्रिपुरों का बड़ा सजीव वचन है। उदाहरण—

राजतपुर में पान धम का सूक्ष्म छद्म वन कक्षा भीति,
फलित हुआ कमलाक्ष कूट की वन अधम की रचिर अनोति
शक्ति और वमव से मोहित दुबल दीन अकिंचन पान
वन अचान वना जीवन का मायामय नय धम विधान।

× × ×

आयसपुर में दप शोध से उमद मय से बुण्ठित काम
पनिह हुआ विद्युमाली के बल वमव में फिर उद्दाम
अन दीन बल हीन प्रजा की अल्पदृष्टि में बनकर शान्ति
प्रकट हुई शासन सेवा और पद नियमों की भ्रूषित भ्रान्ति।

× × ×
 काचनपुर म भय-वर्णा औ क्रोध-दप का द्वन्द्व विकार,
 शान्ति, समृद्धि और सुख का बन छद्म हुआ सहसा माकार
 जिसकी माया के विमाह म स्वप्ना के स्वर्णिम प्रासाद,
 कर निर्मित, श्रम और सेना का वहन कर रहे जन अवसाद ।”

(सर्ग २३, पृष्ठ ४७०)

त्रिपुरो क इस घोर अन्ध से सकल लोक व्याकुल हो उठे जीवन-सत्य
 को तथाकथित धम शक्ति और माया के आडम्बर ने आच्छन्न कर लिया ।
 तारक-बन्ध से जो देव ससति को प्रसन्नता हुई थी, शोक म परिवर्तित हो
 गयी

धम शक्ति धन की माया म हुआ सत्य जीवन का लुप्त,
 उगल रहे थे विष अन्ध का कौन अनगल विषधर गुप्त
 हुआ विपाकन वायुमण्डल था सिसक रहे जीवन के प्राण,
 विकल हुए अपनी कृतिया से भक्त भूप, श्रीपति भगवान ।

× × ×
 त्रिपुरा के अन्ध उपचय से विकल हो उठे तीनों लोक,
 देवा का जय ह्व अतत बना हृदय का नूतन शोक ।”

(सर्ग २३, पृ० ४१७)

त्रिपुरा के अत्याचारो से उत्पीडित होकर जयन्त ब्रह्माजी के पास गया ।
 ब्रह्माजी ने जा त्रिपुर उपचार बताया वह भी महत्वपूर्ण है । ब्रह्माजी ने
 त्रिपुर उपचार के लिए प्रेम और शिवत्वबोध का माग मुचाया । प्रेम-भाग
 और शिवत्वबोध आज के विश्व जीवन की विडम्बना का भी महत्वपूर्ण निदान
 है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पावनीकार की त्रिपुर उपचार की परिवर्तनता
 की कामायनीकार (प्रमादजी) के त्रिपुरदाह की संयोजना से पूण समति
 बैठनी है । प्रसादजी ने त्रिपुरो की विडम्बना का वणन 'रहस्य' सर्ग मे
 किया है

“यही त्रिपुर है देखा तुमने, तीन बिन्दु ज्यातिमय इतने,
 अपने वेद बने दुःख-मुख म भिन्न हुए हैं यह सब कितने ।”

(कामायनी, रहस्य सर्ग)

'कामायनी का त्रिपुर रूपक मानव-मृष्टि क मन्त्र से इच्छा पाग और
 क्रिया की दूरी है अर्थात् असामञ्जस्य है

“नाम दूर कुछ क्रिया भिन है, इच्छा क्या पूरी हो मन की ।
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की ॥”

(वही, रहस्य सग)

इन तीनों के समजन का उपाय तीना में सामरस्य (समन्वय) की स्थापना है। ‘पावती’ महाकाव्य का त्रिपुर रूपक भी हमारे युग जीवन के सद्म म घम शक्ति और धन की माया का सघप है।

जयन्त त्रिपुर उपचार के उपाय पूछने ब्रह्मा शिव और पावती के पास गया। तीनों ने बड़े सुन्दर उपाय बताये

ब्रह्मा—“असुर शक्ति के तप के बल से हुआ तात ! इनका निर्माण,
है निमित्त भर सग नियम का मेरा अवधि-पूण वरदान
एकाकी तारक का सम्भव शक्ति-योग से था सहार,
पर त्रिपुरो का नहीं शक्ति से सम्भव है करना प्रतिवार।

× × ×

सग नियम म नगी अनय का सम्भव है कोई प्रतिराघ
है उमरा उपचार शक्ति से ज्विन शिव का शाश्वत बोध।”

(सग २३ पृष्ठ ४७४)

पावती— सुन जयन्त के वचन उमा ने कहा दगो में भरकर स्नेह
तात ! त्रिपुर के जन जीवन है शोचनीय अति निस्तदह
कर न सकी यदि शक्ति तुम्हारी सरक्षित जीवन का धोम,
पान शक्ति की स्फूर्ति चाहती अभी काति मा कामल प्रम।

× × ×

इसी प्रेम के बिना बन गया राजनपुर का पान विमाह
इसी प्रेम क बिना द्या रहा आयसपुर म बल त्रिद्रोह
इसी प्रेम के बिना स्वणपुर पाल रहा केवल व्यापार
बिना प्रेम के पान शक्ति औ अथ सृज बनने अन्वितार।

× × ×

एक पागुपन ही कर सकता त्रिपुरा का युगपन सहार
कर सकनी है विश्व जागरित बनन डमरु की भकार।

(सग २५ पृष्ठ ४७६-७७)

निव—“शिव बोले गम्भीर शान्तिमय वचन स्नेह से पूण उदार—
प्रकृति और प्रनिराग माग से चलना यह जपूण ससार,
नान शक्ति सयाग विश्व का रश्मिन करता पावन क्षेम
त्रिपुरा से उद्धार विश्व का कर सकना पर जाग्रत प्रेम ॥”

(भग २३, पष्ठ ४७६)

इमी ऋम मे शिव का महत सदेश है । इस मन्त्रेण क एक एक श द म
मानवतावादी स्वरोदघोष है सजीवनी शक्ति और अमरत्व है । विस्तार भय स
वतिपय पविनया ही उद्धृत की जा रहा है

जन जन के जाग्रत गौरव से कम्पित हागी अघ अनीति,
दम्भ, दप अतिचार जादि की प्रलय बनेगी भीषण भीति ।
धम घुरवर अथ पुजारी मद विभोर शासक सामन्त,
धन-कुवर श्रीमान दानपति सबका शक्ति करेगी अन्त ।

× × ×

मार्गेंगे जाग्रत मानव से वे जीन का वस अधिकार ।

× × ×

जाग्रत मानव की वरुणा से मार्गेंगे व जीवन दान ।

× × ×

जाग्रत मानव से मार्गेंगे व केवल श्रम का वरदान ।

× × ×

मानव की सम्कृति का गौरव होगा नारी का सम्मान
नारी के स्वन न जीवन का स्नेह बनेगा चिर वरुण ।

× × ×

प्रति मानव के शीप जोर मुप होंगे जब द्विज व प्रवीण
प्रति मानव के बाहु बनेंगे धन शक्ति के रक्षा लीन ।

प्रति मानव की जगएँ जब हागा अथ काम से पुष्ट
सवा-श्रम स प्रति मानव के पावन पद हाग म-नुष्ट ।

× × ×

तन मानव मानव वन मन से जी तन स वन के समान
हागा नय विश्व का स्रष्टा जी पालक अनन्त भगवान ।
पान शक्ति श्रम और स्नेह स वर सुन्दर का चिर निर्माण
नव जीवन क पन-पवों म नित्य बरगा ह्य सियान ।

इस नव्य मानवतावादी सतति के निमाण स युग की सचित भ्रान्ति का विनाश और नव चतना का विकास हागा

जब जन-जन के उर म पावन आत्मा का उज्वल आलोक,
होगा उदित स्नह-वर्षणा का बा कर श्रुति मगलमय श्लोक ।
जब जन जन के ता भी मन म छिगी सघ की शक्ति अपार,
जाग्रत हा मांगगी सहमा जीवत का गौरव जधिकार ।

× × ×

तब नव चेतनता स हागा भग युग का सचित भ्रान्ति,
नवयुग का निमाण करगी श्रमयुगी जीवत की भ्रान्ति ।

(सग २४, पृष्ठ ४८३)

त्रिपुर उद्धार' नामक २४वें सग म शिवस्वभाष जीर नय स अनय रूपी त्रिपुरो का उद्धार वर्णित है । यही मानवता का स्वयल वैभव की चेतना से जाग्रत भी किया गया है

मानव हो अपने जीवन के गौरव को पहचाना,
नर हो, तुम अपने पौरुष के वभव को पहचानो ।'

इस चेतना आह्वान न जन जन के जीवन म जागरण की लहर दौडा दी
बोल उठे सब एक वण्ट से मानवता की जय हो
गूज उठा स्वर अन्तरिक्ष म 'ज त समस्त अनय हो ।

× × ×

जीवन का श्रम श्रम और सुप्त चिर जधिकार हमारा,
करना हमको सिद्ध सघ क शक्ति मन के द्वारा ।'

(पृष्ठ ४९९)

त्रिपुर उद्धार के उपरांत नये सग की सजन चनि शिव के डिम्ब निनाद से नि सत हुई

विश्व भारती के मगल सा शिव का डमरू बोला
शिव ने जाज नवीन सग का सूत्र मगमय खोला ।

× × ×

अन्तरिक्ष मे उगा नान का सूय जनामित छवि से
गणकोप निज मोल बली ने कहा जागरित बबि स—

आज न कलिया के कानो म केवल मधुरस घोलो,
नय सग के बीज मन की भव्य अगला खोलो।”

(सग २८ पृष्ठ ५०६)

इस नवीन सग (ससति) की सस्कृति भी आदश और महान् थी। त्रिपुर-दाह शिवत्वबोध के कारण हुआ, अतः नवीन सस्कृति म जिस घम नीति और सस्कृति का विकास हुआ वह शिवमय थी। पावती महाकाव्य के २२, २६ और २७वें सर्गों म शिव घम शिव नीति और शिव सस्कृति का वर्णन है। इन सर्गों का सजन नितान्त मौलिक और नवीन है।

शिव घम' नामक सग म घम के जिनस्वरूप का निरूपण हुआ है, वह शैव सम्प्रदाय की किसी सद्धान्तिक दूरान्ध कल्पना का प्रस्तुतीकरण नहीं, बरन मानवतावादी कल्याणमय (शिवम) घम की स्थापना का प्रशसनीय प्रयास है

शिव घम म—

“मानव हो रह गया एक ईश्वर की आशा,
जीवन ही बन गया घम की नव परिभाषा,
आत्मा का परमाथ अथ म अचिन्त होता
आत्मा का परमाथ काम से सरसित हाता।

(सग २५, पृ० ५१७)

मानवता ही सबस्व थी—

“मानवता थी मानदण्ड नूतन सस्कृति का
आत्मभाव था मूल मन्त्र नूतन समृति का,
नहीं मनुज को मनुज मानते जो अतिचारी,
उनको काल वृतान्त बने अतिम त्रिपुरारी।’

नारी का बहुमान—

नारी का बहुमान बना समृति की बला
जीवा सागर रहा शा त जिसमे जलरना,
मानवता की मयादा थी निमल नारी
शक्तिमती थीमूर्ति मनाहर जी सुकुमारी।

× × ×

वह युग युग की आतंकित जी लाछित नारी,
महिमा मण्डित गई प्राप्त कर गरिमा सारी।’

(सग २५, पृ० ५१८)

यही नहीं—

‘मानवता ही था बना विश्व का नया विधाता,
मानवता का बना नया मानव निर्माता,
मानव में साकार हो गये विधि, हरि, हर थे
वे अदृष्ट के रूप अयुत जीवित सुंदर थे ।

× × ×

नारी में साकार हुई थी वीणा-वाणी,
नारी में ही मूर्त हुई लक्ष्मी कल्याणी
हुई उमा की तप शक्ति से जाग्रत नारी,
पान शक्ति थी नारी में जिवित थी सारी ।

(सग २५, पृ० ५२६)

२६वें सग में उल्लिखित शिव नाति का स्वरूप भी श्लाघनीय है—

‘धम अथ ओ काम मुक्ति का अवय-भूण विधान,
करता था मानव समाज में शिवनय का निमाण
पान शक्ति तप क्षेम आदि का श्रेयावित उद्योग,
करता था वृताथ मानव का जीवन साधन योग ।

(सग २६ पृष्ठ ५४६)

काव्य के अंतिम सग में शिव-संस्कृति के आनन्दवादी स्वरूप की विशद ध्यास्या है। कवि ने नारी का संस्कृति और मर्दि की सधारणीशक्ति कहा है। मानव का मगन विधान और विजय-यत्र की प्रतीक नारी ही है। इस मूल सत्य की स्वीकृति इस २७वें सग की अंयतम विवेचना है

‘बहु सिंहाहिनो काटि अस्त्र-कर धारी,
मानव संस्कृति की निरूप निमला नारा ।

× × ×

यत्र मधुर वमनी यामा का उजियारा
बिगराता स्वयं विभूति भूमि पर नारा ।

× ^ ×

बन धार बंधु का यत्र निमला नारा
बनता संस्कृति की सुदमा जान कुमारा ।

× × ×

उस ज्योति पव की पुण्य निमला ऊग,
पावन भावो की मधुर मुक्त मजूपा ।
× × ×
वह शक्ति भूमिका सजमयी कल्याणी,
हो रही सफ़्त पावर जीवन की बाणी ।”

कवि ने नारी के सम्मान को सांस्कृतिक विकास का आधारमान भी माना है

‘नारी का नय भी मान माप सस्टुति का,
पथ उसका शुचि सस्कार निसग प्रट्टति का ।

(पृ० ५५६)

महाकाव्य की इतिथा पर भी कवि मानवना का मंगलकामी रहा है ।
देखिए यह गीत

‘जग म मंगल दीप जलें ।
जीवन क ध्रुवतार बनकर स्नेह प्रनीप जलें ।
पूण सत्य की प्रभा विश्व म निमल विखरे,
ज्योति पव म स्नात रूप मानव का निखरे,
सत्य शक्ति, शिव जी सुन्दर के पथ म लोक चलें ।
× × ×
हो शिव का साम्राज्य विश्व म मंगलकारी,
जान शक्ति-मुक्त बने श्रेय का चिर प्रनिहारा
शिव जीवन की कल्पलता पर श्री आन द फलें ।

इस प्रकार पावती महाकाव्य म भारतीय संस्कृति क विराट रूप का अविन करने की भय चेष्टा हुई है । आज क विश्व जीवन म मानव की सवटापन्न स्थिति कुण्ठित धारम चेतना और अभावह वातावरण का मूल कारण मानवीय चिन्तन दोष क स्तरा म विभ्रुखनन और यौद्धिक ज उकिराप है । इस परिस्थिति-द्वन्द्व का विधायक मानव का अहंवाध है । इस अहंवाध को व्यावहारिक दृष्टि से विज्ञान के सुबह आणविक अनुसंधान का स्वच्छ विनास, यौद्धिक अति या चनना का व्यतिश्रम भी कहा जा सकता है । हमारा युग जीवन म भौतिकवादी म्या की जय पराकाष्ठा ने मानव का आध्यात्मिक आस्थाभा को आशुत कर मुक्त मय का स्वीकृति री मा पराटमुक्त कर दिया ह । स्व जोर अह की अय-गाथना म लिप्त चनना हतप्रम और विरुत हा-हान

विघटनकारी तत्त्वा पर ज्वलन्वित रहने लगी है। परिणामस्वरूप समग्र सामाजिक संगठन में विघटनकारी स्वायत्ताधिकार शक्तियाँ परम्पराओं से स्थापित मूल्यों के मूलोच्छेदन में अनवरत रत हैं। समाज के विघटनकारी तत्त्वों ने सांस्कृतिक जीवनादर्शों की अवहलना भी प्रारम्भ कर दी है। और यही कारण है कि हम समाज के अनुसरण में असमर्थ हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में साहित्य क्या कर सकता है? एक प्रश्न है। अस्तु—

वर्णान्तर युग के इस परिस्थिति में सचेतन साहित्यकार जागरूक कलाकार और अतिसचेतना के अनुपाधाना कवि का कर्तव्य शाश्वत जीवन बोध का दिशा निर्देश कर दिग्भ्रमित मानवता को प्रगति पथ पर गतिमान करना है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व इस देश की पराधीन, हतप्रभ और विवेकशून्य सांस्कृतिक चेतना को स्वाधीनता संग्राम के लिए आह्वान कर विजय संदेश प्रसारण की आवश्यकता थी। इस गुह्यतर दायित्व का भार वहन तत्कालीन साहित्यकारों ने किया। प्रसादजी के ये स्वर मरे कथन की पुष्टि करेंगे

शक्ति के विद्युत्कण जा व्यस्त
बिबल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उनका कर समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

(बामाधनी थड़ा संग)

तत्कालीन परिस्थितियों में समाज के शक्ति अंग के सम वय की आवश्यकता थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवनादर्शों के संगठन की समस्या बलवती होनी जा रहा है। सामाजिक जीवन मूल्यों के मुट्ठ मगूठन के लिए संस्कृति रूपों बट टूट के अतिरिक्त सुगम और जीवनोन्माद स्वतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय समाज और जीवन की विविधताओं (Diversities) का समग्र संस्कृति ही बन सकती है। धर्म जाति वर्ग प्रात भाषा या यथावत् संगठन आन के मध्य-युग में ऐश्वर्य के प्रतीक (Symbol of Unity) नहीं बन सकते। वस्तु संस्कृति में इन सब एकाइया (Unities) का भी समन्वय हो जाना है। डॉ० रामानन्द निराला भारतीय जीवन के भावनी मन्त्रालय में उनका सांस्कृतिक बट टूट का घाया प्रश्न का है। उनका सांस्कृतिक निराला विघटित मानव मूल्यों के संगठन का प्रयत्न प्रयास है। मर्त्य शिव,

सुन्दरम् जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। सत्य, शील और नय भारतीय सस्कृति के अमोघ अस्य रहे हैं। डॉ० तिवारी ने इही चिरन्तन सगठन-तत्त्वों का युगानु-रूप पुनर्मूल्यांकन किया है। पौराणिक कथा सत्य को उन्होंने युग-सत्य और सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल ही चित्रित किया है। 'पावती' महाकाव्य का शिव सस्कृति निरूपण उनकी काव्यकला चिन्तनशक्ति और प्रखर मेधा का सबल प्रमाण है। इस दृष्टि से पावती महाकाव्यकी रचना 'मानस और 'कामायनी' जसे विश्व महाकाव्यों की परम्परा में ठहरती है। पावती' सच्चे अर्थों में महाकाव्य ही नहीं, अपितु महानकाव्य भी है—ऐसी मेरी विनम्र दृढ़ धारणा है।

‘कालिदास’ महाकाव्य
मानवीय वेदनाओं के गायक की गौरव-गाथा



‘कालिदास’ महाकाव्य मानवीय संवेदनाओं के गायक की गौरव-गाथा

भारत की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली गौरवाचित काव्य कृतियों के प्रणेताओं के रूप में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ टागोर और जयशंकर प्रसाद प्रमति कविपुंगवों के नाम चिर-स्मरणीय हैं। इन प्रबुद्ध रचनाकारों ने अपने गौरव ग्रंथों में भारतीय मनीषा के निरंतर विकासशील स्तरों का रूपांकन करते हुए काव्य कला, साहित्य, शास्त्र, संगीत, संस्कृति, दर्शन, इतिहास एवं अथ नान विज्ञानों के नाना क्षेत्रों में किए गए विराट मानवीय प्रयत्नों का युगीन महत्वांकन किया है। मनीषी कवियों की परम्परा में ऐतिहासिक दृष्टि से महाकवि कालिदास का विशिष्ट स्थान है। कालिदास की काव्य साधना मानवीय-संवेदनाओं को कलात्मक स्तरों पर साकार करने वाली चेष्टाओं से परिपूर्ण है। इतिहास पुराण और कल्पना के समन्वित आधार पर महाकवि ने ऐसे गरिमापूर्ण काव्य भवनों का निर्माण किया है जो आज अनेक शताब्दियों के पश्चात् भी शिल्पक-संरचना के प्रति मान्य एवं प्रतिपाद्य के आयामों की दृष्टि से अतुलनीय हैं। महाकवि कालिदास के काव्य का रचनाफलक इतना विराट एवं बहुविध्यपूर्ण है कि मानवीय चेतना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं गूढ स्तरों में उसमें सहज ही समाविष्ट हो गए हैं। ‘रघुवंश’ ‘कुमार संभव’ मेघदूत, ‘विष्णुसहस्रनाम’ ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ आदि काव्य एवं नाट्य ग्रंथ महाकवि की चिरंतन कीर्ति के अक्षय स्रोत हैं। अकेले अभिज्ञान शाकुन्तल का कलात्मक-व्यभव एवं रचनात्मक औदात्त समाहृत स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों को गत अनेक दशकियों से इतना

अभिभूत किए रहा है कि उन्हाणे मुक्त व ठ स वाणिज्यम को विरय कवि की सगा दी है । ऐसी गौरवाचन कृतिया क यशस्वी प्रणेता कालिदास का जीवन अनेक विस्मयकारी घटना प्रथमा का सघात रण है और उनका जीवन श्रम मानवतावादी चिन्ताधारा स अनुस्यूत हान क कारण तिरात सृष्णीय एव वरेण्य है । समष्टि रण म महानि कालिदास का व्यक्तित्व कृतित्व और जीवन दशन अत्यन्त प्रेरक होने के कारण समालानको एव शोषकर्ताओ के समीक्षण और अनुसधान का विषय ता था ही, वनमान-सुग म एक महाकाव्य के कलेवर म भी निबद्ध हुआ है । आधुनिक हिन्दी महाकाव्य क रचना क्रम मे आलोच्य महाकाव्य के प्रकाशन स पूव तीन महान रचनाकारा की जीवन गाथा का आधार बनाकर निम्नांकित महाकाव्या का प्रणयन हुआ—

- १ गोस्वामी तुलसीदास पर श्री श्रीराम द्वारा सन १६५२ म 'देवाचन' महाकाव्य ।
- २ उपन्यास-समाप्त प्रेमचंद पर श्री परमेश्वर द्विरेफ द्वारा सन् १६५६ म युगद्रष्टा प्रेमचंद' महाकाव्य ।
- ३ बाणभट्ट पर पोद्दार रामश्वनार अरण द्वारा सन १६६१ म बाणाम्बरी' महाकाव्य ।

इसी क्रम की रचना विहार के उनीयमान कृतिकार श्री तिलक का 'कालिदास महाकाव्य है, जिसका प्रकाशन सवत् २०१८ म हुआ ।

कालिदास महाकाव्य म कुन १६ सग है । प्रथम सग म महाराज शरदानन अपनी पुत्री विद्योत्तमा से प्राकृतिक सुपमा पर हुए वार्तात्राप म पुत्री के वाच चातुय एव कला नपुण्य से मुग्घ हारर मन ही मन किसी अत्यन्त बुद्धिमान वर से उसके विवाह करन का सकल्प करते हैं । द्वितीय सग म विद्योत्तमा की रूप माधुरी का वणन है । विद्योत्तमा मन ही मन अपनी रूपगध से आकुल होकर प्रियतम के भुजपाश म निबद्ध हो जाने की कल्पना करती है । उसकी मनोदशा का विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि—

मन मे कितने रगीन स्वप्न आकर उसको दुलराते हैं
जीवन के भागी साथी का नव रूप मधुर दिसलाते हैं ।
नयना म आँक रही अपने वह प्रियतम का छवि सम्मोहन
उगता उसको ज्यो सूर्य रहा कोई कुतल म फुल-सुमन ॥

(सग २ पृ० ८, ९)

तृतीय सग म दश के काने कोने स विद्योत्तमा के स्वयम्बर म शास्त्राय हेतु मूग्घय विद्वानो क आगमन का वणन है । चतुथ सग म समागत दस सहस्र

विद्वानो से विद्योत्तमा यथोचित उत्तर की उपेक्षा करती हुई अनेक गूढ़ प्रश्न करती है। उसके प्रश्न ये—जीवन का अर्थ क्या है? विश्व में सबसे बड़ा कौन है? विश्व भर में सबसे सुन्दर कौन है? विश्व में सबसे बड़ा दान क्या है? विश्व में सबसे बड़ा बलवान कौन है? आदि। पण्डितों ने अपनी मति अनुसार इन प्रश्नों का उत्तर दिए किन्तु विद्योत्तमा किसी भी उत्तर से आश्वस्त नहीं हुई। उसने स्वयं ममी प्रश्नों के विद्वत्तापूर्ण उत्तर देकर सभी को हतप्रभ कर दिया। विद्योत्तमा ने जीवन का अर्थ जनहित के लिए जीना, विश्व में सबसे बड़ी माता, प्रेमपूर्ण हृदय वाले व्यक्ति का सबसे सुन्दर, काल को महाबलवान और विश्व का सबसे बड़ा दान विद्या को बताया। विद्योत्तमा की जान गरिमा से विद्वत्पण्डितों यद्यपि अभिभूत थी किन्तु स्वयं का अपमानित मान कर प्रतिशोध के लिए भी कटिबद्ध थी। अतः उन्होंने एक ऐसे महापुरुष-व्यक्ति को साज किया जो जिम डाल पर बठा था, उसी को काट रहा था। विद्योत्तमा ने अगुनि मकेत से समुचित परीक्षण के पश्चात् उस मूर्ख व्यक्ति को पति रूप में वरण कर लिया। सप्तमसर्ग में सप्त राशि विद्योत्तमा साज धज कर प्रियतम से मिलन के लिए प्रस्थान करती है। अभिभार सज्जित विद्योत्तमा की सौन्दर्य-भुषणा का वर्णन करते हुए कवि कहना है—

‘भावा से पुलकित मलय-गात,

ज्यो खिला प्रातः म अम्बुजति।

छवि के जल से हो रहा स्नात,

अधरां से खुलती नहीं वात ॥” (सर्ग ७, पृ० ५१)

पूनम की मधुमयी यामिनो में प्रथम मिलन के हेतु उमगा का तूफान लिए विद्योत्तमा जब अभिसार भवन पहुँची तो उसने अपने प्रियतम को पृथ्वी पर सोने हुए पाया। पति के भोलेपन पर रोष कर विद्योत्तमा ने सुरमिन्-पाटल का जल श्वेत-कमल से बरसाकर अपना चदन चर्चित गात्र प्रिय के चरण-तल में रगड़ लिया। मूर्ख नींद से हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। उसने पण्डिता के आदेश पर जो स्वागत भरा था उसका भी रहस्योद्घाटन कर दिया। विद्योत्तमा पण्डिता की चाल समझकर विनम्र हो उठी। क्रोध के आवेग में उसने मूर्ख को खिड़की से ढकेल दिया। इस दुर्व्यवहार में मूर्ख का मन में ऐसी असीम वेदना जगी जिसने उसकी जान चेतना को जाशूत कर लिया। वह सोचने लगा कि मैं पण्डित भी तो हो सकता हूँ। कवि के अनुसार—

‘जब लगी चाट उस मूर्ख का, मन में असीम वेदना जगी,

युग से सोई उसके मन की, नव जान-दीप्त चेतना जगी।

गीत लिखने को प्रेरित किया—

‘अब लिखता गीत मिलन के वह
अब लिखता गीत विरह के वह
अब लिखता गीत सुखो के वह
अब लिखता गीत दुःखो के वह ।’ (सग ६, पृ० ६३)

कालिदास को का प्र माधना करते हुए अनेक वष बीत गए । एक दिन वे निज्जन वन म प्रशान्त भाव से सरावर के तट पर बठे हुए प्रकृति-सुपमा का विहगावनोक्तन कर रहे थे कि एक सुन्दरी सखिया सहित सरोवर तट पर आई । वह मलयानिल को अलका में बाधे हुए थी, उसकी पनकी मे मद का महोन्धि लहरा रहा था भेषो का अजन सुरधनु सी भीहे उ नत उरोज और नूतन यौवन का मन्डिर मार लिए वह रूपसी जब कालिदास के समाप पहुँची ता वह स्तब्ध हो गई । उस याद थापा कि यह वही व्यक्ति है जिसे उसने कुछ वर्षों पूर्व गवाक्ष-पथ से ढकेल दिया था । कालिदास से दृष्टि मिलन होते ही उसके मन प्राणा का हुलास असीम वेदनाज्वार मे बदल गया । वह मुरझाये यौवन जोर ज्वरन मार का लेकन लीट गई । इधर कालिदास को भी मूरत जानी पहचानी मी लगी और वे मन ही मन सोचने लगे कि—

‘वह कौन ?

लिए यह रूप राशि

यौवन विलास

सौ-दय हास

तन मे मलयानिल की सुवास

आई सरवर के आज पास

सुलभान को द गई प्रश्न

में देख रहा हूँ सत्य या कि मदमरे स्वप्न ।”

(सग १०, प० ७०)

वह रूपसी विद्यात्तमा ही थी । उसके मन म सरप उठ खडा हुआ । वह मध्य रात्रि के समय अपने अक्षत सुकुमार यौवन को नूतन शृङ्गार से सज्जित कर प्रियतम से भिन्न चल दी । एक विविध अतद्बद्ध विद्योत्तमा के मन मस्तिष्क को आन्वोलित किए था । उसे अनौत की भूल पर घोर पश्चात्ताप था क्योंकि उसने पति का अपमान किया था । दूसरी आर यह सोचकर वह आरवस्त हो रही थी कि—

'क्षमा कर देंगे मुझे जरूर, नहीं है उनको तनिक गहर ।
 कि शरणागत को करते क्षमा, यही विद्वानों का दस्तूर ॥
 × × × ×
 क्षमा कर अपनाएँगे मुझे, मुझे विश्वास अटल विश्वास ।
 न मुझको रोने देंगे और, न होने देंगे और निराश ॥'

(सग ११, पं ७६-७७)

उधर कवि चुपचाप सोच रहा था कि वह रूप का अम्बार और जीवन की मन्त्रिा लिए कौन आई थी ? उसने भीहो के सुरचाप पर नयनों के बाण से ऐसा प्रहार किया कि मेरे मन प्राण घायल हो गए । उमंगो सी सुंदर, विहंगो सी चंचल प्रीत सी नव श्रावणमयी तथा जलद सी करण-तरल वह कौन थी ? मधु ऋतु की प्रथम बहार जीवन के प्रथम उभार, कवि के पहले उदगार और उर म अपरिमित मधुर-दुलार लिए वह सुकुमारी कौन थी ? सुरधनु सा सुंदर-हास नई किरणों का मृदु उल्लास, स्वरो म गीत, नूपुरों मे सगीत और अलकों म सुवामित मलय बयार लिए वह कौन थी ? कवि यह सोचने को विवश था कि—

रूप का ऐसा मादक ज्वार, आज देता बस पहली बार ।
 देखने ही वह रूप अपार, झूठ कर उठे हृदय के तार ॥
 × × ×
 कौन वह छवि की नई बहार सुपमाआ का आगार ।
 रूप व आगे जिसके स्वय गया सौन्दर्य कमी का हार ॥

(सग ११ पृ० ७६)

काली-मन्त्रि के पास अडोल के पेड़ की एक डाल पकड़े कवि यह सोच ही रहा था कि उम पायल की मधुर ऋकार सुनाई दी और घाड़ी देर म वह कल्पना-छवि कवि के पास कर्ण उच्छ्वास छाडती हुई मोन गभीर समुपस्थित हो गई । कवि विस्मय से भर गया । उसने आगन्तुक को संप कर प्रश्न की झडी बाँप दी—

कौन तुम छवि निर्मित नव वेश ? लजाना जिसको लग रावेश ।
 कौन तुम सपनों-भी सुकुमार सिण जीवन का यह उमंग ॥
 कौन तुम लिए सुरमिमय हास सुभाए नयनों म आकाश ।
 आत्र क्यों आया रात का दवि ? मडी आकर हा मर पास ॥
 कौन तुम रण-मिणु छविमान ? कौन तुम ? सुपमा की मुक्कान ।

कौन तुम मधु के स्वर्ण विहान ? कौन तुम ? उपमा के उपमान ॥
 कौन तुम वाल्मीकि के श्लोक ? कौन तुम ? जीवन के आलोक ?
 कौन तुम सामवेद के गान ? चाँद भी तुमको रहा विलोक ॥
 कौन तुम ? कवि की क्या कल्पना ? गायकों की तुम क्या साधना ?
 भक्त जन की तुम क्या बन्दना ? शिल्पकारों की क्या सजना ?
 कौन तुम ? मैं अब तक अनजान कौन तुम ? किस कुल का अभिमान ?
 कौन तुम ? किस माँ का वरदान ? कौन तुम ? किस माई की शान ?'

(सग ११, पृ० ८४ ८५)

कवि की मीठी वाणी सुनकर सौम्यमयी रमणी कवि के पाँव पर गिर पड़ी और अपने अधुकुणा से पदतल का निमज्जित करने लगी। कवि ने उस छवि सुपमा की बाह मृणाल को पकड़ कर उठाया। स्पश से कवि का गाल सिहर उठा, माल पर पसीना मर गया और मन में रगीन वासनाएँ साकार हो उठीं। रूप का छविमान सागर कवि के इंसान और ईमान को चुनौती दे रहा था। किंतु कवि जड़िग रहा, उसने पुन गम्भीरता से प्रश्न किया कि—

'कौन तुम ? गगाजल सी स्वच्छ ।
 कौन तुम ? वाणी जसी दक्ष ।
 कौन तुम ? सागर सी गम्भीर ।
 कौन तुम ? पूण विराम सुलक्ष ।'

(सग ११, पृ० ८७)

कवि की रसमयी वाणी की सुनकर उस छवि ने सुधा-स्नात स्वर में अतीत की घटनाओं का वखान कर पश्चाताप प्रकट किया और अपने अमद् कृत्य के लिए क्षमा याचना करते हुए महाकवि के चरणा में शरण माँगी। कवि ने कुछ नहीं कहा, किंतु दा वदम पीछे हटकर अपनी मौन-अस्वीकृति का बोध विद्योत्तमा को करा दिया। विद्योत्तमा मलिन उदास होकर लौट गई।

जानोच्य महाकाव्य के द्वादश सग में विद्योत्तमा की विरह वेदना का निरूपण हुआ। विद्योत्तमा का मुख कमल मुरझा गया उसका छविमान गान घूमिल हो गया। शीतल मन्द मलय वातास रजनीगंधा का सुवास और कुमुद कुसुमों का हास उसका उज्वलित उपहास कर रहे थे। अनुराग भाव काला नाग बन कर उसे डँस रहा था। आज पशियों की सुरीली तान, सरिता का कल कल गान और मधुर अरुण स्वर्ण विहान उसके लिए शापमय वरदान बन गया था। विद्योत्तमा बुझे हुए दीपक के घूम के समान बिकल थी। वह पीन चाँद

तो छविहीन तथा मोर के समय दूना उड़डोत के समान मनीन गिआई दे रही थी। जीवन उसके लिए अमल्य धाम बन गया था। उमक नत्रो म अश्रुत्रा का पारावार उमड रहा था। मघ मण्डित आकाश को दसकर वह निश्वास छोडती थी। कवि के अनुसार विद्यात्तमा का जीवन निरपाय हो गया था—

आज नयना म निमिर साधार शून्य सा लगता उम ससार ।
वन गई आज वह निरपाय, सत नही पाता व्यथा मुनुमार ।

× × ×

जा रह बीन त्विस थी मास त्रिन्तु उसका एक सा इतिहास ।
लौटकर आया न उसक पास फिर कभी मानक मंदिर मधुमाम ॥”

(सग १२ पृ० ६८ ६९)

उधर कालिदास का मन विपात पूरित हो गया था। एत त्रि माँ काली को प्रणाम कर के अगात निशा म बन गए। कवि के शब्दों में—

वह पार कर रहा नगर ग्राम
वह पार कर रहा ताव धाम ।
वह बडा जा रहा लक्ष्महीन
मिलता न कही उसको विराम ॥’

(सग १३ पृ० १०३)

कालिदास ने काश्मीर, अल्मोडा कौसानी धवलगिरि कचनजघा काठमाडू बशाली जीरादई पाटलीपुत्र सिमरिया जोनासाँ बङ्ग प्रान्त महिपादल, बेदुबील, काशी इलाहाबाद झाँसी राजस्थान काठियावाड, सोमनाथ, साबरमती और मालवा नामक स्थानों का देश-यापी परिभ्रमण किया। वहीं उसने प्राकृतिक सुषमा का साक्षात्कार किया जो वही प्रतिमाओं के दर्शन से मृजन की दवीय प्रेरणा प्राप्त की। काश्मीर और हिमगिरि की स्वर्गिक शोभा लखकर महाकवि ने नवीन उपमाएँ सजायीं। सौन्दर्य विभासित कौसानी प्रदेश के सुषमामय हरितामल न कवि को युग स्रष्टा के आवरण से परिचित कराया। धवलगिरि और कचनजघा के रजन शिखरों की स्वर्णमा का अवलोकन कर महाकवि का मन हृष पुलन से सिहर उठा। महाकाव्यकार के शब्दों में—

वह नूल गया जीवन का गम,
मुक् से फूटा सुख का सरगम ।

आनन्द विभार हुआ जाता,
बढ़ता जाता रुक कर यम यम ॥

(सग १३ पृ० १०८)

काशी पहुँच कर कालिदास के मन में उत्पन्न भाव व्यंग्य हुआ। महा-
कवि ने पतित मानव के अभ्युत्थान करने का पुनीत संकल्प किया। उसने
कहा कि मैं मानव की मंगल कामना के चिरंतन गीत गाऊँगा। ऐसे
गीत जो—

मानव का जो कल्याण करे मन में उसके सम्मान भरे।
है गीत वही जिसमें मानव सच्च पथ की पहचान करे ॥
जो मानव मन में ज्ञान भर सत चित्त आनन्द विधान कर।
है गीत वही जिसमें मानव नित नूतन अनुसंधान करे ॥

(सग १६, पृ० ११६-११७)

इलाहाबाद में त्रिवेणी के संगम पर अक्षय ऋतु के नीचे महाकवि के मन
में साधना की महत्ता का अनुभव किया। कवि कृत-संकल्प हुआ कि उसे मान-
वीर्य अभ्युदय के लिए निस्वार्थ साधना में निरत होना ही होगा—

'साधना निरत रहना होगा, हिम सा मुषका गलना होगा।
मानव का अगर उठाना है तो जीवन भर जलना होगा ॥
साधना कीर्ति का सधनाम, साधना मोक्षदायी सनाम।
साधना बनाए देती है, मानव को जग में पूणकाम ॥'

(सग १३ पृ० ११६)

मानवता के चिरकल्याण और विराट निमाण का पुनीत संकल्प लिए
कवि कालिदास निरंतर अग्रसर हो रहे थे। काशी नगरी की मिट्टी में उन्हें
उत्सव की आग और दशभक्ति के अतृण का अपूर्व स्पर्शन हुआ। दशवीर
प्रभूना मृत्तिका के कण कण में शीघ्र ऐश्वर्य और सौन्दर्य को देखते कवि ने
कहा—

'यह मिट्टी वीरा की जननी, यह मिट्टी कविया की जननी
इस मिट्टी पर है योद्धावर, मर मन की समता अपनी।
इस मिट्टी का भरा जजन इस मिट्टी का मेरा वदन
भरे कवि का सौन्दर्यमयी इस मिट्टी को सौ चार तमन ॥'

(सग १३, पृ० १२१)

राजस्थान की वीर भोग्या वसुधरा में पहुँच कर कवि वहाँ के लोक जीवन की रंगरेलिया से अभिभूत हो गया। उसने देखा कि—

‘घुघरू बाध कर पग निज द्वय, नाचत पुरुष के दल तमय ।
होली में वे घीदडा नृत्य, गाते विरहा भरकर स्वर लय ॥
ढप जानि बजाव बलम रसिया डोले जियरा ओ मनवसिया
गाती नारियाँ उमगा से ‘बाजूव ध देउ गढाय रसिया ॥

(सग १३ पृ० १२३)

गुजरात में सोमनाथ महालय के विशाल मठ और अस्सी मठ सोने के महाघट को देख कर कवि के मन में उदार कलाकार के प्रति प्रशस्ति भाव जगा। उसने सोचा सच्ची कलाकृति ही कलाकार को मृत्युञ्जयी बनाती है। सच्चा कलाकार हिंस्र के समान अहर्निश मल ढन कर सृजन करता है। महान कलाकार के सम्बन्ध में कवि का निम्नाद्धृत कथन कितना सटीक है कि—

‘पापाणो मे युग प्राण भर, चटटाना में युग-मान भरे ।
वह कलाकार जो पत्थर में मानव मन का निर्माण कर ॥
× × ×
नित नूतन अनुसंधान करे मिट्टी में नव सम्मान भरे ।
वह कलाकार जो मिट्टी से युग मानव का निर्माण करे ॥’

(सग १३ पृ० १२८ १२९)

अन्ततः महाकवि उज्जैन में महाकाल के विशाल मन्दिर में पहुँच। वहाँ भगवान् विश्वनाथ (महाकाल) के दर्शन कर कवि को शिवत्व बोध हुआ। कवि ने शिवत्वभाव के सम्बन्ध में चिन्तन प्रारम्भ किया कि शिव जीवन का शुद्ध प्रकाश मानव की महानता का ही स्वरूप और काम का चन्द्रहास है। शिव ही मानव का सम्पूर्ण ज्ञान कामयोग का महाप्राण और मन का स्वामि मान है। शिव की जांबवत्यमान महाशक्ति ही मानव का विषम गरल पान की सामर्थ्य प्रदान कर सकती है। जन्म मरण अनन्त पवन और अजय काम को शिव शक्ति ही विजित करता है। शिवभाव के मृष्टि व्यापी प्रसार का अमित आस्थान करत हुए कवि ने कहा—

शिव मानव की माधना अटन शिव मानव की प्राथना विमल
शिव मानव की निष्काम मति शिव मानव की कामना सपन ।

×

×

×

शिव मानव मन का जात्म ज्ञान, शिव मानव मन का महागान ।
शिव मानव का है पूण रूप, शिव मानव का नैतिक प्रमाण ॥”

(सग १३, पृ० १३५ १३६)

कवि जिस क्षण शिव की “यापक सकल्पना” से अभिभूत हो रहा था कि गणिकाएँ छूम छनन करती हुई मन्दिर के प्रागण में नृत्य करने लगीं । उपस्थित मत्त जना की दृष्टि देव स वश्याओं पर केन्द्रित हो गई । कवि को यह देखकर ठेस लगी । वह नारी के वारङ्गना रूप को धिक्कारते हुए, नारी की असहाय स्थिति पर विचार करने लगा कि नारी का जग जननी, आदि शक्ति के अभिधान से अभिप्रेक्षित करने के स्थान पर उसे वासनापूर्ति का तुच्छ साधन माना जाता है । कवि ने जावशूरित स्वर में कहा कि— वस बंद करो यह छूम छनन, यह शास्त्र विरुद्ध नहीं शासन और उसने उद्वाघन के स्वर में गणिकाओं को कहा कि—

‘तुम आदिशक्ति तुम जग जननी यद्यपि तुम मा, प्रेक्षा, भगिनी,
आत्मा में छिपी असीम शक्ति, नारी तुम भूल गयी अपनी ।

×

×

×

तुम आदि शक्ति तुम जग जननी, तुम जीवनदायक पयस्विनी,
तुम आदि अत्त तुम मणि गर्भा, तुम नहीं सिर्फ हो कामायनी ।
तुम से दिनकर है भासमान, तुम से मयक है सावधान,
पाई असीमता सागर में, तुमसे नारी तो इसे मान ।
तुमने सागर को दिया गान अम्बर को नवद्वि का वितान,
तुमने वसुधरा को गति दी, दे दिया सृष्टि को अमर प्राण ॥

(सग १३ प० १३६ १४०)

महाकवि के प्ररक वचना की सुन्दर प्रश्नोत्तर के पश्चात् गणिकाओं ने अपने जीवन क्रम को परिवर्तित करने का प्रण किया । इस प्रकार भारत भ्रमण कर ज्ञान प्रेरणा और अनुभूति तत्त्व संचित कर कालिदास ने काव्य सृजन प्रारम्भ किया । उनके गीतों का सौरभ सम्पूर्ण मालव प्रदेश में फैल गया । उनके गीतों का माधुर्य भाव अधिग्रहण करने के लिए अपार जन-समूह उमड़ पड़ा । कवि कुटी तीर्थ धाम बन गई । चतुदश सग में बताया गया है कि महाराज विजयनादित्य काव्य रसिक थे । वे कवियों का अनुदान में असह्य मुद्राएँ प्रदान किया करते थे । एक दिन उनके मंत्री ने निवेदन किया कि कवि

का काम ऐसे नवगीत का सज्जन है जा मानवता को नया विश्वास प्रदान कर—

नया गीत देता मानव को नया नया विश्वास,
नया गीत भरता जीवन में, नया नया उल्लास ।
नया गीत देता मानव का, नित नूतन सन्देश
नया गीत जीवन का कर देता पूरा उद्देश्य ।

× × ×

नया गीत मानवता बर करता नूतन शृंगार
नया गीत देता जन जन का जीने का अधिकार ।

× × ×

नया गीत लाता वसुधा पर युग का नया प्रभात
नया गीत के स्वर किरणों से सिलता युग-जलजात ।

(सग १४ प० १४६)

मंत्री ने प्राथना की कि यदि महाराज का आदेश हो तो यह घोषणा कर दी जाय कि नव गीत व सज्जन को एक लक्ष मुद्राओं का अनुदान दिया जायगा । महाराज विक्रमादित्य ने महामंत्री के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान करते हुए कलाकार की महत्ता का इन शब्दों में प्रगट किया—

कलाकार पैदा करता है मिट्टी से इंसान ।

× × ×

कलाकार पापाता में भी मर देता है प्राण ।

× × ×

कलाकार ही किसी राष्ट्र का करता है निर्माण ।

(सग १४, प० १५१)

यह विचित्र घोषणा सुनकर कानिदास महाराज विक्रमादित्य के दरबार में पहुँचे और अपना सद्य नवीन रचना सुनाकर महाराज को मात्र मुग्ध कर दिया । पुरस्कार में प्राप्त एक लक्ष मुद्राओं को भी कवि ने जनहित में खर्च करने का अनुरोध किया । महाकवि की वाच्य मेधा और समुन्नत विचार दर्शन से प्रभावित होकर विक्रमादित्य ने उच्च राजकवि का सम्मान प्रदान किया । उधर महाराज विक्रमादित्य की पुत्री प्रमथती कानिदास के व्यक्तित्व की गरिमा और चिन्तन की उदात्तता से अभिभूत होकर सोच रही थी कि—

कितना महान् कवि कालिदास, नयना म चिर उज्ज्वल प्रकाश,
अधरो पर उसके मधुर-हास, अन्तर म छवि ज्योत्स्ना वास,
वाणी म सौरभ की मिठास, जन जन के जीवन का विकास,

X X X

कितना उन्नत कितना उदार, जन जन का उर मे भरा प्यार,
अपने से उनको नही माह, जन के जीवन से अधिक छोह,
वे वात्तराग, वे महाभाग, बसव स चिर उनको विराग।

(सग १५, प० १५६-१५७)

कालिदास को प्राप्त करने के लिए प्रभावनी न कवि से कविता करना सीखना प्रारम्भ किया। वह रूपको के माध्यम से कविता की वाणी म कवि से कहती कि बल्लरिया तह से लिपट कर किस डच्छा को प्रकट कर रही है ? पगवान लौ को घूम कर क्या सक्न करत है ? चातकी रात भर गाकर क्या कहती है ? वन म फूरी गीली सरसा की सुपमा का रहस्य क्या है ? आदि। प्रभावनी के अलकों की मलयज मधुर गध अधरा का पाटल रगा हास, भौहा का सुरघनु सम विकास और कजरारे नयना का विलास कवि के मन मे वासना की प्यास उत्पन्न करने लगा। प्रभावनी की रूप माधुरी को देखकर कवि सोचने लगा कि—

'जीवन का सच्चा यही स्वग
यह सृष्टि काय का मधुर सग।
वरदानो का यह प्रथम वग,
इससे ही जगती का निरग ॥

(सग १५, प० १६३)

महाकवि के मन म एक ओर अमद वासना जल रही थी तो दूसरी ओर विवक कट रहा था— मत बना जप । कवि न अनजगत म दृढ़ मध गया। अन्तत न्य नान । उसे सनक किया कि सच्चे कनाभार को रूप से अकथ प्यार हाता है किन्तु वह लनाम छवि का लल कर डगमगाता नहा है, क्योंकि—

'कवि ता होना खुं रूपनार
कवि छवि का छवि देना निवार।
छवि कवि के दिग आंचल पसार,
मोगती मना से रूप उवार ॥
कवि के परा छवि मग गिरा
छवि से कवि की लेवनी बही।

जो करता छवि की मूर्ति गडी
जिसको लग्य आँखें हूँ हरी ॥'

(सग १५ प० १६५)

कवि के मनस जगन म वागना जीर विवेक का यह द्वन्द्व चन ही रहा था कि प्रभावती ने अपने गारी बाँहों की मान कवि के कंठ म डाल दी और लज्जा से लाल हो गई। कालिदास ने बाँहा की माला को ताड़कर कलाशयो को झकझोर दिया। निरसृष्टता जीर अपमानिता प्रभावती ने जाकर अपनी माँ से कालिदास के कुटुम्ब की भूठी कथा कहकर उसे राज्य निष्वासित करा दिया।

जीवन की सघनपूर्ण परिस्थितियाँ से जूझता कवि कालिदास नमदा के तट पर बैठकर जगत के मनु कटु अनुभवों का कविता की भाषा म प्रकट कर रहा था। कवि गा रहा था कि जीवन की राह टढ़ी भेग जीर पक्किलपूण है कि तु चलने वाले का मजिल मिल ही जाती है। जीवन उपवन म फूल और काँट, चादनी और अधियारी हार और जीत तथा पतझर और बसंत दानों हैं। तूफाना म अपने पर कायू पाने तथा ज्वारा के घपेडा का सह लेने वाला ही सच्चा मानव है। मानव ही सर्वोपरि है। मन की सीमाओं से उठ कर इन्सान ही भगवान बनता है जीर इन्सान से बढकर कुछ नहीं है—

मानव स बढकर चाद नहीं हरगिज सुंदर
मानव से बढकर कभी असाम नहीं सागर।
मानव मन का हँकार सिंधु का गान बना
मानव मन का अगार बना नम का लिनकर ॥

(सग १६ प० १७१)

अपनी कविता के थप छंदों म कवि न कहा कि श्रम मानव के तन का शाश्वत आभूषण है। श्रम की ज्वाला म प्रदग्ध और श्रम के साज म डला हुआ यवित ही प्रगति पथ पर जगसर होता है। मानव जीवन की महिमा सत्य के संरक्षण मे है। सत्यवाणी मनुष्य धरा को आलोकित कर जमरत्व प्राप्त करता है। कालिदास का ध्यान जस हा कविता स हटा तो उसने अपने समग्र एक रूपमी को पाया। उस देवकर कवि न मन ही मन प्रश्न किया कि—

लिन भीह मुरघनुपाकार तिन नयना म मन्दिर खुमार
दगा म नील नीन जाकाण कीन ? ले मधु का पटला प्यार।

कल्पना कर छवि का शृंगार, भावनाएँ लेकर मनुहार,
रागिनी अपना रूप सवार, आज आई क्या मेरे द्वार ॥'

(सग १६, पृ० १७३)

उधर रूपसी ललना सोच रही थी कि यह कौन विश्व कवि का अवतार लेकर साकार गीत की भाँति नदी के तीर पर समुपस्थित है। यह कौन है? जो हृदय में जग का प्यार भरे इतना अधिक उदार होकर बाणी के फलों से जगत को सुवासित कर रहा है। वार्तालाप के मध्य सुदरी ने बताया वह मालती है और कवि के गीत की मधुरिमा से अभिभूत होकर बरवस चली आई है। तत्पश्चात्, वह चली गई और उसने जाकर राजकुमारी मल्लिका को कालिदास के गीतों की गरिमा का बखान करत हुए कहा कि—

'गीतों में भरी अमृत की धार गीत में भरा हृदय का प्यार,
गीत में का हाँवी वासुरी, बज रही ले उर को झङ्कार।
गीत सुन भूम रहे तरपान भूमती और मलय की बात,
गीत सुन रही लहरियाँ नाच, गीत सुन खिल जाना जलजात ॥'

(सग १६, पृ० १७६)

मल्लिका ने मालती को स्वर्णिम उपहारका प्रलोभन देकर कालिदास को राजमहल में लान का कहा। मालती के अनुनय विनय पर मालिन के वेश में कवि राजमहल पहुँचा। मल्लिका ने कवि से प्रार्थना की कि मुझे ऐसे गीत सुनाओ जिससे मेरे तन मन प्राण तप्त हो जायें, भरे नयनों में मधुमास छा जाए मेरे निध्रिय जीवन में उद्लास का भाव जगे। राजकुमारी ने ऐसे गीत सुनने की कामना की तिनसे—

'तिमिर में जागे ज्यातिहास धरा पर झक आए आकाश
स्वर्ग का मोह सदा को त्याग, हृदय में भर कर प्रेम सुवास।
मनुज पर करे मनुज विश्वास, मनुज पर टिके मनुज की आस,
मनुज के प्राणों की आवाज, पहुँच जाए प्राणों के पास।
धरा से मानव का हो प्यार, करे धरती का वह शृंगार,
नवल अकुर बन पूंटे सना, हृदय के मानव का उदगार।
गीत सुन रह जाए तृप्तान, गगन में थम जाए दिनमान,
विधल जाए निमम पापाण भके गिरि का झूठा अभिमान।
ज्योत्स्ना से धरती हो स्नान करे रिम झिम की मधु बरसात,
गीत की किरणों से प्रस्फुटित विश्व का हो मुरझा जलजात।

हृदय में उठे प्रीत का ज्वार ज्वार से ध्वावित हो ससार,
मले मानव से मानव गले, प्रेम से ईर्ष्या-द्वेष विसार ।”

(सग १६ प० १८३)

महाकवि कालिदास ने महिनका के आग्रह पर अनेक मयुर गीत सुनाए,
जिनकी प्रथम पक्तियाँ अविकल रूप से निम्नोदघत हैं —

१ चाँद को देखूँ मैं या कि देखूँ तुम्हे
बोल दो रूप की उवशी बोल दो ॥

(सग १६ पृ० १८४)

२ फल गया शरद हाग ।

अब न गगन तिमिर वास ॥ (सग १६, पृ० १८६)

३ मुझे स्वर्ग की नहीं कामना मुझे मही से प्यार ।

सहराता है जहाँ अग्निश सुय का पारावार ॥

(सग १६ पृ० १९०)

४ गीत दो ऐसा मुझे जो गा सकूँ ।

प्रश्न जीवन के बठिन सुलभा सकूँ ॥

(सग १६ पृ० १९२)

५ विप के घूट पियो तो जानें ।

औरो के सुख स्वाथ लिए तुम

सचमुच अगर जियो तो जानें ॥ (सग १६, पृ० १९३)

६ श्रम की ज्योत्स्ना से जग का आगन ज्योतिमय हो ।

श्रम पूजित हो देवो से बढ श्रम की सदा विजय हो ॥

(सग १६ पृ० १९४)

७ तुम मेरे गीतो को समझो या मन समझो ।

आने वाली पीढ़ी तो इनकी समझेगी ही ॥

(सग १६ पृ० १९५)

८ समय की शिला पर लिखे गीत मैंने ।

धुनेंमे नहीं जो मिटेंगे नहीं जो ॥

(सग १६ पृ० १९६)

९ दूर स भीग हुए गीते स्वरा में एक तिन ।

साँग की यला कि हँसना चाँद जनपना ॥

(सग १६ पृ० १९७)

१० प्रामोद नववधू की शर्मिली पलकों सी ।

उतरी नम से यह पावस की सान्नि मदमरी ॥

(सग १६, पृ० २०२)

११ विषम गरल भी पी लेना आताम बात है ।

नील कठ जो सुधा उगलता पी हलाहल ।

(सग १६, पृ० २०४)

कालिदास की गीत-मुष्ण का पान कर मलिनता सहित समस्त समुपस्थित राज समाज गद् गद् हो उठा । कवि की समी ने मुक्कठ ने भूरि भूरि प्रशंसा की । सिंहल के राजकुमार कुमारगामसिंह ने कवि को सिंहल आने के लिए मादर आमंत्रित किया । कालिदास की ख्याति सवत्र सौरभ की मति फैल गई । महाराज विश्वामित्र ने सट्टे दूत भेजकर कालिदास को ढूँढ निकाला प्रभावती ने अपने दुष्टृत्य पर पश्चाताप प्रकट करते हुए क्षमा याचना की तथा महाराज ने कालिदास को पुन राजकवि का सम्मान प्रदान किया । किन्तु स्वामिमानी कवि ने नम्रता-पूर्वक क्षमा याचना कर ली । अष्टदश सग म महाकवि का विद्योत्तमा के प्रति स्वट्टत अनुत्तर 'यवहार पर पश्चाताप होता है और व महानता की सतीव्र प्रतिमा विद्योत्तमा शेषमा याचना करने उसके द्वार पहुँचे । विद्योत्तमा अब कवालवत थी । उसने कवि से प्रार्थना की कि अब तुम सम्पूर्ण विश्व का काव्य का प्रकाश प्रदान करो ।

विद्योत्तमा ने कहा—

अब बाँधुगी मैं नहीं तुम्हें मोह के पाश,

तुम्हें विश्व कवि देखकर होगा मुझे हुलाश ।

तुम से सारा विश्व ये पाये नित आनन्द

मेरी आकाशा यही जाओ प्रभु सानन्द ॥'

(सग १८ पृ० २१०)

पति की चरण छुल लेकर विद्योत्तमा ने पति को सादर विदा किया । ऊनविश सग मे कवित्री तिनक ने 'मिधदूत 'अग्निज्ञान शाकुतल और 'कुमार सम्भव की सजन प्रेरणा के स्रोतों का वणन किया है । इसके पश्चात कवि की सिधल-यात्रा का उल्लेख है । एक दिन कवि ने स्वप्न में सिधल में घषकती हुई चन्दन चिन्ता देखी । उहे सिंहल नरेश कुमारगाम सिंह के आमन्त्रण का स्मरण हो आया और व चतते हुए सिंहल पहुँचे । वहाँ एक नत्तकी का आतिथ्य ग्रहण कर कवि ने रात्रि को उसके वहाँ विश्राम किया।

सिंहल नरेश ने एक समस्यापूति के उपलक्षण में आधा राज्य देने की घोषणा की थी। समस्या थी—

‘कमल में मिलो कमल बहो समी,
पर नहीं देना गया देगा कमी।’

(सग १६ पृ० २३२)

उस रूपवाला नत्तकी को कवि ने सट्टा भाव से इस समस्या की पूति बता दी—

‘भुग कमल में निवस रहे हृग के कमल
देखते हम प्यार से जिन को विमल।’

(सग, १६, पृ० २३२)

नत्तकी ने राज्य प्राप्ति प्रलोभन में सोते हुए कवि कालिदास का तलवार से वध कर दिया। और महाराज कुमारसिंह व यहाँ पहुँच कर समस्यापूति कर दी। किन्तु महाराज को नत्तकी की मघा पर विश्वास नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने नत्तकी से घटित वृत्तों को जान लिया। महाराज कुमारसिंह ने च दन की चिता बनाकर महाकवि का ससम्मान दाहिसंस्कार किया। महाराज इतने विभ्रम में हो गये थे कि वे स्वयं भी उसी चिता में कूट कर मरसमाप्त हो गए। इसने पश्चात् नत्तकी भी चिता की लपटा में कूट कर राख हो गई। इस दृश्य की विडम्बना पर कालिदास महाकाव्य के रचयिता का निम्नोद्धृत कथन कितना साधक प्रतीत होता है कि—

अगरु च त्वन की चिता पर जल रही विश्व-कवि की लाश
आग की लपटों बिहस कर रही मनुज का परिहास।
जीत ला चाहे भले तुम जल गगन पवमान,
जीत पाओगे स्वयंम को पर न तुम हंसान।

(सग १६ प० २३५)

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्य के माध्यम से महाकवि कालिदास की सम्पूर्ण जीवनी का काव्यात्मक समाप्धान प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। कालिदासकी इतिहास सम्मत प्रामाणिक जीवनी का अनुपलब्ध है फिर भी भारतीय जन-जीवन में प्रचलित किंबदंतियों ऐतिहासिक अनुश्रुतियों एवं लोचनेतना से समुपलब्ध तथ्या का समाकलन कर कल्पना मिथित आधार पर श्री तिलक ने प्रस्तुत महाकाव्य का इतिहासात्मक संयोजन किया है। मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि मौलिक उद्भावना तथा सगवद्धता के कारण ‘कालिदास काव्य का कथा विधान महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। कालिदास के चरित्र में जिस

नतिक दृढता, क्लृप्तव्यनिष्ठा, स्वामिमान, आत्म गौरव, सजगता, विचार गाम्भीर्य और भाव प्रवणता का उभेप कवि ने दर्शाया है, उसके कारण महाकवि का चरित्र नितान्त प्रेरक और स्पृहणीय बन पड़ा है। विद्योत्तमा, प्रभावती, मालती प्रमति रूपसी कुल ललनाओं के परिस्वदभ मे महाकवि के चरित्र विकास मे अन्तर्द्वर्द्धनी अवतारणा और अय मनोवज्ञानिक सस्पर्श ‘कालिदास के रचयिता की चरित्र विश्लेषण सम्बन्धी मौलिक सूक्ष्म-व्यूह के परिचायक हैं। सयोग थ गार की परिदृश्य योजना मे कवि सिद्धहस्त रचनाकार प्रतीत होता है, क्योंकि प्रत्येक मिलन प्रसंग को उहोने नितान्त आकषक एव प्रभावपूर्ण ढंग से समायोजित किया है। काव्य की भाषा सम्प्रेषणीय और भावामि यजक तथा शैली प्रसंगानुकूल माधुर्य एव अोजगुणमयी रही है। शब्द चयन मे परिष्कार की अपेक्षा कवि से की जा सकती है। क्योंकि कहीं कहीं ठेठ उडू की शब्दावली के साथ सस्कृत गर्भित पदावली का प्रयोग अवाछनीय ही कहा जायगा। किंतु ऐसे स्थलो पर भी भाषा भाव-सवहन करने मे सवया समय रही है। शिल्प सरचना के अय उपकरणो (यथा छ्द्र द्विधान द्विम्ब योजना, प्रतीक सयोजन वणन कौशल, प्रवृत्ति चित्रण आदि) की दृष्टि से भी आलोच्य कृति पूण है। सजन उद्देश्य की महाघता का उल्लेख तो प्रारम्भ मे ही किया जा चुका है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत और मानवीय सवेदनाओं के अमर गायक के रूप मे महाकवि कालिदास की जीवन गाथा भी उतनी ही प्रेरक है जितनी कि उतकी काव्य कृतियाँ। मानवतावादी विचारदशा की मूलभूत उपपत्तियो एव अवधारणाओं को कवि ने सहजतापूर्वक काव्य के कलेवर मे आग्रहयुक्त होकर सन्निविष्ट किया है और इसके कारण काव्य का वचारिक स्तर समृद्ध हुआ है। समष्टि रूप में महाकाव्य सरचना के रूप विधायक तत्त्वों की दृष्टि से ‘कालिदास एक सफल काव्यकृति है।

‘झॉसी की रानी’ महाकाव्य
अप्रितम शौर्य की आग्नेय हुँकृति

‘झॉसी की रानी’ महाकाव्य अप्रतिम शौर्य की आग्नेय हुँकृति

विश्व भर के महाकाव्या के विकास क्रम एवं संरचनात्मक प्रवृत्तियों के अनुशीलन परिशालन से पता होता है कि महाकाव्या की रचना का मौलिक आधार वीरगाथाएँ थी, जिन्होंने कालान्तर में गाथाचक्रों (Cycles of Ballads) का रूप ग्रहण किया और जिनसे महाकाव्य का मौलिक रूप निर्मित हुआ। वीर गाथाओं में वीरों का प्रशस्ति-गीत होता था। भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत वृष्णि मंत्र एवं अथर्ववेद की शक्तिशाली देवी (वीरा) के काव्यों की गीतात्मक प्रशस्तियाँ मिलती हैं जिन्हें दान-स्तुति, गाथा-नारदगी और युवागम्य गीत कहा गया है। बिट्टरनिस्स प्रभृति विद्वानों ने मतानुसार प्रागैतन्य गीतों से ही महाकाव्या का प्रादुर्भाव हुआ है।¹ भारत ही क्या? प्राचीन युग के साहित्य-ऐतिहासिक में आरम्भिक युग, वीर युग (Heroic Age) का रूप में ही जाना गया है और वीरता की भावना तथा वीर पुरुषों का वाक्यात्मक मनो-स्थान इस युग की वाक्य-वृत्तियों का मूल प्रतिपाद्य रहा है। इस दृष्टि से भारत के वाक्य महाकाव्यों (रामायण और महाभारत), हिन्दी के जादू महा

¹ The songs in praise of man probably soon developed into epic poems of considerable length i.e., the epic songs, and into entire cycles of epic songs entering around one hero. — M. Winternitz, *A History of Indian Literature*, Vol I, Page 314

काव्य (पद्मीराज रासा) तथा यारगागावासीन काव्यदृष्टियों का उन्नाहरण स्वल्प देता जा सनता है बिनम पीररर का स्वर एक उद्घोष के रूप में प्रतिध्वनित हुआ है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के हृत्पीठों, आयावत, जोहर विन्नमादित्य दत्तवर्ण अगाराज जयभारा, रमिम रथी सेनापति कण तारकरप, घट्टगुप्त मीथ गुग्गाविंसिह नीपक महाकाव्या में वीरा के अनन्त शीय पराक्रम और पुण्याय के रोमांचक आश्रयान विनियोजित हैं। इन वीर रसात्मक महाकाव्या में इतिहास प्रगिष्ठ और सोवविस्मात नरपुंगवों के पराक्रम पुण्याय शीय स्वाभिमान और दक्षिणकी गौरवगाथाएं ही संकलित हैं। इसी परम्परा का काव्यकृति श्री श्यामारायण प्रगाह्वन झांसी की रानी महाराज्य है जिसमें महारानी लक्ष्मीबाई की अप्रतिम शीय सम्पन्न सार विश्रुत उत्साहमया जीवन गाथा का महाकाव्याचित्र गरिमा से मोढत करके बाईस हैदृष्टिया (सर्गों) में प्रस्तुत किया गया है। काव्यारम्भ से पूव परिचय खण्ड के अंतगत महारानी लक्ष्मीबाई के महिमायम व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए कवि ने उचित ही कहा है कि वह स्वतंत्रता के ध्वज को फहराने वाली रणचण्डिका थी। महारानी ने दुःखेलखण्ड में नव जागरण का महान् उद्घाप करके झांसी के निद्रा गिम्गन जन जीवन में नयी चेतना का संचार किया तथा मातृभूमि की अचना में अपना सबस्व समर्पित कर दिया—

लेकर स्वतंत्रता के ध्वज का निमय फहराने वाली थी।
रणचण्डी के जोधानल सम घनकर लहराने वाली थी ॥
वह राज योग की मस्म लगा नित अलख जगान वाली थी।
रण भेरी के रव में स्वर भर वह वीर बनाने वाली थी ॥
तुम जागा वीर बु देलखण्ड, यह मैं न पूकने वाली थी।
निज मातृभूमि के अचना में वह नहीं चूकने वाला थी ॥
निद्रित चासी के कण कण में, नवशक्ति जगाने वाली थी।
इस वीर भूमि की पूजा में, सबस्व चढाने वाली थी ॥

(परिचय पृ० ७)

झांसी की रानी महाकाव्य के सम्पूर्ण कालवर्ष में महारानी लक्ष्मीबाई की आग्नेय हैदृष्टियों का ही प्रतिचित्रण है। भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण परम्परा में महाराणा प्रताप छत्रपति शिवाजी गुरुगोविंदसिंह घोषा बाप्पा पन्नाबाय महारानी पद्मिनी, हाडारानी कणवती ताराबाई जैसे अनेक गुणांतरकारी

व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने जातीय स्वाभिमान राष्ट्रीय-गीरव और मातृभूमि के हितरक्षण में अपना सबस्व समर्पित करके उत्तम के उच्च कीर्तिमान स्थापित किए हैं किन्तु महारानी लक्ष्मीबाई का यशस्वी चरित्र तो वलिदान का ऐसा देवीप्यमान बालोक्त-स्तम्भ है, जिसके ज्वालिमय विकीर्ण से असंख्य प्रसुप्त जनो में नव-चेतना का आविर्भाव हुआ। ऐसी ‘नवचनता’ जिसने सहस्राब्दियों में पराधीन जनगण को स्वाधीनता के महायज्ञ में प्राणों को आहूत कर देने के लिए अनुप्रेरित किया। भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की विप्लवी भूमिका के निर्माण में सन् १८५७ की क्रांति अविस्मरणीय घटना है और इस क्रांति की अप्रदूतिका और प्रेरणादात्री के रूप में महारानी लक्ष्मीबाई का वलिदान निश्चयतः अद्वितीय है। भासी की रानी ने अंग्रेजी-साम्राज्यवाद से उस समय टक्कर ली जब उनका शासन-सूय मध्याह्न के प्रखर-तेज से दीप्तिमान था बड़े-बड़े राजे महाराजों श्रद्धान्वन हाकर समुद्र पार बैठी महारानी विषटारिया का यशोगान करत हुए ‘यूनियन जक’ को अपनी राज ध्वजा के साथ फहराने थे। अंग्रेजी साम्राज्य की अपरिमित शक्ति-सामर्थ्य का रानी ने सीमित साधना किन्तु असामित पराक्रम और स्वाभिमान के बल पर लोहा लेकर अंग्रेजी शासन की नींव को थकभोर कर ऐसा जजरित कर दिया कि मन् १९४७ में वह टूट ही गया। इसीलिए भारत के स्वाधीनता-सगर में महारानी भासी के आदान का पुष्प स्मरण करत हुए मनीषी कवि ने कहा है कि—

‘रानी का रण हँकार प्रबल, नम में है अब भी गूँज रहा ।
रानी का जय-जयकार सतत, भारत मानस में गूँज रहा ॥
रानी है अब भी डोल रही, कण-कण में नूतन शक्ति धनी ।

×

×

×

नश्वर तन से है दूर किन्तु जिह्वा पर अमर कहानी है ।
स्वातंत्र्य वत्स बहता रहता माँ भासी वाली रानी है ॥’

(परिचय पृ० ८)

भासी की रानी महाकाव्य के समारम्भ में कवि ने काव्य की श्रुतन प्रेरणा पर प्रकाश डालत हुए कहा है कि रानी की अमर कहानी यद्यपि बीते हुए युग की मान है किन्तु यह वह वीर मात्र है जिसके द्वारा भारत का कण कण जगाया जा सकता है। अजरित जबानिया, रो रनी जायशुमि जीर सो रह गुरुद्वारो का एक मात्र सहारा यही गौरव गाथा है। लक्ष्मीबाई के जन्म का कवि ने दवी शक्ति का आविर्भाव कहा है। मोरपत की शक्तिपत्नी ने स्वप्न में देखा कि कोई गमस्य शक्ति उनसे वह रही है कि निराशा मन हा, मैं पृथ्वी

पर आकर जन जन में ज्याति जगाऊँगी । अबला को सबला बनाकर भारत की
ईति भीति को दावाग्नि के समान जला दूगी । लक्ष्मीबाई के प्रसव को कवि
ने महाशक्ति का भू पर अवतरण ही माना है —

“वह एक शक्ति भू पर आई
सहसा विपदा घन पटल चीर ।
उस व्रती विप्र की दुहिता बन
लक्ष्मी लक्ष्मी बन कर आई ॥”

(पहली ड़ैकार पृ०४०)

मनू (महाराणी लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम मनू था उसे छवौली भी
कहते थे) के जन्म के चौथे दिन ही माँ का निधन हो गया । कुछ समय पश्चात
मोरोपत के आश्रयदाता चिमा जी भी स्वर्ग सिधार गए । तभी बाजीराव
पेशवा के निमन्त्रण पर मोरोपत पुत्री सहित काशी छोड़कर बिठूर चल गए ।
शशवावस्था से ही मनू निर्भक्ता और जट्ट धय का परिचय देने लगी थी ।
एक दिन बिठूर के बाहर नाना साहब और राव साहब के साथ मनू घोड़े पर
सवार होकर जा रही थी तभी घुड़दौड़ में नाना साहब घोड़े से गिर कर
घायल हो गए । मनू नाना साहब को अपने घोड़े पर बठा कर द्रुत गति से
किले में ले आयी और अपनी अश्वारोहण कला का प्रभूत परिचय दिया ।
घायल नानासाहब को देखकर मनू ने करुणा विगलित भाव प्रदर्शन के स्थान
पर उदबोधनात्मक स्वर में कहा कि—

‘नाना साहब ! क्या सोते हो बलहीन बने हो मर्दाने ।
क्या इसी मुजा का बल लेकर, थ चल गगन पर भू लाने ॥

× × ×

जागा-जागो हे मौनव्रती ! अभिमान शान की रक्षा कर ।
नर के मुण्डा की रक्षा कर गौ के भुण्डों की रक्षा कर ॥”

(दूसरी ड़ैकार, पृ० ५४ ५५)

घायल नानासाहब को देखकर सभी लोग बहुत घबराए हुए थे किन्तु
मनू अपने पिता मोरोपत से कह रही थी कि जरा सी चाट लगने से ही लोग
इतने व्यग्र और चिन्तनीन क्या हैं ? शाणित देखकर घबरा जाया क्षत्रिय धम
नहीं है । क्षत्रिय का ता अग अग भी कट जाय ता भी उस आग ही बढ़ना
चाहिए—

यह है क्षत्रिय का धम नहीं, शाणित का लक्ष घबरा जाना ।
उसका ता यह वाना ही है निभय अतव से लट जाना ॥

अवयव अवयव भी कट जाए, पर गरज गरज आगे बढ़ना ।

मरना से रिपु को मार मार, जयमन्त्र सतत पढ़ो रहना ॥’

(दूसरी ड़ैकार, पृ० ५७)

प्रत्युत्तर म मोरोपन्त ने कहा, बेटी ! नाना का घाव दो अलुल बड़ा था, न जाने कितना रक्त स्राव हुआ होगा ? यह सुनकर छवीली ने कहा, तात ! मुझे तो सागर को शोणित से भर लड़ने वाले वीरा का इतिहास सुनाने थे । आपन ही शोणित से पिचकारी भर कर फाग खेलने वाले और शरीर पर अस्सी घाव लगने वाले पौरव नरेश का आख्यान सुनाया था तो नाना साहब के लिए इतनी चिन्ता क्या ? मोरोपन्त ने कहा—नाना साहब सोलह बप का बालक है, वह इनना घातक घाव नहीं सह सकता । यह सुनकर छवीली न आवेश पूरित स्वर म कहा कि मालह बप के वीर बालक अभिमयु न चक्रयूह को खण्ड-खण्ड किया था । मारोपन्त ने पुन कहा कि बेटी ! अब बह समय नहीं है । ये क्या आख्यान वीर युग क आदर्श थ । आज ता स्थिति यह है कि—

‘अब अग्नेजा के बमब का, है मूप गगन म चमक रहा ।

जिसस हत हाकर देश-तेज, भूतल म सोया दमक रहा ॥’

(दूसरी ड़ैकार पृ० ६१)

यह सुनकर मनू उत्तजित हा गइ और बोली कि आपने कायर उर की बात कही है । मैं अपन जावन म कणवनी, ताराबाई, हाडारानी और जीजा बाई के आदर्शों का अनुकरण करूंगी । मैं कभी भी विघ्न बाधाओं स डर कर शत्रु के आग नतमस्तक नहीं होऊंगी—

मैं डरने वाली नहीं तात !

विघ्ना के तप्त अगारों से ।

यह सिर न कभी झुक सकता है,

बरी के तीखे वारों स ॥

(दूसरी ड़ैकार पृ० ६२)

पिता पुत्री के उन्मथित परिसवाद स स्पष्ट है कि महारानी लक्ष्मीबाई बाल्यावस्था म ही बारता क जीवन्त आदर्शों को अपने व्यक्तित्व और चिन्तन में आत्मसात कर चुकी थी । आसी नरेश मगाधर राव स विवाह न जान के पश्चात मनू महारानी लक्ष्मीबाई बन गइ । बवाहिक जीवन की साज-सज्जा और हास विलास न सुख समृद्धि के स्थान पर महारानी के मन म एक विचित्र द्वन्द्व की जन्म दिया । वह साचने लगी कि इस भव्य भवन म बठ कर मैं भारत के उद्धार का काई ठोस प्रयत्न नहीं कर सकता । भोगमय जीवन की साज

मज्जा मेरे पीरप का परित्याग करा रही है। मट्टी रंग हाथ पातल सुरंग की बल्गा पकड़ो स बजित कर रह हैं। आज भारत क नम पर काँच मय घहरा रहे हैं। भारत वसुधरा पर भूचाल आया हुआ है। दग क जन-जावन म पतझड़ का निवास है और मैं दासियों के बीच बटी सुगंधक शृंगार प्रसाधना द्वारा रूप सजा म व्यस्त हूँ। जब चट्टिना का अरण्य मुहाग धुल रहा हो तो मैं पाग और बहार का आनन्द कम तूट सकती हूँ—

धुले बहनो का अरण्य मुहाग मचा हा भूतल पर चीत्कार।

नित्य मैं खेतू हँस हस पाग और लूट व्यजग बहार ॥'

(पाँचवीं दृष्टिकार पृ० ६०)

यह सोचते सोचते रानी अधीर हो गई। उसकी बाँह अस्ति धारण की उत्कट आकांक्षा से फड़कने लगी। किन्तु वह विवश थी। पति-आना का निर्वाह और विवाह का धममय वधन उसे इस ओर बढने से रोक रहे थे। महारानी अनुभव कर रही थी कि मानो महल का कण कण नित्य उसका उपहास कर रहा है। इसी अवसर पर तीन दासियों ने प्रवश किया। रानी ने दासियों से उनकी दिनचर्या एवं जीवन लक्ष्य के सम्बन्ध म अनेक प्रश्न किए, जिनके उत्तर मे दासियों ने सीधे साधे शब्दो म कहा कि उनका स्वग अपवग सेवा कम मे निहित है। यह सुनकर महारानी लक्ष्मीबाई ने दासियों को उद्बोधन करते हुए नारी की गौरव गरिमा एवं शक्ति-मत्ता से अवगत करावे उह देश प्रेम की भावना से ओत प्रोत किया। महारानी ने कहा कि क्या तुमने कमा सगर देखा है? कभी स्वदेश अनुराग के लिए कोमल तन को तपाया है? क्या तुमने बीरो की जयकार की है? घोडो पर आरूढ होकर कभी तीरो से लक्ष्य भेद किया है? जादि। महारानी की प्रश्नावली सुनकर दासियों म हय छा गया। उनकी प्रमुत्त चेतना नय उत्कप भाव स भर गई। तभी महारानी लक्ष्मीबाई ने नारी सेना संगठिन करन का उदात्त सक्ल्प किया—

जगाऊंगी फिर नारी जाति कहुँगी सेना का तयार।

घडाकर मुण्डो का नवहार, करुँगी माना का शृंगार ॥

भखे ही हो दुखो का घात, किन्तु उस नम म फहरे कंतु।

चढाऊँगी अरि उर का रक्त बना नारी सेना का संतु ॥

×

×

×

जगाया जा सकता है आज, पुन सतिया का पावन त्याग ।
 लगाई जा सकती है आज, पुन पतिता के उर म आग ॥
 बनाकर मातृ भूमि को मुक्त किया जा सकता है उत्थान ।
 उड़ाया जा सकता है दिव्य अय दशा म अरुण निशान ॥’

(पाँचवीं हूँकार, पृ० ६४ ६५)

महारानी ने निश्चय किया कि मैं विक्रिया को तलवार सिखाकर कुशल
 घुड़सवार बनाऊँगी । जिस तन को य फूलों से सजाती हूँ उसे निपग, कटार
 और भाले से सज्जित कराऊँगी । रनिवासा को शस्त्रागार में बदल दूँगी । रानी
 ने दासियों से यह शपथ ग्रहण करने का कहा कि—

‘शपथ खाआ छोडोगी राग,
 शपथ खाआ कर दोगी त्याग ।
 शपथ लो अर्पित कर निज प्राण,
 जगाआगे इस भू का भाग ॥’

(पाचवी हूँकार, प० ६६)

महारानी की इच्छानुसार दासिया कृत-सकल्प हो गइ । रनिवास के रग
 ढग में इस आपातिव परिवर्तन को परिलक्षित कर महाराज गगाधर राव ने
 महारानी लक्ष्मीबाई से कहा, प्रिय ! तुम प्रतिपल युद्ध विद्या का पान सखियों
 को व्यर्थ ही कराती हो । इनका कर्तव्य तो गृहिणी धर्म का पालन करना है ।
 यह सुनकर महारानी ने रूपनगड की राजसुता, कणवती हाडारानी आदि कुल-
 ललनाओं की वीरगाथाओं को उद्धृत करत हुए स्पष्ट शब्दों में कहा—

दश भक्ति का मानदण्ड है,
 ललनाओं की जीवित शक्ति ।
 ललनाओं की सुदृढ भक्ति ही
 विमल देश की है शुभ भक्ति ॥’

(छठी हूँकार पृ० १०६)

पिता मोरापन्त और पति गगाधर राव से हुए पगिसवादों के उपयुक्त
 उद्धृत अर्थों से स्पष्ट है कि क्या और कुल-ललना दानों ही रूपों में हम
 महारानी लक्ष्मीबाई की वाणी में वीरत्व भाव की आनन्द हृदयियों का उद्धोष
 पान है । काव्य की सातवीं हूँकार (सप्तम मग) में महारानी का मातृ रूप
 द्रष्टव्य है । माता लक्ष्मीबाई अपने नन्ह शिशु का लोरी मुनाते हुए वीर
 भावनाओं की ही अभिव्यक्ति करती है । वह कहती है—

चुटकी बजा बजा कर कहती लाल ! बड़े हाँ जाओ तुम ।
वीर शिवा राणा प्रताप सा कम क्षेत्र अपनाओ तुम ॥
पाथ पुत्र स होकर प्यारे ! नित्य अनीति मिटाओ तुम ।
माता का श्रृंगार पुन हूँ लाल ! प्रसन्न सजाओ तुम ॥
बरछी माल, तीर बटारी फिर ल विहँस जगाओ तुम ।
लाल धरा पर पूव काल सा, गौरव गान सुनाओ तुम ॥

(सातवीं हूँकार, प० १४४)

अपन पुत्र के भावी जीवन के सम्बन्ध में महारानी कल्पना करती थी कि इस गीता पढाऊंगी और बाल्यावस्था से ही घोड़े पर चढना सिखाऊँगी । छोटी सी तलवार थमा कर इस लडना और समरागण में शत्रु दल पर प्रहार करने की कला में पारगण करूँगी । कुहने के वीरा की गौरव गाथा सुनाकर इस सत्य स्वल्प और स्वदेश रक्षण हेतु बलिदान होने के लिए प्रेरित करूँगी । किन्तु दुर्भाग्यवश महारानी की आशाएँ धूल धूसरित हो गयी । महारानी की आँखों का तारा तीन मास की आयु में ही चल बसा । कवि के शब्दों में—

‘हाय ! लाल तीन मास में
शून्य गीत करके जाना ।
बस दीप पूजा से पहल
मिल मिल करके बुझ जाना ॥

(सातवीं हूँकार प० ११७)

आठवीं हूँकार में हम रानी का शावक सन्तप्त पात है । किन्तु शोकातुर महारानी भी भारत के गौरवमय अतीत का ही पुष्प स्मरण कर रही थी । महल के भीत चित्रों को देखकर वह साच रही थी कि यह क्या विधि का विधान है ? जिस भारत भूमि का यज्ञ फारस इरान तक फना हुआ या वही आज होताश पडी है । रास का आगार ब्रजधाम काशी चित्रकूट और वार भूमि मेवाड़ सभी में सनस्त नीरवना का साम्राज्य है । महारानी पदमिनी देवल देवी, कणवता ताराबाई दुर्गावनी, हाडारानी और सारवा की दिव्य मूर्तियों ने महारानी का देशाट्टार के लिए प्रेरित किया । उसने डलहौजी की राज्य हड़पने की नाति को असफल बनाने के लिए दामोदर को गोद ले लिया । दूरदर्शी महारानी ने दामोदर के यथास्वीत के मिस सभी नरेशों को निमंत्रित कर उनसे देश की राजनीतिक स्थिति पर परामर्श करने का अवसर खूँड निकाला । कवि के शब्दों में—

“यज्ञोपवीत का उरसव तो केवल अतिव्याप्त बहाना था ।
अरि की आँखों में धूल भोज भारत को पुन जगाना था ॥

× × ×
रिपु दल की कड़ियाँ तोड़ तोड़, माता को मुक्त कराना था ।
अपना प्रसिद्ध वह गौरव ध्वज, फिर से जग में पहराना था ॥”

(नवीं हूँकार, पृ० १३३-१३४)

दामोदर के यज्ञोपवीत के अवसर पर दिए गए वक्तव्य में महारानी लक्ष्मीबाई की हूँकार पुन सुनाई देती है । महारानी ने ओजपूर्ण शली में कहा कि वीरा ! अब सोने का समय नहीं है । यह समय हृदय के रक्त से मात भूमि के पाद प्रत्यालन का है । भीष्म शिपामह की मूर्ति दृढ़ प्रतिम हो जाओ । कुम्भज ऋषि के समान गण्डुलि पर रखकर हँसते हुए समर मिथु का पान करो । सघन-वन सदृश्य अरि दल को दावानल बनकर ध्वस्त कर दो । हिमालय के शिर पर स्वतंत्रता का राज्यकेतु फहरा दो । यह समय रतिवासो में केलि शीडाया का नहीं अपितु स्वाधीनता सगर में जूझने का है । अपनी वक्तृता को समाप्त करते हुए रानी ने कहा —

जब समय आ गया है रिपु को सगर का पाठ पढ़ाने का ।
माता के मन्दिर में हंस कर अब प्राण प्रसून चटाने का ॥
भूलें न कभी यह वीर वेप, वीरो में भरी जवानी है ।
कण कण में गूँज रही प्रतिफल राणा की गाथा मानी है ॥’

(नवीं हूँकार, पृ० १३६)

महारानी की जोरस्वी वक्तृता सुनकर समस्त राज समाज तमतमा उठा । दीवान जवाहरसिंह रघुनार्थसिंह आदि नरेशों ने अरि दल के अत्याचारों से लोहा लेने की प्रतिष्ठा की । महारानी लक्ष्मीबाई ने इस अवसर पर गगाजल लेकर वीरों की तलवारा का जय मञ्जोच्चार करते हुए अभिप्रेक किया और जय निनाद से सारा गड़ गूँज गया ।

दसवीं हूँकार में कवि ने अंग्रेजी शासन की नृशंसताओं का निरूपण किया है । बीबीगढ़ में मल गौरा का बदला लेने के लिए अंग्रेजों ने द्विजों को पकड़ पकड़ कर उनसे मृतों का शोणित चटवाया । अजनाले में छयासठ बच्चों को एक गुम्बद में बंद करके तउपा-तडपा के मार डाला । फरग्यावाद के नवाब को गुली पर लटवा दिया । अवध में माँ जहाना की लाज से फाग खेला गया । रघुन भी रक्त रजित हो गया । कवि के अनुसार—

‘जाति धम पर गेसा सक्कट, मा बहनो का हा हा कार ।
जलते हुए घरो के भीतर बूढ़े बच्चो का चीत्कार ॥
जलती हुई लाज की होली, जलता मिटता अपना देश ।
अपने बच्चो के शोणित से, रगा हुआ माता का वेश ॥

×

×

×

भूल जायें सब मात्र ऋचाएँ भूलें कलमा और कुरान ।
भूलें सास्य योग का पढना भूलें पोयी और पुरान ॥
भूले हिन्दू जप, तप, व्रत को मुस्लिम रोजा और नमाज ।
मसजिद मे सूखे पगम्बर, मन्दिर मे रोएँ सुरराज ॥’

(दसवीं हूँकार प० १४६ १४७)

महारानी आए दिन अंग्रेजो के अत्याचारो के विवरण सुन रही थी । उसका खून खौलता था । उसने नागिन सी तलवार लेकर प्रतिज्ञा की कि मातृ भूमि का सम्मान बचाने के लिए मैं अरि मुण्डो का अपूव दान करूँगी । जन-कष्ट निवारण हेतु महारानी ने सागरसिंह डाकू से लोहा लेकर उसे हराया और फिर उसका हृदय परिवर्तन कर देश सेवा के लिए बचनबद्ध किया । (ग्यारहवें हूँकार प० १६५) अन्तत महारानी ने निश्चय कर लिया कि अंग्रेजो से लोहा लेना ही होगा । अतः उसने युद्ध सज्जा के हेतु दुग की व्यवस्था और जन गण सगठन का गुरतरकाय अर्हनिशजुटकर प्रारम्भ कर दिया । छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रताप की दुहाई देकर रानी ने जन जीवन में नव चेतना प्रादुर्भूत की । महारानी ने अपने सदेश में कहा—

‘हे भारत के नव गौरव । मेरा सदेश यही है ।
तृण से लेकर भूधर को मेरा आदेश यही है ॥
यह धरणी है धीरो की वीरो की यह जननी है ।
इसलिए आज तन मन से इसकी रक्षा करनी है ।’

(बारहवीं हूँकार, प० १७५ १७६)

महारानी की गतिविधियो पर अंग्रेजी शासन की बड़ी नजर थी । अन्तत महारानी की योजनाओं को ध्वस्त करने के लिए गोरी सेना ने झाँसी के दुग पर घावा बोल दिया । महारानी के लिए यह आक्रमण अप्रत्याशित या अनाहूत नहीं था । अरिदल को देखकर महारानी के सोहित सलाह पर रौद्र रूप साकार हो उठा । वह मन ही मन खिल उठी कि आज जम भूमि को

प्राण प्रमूढ चढाने रणचण्डिका को जी मरकर रक्त पिलाने तथा खप्पर वाली को अरि मुडमाल पहनाने का अपुव अवसर मिला है । महारानी ने शपथ ली कि—

“भासी मेरी है मैं न कभी,
अरि को यह गड लेने दूँगी ।
है मातृ भूमि की शपथ आज,
अरि को न कभी सोने दूँगी ॥”

(तिरहवीं हूँकार, प० १८१)

महारानी के कुशल नेतृत्व, दूरदर्शी युद्ध सज्जा, सुसंगठित सय सचालन और जनता के उच्च मनोबल के कारण अंग्रेजी सेना त्राहि त्राहि कर उठी । कवि के अनुसार—

‘गोरी पलटन शोणित से तर कहती यह कसी रानी है ?
हो गया आज से दुलम अब वह टेम्स नदी का पानी है ॥
अब रौट न पायेंगे घर का यह रानी बनी भवानी है ।
इसके आगे हम लागा की अबला सम बनी जवानी है ॥
ये नहीं जानते भारत की नारी मे अभी रवानी है ।
अब भी यमुना की धारा से सुन पडती वीर कहानी है ॥
तो कभी नहीं हम पद रखत यह वीर देश अभिमानी है ।
नारी मे जब यह शक्ति भरी, तो नर की कौन कहानी है ॥”

(तिरहवीं हूँकार, पृ० १८८)

और इस प्रकार महारानी विजय थी को वरण करने ही वाली थी कि दो गावा की जागीर प्राप्ति के लोभ में देशद्रोही दूल्हाजी और पीर अली ने मध्यरात्रि के समय अंग्रेज सेनापति रोज को गड का सम्पूर्ण रहस्य बता दिया तथा दुग द्वार खोलने का अधय कृत्य करना भी स्वीकार कर लिया । इसी बीच स्टुअर्ट नयी सेना लेकर आ घमका । शत्रु दल ने पडयन्तकारी योजना के अनुसार दुगद्वार से ही गड पर भयकर आक्रमण किया और फाटक को चूर करती हुई सेना अन्दर प्रविष्ट हो गई । अंग्रेजों की भयकर गोलाबारी से गड के भवन अस्तबल, पुस्तकालय, मुहल्ले दूकानें धू धू कर जलने लगे । महारानी के वीर सैनिक अरिदल को गाजर मूली की तरह काट रहे थे । रक्त के परनाले बह रहे थे । महारानी रौद्र रूप धारण किए शत्रु वाहिनी का सहार कर रही थी । कवि के शब्दों में—

“रानी अरि गदन काट काट,
उड़ रही पवन म फर फर, फर ।
लप लप करती असि जिह्वा से,
शोणित बहता था तर तर, तर ॥’

(पद्महवीं हुंकार, प० २११)

शत्रु सेना समुद्र की भांति उमड़ रही थी । एक के बाद एक गढ़ के मोर्चे टूटते जा रहे थे । कुशल तोपघी गोल खाँ के निधन से महारानी को भयकर आघात लगा । शत्रु ने सब ओर से गढ़ में प्रवेश पा लिया, तो भी रानी अधीर नहीं हुई । उसने कहा कि विधाता हमसे वाम है और जयलक्ष्मी दूर है । बचे हुए वीर सैनिकों को गढ़ के गुप्त पथ से बचकर निकल जाना चाहिए और शत्रु को परास्त करने की नयी योजना बनानी चाहिए । मेरे तन को शत्रु स्पर्श भी नहीं कर सकता । मैं स्वयं किले के बाह्य मण्डार को आग लगा कर भस्म हो जाऊँगी —

है भरा हुआ बाह्य से इस वीर किले का वक्षस्थल ।
जिससे रिपुदल की छाती में घडकन होती रहती प्रतिपल ॥
अब जाकर उसमें आग लगा, मैं स्वयं भस्म हो जाऊँगी ।
युग के बिछुड़े निज पितरों के पत्न्यव्रज में मिल जाऊँगी ॥

(पद्महवीं हुंकार, प० २२२)

यह सुनकर झाँसी दुर्ग की रक्षाणी की घम पुरोहित ने कहा कि जिस महारानी ने स्वराज्य की बेटी पर मर मिटने का संकल्प लिया है उसे इस प्रकार कायरो की भांति प्राण बलि नहीं देनी चाहिए । यद्यपि दिल्ली विजित हो गई है कानपुर का भी पतन हो गया है किन्तु विध्व अवध और महाराष्ट्र अभी स्वतंत्र हैं । इन प्रदेशों में शक्ति संगठन करके शत्रु से फिर लोहा लेना चाहिए । पुरोहित ने परामश दिया कि गढ़ के गुप्त मार्ग से नहीं अपितु शत्रु सेना को घेरते हुए महारानी यहाँ से बचे हुए सैनिकों के साथ प्रस्थान करे और कालपी में पेशवा की सेना को जूझने के लिए समझद किया जाय । महारानी ने घम पुरोहित और सेनापतियों के परामश के अनुसार गढ़ को कुशलता से पार किया और पथ के संकटा को भौलती हुई कालपी पहुँची । महारानी के कालपी में पत्न्यव्रज करत ही मातृभूमि की स्वन प्रता की कल्पना वहाँ के जन-जीवन में जाग उठी । जन जन में देश प्रेम और जातीय स्वाभिमान जाग उठा । कवि के शब्दों में—

'जग उठी प्रजा नवीन भाव मुम्करा उठे ।
एक साथ ही सहस्र ओठ फर फरा उठे ॥
जग उठे स्वजाति के दवे व्रती जवान भी ।
जग उठे स्वतन्त्र आय धाम के निधान भी ॥

× × ×

जग पडा स्वदेश प्रेम, तरु पवन, पहाड मे ।
जग उठी नवीन शक्ति बाय हाड हाड मे ॥
जग पडी स्वतन्त्र शक्त सिंह की दहाड से ।
जग पडा त्रिपुष्प स्वस्ति मन्त्र की पुकार से ॥'

(उत्तरीसवीं हूँकार, प० २१३)

कालपी नगर के जन-जन और कण कण में महारानी ने स्वदेश प्रेम का महान् मन्त्र फूँक लिया । महारानी ने कहा कि स्वदेश प्रेमिया सिंहाद करते हुए बढो । मत्स्य देह का मोह त्याग कर सत्य साधना में जुट जाओ । सामने खड़े पहाड शृंग को धूल कण समझ कर रौंद दो । काल के कराल वक्ष पर सहय चढ़ जाओ । मत्त मिधु गजना को अपना गान मानकर प्रचण्ड वायु और प्रलयकर रुद्र के समान शत्रु पर टूट पडो । स्वधर्म के प्रकाश और स्वदेश की ध्वजा को उड़ाने के लिए निरन्तर बढते रहो । महारानी ने हूँकार किया कि—

'रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा बनो बढो ।
टोक दे नगेन्द्र तो प्रचण्ड वज्र सा बढो ॥
सामने अनीति ही कडी कडी मरोड दो ।
सामने कुरीति को तृणालि तुल्य तोड दो ॥

× × ×

कमवीर हो प्रसन्न कम क्षेत्र में बढो ।
धमवीर हो प्रमन्न धम क्षेत्र में बढो ॥'

(उत्तरीसवीं हूँकार, पृ० २५४)

महारानी ने पुन कहा कि यदि देश का जवान झुक गए तो देश ही झुक जायगा । यदि जवान रुक गए तो स्वदेश रुक जायगा । जवानों के शस्त्र रखन ही देश का गौरव और स्वामिमान धून में मिल जायगा । इसलिए—

“इसलिए महान यज्ञ है विलास त्याग दो ।
नाशवान है सुरग मोहपाश त्याग दो ॥
एक हो बढो जयी । सुकीर्ति ही महान है ।
आज देशव भुचो । स्वधम ही महान है ॥”

(वही प० २१५)

महारानी के अमर सदेश ने कालपी के जन-गण में स्वदेश प्रेम का मधुर गान गुंजा दिया । नौजवानों ने कृपाण लेकर मातृ भूमि रक्षण की शपथ ली । उमर लुहारीगढ़ को जीतने के पश्चात् सेनापति रोज के नेतृत्व में अग्रजों सेना ने बुदेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया । कालपी में लोमहृपक युद्ध हुआ । बुदेलखण्ड के नौजवानों ने अद्भुत शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया । महारानी समर भवानी बनी हुई कालपी युद्ध का कुशल संचालन कर रही थी । वह दाता में घोड़े की लगाम दबाकर दोनों करों में कृपाण धारण किए हुए रण मत्तवाली चण्डिका की भाँति अरि मदन कर रही थी । बीच-बीच में अरि-यूद्ध को खीरती हुई महारानी वीरों के मध्य उपस्थित होकर उनमें प्राणोत्सम का महामंत्र फूँक रही थी । रानी कहती थी—

“क्या देख रहे हो हे वीरों ! रणभूमि नहीं सोने की है ।
भारत जननी का पद पक्षज, अरि शोणित से घोने की है ॥
इसलिए बढो चिंता न करो रचक इन नश्वर प्राणों की ।
बैरी की छाती पर गरजो कुछ भीति न हो अरि वाणों की ॥
धरि की तोपी के मुँह में ही विकराल बाहु दो अभी डाल ।
अपनी सेना के सम्मुख अब रुक जाये आकर महाकाल ॥

(धक्कीसवीं हूँकार प० २६४)

महारानी की आग्नेय हँसृति से अनुप्रेरित वीर काली के दूतों के समान प्राणों का मोह त्याग कर दुग्ध गोलों की मार में भी आगे बढ़कर प्रहार कर रहे थे । बुदेलखण्ड की मन्दिनी लाशों से पट गई आकाश प्राणों से मर गया और गोलों के गजन से पवन जजरित हो उठा । रणधीरा की भीषण लतकारों से निशाए भी कम्पित हो गई । युद्ध क्षेत्र का यह नाटकीय परिवर्तन जगत्कर अंधेज सेनापति रोज भी घबड़ा गया । इसी बीच स्टुअट नयी विशाल वाहिनी लेकर आ पहुँचा । रानी को यद्यपि विनाय की आशा थी किन्तु विशाल वाहिनी के समक्ष वह विवश थी । रानी का तन घावों से जजरित हो रहा था । घोड़े के शरीर से भी शोणित क्षर रहा था । रानी फिर भी

निराश नहीं हुई। वह अमराई म' बैठकर अपने पाँचों सरदारों के साथ आगाभी युद्ध की योजना बना रही थी कि सूचना मिली, पुन शत्रु ने भयकर आक्रमण कर दिया है। रानी ने कहा कि आज अतिम सग्राम होगा। अत अपने पुत्र को वीर कुंवर रघुनाथ सिंह को सौंपकर उसने कहा कि—

“यदि जयलक्ष्मी ही रूठ जायें,
तो सुत का प्राण बचा लेना।
अरि से छिप दक्षिण भारत में,
रक्षित इसको पहुँचा देना ॥”

(बाईसवीं ठूँकार प० २६०)

यह कह कर राजमवानी ने जैननी का जय त्रयकार किया। इसी बीच महारानी की सखी मुन्दर अस्तबल से नया चचल घोड़ा ले आयी जो रूप, रंग और फुर्ती में बेजोड़ था। घोड़े को देखने ही रानी ने कहा कि यह तो अडियल घोड़ा है। इतना समय नहीं था कि घोड़ा बल्लकर लाया जाता अत रानी उसी घोड़े पर सवार होकर आजादी के दीवाने सरदारों को साथ लिए शत्रुओं पर दूट पड़ी। भीषण तोप के गोली की अंतदेखी करके रानी दोनों हाथा से तलवार चलानी हुई अरि-मुण्डों को काट-काट कर धरती पाट रही थी। रानी के केवल चार ही साथी भेष बधे थे किन्तु फिर भी वह निर्भीकता से लोहा लेती हुई आगे बढ़ रही थी। इतने में रानी के बलस्थल के नीचे सहीन का प्रहार हुआ। इसी बीच घोड़ा अडकर खड़ा हो गया और रानी की बायीं जघा पर गोली लगी। रानी फिर भी जूझ रही थी। इसी बीच रानी पर पीछे से असि प्रहार हुआ जिसमें उसके भिर का बायाँ भाग नेत्र समेत फट कर गिर गया। अब तो विकराल कालिका के समान रानी ने दो प्रहार कर रहे गोरों को काट दिया और जैसे ही लडखड़ा कर घोड़े से गिर रही थी कि रघुनाथसिंह ने रानी को बीच में ही थाम कर अपने घोड़े पर उठा लिया। रघुनाथसिंह महारानी को उसी दशा में लेकर बाबा गंगादास की कुटिया पर छिपाते छिपाते पहुँचा। रानी की सास धीरे धीरे चल रही थी उसके होठ हिल रहे थे। रानी के उर में मर्मघात था और जीवन-शेष का प्रकाश मन् होता जा रहा था। कवि के मन में महारानी मानो सोच रही थी कि—

अमर शौर्य का अम्बर में फहरगा अरुण निशान ?
क्या स्वातन्त्र्य भवन का फिर से होगा प्रभु ! उत्थान ?

×
 भूँज उठगा कण कण में है विषय पूज्य यह देग ?
 चमकेगा स्वातन्त्र्य भवन के अंगित म पर देग ?

(महाप्रस्थान सर्ग पृ० ३०७)

इसी अवसर पर बाबा गंगादास ने महारानी के मुग में गंगाजल डाला जिसका पान करते ही रानी का जीवन-दीप अनन्त-तम में सीन हो गया और पार्थिव शरीर प्रचण्ड पावक की अग्नियों में समा गया। कवि के अनुसार चिता के स्फुलिंगों में मातों दत्त हित में तन-मन धन समर्पित करने वाली वीराङ्गना का यशस्वी स्वप्न ज्योतिर्मय होकर आविर्भूत हो रहा था।

इस प्रकार झाँसी की रानी' महाकाव्य में भारतीय इतिहास की एक ऐसी नारी के चरित्र का महत्वाकन हुआ है जिसका जीवन आघात आग्नेय द्वैष्टियों से परिपूण था। कन्या, कुमारी, कुल सलना, माता, राजमाता आदि नाना रूपों में महारानी लक्ष्मीबाई ने अनन्त शक्ति अप्रतिम शौर्य, अदम्य उत्साह और अपरालेय उत्सर्ग भाव का परिषय दिया। झाँसी की रानी की जीवन गाथा तत्कालीन जन चेतना की प्रातिमन्तता का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। झाँसी की रक्षा के लिए जन गण द्वारा किए गए अपूर्व बलिदान का श्रेष्ठ चित्र इस दृष्टि से उद्घरण्य है—

‘प्यारी झाँसी की रक्षा की वीरो ने सिर की माला से ।
 धनिको ने द्रव्य निधानों से दीनों ने उर की ज्वाला से ॥
 जननी ने बोर सपूतों से सतियों ने अचल मुहाणों से ।
 सलनाबा ने गड रक्षा की निज राग रग के स्थाणों से ॥

(पद्महवीं हूँकार पृ० २८८)

मरण को महोत्सव मानकर वरण करने की अदम्य आकांक्षा सैनिकों में महारानी झाँसी ने ही भरी थी। महारानी ने अपने आत्मोत्सर्ग द्वारा भारतीय जन मानस में स्वातन्त्र्य प्रेम, स्वजातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय-सम्मान का ऐसा चिरन्तन कीर्तिमान स्थापित किया जो भारतीय स्वाधीनता संग्राम में जूझने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना। इस दृष्टि से कविवर श्री श्यामनारायण प्रसाद ने आलोच्य महाकाव्य की रचना करके न केवल महारानी लक्ष्मीबाई के गरिमापूण चरित्र को चिरन्तन बनाया है अपितु जाधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा में भी एक अनुपम काव्यकृति की अमिट छवि की है जो सबका श्लाघनीय है।

‘दमयन्ती’ महाकाव्य

नलोपाख्यान के विकास-क्रम में एक काव्योपलब्धि

'दमयन्ती' महाकाव्य

नलोपाख्यान के विकास-क्रम में एक काव्योपलब्धि

महाभारत के सभी उपाख्यानो में नल-दमयन्ती का आख्यान सम्भवतः सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सुप्रसिद्ध है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—'महाभारत की मूल कहानी कुरु पाण्डव युद्ध है जो सम्भवतः प्राचीन कुरु पाण्डव युद्ध का किंचित परिवर्तित रूप था। परन्तु इस कहानी के इन्द्रगिद अनक प्राचीन उपाख्यान था जुटे हैं, जिन्होंने इस ग्रंथ को सहिता (सप्रहीकृत) का रूप दिया है। इन कहानियों में से कई तो योरोपियन देशों में इतनी प्रिय हुई हैं कि एक ही कहानी के एक ही भाषा में तीन-तीन चार-चार अनुवाद भी हुए हैं। नल दमयन्ती का उपाख्यान ऐसा ही मोहक कथा है जो मूल-कथा से सम्बद्ध नहीं पर योरोप की भाषाओं में कई बार अनूदित हो चुका है। और भारतीय साहित्य के कई काव्या और नाटकों को प्रेरणा दे चुका है। ऐसे उपाख्यानो को योरोपियन पद्धति में महाकाव्य के भीतर महाकाव्य (Epic within Epic) नाम दिया है।^१ अनक विद्वानों ने नलोपाख्यान की भूरि भूरि प्रशंसा की है। श्री एफ० वल्फ ने लिखा है कि— मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि मेरी समझ में कल्याण तथा आवेग की दृष्टि और भावा की कामलता तथा विमोहक शक्ति के ख्याल से नल दमयन्ती का आख्यान अद्वितीय है।^२ राजा नल की कथा भारतीय समाज और साहित्य में सनातन काल से प्रचलित रही है। भारतीय वाङ्मय के प्राचीन और अर्वाचीन ग्रंथों में नलोपाख्यान के कथामूत्र सवत्र उपलब्ध हैं।

^१ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी विचार के प्रवाह पृ० २

^२ वही, पृ० ३

नलोपाख्या का सविस्तार निरूपण महाभारत वनपर्व म अध्याय ५३ से ७६ तक हुआ है। महाभारत के अनिर्दिष्ट कथासरित्सागर,^१ और बहन् कथामञ्जरी^२ आदि ग्रन्थों में भी नलोपाख्यान गूत्र उपलब्ध हैं। वाल्मीकि रामायण में सीता ने अशोक-व्याटिका में राक्षसियों को सम्बोधित करते हुये जो कुछ कहा है उसमें नल की चर्चा आती है। ये कही हैं— दीन हो या राज्यहीन हो जो मरा पति है वही मरा गुरु है। उसमें मैं उसा भाँति आसक्ति रखती हूँ जिस मूय में सुवचला। दमयती जिग प्रारार अपने पनि नपथ (नल) में अनुरक्त थी यत ही मैं इन्वाकुबुल के गिरामणि श्रीराम में अनुरक्त हूँ।^३ मत्स्यपुराण में इन्वाकुबुल के वन में प्रसंग में नल का उल्लेख है।^४ स्कन्दपुराण में भी एकाधिक बार नल का उल्लेख हुआ है। नल जब दमयती को त्याग कर हाटकशर श्रेय पदुंभ और उहाँ के चममुडावी की स्थापना की और उसी के समीप जिस शिवलिंग को स्थापित किया वह नलेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी पुराण में बड़े संक्षेप में कहा गया है कि प्राचीनकाल में वीरसेन के पुत्र राजा नल हुए। वे सबगुण सम्पन्न तथा शत्रुओं का नाश करने वाले थे। उनकी प्राणप्रिय पत्नी दमयती थी जो विष्णु वरेश की कन्या थी।^५ लिंगपुराण में सूर्यवशी राजा ऋतुपण का वंशज करते हुए उनके मित्र

^१ कथासरित्सागर, लम्बक ६, अलवारवती तरंग ६, श्लोक २३७ से ४२४

^२ बहन्कथामञ्जरी, लम्बक १५ श्लोक ३३१ से ३७१

^३ दीनो वा राज्यहीनो वा या मे मर्ता स मे गुरु ।
त नित्यमनुत्तास्मि यथा सूर्य सुवचला ॥
नपथ दमयतीव भमी पति मनुव्रता ।
तथा इमिश्वाकु वर राम पनि मनुव्रता ॥

—वाल्मीकि रामायण, गुप्तर काण्ड, २४ ६ १३

^४ 'नलो द्वावेव विख्यातो वशे कश्यपसम्भवे ।
वीरसेन सुतस्दमनपथश्च मराधिप ॥'

—मत्स्य पुराण, अध्याय १२-५६

^५ स्कन्द पुराण खण्ड ६, अध्याय ५४, ३-४

^६ वीरसेन सुत पूव नलो नाम महीपति ।
आसीत सब गुणोपत सध शत्रुक्षमावह ॥
भार्यातस्य भवत साध्वी प्राणोभ्योऽपि गरीयसी ।
दमयतीति विख्याता विदमधिपते सुता ॥

—स्कन्द पुराण, खण्ड ६, अध्याय ५४-३४

वीरसेन के पुत्र निपद्यपति नल का भी उल्लेख हुआ है।^६ कूर्मपुराण में सूयवशी नल का वणन है।^{१०} अग्निपुराण में भी उल्लेख है।^{११} भागवत पुराण में यदु के पुत्रों में एक 'नल' की भी गणना की गई है।^{१२} शिवपुराण की ज्ञानसहिता में नल का उल्लेख है।^{१३}

नलोपाख्यान को लेकर संस्कृत साहित्य में भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। दशम शताब्दी के प्रारम्भ में त्रिविक्रम भट्ट ने नलचरित्र का लेकर नलचम्पू की रचना की।^{१४} नलचरित्र से सम्बन्धित संस्कृत के महाकाव्यों में श्री ह्य प्रणीत नद्यचरित्र (१२वीं शताब्दी), वसुदेव कवि रचित 'नलोपन्य' (१४ शताब्दी) और वामभट्टकृत नलाम्बुदय (१५वीं शताब्दी) के नाम उल्लेखनीय हैं।^{१५} हिन्दी में जयपुर निवासी पुरोहित प्रताप नारायण जी कविरत्न ने 'नल नरेश' नामक उपरोक्त सर्गों के महाकाव्य की रचना सन् १६६० में की जिसकी भूमिका कवि सम्राट श्री अयोध्यामिह उपाध्याय हरिऔधजी ने लिखी।^{१६} इस प्रकार नलोपाख्यान का महाभारत से लेकर अद्यावधि पुराणा एव काव्य के माध्यम से निरंतर विकास होता रहा है। वस्तुतः नलोपाख्यान प्रेम, कर्तव्य और त्याग की त्रिवेणी है। यह आख्यान

६ 'पुत्रोऽयुतायुषो धीमान् ऋतुपर्णो महायशः ।
दिव्याक्ष हृदयज्ञो वै राजा नल सखी बली ॥
नलो द्वावव विख्यातो पुराणेषु दृढ व्रतो ।
वीरसेन सुतश्चायो यश्चेद्देवाकु कुलाद्भव ॥

—लिंग पुराण, अध्याय ६६, श्लोक २३-२४

१० 'अतिथिस्तु कुशाञ्जने निपद्यस्ततः सुतोऽभवत् ।
नलश्च निपद्यस्यासीत् नमास्तस्मादजायत ॥

—कूर्म पुराण, अध्याय २१

११ अग्नि पुराण, अध्याय २७३ श्लोक ३६

१२ 'यदो सहस्रजित् श्रेष्ठानलो रिपुरितिश्रुतः ॥'

—भागवत पुराण, ६, २६-२०

१३ लिंग पुराण, ज्ञानसहिता, अध्याय ६२

१४ डॉ० चण्डिप्रसाद शुक्ल, नद्यचरित्रगीतन पृ० ५८

१५ वाचस्पति गंगोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८६८

१६ नलनरेश, गंगा प्रकाश, सन् १९६० में प्रकाशित

हमारे जातीय जीवन का गौरव और सांस्कृतिक चेतना का अनन्त स्रोत होने के कारण भारतीय जमानस को प्रेरित करता रहा है और इसालिय विशति शताब्दी में भी नलोपाख्यान काय रचना के लिये बरेण्य हुआ है। श्री ताराचन्द्र हारीत कृत दमयन्ती महाकाव्य की रचना इसका ज्वलन्त प्रमाण है।^{१७}

नलोपाख्यान के विवासाश्रम में 'दमयन्ती महाकाव्य के प्रणयन का अनन्तविध विशेष महत्व है। दमयन्ती महाकाव्य की रचना में नलोपाख्यान की ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए अनेक मौलिक प्रसंगोद्भावनाएँ की गई हैं। दमयन्ती महाकाव्य के कथा विधान में परम्परा की शास्त्रीय रुढ़िय का सफल निर्वाह करते हुए कथा में युगोत्तर परिवर्तन का प्रतिफलित किया है। प्रस्तुत सदर्भ में दमयन्ती महाकाव्य के कथा विधान की इन्ही विशेषताओं को सप्रमाण उद्धृत किया जा रहा है।

सगंधमानुसार 'दमयन्ती' महाकाव्य का कथासार

'दमयन्ती महाकाव्य का सम्पूर्ण कथानक चौदह सर्गों में विभाजित है प्रथम सर्ग का आरम्भ भारत माँ और महाकवि व्यास की ब्रह्मनास होता है। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर की मनोव्यथा का वर्णन है। उन्हें पुरोहित नलोपाख्यान सुनाकर धर्म धारण करने का कहता है। कथारम्भ राजा भीम (दमयन्ती के पिता) के उद्यान वर्णन से होता है जहाँ दमयन्ती सखियों सहित सरोवर में स्नान करके शृंगार करती है। तभी कशिकी राजा नल के यशोवत की चर्चा करती है जिसे सुनकर दमयन्ती के हृदय में प्रेम भाव का उद्वलन प्रारम्भ होता है। द्वितीय सर्ग में नक्षत्र राशय के अपार वनवर्ष का वर्णन है। इसी सर्ग में नारदजी दमयन्ती के सोदय और गुणों का वर्णन कर राजा नल के हृदय में प्रेमाकुर पल्लवित कर देते हैं। तृतीय सर्ग में राजा नल मृगया के समय एक घायल हंस को प्राणदान कर मन्त्री स्थापित कर लेते हैं। हंस राजा नल का प्रेम सदेश लेकर दमयन्ती के पास कुन्दनपुर जाता है। चतुर्थ सर्ग में राजहंस नल के पौरुष शील सोदय आदि गुणों की प्रशंसा दमयन्ती से करता है जिसे सुनकर दमयन्ती प्रेम विह्वल हो नल के पास प्रेम सदेश प्रेषित करती है। पंचम सर्ग में नल सस्य दमयन्ती

^१ दमयन्ती आ माराम एण्ड सास दिल्ली से सन १९५७ में प्रकाशित।

स्वयम्बर के लिये प्रस्थान करते हैं। माग मे इन्द्रादि देवता धर्म पूवक नल से वचन लेत हैं कि वह दवदूत बनकर दमयती के पास जाय और उसे देवो के साथ परिणय करने के लिय तयार कर। नल खिन्न मन चल देत हैं। पष्ठ सग म नल कुन्दनपुर पहुँचकर दमयती को देवों से परिणय करने क लिये कहत हैं, किन्तु दमयती नल से ही परिणय के लिये वृत सकल्प रहती है। देवता नल पर प्रसन्न होकर उसका सहायक होने का वरदान देते हैं। सप्तम सग मे दमयती स्वयम्बर और उसके नल से परिणय का वणन है। यहा कलि नल दमयती के विरुद्ध देवताओ को भडकाता भी है। नवम सग मे नल छूत जीडा म अपने अनुज से सब बुद्ध हार कर पुन-पुत्री को विदम भेजकर स्वय चौट्ट वर्षों क लिय वनगमन करत हैं। दशम सग म नल दमयती की वन गमन की यातनाओ का वणन है। विदम नगर क समीप दमयती को एकात साती छोडकर चल देता है। एकादश सग मे दमयती के सर्तीत्व क प्रभाव से व्याध भस्म हो जाता है। अतत अनेक आपदाएँ सहती हुई दमयती चदि जनपद मे अपनी मौसी क पास पहुँच जाती है। द्वादश सग म नागराज कर्कटक का दवाग्नि से बचाता है। कर्कटक राजा नल का काया परिवतन की जडी बताता है। नल रूप बदलकर अयोध्यानरेश के यहा ह्य शाला के अध्यक्ष बनकर रहन लगत हैं। त्रयोदश सग मे दमयती कुन्दनपुर आकर अपन परिवार मे मिल जाती है। अतत नलानुज भी आकर धमा याचना करता है। चतुदश सग मे दमयती नल का पता लगान के उद्देश्य से स्वयम्बर आयोजित करती है। साकेतराज ऋतुपण को दमयती के स्व यम्बर की सूचना एक दिन पूव ही प्राप्त होती है। बाहुक (नल) ऋतुपण को समय से पूव ही कुन्दनपुर रथ मे पहुँचा देता है। वहाँ स्वयम्बर की कोई व्यवस्था न देख ऋतुपण को निराशा होती है किन्तु नल को सदेह हो जाता है कि दमयती ने कही अश्वपरीक्षा के निमित्त स मुझे पहचानन के लिय नही बुलवाया। अतत रहस्योद्घाटन हा जाता है। दमयती भाव विह्वल होकर पुत्री सहित नलस मिलता है। नलानुज भी धमा याचना करता है। साकेतराज और भीम भी भात हैं। नलनरेश दव कृपा क लिय उनका गुणानुवाद करते हैं।

‘दमयती’ महाकाव्य के कथा विधान मे मौलिक प्रसंगोद्भावनाएँ

‘दमयती महाकाव्य के उपयुक्त कथासार को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दमयती महाकाव्यक रचयिता न कथाचयनकी दृष्टि से महाभारत और ह्य प्रणात नपथीय चरित्रम को आधार रूप मे ग्रहण किया है। काव्यारम्भ

मे ही महाभारत के प्रणेता व्यासजी की बदना करके कवि ने उनसे प्रति आभार प्रकट किया है—

‘धन्य महाकवि व्यास ! प्रणति तुमको शत शत है ।

धन्य लेखनी मुने, तुम्हारी विश्वाहत है ॥

आपग्रथो की आधारभूत सामग्री के रूप में ग्रहण करते हुए श्री हारीतजी ने मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं तथा नवीन कथाप्रसंगा में यथोचित युगीन परिवर्तनों द्वारा अपनी कल्पना शक्ति एवं सृजन सामर्थ्य का अपेक्षित परिचय दिया है । इस दृष्टि से दमयती महाकाव्य के निम्नोद्धृत स्थल उल्लेखनीय हैं —

१ बाणारम्भ में मगलाचरण महाकाव्य रचना की शास्त्रीय रुढ़ि है जिसे वर्तमान युग के महाकाव्या में किसी न किसी रूप में स्थान दिया जाता है । दमयती के कवि ने बाणारम्भ भारत भू की बदना से करके राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है । कवि के शब्दों में—

धन्य धन्य ह अम्ब ! भारत भू तुम हो धन्य

है मा ! तुमसी नहीं विश्व में कोई अर्थात् ।

मुकुट तुम्हारा हिम गिरि से शोभित होता है

पाद तुम्हारे स्वयं अम्बु अबुधि धोता है ।

(पृष्ठ १)

२ चतुर्थ सर्ग में हस द्वारा नल का दमयती को परिचय दिये जाने वाले प्रसंग में श्री मौलिकता का परिचय कवि ने दिया है । महाभारत में हस सीधे सीधे शत्रु के विना किसी भूमिका के इतिवृत्तात्मक शली में नल का परिचय देता है । यथा—

‘मानुषागिरि कृत्वा दमयती मयाश्रवीत ।

दमयति नलो नाम निपथेषु महोपति ॥ (वनपर्व ५३/२६)

‘दमयती’ महाकाव्य में दमयती ज्योंही हस को पकड़ने आती है कि हस ‘यजनापूण शली में कहता है —

हां मुझे पकड़ना व्यर्थ बताता हूँ मैं

जो तुम्हें पकड़ना उचित जताता हूँ मैं ।

सुन्दर ! नल नृप का हाथ पकड़लो जाकर

हो जाओ सुमुखि ! कृताय उह तुम पाकर ।

अगणित हैं उनके भक्त्य हस मुझ जैसे,

रहते हैं उनके पास विहग वर जैसे । (सर्ग ४ पृ० ५)

३ पल्लव म राजा नल के दमयती के पास देवदूत बनकर जाने वाले कथा प्रसंग मे पुन भीतिक उद्माधना दृष्टिगत होनी है । महाभारत मे नल के अत पुर पहुँचने पर दमयती प्रश्न करती है कि हे सुन्दर ! मेरे मदन को दीप्त करने वाले तुम कौन हो ? हे निष्पाप ! तुम देवता की तरह यहाँ आये हो, मैं तुम्हारा परिचय पाना चाहती हूँ—

“कस्त्व सर्वानवद्याग्म मम हृच्छ वदना ।

प्राप्तोऽग्न्य मत्तदवीर ज्ञातु मिच्छा मितेऽनप ॥”

(वनपर्व, ५५/२०)

प्रत्युत्तर मे नल एक मोले माले व्यक्ति की भाँति कह देते हैं कि मैं नल हूँ और यहाँ देवदूत बनकर आया हूँ । इंद्र, अग्नि, वरुण और यम ने तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा से मुझे तुम्हारे पास भेजा है । यथा—

“नल मा विद्धि कल्याणि देवदूत मिहागतम् ।

देवास्त्वा प्राप्तुमिच्छन्ति शक्रोऽग्निवरुणोयम ।”

(वही, ५५/२२)

महाभारत का यह सवादस्थल बडा हास्यास्पद है । एक प्रेमी अपनी ही प्रेमिका को दूसरे को वरण करने की बात कहे, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह बात बडी असंगत लगती है ।

इसी प्रसंग को ‘दमयती’ महाकाव्य के रचयिता ने बडे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है । यहा नल अपने को देवदूत ही कहते हैं और अत तक देवदूत धम का निवाह भी करते हैं । वे एक ओर इंद्रादि देवो का विस्तार से वैभवपूर्ण परिचय देते हुए जहाँ कर्त्तव्यपालन करते हैं वही गुप्त भेष मे अपने प्रति दमयती की निष्ठा का भी परिचय पा लेते हैं । दमयती के निग्नोदधृत शब्द नल को निरचय ही प्रभावित करते हैं—

“आर्षाग्रो वा यह कम नहीं, सकल्प छोडना धम नहीं ।

वर चुकी जिसे वे एक बार, जीवन भर उसको करें प्यार ।

×

×

×

सुख स्वग न मुझको लुमा सकें आवें देखें वे सभी थकें ।

मैं मोद मान भर सकती हूँ प्रण भग न पर कर सकती हूँ ।

दे कर तन मन धन रूप मूल्य, पूजा देवो को पिता तुल्य ।

वे वर न मुझे क्यों त्यों देते, सब पिता सुताहित ज्यो देते ।”

(सग ६, पृ० १०८ १०६)

इस षड सकल्प भाव को देखकर नल अपने आप को छदमवेश से मुक्त कर देते हैं । यहाँ हम नल को कर्त्तव्य पथ से च्युत नहीं कह सकते । वस्तुत

नल के चरित्र का यह मानवीय पक्ष है। जहाँ मनुष्य प्रेम और करुणा से विप्लवित हो जाता है। यहाँ यदि नल प्रकट न होने तो उनका चरित्र मानवीय न होकर दबीब कीटि में परिगणित होता। जो वर्तमान युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप न होता।

४ अलोक्य महाकाव्य के सातवें सग में दमयती के स्वयम्बर का भी योजना पर्याप्त मौलिकतापूर्ण है। महाभारत में कहा गया है कि दमयती को नल के समान आकृति वाले पाँच पुरुष दिखाई देते हैं—

दश भमी पुरुषान पञ्चतु-यावृ-नीनिह (वही, ५७/१०)
दमयती तिस्रे भी देयती है नल ही समझती है—

य य हि दहणे तेषा तेष मे ने नल नृपम् ।' (वही ५७/११)

ऐसी परिस्थिति में दमयती देवों से अपना रूप प्रकट करने की प्रार्थना करती है जिससे वह नल को पहचान सके।^{१६} श्री हृष प्रणीत 'नपथ चरित्र' में देवता दमयती की प्रार्थना पर उस सरस्वती के श्लोक का श्लेषमय अर्थ समझन की बुद्धि प्रदान करते हैं और वह पाँचों नल को निपथेश्वर समझ लेती है।^{१७}

दमयती महाकाव्य में स्वयम्बर में राजाओं का परिचय दमयती की सहेली केशिनी देती है। जो महाभारत और नपथचरित दोनों से मिलता है। दूसरे नल मुख्य पाँच आवृत्तियों को देखकर दमयती उनकी चाल समझ जाती है। वह प्रथम तो देवों की ममस्पर्शी शब्दों में प्रार्थना करती है—

मैं सवणा सन्भाव से प्रभु पूजती तुम को रही
हे देव ! फिर क्या विघ्न करता, था तुम्हें समुचित कही !

× × ×

जग याद करना है तुम्हें जब विघ्न पडते हैं वहीं
अब याद मैं किम का करूँ जब विघ्न हो तुम स्वय ही ।'

(सग ६ पृ० १३३)

किन्तु जब देवताओं ने दमयती को आतङ्काणा न सुनी तो कारुण्य के स्थान पर क्रोध के आदेश में भर कर वह जाने लगी—

^{१६} महाभारत वनपर्व ५७ १६ २१

^{१७} नपथचरित्र टीका सहित १४/६ (निगणसगर प्रेस बम्बई सन १९४२)

'रे पातकी । देवी अहिल्या सी तुम्हीं ने भ्रष्ट की,
 कितनी न जाने, साध्वियों की साधुता है नष्ट की ।
 कब देख कर सौंदर्य तुम निज पर नियंत्रण रख सके,
 मैं प्राण तजती हूँ अभी पर वचन तज सकती नहीं ।
 पीछे मरूँगी किन्तु पहले शाप मैं दूँगी तुम्हें,
 वाली मसी से जो तुम्हारे, मुख पुते दीखें हमे ।'

(वही पृ० १३९)

दमयती ने यहाँ तक कहा कि तुम अपनी सुता से विवाह करना चाहते हो । कपट रूप धारण करके मेरा अपहरण करना चाहते हो । यह विश्व जल जायगा, तुम्हारी श्वास से ही तुम्हारा अमरत्व गल जायगा । जब पिता ही पति बनना चाहे तो यह घरा कसे सहगी जल कर राक्ष हो जायगी ।' यह कह कर भूखी सिंही की भाँति दमयती वरमाला तिये जसे बढी ती देखा कि निपघराज (नल) अकेल ही बठे हैं । उस क्या प्रसंग की आयोजना म कवि ने न केवल मौलिकता का परिचय लिया है वरन दमयती की महानता किंवा भारतीय नारी के विराट गौरव का भी म्वाकन किया है ।

५ चतुदशसग म बाहुकके वेश म नलके राजा ऋतुपण के साथकुन्दनपुर आने पर केशिनी द्वारा रहस्योदघाटन के प्रसंग को भी यथेष्ट परिमार्जित करके सयोजित किया है । महाभारत म (वनपव अध्याय ७५ ७६) केशिनी तीन वार जाकर सीने शब्दो मे कहती है कि आप अयोया से चलकर यहा कितने समय मे पहुँचे । दमयती महाकाय म केशिनी प्रथमवार म ही नलको चतुरप्रनावली करके पहचान लेती है । केशिनी नल के परिवार आदि के विषय मे पूछती है । (सग १४, प० २६७)

इसी प्रकार के अ य अनेक स्थलो पर भी 'दमयती' महाकाव्य के प्रणेता ने कथाविधान मे नवीन प्रसगादभावनाएँ की हैं । धार्मिक स्थला की कवि को पूरी पहचान है और उनकी योजना म वह पण सफल भी रहा है ।

शास्त्रीय विधान

जहाँ तक कथानक के शास्त्रीय विधान का प्रश्न है, दमयती महाकाव्य के कथानक का मूल्याकन कायशास्त्रीय लक्षणो के आधार पर भी सुविधा पूर्वक किया जा सकता है । इस महाकाय की कथावस्तु इतिहासपुराण प्रसिद्ध नलोपाख्यान है । अस्तु, अनुत्पाद्य है । कथानक म यत्र तत्र नवीनप्रसगोद-

१ दमयती सप्तम सग, पृ० १३७

भावनाएँ करके भी कवि ने कथानक की ऐतिहासिकता को कहीं भी खचित नहीं किया है। कथानक के फल का अधिकारी राजा नल है, इसलिए आधिकारिक वस्तु नल दमयती की क्या है। नारद आगमन, हंस का प्रेम दूतत्व देवताओं एवं कर्कटक का मिलन कलि आदि के कथानक प्रासंगिक वस्तु के अन्तर्गत आते हैं जो मूल कथा के विकास में सवथा सहायक रहे हैं। कथानक में सधियों और कार्यावस्थाओं की स्थितियाँ स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। पाश्चात्य परम्परा की दृष्टि से दमयती महाकाव्य के कथा विकास क्रम में प्रथम दो सर्गों में नल दमयती का प्रेमाक्षेपण 'प्रारम्भ' तृतीय से सप्तम सर्ग तक हंसदूत के द्वारा दोनों के प्रथम सम्बन्धों की पुष्टि विकास अष्टम सर्ग में विवाह एवं पुत्र प्राप्ति 'चरमसीमा' नवम से त्रयोदश सर्ग तक दधी प्रकोप एवं विद्रोह आदि घटनाएँ 'निर्गत' तथा चौदहें सर्ग में पुनर्मिलन 'अंत' नामक स्थितियाँ द्रष्टव्य हैं। कथानक का सर्गक्रम घटनावृत्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। काव्य का नामकरण एवं सर्ग सख्या शास्त्रीय दृष्टि से सवथा उपयुक्त है। कथानक में घटनाक्रम का विकास स्वाभाविक है। राजा नल के जीवन का बहुदास समाविष्ट होने के कारण कथावस्तु का रूप व्यापक एवं महाकाव्योचित गरिमा के अनुरूप है। कथानक में प्रकृति पुरा राज्य आदि के विविध वर्णन भी हैं।

इस प्रकार नलोपाख्यान के विकास क्रम में हारीत वृत्त 'दमयती महाकाव्य' का प्रणयन निश्चयतः महत्त्वपूर्ण है। दमयती की रचना द्वारा जहाँ एक ओर प्रेम कृत्य और त्याग व आदर्शों से प्रेरित एवं जीवन प्रेरक कथा के क्रम में एक नवीन अध्याय जुड़ता है वहीं कथा विधान में मौलिक एवं नवीन प्रसंगोद्भावनाओं ने नलोपाख्यान की सृजन सभावनाओं एवं युगवरेण्यता को भी सिद्ध किया है। इस दृष्टि से 'दमयन्ती महाकाव्य' की रचना एक अमिदानीय प्रयास कहा जायगा। प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु के अभाव के रूप में जिस बिंदु की ओर मैं सचेत करना चाहूँगा वह यह है कि दमयती के रचयिता ने अति प्राकृत एवं अलौकिक कथाप्रसंगों को युगीन सन्दर्भों के अनुरूप सशोषित विधा बुद्धिप्राह्य नहीं बनाया है। इस प्रकार के कथाप्रसंगों में देवों के वरदान अभिशाप एवं कर्कटक मिलन आदि उल्लेखनीय हैं। इस दृष्टि से हरिऔध प्रणीत 'प्रियप्रवास' के कृष्ण द्वारा गोवद्धन धारण एवं कलियनाग दमन जैसे प्रसंग स्मरणीय हैं जिन्हें बुद्धिप्राह्य रूप में हरिऔध जी ने समोजित किया है। दमयती के कवि ने कथाप्रसंगों की पौराणिकता के प्रभाव को उपयुक्त

नहीं समझा है। समझन इसके मून मे कवि की पीराणिक कथाओ के प्रति अनन्य आस्था विद्यमान रही है।

महाकाव्यत्व

‘दमयन्ती’ महाकाव्य म रूढ काव्यशास्त्रीय लक्षणो का सामान्यत निर्वाह हुआ है किन्तु साग्रह या प्रयत्नज नहीं, स्वभाविक रूप मे। सम्पूर्ण काव्य १४ सर्गों मे विभाजित है। कथानक पुराणसम्मत है। नाटकीय सचियों की सफल योजना है। बीच बीच मे अवान्तर कथा प्रसंग भी प्राप्य हैं। महाकाव्य का नायक राजकुलीन नलनरेश है। यद्यपि दमयन्ती के चरित्र विश्लेषण की दृष्टि प्रमुख होने से नायिका का व्यक्तित्व ही अधिक मुखरित हुआ है। प्राकृतिक सौंदर्य और जीवन के विभिन्न व्यापारा और परिस्त्रितियों का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। पीराणिक इतिवृत्त होने के कारण अतिप्राकृत कथानकत्वो की भी अधिकता है। अनुकार विधान भाव मौल्यत्व रूप सगठन और शिल्प प्रयोग परम्परित और नवीन दोनों हा हैं। मंगलाचरण, छन्द विधान (सर्गांन छन्द परिवर्तन) चतुर्वर्ग फन प्राप्ति, सज्जन-स्तुति दुजन निन्दा आदि महाकाव्य रुढियों का भी विधिवत पालन किया गया है। रस परिपाक और भाव चित्रण कौशल भी सुन्दर बन पडा है। कर्ण रस के कतिपय प्रसंग बडे हृदयद्रावक हैं। सारांशतः ‘दमयन्ती’ महाकाव्य काव्यशास्त्रीय लक्षणो की दृष्टि से सफल रचना है। किन्तु किसी भी महाकाव्य का उपयुक्त मूल्यांकन परिवर्तित काव्यशास्त्रीय मानदण्डो और युगीन काव्यादर्शों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं, अपूर्ण है। आज के महाकाव्यकार का दायित्व युग जीवन की चेतना को आत्मसात कर जीवित कथानक महत्त्वपूर्ण नायक गरिमामयी उदात्त शली और गम्भीर रचना शिल्प के माध्यम से महत्प्रदेश्य की सिद्धि है। हमारे युग-जीवन की समस्याओ का सांस्कृतिक समाधान और युगीन प्रश्नो का निदान आज के महाकाव्यकार की चेतना के मूल स्वयं होने चाहिए। विनाश-युग के आणविक धमक म का र रचना एक सांस्कृतिक प्रयास बनकर ही अपना अस्तित्व रक्षण कर सकती है। अथवा प्राचीन आग्रयणा की पुनरावृत्ति आत्म प्रवचना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। काव्य का सम्कृति की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित बनने के लिए महनी काव्य प्रतिभा चलनती सृजन प्रेरणा, समाज चेतना और जीवन पाषना की आवश्यकता होनी है जैसी कि कविवर जयशंकर के व्यक्तित्व में थी। इसीलिए वर्यय-युग की प्रस्त और परमाणु-युद्ध के भय से आत्रान्न मानवता को सामान्यनी महाकाव्य के माध्यम से समरसता

धीर आत्म-राज का धमर गन्धेग प्रभाव कर सर । हम ज्ञानी प्रतिमाना के आधार पर हमयानी के महाकाव्य का परीक्षण करेंगे । मू-यांका के लिए हमारे पास सीधे प्रमुग रचना उपकरण है— कथात्मक विनय विधि और व्याख्यान । प्रथम यह है कि इन उपकरणों के संगठन में हारीशची ने किम सीमा तक पूवर्वा सगह का अनुमन किया वही सर यह अममृता रहे और जिस कोटि का मोतिर मूग रत का उपयोग कर उन्ही अरतो प्रतिमा का परिचय किया ।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि 'ममयानी' महाकाव्य का कथात्मक आधार प्रतिद्व पौराणिक यत्त (तात्पर्या) है । तब धनु यनुगाय है । किन्तु धनु के सयोत्र पर पता म कति का कथनागति सवया स्थापनीय है । घटना-व्यापार और गग विपान म परस्पर अतिरि और पूर्वार्ध प्रमग सम्बद्धता है । कथारम्भ सुधिन्ठर और पुराणि के सञ्च से होता है । धमराज शगनी कथा की चर्चा कर स्वय का मगर का मरत अमागा और दुःखमस्त व्यति कहन है । तभी पुरोहिता ताराज की कथा का आरम्भ करते हैं । काव्य के आरम्भ की गला पौराणिक है । काव्य का ममनाकरण मानुभूमि की कथना स हृदा है जिसम कवि की राष्ट्रीय भावा प्ररिगिन हानी है

‘धय धय ह अम्य मरत भू तुम हो गया ।

हे माँ ! तुम सी गही विश्व म अया ॥

मुकुट तुम्हारा हिमगिरि मे शांतिन होता है ।

पाठ तुम्हारे जम्ब स्वय अम्बुधि होना है ॥

(प्रथम सग पृ० १)

तदनन्तर कवि विश्व जीवन की परिस्थितिया का उल्लेख करता हुआ निर्माण की प्रतिना करता है ।

मानसकार तुलसी की मानि कवि ने आप कवि वन्दना दय प्रशान, रचना उद्देश्य आदि रुद्धियो का निर्वाह भी किया है ।

धय ! महाकवि यास ! प्रणति तुमको शन शत है

धय लेखनी मुने ! तुम्हारी विश्वादत है ।

× × ×

कि तु हुए जो मनुज विपद मे पड ऊने स
पडकर यह आरयान अमाव भरे यदि उनका ।

हूपा में कृतकृत्य दुगौष हरे यदि उनका ॥

(प्रथम सग पृ० ३, ६)

कथानक में वास्तविक गति पंचम सग के उपरान्त आती है। सुर्यपति और अथ देवगण नल को ससय दमयन्ती के स्वयंवर के लिए जाते देखकर माग में उससे इस बात का वचन लेते हैं कि वह उनका दूत बनकर दमयन्ती के पास जाय और उसे देवताओं को वरण करने के लिए प्रेरित करे। सत्यव्रती और घमनिष्ठ नरेश घम सकट में पड़ जाता है। मन सघप करता, परिस्थिति-द्वन्द्व से जूझता वह दमयन्ती के पास जाकर सभी देवताओं के वचन का विराट वचन कर दमयन्ती को दबो को वरण करने का आग्रह करता है। किन्तु दमयन्ती दृढप्रतिज्ञ रहती है। तदोपरान्त स्वयंवर हो जाता है। नल ही दमयन्ती को पाते हैं। कलि इसे दवापमान समझकर नरेश के सवनाश पर तुल जाता है। फिर छत शीडा में छद्म से नल का राज्य से निर्वासित होना पड़ता है। आगे का सारी कथा गतानुगतिक है। कथानक में पौराणिक मायताआ को ज्या का ल्यो ग्रहण किया गया है। जैसे कठिन स कठिन विपत्ति में भी नरेश को घमनिष्ठ तथा दमयन्ती को क्तव्यपरायण चित्रित किया गया है। सत्य, धर्म और क्तव्य की त्रिवेणी का समस्त काव्य के कलेवर में अपूर्व प्रवाह है। नल का व्यक्तित्व भी महान् है—

‘देव सम उसका कांत शरीर, सकल गुण मुक्त धीर, वर-वीर
बहुद युग लाचन विस्तृत भाल, युगल भुज हैं आजानु विशाल।
बने व बल के अनुपम कोप, वक्ष हिम गिरि सा है निर्दोष,
हृदय है अतुल धय का स्थान और ग्रीवा है सिंह समान।

(द्वितीय सग, पृ० २३)

दमयन्ती के नल शिख-वणन में उपमाएँ परम्परित ही हैं—

“नाक शुक मी, बदन मध्य रदावली,
भर रही ज्या शुकित में मुक्तावली।
चिबुक परम मनोग्र विस्तृत भाल है,
अक्षिर्षों पर पद्म का घट जाल है।
पूण मुख, पूर्णोदु सा लगता अहा,
है मुघा सौन्द्य, जो वरसा रहा।’

(प्रथम सग पृ० ६, १०)

नल शिख-वणन की अपेक्षा प्रकृति वणन में कवि अधिक सफल रहा है। प्रकृति को मानवीय, उपदेशात्मक, उद्दीपन आलम्बन आदि सभी रूपों में चित्रित किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

“चल पड़ी रात नम वदन हुआ पोला सा,
 पृथ्वी अचल पर हरित हुआ गीला सा ।
 वह सुअभिसारिका गई, चिह्न ये छोड़े,
 हतप्रम से तारे उसे पकड़ने दौड़े ।
 मूर्च्छित सा विधु हो गया न वह सह पाया,
 आ पहुँचा मन्द समीर देख मुसकाया ।
 वह व्यजन डुलाने लगा ग घ से सीचा,
 हो विवश तिमिर ने हाथ धरा से खींचा ।
 उदयाचल पर रवि चढ़े दृष्टि दौड़ायी
 सब गीली आँखि उँहें घरा की पायी ।
 मुख पीछे दिया कर बढ़ा घरा मुसकायी,
 खोपी सी अपनी शक्ति शीघ्र ही पायी ।”

(चतुर्थ सर्ग, पृ० ५८)

प्रकृति के ऐसे ही सुन्दर और सुरम्य दृश्य काव्य के क्लेवर म आद्योपात्त उपलब्ध हैं । निषध देश एवं कुण्डिनपुर आदि के वन में कवि ने विनेय कौशल का परिचय दिया है ।

भाषा के सम्बन्ध में प्रस्तुत काव्य के प्रस्तावना लेखक सुप्रसिद्ध कवि श्री गोपालदास नीरज का यह कथन सत्य है— भाषा पर तो कवि का ऐसा पूर्णाधिकार है कि वह उसे जब जिस रूप में चाहे मोड़ लेता है । प्रकृति चित्रण में उसकी भाषा समीतात्मक और कोमल हो जाती है । सवादो में तिवत्त एवं प्रभावपूर्ण दिखाई देने लगती है और तथ्य-वर्णन में सहज, मधुर गज गामिनी । हाँ कुछ प्रयोगों में पुनरुक्ति दोष अवश्य आ गया है । नरी शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है । अकेले तरणि का रूपक की योजना कवि ने दस पाठ्य बार से भी अधिक की है जिससे इस प्रयोग में नीरसता आ गयी है । छन्द विधान विविधता लिए हुए है । संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी खूब हुआ है । काव्य में अनेक स्थानों पर नाटकीय शैली के सफल प्रयोग अलंकार विधान एवं वाग्बन्ध के कारण ममस्पर्शी स्थानों की योजना हो सकी है । अर्थ रसा के प्रासंगिक संयोजन के साथ-साथ करुण रस की अपूर्व धारा काव्य के उत्तरार्द्ध में प्रवृत्त है । छन्द श्रीराम प्रसंग का पश्चात्त यद्यपि सभी प्रसंग कारणोक्त हैं किन्तु दशम मंत्र में दमयंती की चौहद वन में सोने छोड़कर घन जाने पर उगका विनाश हृदयविचारक बन जाता है । पतिपरायण दमयंती का चरित्र की यह स्थिति मोना, सावित्री, राधा, यशोधरा, चिन्ती भी

नारी की सक्टापन्न अवस्था से अधिक गम्भीर एवं दुःसह है। कवि ने बड़े घय से इस प्रसंग का मनोवैज्ञानिक एवं परिस्थितिजन्य समाहार किया है। यहाँ दमयन्ती के चरित्र की महानता स्पष्ट हुई है।

काव्य में भाग्यवाद एवं दैववाद का स्वर बड़ा प्रबल रहा है। नल की छूत क्रीडा, नलानुज पुष्कर का दुर्व्यवहार, विरह-व्यथा एवं तथावत अथ घटनाओं को कवि ने भाग्य की तुला पर तोलने का प्रयास किया है। पौराणिक इतिहासात्मक प्रसंगों के यह भले ही अनुकूल हो, किन्तु विज्ञान-युग के प्रबुद्ध पाठक को छूत क्रीडा नल का व्यसन ही लगेगा, न कि भाग्य की विडम्बना। काव्य में पात्रों की प्रवृत्तियाँ का युगानुरूप बौद्धिक समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया है। गांधीवादी विचारधारा के अहिंसा प्रेम, अस्पृश्यता निवारण, समानता आदि सिद्धांतों का सफरता के साथ निवाह हुआ है। ‘साकत’ की भाँति यहाँ भी राजकुलीन पात्रों ने प्रजातन्त्र के महत्त्व की समझा है। नल के ये शब्द

‘है प्रजा घराहर मात्र राज्यसिंहासन,
सग्रह से अत्युच्च, त्याग का आसन।’

युग के अन्य नायिका प्रधान महाकाव्या (‘प्रियप्रवास’, ‘साकेत’, ‘कामायनी’, ‘ऊर्मिला’, ‘बँदेही-वनवास’, ‘पावती’, ‘नूरजहाँ’, मीरा ज्ञासी की रानी उवशी’ आदि) की भाँति प्रस्तुत महाकाव्य (दमयन्ती) में नारी चेतना एवं जागरण के महान् स्वरों का उद्घोष भी हुआ है। जैसे

“शक्ति का नारी है अवतार,
उससे ही चेतन है ससार।

(द्वितीय सर्ग, पृ० ३६)

अथवा

“विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यहाँ है
उसी शक्ति पर पूर्ण विजय नारीत्व रहा है।
अदला हो तुम किन्तु विपद में चल हो तुम ही,
विश्व मरु-स्थल है इसमें जल हो तुम ही।’

(दशम सर्ग, पृ० २२०)

अथवा

उपभाग्य वस्तु है नारि केवल नर की ?
वह कल्याणी है प्रथम मातृ भर जग की।’

(चतुर्थ सर्ग २६५)

दमयंती के चरित्र विश्लेषण द्वारा ललक न वत्तमान युग की नारी चेतना का मुखरित कर एक आदश स्थापना का स्तुत्य प्रयास किया है। युग के विरोधी प्रश्नों के सम्यक समाधान, नारी चेतना की अभिव्यक्ति सत्य एवं मतीत्व के धर्मादर्शों की स्थापना, सामयिक विचारधाराओं की सफल व्यञ्जना उदात्त शली महत् का यादश एवं जीवन दर्शन की बलवती प्रेरणा निश्चय ही 'दमयंती काव्य की वह विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं जो उसे महाकाव्य का पद प्रदान करती हैं।

**‘रश्मिरथी’ महाकाव्य
युग-चेतना का शाश्वत उद्घोष**

‘रश्मिरथी’ महाकाव्य युग-चेतना का शाश्वत उद्घोष

‘रश्मिरथी’ की रचना का उद्देश्य जना कि काव्य के रचयिता न ‘भूमिका’ में स्वीकार किया है—‘कण चरित्र का उद्धार है।’ कवि के शब्दा में—‘कण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।’^१ इस संकेत के आलाप में यदि ‘रश्मिरथी’ काव्य के जीवन दशन सम्बन्धी मन्तव्यों पर विचार किया जाय तो हम पायेंगे कि इस काव्य का जीवन दशन मानवतावादी है। मानवतावादी जीवन मूल्या की प्रतिष्ठा का प्रयास यों तो दिनकरजी ने ‘कुक्षेत्र काव्य में भी किया है किन्तु उसके एतद्विषयक चिन्तन की चरम परिणति और विचार दशन का प्रौढतम स्वरूप ‘रश्मिरथी’ में ही प्राप्त हुआ है। डा० सत्यनाम वर्मा के शब्दा में— कुक्षेत्र के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों में केवल महाकाव्य ही नहीं बल्कि कवि की दार्शनिक, सांस्कृतिक, कवित्वमय, धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतक प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवन-दशन ‘हुंकार’ से जागा और जिसकी पूणता परशुराम की प्रतीक्षा’ में हुई, उसी का केंद्र यह रश्मिरथी है। इसमें मानवतावाद का एक ऐसा ज्वलन्त सत्य केंद्र बिन्दु के रूप में प्रमुख होकर चला है जिमने उसे विचारक कवि और दार्शनिक से ऊपर उठाकर महानतम मानवतावादी सिद्ध किया है।”^२ सच तो यह है कि रश्मिरथी के कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक ओर परम्परा

१ रश्मिरथी भूमिका पृ० ४

२ डा० सत्यनाम वर्मा जनकवि दिनकर पृ० ६३

पोषित एवं जजरित रुद्धिवाणी मायताजा का खण्डन किया है तो दूसरी ओर युग सापेक्ष प्रगतिशील जीवन मूल्यों की प्रस्थापना पर बल दिया है। उसने सामाजिक अत्याय के कारण उच्च कुल की झठी मान मयादा और जातिवाद के दम्भ की मत्सना की है, किंतु श्रम पुरुषार्थ तपस्या दान मंत्री सत्त्व शील आदि मानवीय गुणों (जीवन मूल्यों) की महत्ता को सराहा और स्वीकारा है। काव्यारम्भ में ही कृपाधाय के जाति विषयक प्रश्न पूछने पर कण ने जो उत्तर दिया है। उसमें तथाकथित उच्चकुलीन मान मर्यादा एवं जातिवाद का विखण्डन किया गया है

जाति जाति रटत, जिनकी पूँजी केवल पापण्ड
 मैं क्या जानू जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड ।
 × × ×
 पाते हैं सम्मान तपोवत स भूतल पर शूर
 जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर ।
 × × ×
 घड़े वश से क्या होता है छोटे हो यदि काम ?
 नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नहीं वश धन घाम ।^१

काव्य के चतुर्थ सग में देवराज इंद्र से वार्तालाप करते हुए कण ने कहा है कि—एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है। और वह सन्देश है कर्त्तव्यपरायण एवं पुरुषार्थी बनकर सत्यपथ पर बढ़ते रहना। जीवन की जय इसी कर्त्तव्यपालन में निहित है। पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर पाँव रखकर चल सकता है। चाहे विश्व रिपु हो जाय घम दगा दे और पुण्य ज्वाला वरसाय किंतु मनुष्य को सत्यपथ से विचलित न होना चाहिए। कर्त्तव्यपरायणता की यह शक्ति किसी वश या कुल की धराहर नहीं करन वह वीर पुरुषा के पृथुल वशस्वत में रहती है।^२ वशगन उच्चता और कुलीनता के नाम पर गताद्विष्यो स मानवता का जो निरस्कार किया जाता रहा है रश्मिरथा के कवि ने उसका प्रचुर शत्रु में प्रतिहार किया है। इसीलिए काव्य का नामक कण उनका आत्म वन्दन अवतरित हुआ है जिन्हें

^१ रश्मिरथी प्रथम सग प० ४, ५, ७

^२ वही चतुर्थ सग प० ७२

^३ वही प० ७

कुल गौरव की प्रनाटना सहनी पड़ी है नीचवशज मा कहकर जग ने जिन्हें धिक्कृत किया है और समाज की विषमता वहि स जा विदग्ध हैं । वण के शङ्का म

'मैं उनका आदश, जि ह कुल का गौरव तायेगा,
नीचवशज मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा ।
× × ×
मैं उनका आदश वहीं जो व्यथा न सोल सकेंगे,
पूटेगा जग किन्तु पिता का नाम न बाल सकेंगे ।
× × ×
मैं उनका आदश, किन्तु जो तनिक न धवरायेंगे,
निज चरित्र बल से समाज म पद विशिष्ट पायेंगे ।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिह देख नत हागा,
धम हेतु, धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा ।''

अस्तु प्रकट है कि 'रश्मिरथी काव्य का उद्देश्य और सन्देश मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है ।

'रश्मिरथी' काव्य क जीवन शन की सबसे महत्वपूर्ण विरोधता उसका युगीन स्वप्न है । काव्य मे जिन व्यापक मानवीय विश्वासों और आदर्शों, आध्यात्मिक निष्ठाओं और मायताओं तथा चिन्तनीय समस्याओं और धारणाओं का प्रतिपादन किया गया है, उन सबका आधार हमारे युग का उन्नत विचार दर्शन है । इस विचार दर्शन को एक शब्द म मानवतावाद अभिधान दिया जा सकता है ।

आध्यात्मिक मायताएं

आध्यात्मिक मायताओं का प्रतिपादन म कवि का दृष्टिकोण नितान्त युगीन और प्रगतिशील रहा है । नियति भाग्य धम आदि आध्यात्मिक विषयों की विवेचना कवि न युग जावन क सद्भ म की है । केवल श्रीकृष्ण के सम्बन्ध (उन्हें ईश्वर मानने म) में उसका विचार मूल, चिन्तनधारा का अपवाद कहे जा सकत हैं ।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

रश्मिरथी का कवि आस्तिक है । ससार की सचालिका अन त शक्ति मे

उसे पूण विश्वास है। इस अनंत शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान् विधाता आदि कहकर उसने सम्बोधित किया है तथा अदृश्य और सबज्ञ माना है

“पर हँसते कही अदृश्य जगत के स्वामी,
देखते सभी कुछ को तब भी अतर्कामी।”*

श्रीकृष्ण को ‘रश्मिरथी’ में ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व वाले हैं। कौरवों और पाण्डवों में सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाण्डवों का भत्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सदपरामर्श को न मानकर उलटा उन्हें बाधने का उपक्रम करता है। सभी कृष्ण कुपित होकर भीषण हँकार करते हुए अपना विराट रूप दिग्दर्शित करते हैं। श्रीकृष्ण का यह रूप ब्रह्माण्डघायी था। उस स्वरूप में उदयाचल भाल भूमण्डल वक्षस्वलय और मनाक मेरु चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि कोटि कोटि सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा विष्णु महेश दिनेश रुद्र, लोकपाल आदि उसमें ग्राह्य थे। उनकी जिह्वा से भयकर ज्वालामुखी निकल रही थी। त्रिकाल को मुट्ठी में बाधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था

“उदयाचल मेरा दीप्त भाल भूमण्डल वक्षस्वलय विशाल।

× × ×

शत कोटि रुद्र शत कोटि काल, शत कोटि दण्डधर लोकपाल।

भूलोक अतल पाताल देख गत और अनागत काल देख।

अम्बर में कुतल जाल देख, पद के नीचे पाताल देख।

मुट्ठी में तीनों काल देख मेरा स्वरूप विकराल देख।”^८

श्रीकृष्ण के इस स्वरूप को देखकर समा सन्न थी, लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पड़े थे। ‘रश्मिरथी’ कृष्ण का यह रूप गीता के श्रीकृष्ण के उस विराट रूप से तुलनीय है, जो उन्होंने अर्जुन को दिखाया था।^९ यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण को कवि ने ईश्वररूप में अंकित किया है। कृष्ण के इस पौराणिक रूप का चित्रण विशति शताब्दी के बुद्धिजीवी पाठकों को कितना प्राय और वरेण्य होगा यह चिन्तनीय है। प्रस्तुत काव्य से ७ वष

* रश्मिरथी, पंचम सर्ग पं० ६४

^८ वही तृतीय सर्ग, पं० २२ ३३

^९ गीता अध्याय ११ श्लोक १० से ३० तक

पूर्व लिखित 'कुरुक्षेत्र' काव्य में दिनकरजी ने कृष्ण को महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है। 'कुरुक्षेत्र' में अनेक स्थानों पर भीष्म पितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने कृष्ण को भगवान कहकर सम्बोधित किया है। किंतु "कृष्ण को भगवान कहने में उसकी सगुणोपासना नहीं भूलवती, अपितु वह उन्हें महापुरुष (अतिमानव) मात्र मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। कवि अवतारवाच्य में विश्वास नहीं रखता अपितु ईश्वर सम्बन्धी उसकी कल्पना अधिक व्यापक एवं आध्यात्मिक है आधिदैविक नहीं।"¹ 'कुरुक्षेत्र' के कवि दिनकर के लिए अथ महापुरुषों की भाँति श्रीकृष्ण भी श्रेय हैं, ईश्वर नहीं

'भीष्म हा अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान
बुद्ध हो कि अशोक गांधी हा कि ईसु महान ।
सिर झुका सबको समी को श्रेष्ठ निज से मान,
मान धार्मिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान ।''

इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध में एक दशाब्धी में लिखे गये दो काव्यों में दिनकरजी का दृष्टिकोण भिन्न है। 'रश्मिरथी' में कृष्ण के विकराल रूप दर्शन द्वारा ही नहीं बरन अथ अलौकिक घटनाओं के आयाजन द्वारा भी उनके ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा की गयी है। उदाहरणार्थ, अर्जुन की प्रतिष्ठा पूर्ति अर्थात् जयद्रथ वध के लिए

'माया की सहसा शाम हुई, असमय दिनेश हो गये अस्त।''²

इसी प्रकार दानव घटोत्कच की मृष्टि तथा वण के रथ चक्र के रक्त कीच में घँसे जाने और सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी न निकलने में ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार-दर्शन ही है।

दिनकरजी के विचार दर्शन का यत्न उपयुक्त विवेचन के आलोक में विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि कवि की ब्रह्म विषयक धारणा का मूल स्वरूप था वही है जो 'कुरुक्षेत्र' में प्रतिपादित है किंतु 'रश्मिरथी' में पौराणिक ऐतिहासिक कथानक में आमूल धूल परिवर्तन को अवाञ्छनीय मानकर कवि ने इस काव्य के घटनाक्रम को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया है जिसके कारण कृष्ण इस काव्य में ईशावतारी हो गये हैं। रश्मिरथी है भी कथाकाव्य, जबकि

¹ कुरुक्षेत्र भीमासा प० ११८

² कुरुक्षेत्र पृष्ठ सग, पृ० ६५ (संस्करण सन्त २००३ का)

³ रश्मिरथी, पृष्ठ सग पृ० १३६

बुद्धिहीन विचार प्रधान काव्य है। कथाकाव्य में कथागत और विचार प्रधान काव्य में वचारिकता (चिंतन) का महत्त्व विशेष होता है। कथाकाव्य की महत्ता के सम्बन्ध में कवि के विचार रश्मिरथी की भूमिका में दृष्ट्य हैं। फिर भी इतना तो कहा ही जायेगा कि अपने मूल चिंतनक्रम (जिसके अनुसार ग्रन्थ अपौरुषेय है और वृष्ण महापुरुष हैं, ईशावतार नहीं) की रक्षा के लिए अलौकिक घटनाओं को किंचित् परिवर्तनों द्वारा बुद्धिपाह्य बनाया जा सकता था, उदाहरणार्थ कुरजन मत्स्य में वृष्ण के विराट रूप दान के स्थान पर उनके तेजस्वितापूर्ण रूप की चार्नी भी अंकित की जा सकती थी जिसे देखकर दुर्योधन चकित रह जाता लोग यहोश तो न होते आदि।

नियति—नियति को एक शूर अदृश्य शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नियति ही बार बार पुरुषार्थी कण से छल करके उसे जीवन संप्राम में पराजित और निराश करती है। इस सदम में कण के कुछ कथन दृष्ट्य हैं

सबको मिली स्नेह की छाया नयी-नयी सुविधार्ण
नियति भेजती रही सत्ता पर मेरे हित विपदाएँ।¹¹

× × ×

प्रवर्धित हूँ नियति की दृष्टि में दोषी बड़ा हूँ।¹²

× × ×

विलक्षण बात मेरे ही लिये है
नियति का घात मेरे ही लिये है।¹³

स्वयं कवि ने कहा है

किया नियति ने बार कण पर
छिपकर पुण्य विवर से।¹⁴

कवि ने महाभारत युद्ध की आयोजिका भी नियति को ही माना है
हो चुकी पूरा याजना नियति की सारी
बल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।¹⁵

¹¹ रश्मिरथी चतुर्थ संग प० ७२

¹² वही, सप्तम संग, प० १५६

¹³ वही प० १८८

¹⁴ वही, चतुर्थ संग प० ६३

¹⁵ वही पंचम संग प० ८१

इतना हाने पर भी ‘रश्मिरथी’ के नायक कण ने नियति की क्रूरता को नत-मस्तक होकर स्वीकार नहीं किया है वरन् पुष्पाथ के बल पर उसका पूण प्रतिरोध किया है। कण कहता है

‘चरण का भार लो सिर पर सँभाला,
नियति की दूतिमा । मस्तक झुकालो ।
चलो जिस भाति चलने को कहूँ मैं,
ढलो जिस भाति ढलने को कहूँ मैं ।’
न कर छल दुःख से आघात फूलो,
पुरुष हूँ मैं नहीं यह बात भूलो ।
कुचल दूंगा, निशानी मेट दूंगा
चढ़ा दुदम भुजा की मेट दूंगा ।”^{१५}

कण के उपयुक्त कथन में कण का पीरप ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानवता के पुष्पाथ का महान उद्घाप है। इसी कथन के परिप्रेक्ष्य में कवि दिनकर के दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता भी दृष्ट्य है जिसके अनुसार वह मानव की शक्ति और सामर्थ्य को ही सर्वोपरि मानता है। मानव नियति की क्रूरता के प्रतिरोध में अत तक सग्राम करने को कृतमकल्प है। कण के शब्दा में

‘चरो सघप आठो याम तुम से,
करूँगा अत तक सग्राम तुम स ।”^{१६}

कवि ने यहाँ तक कह दिया है कि कण की गौरवपुण जीवनगाथा के समक्ष नियति और भाग्य के सकेत नय हैं

मगर यह कण की जीवन कथा है,
नियति का भाग्य का इगत वृथा है ।”^{१७}

यही नहीं, पुष्पाथ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर भी पर रख सकता है
‘नियति भाल पर पुष्प पाव निज बल से धर सकता है ।”

^{१५} रश्मिरथी सप्तम सर्ग, पं० १४६

^{१६} वही, पं० १६७

^{१७} वही पष्ठ सर्ग पं० १५१

^{१८} वही, चतुर्थ सर्ग पं० ७३

भाग्य—भाग्यवाद की धारणा का खण्डन कवि ने 'कुरुक्षेत्र काव्य म^{११}' इसे पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र कहकर किया था। इसी भाव्यता की पुष्टि 'रश्मिरथी' में कण के निम्नांकित वचन द्वारा हुई है

'कहा कण न, क्या भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है मम्मूल्य खडा उस पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या निहा भाग्य में खूब जानता हूँ मैं
बाँटो को पर बली भाग्य से कहीं मानता हूँ मैं।

महाराज उलम से विधि का अक पलट जाना है
किस्मत का पासा पीरप से हार पतट जाना है।^{१२}

धम—'पोराणिकों ने कुरुक्षेत्र को धमक्षेत्र और 'महामारत' को धमयुद्ध कहा है।' किन्तु कवि ने इन भाव्यता का विरोध किया है। उसके मतानुसार धम का विग्रह, हिंसा युद्ध या संहार से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। धम तो करुणा से उद्भूत होता है

करुणा से बढ़ता धम विभल।^{१३}

धम का वास्तविक स्वरूप कममय साधना एवं जीवन पथ को त्याग की ज्योति से आलोकित करने में है। धम ध्येय में नहीं साधना में ही निहित है

'है धम पट्टीचना नहीं धम तो जीवन मर घला में
फना कर पथ पर स्निग्ध ज्योति, दीपक समान जलने में।

× × ×

इसलिए ध्येय में नही धम तो सदा निश्चित साधना में।^{१४}

अजु न द्वारा जयद्रथ के लामहदक एवं अयायपूर्ण वध को कवि ने धममय काय नहीं माना है। धरना और मारना कभी भी धममय काय नहीं हो सकते

^{११} 'भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखना दबा एक जन भाग हमरे जन का।

—कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ० ११५

^{१२} रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग पृ० ६६

^{१३} धमक्षेत्र कुरुक्षेत्र समवेना युयुत्सव । —गीता अ० १ श्लोक १

^{१४} रश्मिरथी पष्ठ सर्ग पृ० १३७

^{१५} वही, पृ० १३७-३८

'हो जिसे धम से प्रेम कमी वह कुत्सित बम करेगा क्या ?
बबर, बराल, दष्टी बनकर, मारेगा और मरेगा क्या ।'^{१०}

चिरन्तन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

आध्यात्मिक निष्ठाओं के प्रति युगीन किंवा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुए भी चिरन्तन जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए 'रश्मिर्धो' का कवि प्रयत्नशील रहा है। दानशीलता, मय मत्री, समानता, उदारता आदि मूल्यों को प्राचीन कहकर उपेक्षित नहीं किया गया, वरन् उनकी महत्ता का बगान काव्य में आघात लिखाया जाता है।

दान की महिमा—भारतीय संस्कृति में दान की महिमा अनादि काल से स्वीकृत रही है। दान-कर्म को पुराणपथी कहकर तिरस्कृत नहीं किया जा सकता। दिनकरजी ने दान की महिमा का तत्काल आख्यान करते हुए इस काव्य का जीवन धम कहा है

जीवन का अभियान दानबल से अजय चलता है।

× × ×

दान जगत का प्रवृत्ति धम है मनुज व्यय डरता है ।'^{११}

दान स्वत्व का त्याग भी नहीं है क्योंकि जो जितना देता है उतना ही पाप भी लेता है। उदाहरण के लिए, वृक्ष फल इसलिए देने हैं कि उनके रेशा में कीड़े न समाएँ, डालियाँ स्वस्थ रहें और नये फल आँयें। इसी प्रकार नदियाँ जल देती हैं कि बाढ़ल भरपूर बरसेँ और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पाँयें। इसी सद्म में कवि ने राम दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र ईसा, माधी जैसे आत्मदानियों का यशोगान किया है। दानवीरो में 'रश्मिर्धो' के नायक कण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालनहेतु अपना सबस्व बलिदान कर लिया। जन्मजात कवच और कुण्डल तक देवराज इंद्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा है कि

कण नाम पड गया दान का अतुलनीय महिमा का ।'^{१२}

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलंकृत नहीं करता, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की गौरव वृद्धि करता है। कण से इंद्र की पाचना स्वर्ग की पृथ्वी से पाचना है

^{१०} रश्मिर्धो प० १३८

^१ वहाँ चतुर्थ सर्ग, पृ० ६०-६१

^{१२} वही पृ० ६३

“स्वर्ग भीस माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।”

दान की भाँति ही अग्य जीवन मूल्यों के आदर्श का प्रतिपादन काव्य में यत्र-तत्र हुआ है। जैसे

तपस्या

नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है
देता वही प्रवाण भाग म जो अमीत जलता है।^{११}

सत्य

‘हार जीत क्या चीज ? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता मर है।’^{१२}

अथवा

नही राधेय सत्यपथ छोड़कर थप ओक लेगा,
विजय पाय न पाये रश्मियो का लोर लेगा।^{१३}

मन्त्री—तृतीय सग म वृष्ण जब कण को युधिष्ठिर से मिल जाने का परामर्श देत हैं तो प्रत्युत्तर म कण ने जो कहा है उससे मन्त्री की महत्ता स्पष्ट झलकती है

मन्त्री की बड़ी सुखन छाया शीतल हो जाती है काया।

× × ×

मित्रता बडा जनमोल रतन, कब इसे तोन सन्ता है धन।
घरती की तो है क्या बिसात, आ जाय और बकुण्ड हाथ।
उसको भी ‘योद्धावर कर दूँ कुरुपति के चरणो पर धर दूँ’।^{१४}

धर्म—परिश्रम की महत्ता को कवि ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। काव्य के तृतीय सग में कहा गया है कि वसुधा का नेता भूखण्ड विजेता अतुलित यश श्रेता तथा नवधम प्रणेता वही ‘यकिन हुआ है, जिसने बिघ्नो को सहकर भी श्रम साधना की है।’^{१५}

^१ रश्मियो, पृ० ६६

^{११} वही पृ० ५६

^{१२} वही पृ० ७०

^{१३} वही सप्तम सग पृ० १६१

^{१४} वही तृतीय सग पृ० ५१

^{१५} वही तृतीय सग पृ० २८

युगीन समस्याएँ

‘रश्मिरथी’ में जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओं की यथाप्रसंग विवेचना हुई है। युद्ध की समस्या पर विद्वान्प्रकारक ढंग से कवि ने विचार किया है। उसने समस्याएँ ही नहीं, वरन् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धवादी विचार दशान की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकरजी के ‘कुक्षेत्र’ नामक काव्य में मिलती है, क्योंकि उस काव्य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर हुई थी, तथापि युद्ध की समस्या पर ‘रश्मिरथी’ में भी अपेक्षित प्रकाश डाला गया है।

काव्यारम्भ में ही कुलीन एवं वण-व्यवस्था आधृत समाज की आलोचना करते हुए कवि ने कहा है कि युद्ध का आयोजन सत्कार से दुःखदय भगाने या पर शोषक पथभात लोगों को घममाग पर लाने के लिए नहीं होता है। युद्ध तो इसलिए हानि है कि राजे महाराजे विजय का कल्पित सम्मान पाकर मानी हों अथवा राज्यों का सीमा विस्तार करें और छूटमार हों। युद्धों की विजय राजाओं की अहं वृद्धि करती है। राजा स्वेच्छाचारा होकर समाज को पण्डलित करने हैं।^१ अस्तु कवि ने इस समस्या का निम्न दो रूपों में प्रस्तुत किया है। प्रथमतः समाज का नेतृत्व, भोगी विलासी भूषों के हाथ में न रहे। समाज में श्रेष्ठता का पद कवि, वाविद, कलाकार, ज्ञान विज्ञान विशारदों को प्राप्त हो क्योंकि समाज का शुभचिन्तक वगैरहै। यह वगैरह अमन वसन विहीन एवं दीन रहकर भी मानवोन्मुदय का ही बात करता है। इस वगैरह के लोगों को वनक नहीं ज्ञान, कल्पना और चरित की उज्ज्वलता पर अभिमान है। अस्तु—

‘इन विभूतियों को जय तक सत्कार नहीं पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें मानेगा।
तब तक पड़ी आग में धरती इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे, दुर्कों से छूट नहीं पायेगी।’^२

युद्ध के निवारण का दूसरा समाधान श्रान्तिकारी है। कवि का अभिमत

^१ रश्मिरथी द्वितीय सर्ग, पृ० १४

^२ वही पृ० १५

है कि राजाओं को रामभा सुभाकर ज्ञानी और कवि बन गये किन्तु प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त किसी भी माया को नहीं समझता। अस्तु जानियों को भी राहुण धारण करके अधिचारी एय मदाय्य नृप के आतंक से भू को मुक्त करना चाहिए।

'रोक-टोक' से नहीं मुनेगा, नृप समाज अधिचारी है,
 दीवाहर निन्दुर कुटार का यह मदाय्य अधिचारी है।
 इसलिये मैं कहता हूँ, अरे जानियो! राहुण धरा,
 हर न सका जिसका कोई भी, भू का वह तुम नाम हरो।¹⁶

दूसरे शासन जनक्रान्ति द्वारा स्वातन्त्र्य से मुक्ति का उपाय की ओर सफल किया है। उसे मुक्तप्रेम काव्य की भाँति युद्ध को एक चिरन्तन और अनिवाय समस्या के रूप में इस काव्य में भी कवि ने स्वीकार किया है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद मनुष्य यद्यपि विभाट जानी और मनस्वी हो गया है किन्तु मनुज मनुज में युद्ध आज भी चल रहा है।

महाभारत मही पर चल रहा है
 भुवन का माय्य रण में जल रहा है।
 मनुज ललकारता फिरता मनुज को
 मनुज ही मारता फिरता मनुज को।¹⁷

इस विजम्बनापूर्ण स्थिति का मूल कारण अनिश्चय भौतिकवादी मूल्यों की मानव जीवन में स्वीकृति है। सुख समृद्धि के अधीन एव सत्तालोलुप होने के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है।

'होकर समृद्धि सुख के अधीन,
 मानव होता नित सपक्षीय।
 सत्ता, किरोट मणिमय आसन
 करते मनुष्य का तेज हरण।
 नर विभव हेतु ललचाता है
 पर वही मनुज को खाता है।'¹⁸

¹⁶ रत्नमयी पृ० १६

¹⁷ वही सप्तम सर्ग पृ० १५३

¹⁸ वही तृतीय सर्ग पृ० ५४

इस प्रकार ‘रश्मिरथी’ काव्य में जीवन-ज्ञान सम्बन्धी विचारणा का स्वल्प महाकाव्योचित गरिमा स पूण है । उसमें एक आर पुरातन जादुओं की नवीन और युगीन व्याख्या प्रस्तुत की गयी है तथा दूनरी आर चिरन्तन मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रयत्न आप्रह है । जिस ‘कणधम’ के प्रसार का सदेश प्रस्तुत काव्य क माध्म से प्रसारित किया गया है वह हमारे युग जीवन एव समाज की वनमान परिस्थितिया में सत्रथा वाछनीय है । वह ‘कणधम’ है

‘श्रम स नही विमुक्त हागे जो, दुःख स नही डरेंगे,
सुख के लिए पाप से जो नर सधि न कमी करेंगे ।
कणधम हागा धरती पर बलि से नहीं मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तज स उसी शान से मरना ।”

‘ऋम्मिला’ महाकाव्य

आर्य सस्कृति के उदात्त जीवनादर्शों की अभिव्यजना

‘ऊर्मिला’ महाकाव्य

आर्य सस्कृति के उदात्त जीवनादर्शों की अभिव्यजना

‘ऊर्मिला’ महाकाव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत जनकनन्दिनी ऊर्मिला का चरित्र है। कवि के शब्दों में— ऊर्मिला के स्तवन की लालसा और उस स्तवन को प्रकाश में लाने की इच्छा, चाहे वह थोड़ा ही क्या न हो—मेरी जीवनसगिनी रही है।^१ भारतीय रामकाव्य परम्परा में वाल्मीकि रामायण^२ से लेकर साकेत के पूर्व तक के ग्रन्थों में ऊर्मिला का चरित्र उपक्षिप्त प्रायः रहा है। कविवर रवीन्द्रनाथ टगोर^३ और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी^४ ने दो महत्त्वपूर्ण लेख लिखकर साहित्यकारों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्हीं लेखों से प्रेरित होकर श्री मयिशीशरण गुप्त ने साकेत नामक महाकाव्य की रचना कर प्रथम बार ऊर्मिला के चरित्रोद्धार का विद्यमान प्रयत्न किया। यद्यपि साकेत की रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्रोत और प्रतिपाद्य ऊर्मिला का ही चरित्र था तथापि क्यानक के व्यामोह, आराध्यदेव श्रीराम की यशोगाथा के वणन का प्रलोभन आदि ऐसे तत्त्व थे, जिनके कारण साकेत में ऊर्मिला का चरित्र अपेक्षित रूप में न उभर पाया। इस दृष्टि से श्री बालकृष्ण नवीन कृत ऊर्मिला महाकाव्य में उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। साकेत में ऊर्मिला का आविर्भाव नव-परिणीता वधु के रूप में होता है जबकि ‘ऊर्मिला’ महाकाव्य के प्रथम सर्ग के २४० छन्दों में ऊर्मिला

^१ ऊर्मिला श्रीनन्दमणचरणापणमस्तु प्रथम पृष्ठ

^२ प्राचीन साहित्य काव्येय उपेक्षिता पृ० ६६

^३ कविया की ऊर्मिला विषयक उदासीनता, सरम्बती, जुलाई १९०८ भाग ६, सख्या ७ पृ० ३१२-१४।

की बाल्य एव किशोरावस्था का सविस्तार विवेचन है। यह सम्पूर्ण वणन कवि-कल्पना प्रसूत है। जय रागों में भी मुख्यतः ऊर्मिला का ही चरित्र गान हुआ है। सच तो यह है कि 'ऊर्मिला महाकाव्य में ही ऊर्मिला के चरित्र का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। इस काव्य में कवि का उद्देश्य रामायणी कथा की घटनाओं का वणन नहीं जसा कि काव्य की 'भूमिका' में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है। नवीनजी ने रामकथा के उन्हीं प्रसंगा और घटनाओं की संयोजना की है जिनका ऊर्मिला की चरित्र योजना से सीधा सम्बन्ध है। अस्तु, स्पष्ट है कि ऊर्मिला का चरित्र गान काव्य की सृजन प्रेरणा का मूल स्रोत है।

ऊर्मिला महाकाव्य की रचना का दूसरा प्रमुख प्रयोजन आय (भारतीय) ससृष्टि के समुन्नत जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए नवीनजी ने एक ओर आय ससृष्टि के आधारभूत सिद्धान्तों को काव्य में प्रस्थापना की है और दूसरी ओर रामकथा के घटना प्रसंगा को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Perspective) में अंकित किया है। उन्हाहरणाथ राम के वन गमन को कवि ने महान् अथपूर्ण आय ससृष्टि प्रसार यात्रा कहा है।^१ वन गमन के लिए विदा मांगते हुए लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते भी हैं कि ककेयी का वरदान मांगना और राम का पितृणा पालन तो औपचारिकता मात्र है। वास्तव में विपिन गमन तो जन दुःख भजन एव सांस्कृतिक विजय के उद्देश्य से हो रहा है।^२ कवि के मतानुसार वनवासी लोगों का जीवन अज्ञान की तमिस्ता विलास और भौतिकता से पूर्ण है। राम का वन गमन भौतिकता को विजित करने के ही निमित्त है

जाज विजित करने उस भौतिक दहिक, शारीरिक बल को
राम लखन वन गमन कर रहे सग से आत्मज्ञान दन को। *

वन गमन क उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते हैं

हम स यासी विपिन प्रवासी,
नव सदेश प्रचारक हम।

ऊर्मिला श्री लक्ष्मणचरणावणमस्तु पृ० च

^१ वही पृ० छ

^२ वही, तृतीय सर्ग पृ० २६३

वही पृ० १९६

मन भय हारी मगल कारी
सब जन गण उद्धारक हम ।^५

इसी प्रकार राम रावण के सघप में राम की विजय का कवि न आय
संस्कृति की विजय कहा है

“हुई सांस्कृतिक विजय पूण थी,
आय राम की मति धृति की ।
नही शास्त्र विजिता यह लका,
यहा विजय है शास्त्रा की ।
यहा जय है तापस आयों के,
शुद्ध शब्द ब्रह्मास्त्रो की ।”^६

इसी सन्दर्भ में 'नवीन साहित्य' के अनुसंधाता डा० लक्ष्मीनारायण दुबे का मत है कि—'आय धम, सम्पत्ता तथा संस्कृति की महत् उपलब्धियों तथा गरिमा की इसमें ('ऊर्मिला' महाकाव्य में) श्रुचाएँ लिखी गयी हैं। इस दृष्टि में भारत समग्र वसुधरा को अपने अंक में समेट रहा है। सौतिकता या फिर सम्पत्ता, विज्ञान आदि के असद पक्ष का उदघाटन कर कवि ने कामायनी के समान श्रद्धा भक्ति और विश्वास के तीन चिरन्तन प्रेरणामय गोलक हमारे युग को प्रदान किये हैं।' वस्तुतः 'ऊर्मिला' जिस युग की रचना है, उसके अनुरूप ही भारतीय संस्कृति का महान उदघोष उसमें सुनायी देता है। 'ऊर्मिला' महाकाव्य का प्रणयन राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम की बल में लखनऊ जेल में हुआ था। उस समय देश भर में आति, सत्याग्रह और आन्दोलन हो रहे थे। 'ऊर्मिला' महाकाव्य का रचयिता समर के जमर सेनानी की भाँति अपनी आज्ञायी बाणी से भारतीयता की गावना का जन जन में प्रसार कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्य में जातीय जीवन संस्कृति और चेतना का महान उदघोष होता है जो 'ऊर्मिला' महाकाव्य में स्पष्ट सुनायी देता है। एक आलोचक के शब्दों में हिंदी साहित्य में आज जितने भी महाकाव्य हिंदी प्रेमियों के हाथ में सुशोभित हैं उन महाकाव्यों के कवियों में राष्ट्रीयता की

^५ ऊर्मिला, पृ० २२३

^६ वही पृष्ठ संग पृ० ५३

^७ मवेपणा, अद्वैतिक पत्रिका, जुलाई १९६३, पृ० ८७ पर 'ऊर्मिला' का महाकाव्यत्व शीघ्र लेता है।

आग देशभक्ति का मादक यौवन, विप्लव का गाढ़ा उन्मात् विद्रोह का सबल स्वर और जिंदादिली की उछलती कूदती बेगवती धारा नवीन जसी नहीं थी और न आज ही है। जिन पवित्र भावनाओं के मादक वातावरण में इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ वसा सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को नहीं प्राप्त है। 'ऊर्मिला महाकाव्य के लिए यह गौरव और गव का विषय है।'¹¹

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऊर्मिला के चरित्र की विशद योजना आय सस्कृति के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, युग चेतना की विराट व्यजना के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर ऊर्मिला महाकाव्य की रचना हुई है।

आय सस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

आय सस्कृति शब्द तत्त्वतः भारतीय सस्कृति का ही द्योतक है। 'ऊर्मिला' महाकाव्य में दोनों का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में हुआ है। सत्य तप, त्याग, यत्न, विश्वबन्धुत्व, आत्मवाद, नारी की महत्ता आदि आय सस्कृति के आधारभूत सिद्धांत हैं। इन सबकी 'ऊर्मिला' महाकाव्य में प्रतिष्ठा हुई है।

सत्य—काव्य के अन्तिम सग में लका विजय के अनन्तर विभीषण के लकाधिपति बनने पर एक लम्बी वक्तृता द्वारा राम सत्य की महिमा का बखान करते हैं। वे कहते हैं कि सत्य ही आचरणीय धर्म है। उनका विश्वास है कि सत्य का पक्षधर होने व कारण ही विभीषण राम के समर्थक बने। सत्य की ही जय होती है—सत्यमेवजयते। ससार में सत्य ही पूज्य है

सदा एक ही वस्तु पूज्य है,
वह है सत्य असत्य नहीं।¹²

राम की आज्ञाशा है कि

'असद्विचार पराजित बुद्धि न भूलुठिन उन्मूलित हो
सत्यमेव विजयी हो राजन, प्रेम विष्णु फल फूलित हो।
आग आग चवजा सत्य की पीढ़े पीढ़े जन सना,
धृता का यह धर्म सनातन, जग का विमल ज्ञान देना।'¹³

¹¹ सीमा मर् १९६४ पृ० २०६

¹² ऊर्मिला पृष्ठ सग पृ० ५५६

¹³ वही पृ० ५६५

तप—तप की महिमा का आख्यान करते हुए कवि ने कहा है कि ‘तपोबल से ही ब्रह्माण्ड गतिमय । तप के अभाव से सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है

“यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल, गतिमय सतिमय चलित हुआ,
अणु अणु मे कण-कण मे सन्तत, प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ ।

× × ×

क्षण क्षण आठो याम न हो यदि तप, तो यह जग कहीं रहे,
निमित्त मात्र मे महाप्रलय हो, सृष्टि क्या फिर कौन बहे ।”

यज्ञ — यज्ञ शब्द को कवि ने प्रायः अर्थों में व्याख्यायित किया है । कवि का मन है कि यज्ञाहुति की पुण्य भूमि से ही ईश्वर ने सृष्टि रचना की है । यज्ञ से ही जग मे जन गणहिताय बलि होती है । उसका मत है कि तिलघट की इधन मे आहुतिया देना तो प्रवचनापूण परिपाटी है, यज्ञ नहीं ।¹⁴ यज्ञ तो ससार का अन्तत गतिमय कम है । यह कम सृष्टि के अणु अणु और कण-कण मे प्रत्येक क्षण घटित हो रहा है । सृष्टि के महायज्ञ मे सूय रश्मियो द्वारा और मध धाराए बरसाकर आहुतियाँ देने हैं । कवि के शब्दों मे यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार है

शुद्ध यज्ञ है सब भूत हित रत्न होकर जीवन देना,
शुद्ध यज्ञ है जग हिताय सब अपना तन मन धन देना ।¹⁵

ऊर्मिला तो यहा तक मानती है कि लक्ष्मण का वन गमन मानवता के कल्याणयन की प्रथम आहुति है ।¹⁶

नारी की महत्ता — आय सस्कृति में नारी को देवी कहकर पूजनीय माना गया है । ‘ऊर्मिला के कवि ने इस दृष्टिकोण का विशदता से सम्पादन किया है । काव्य के अन्तिम सग मे सीता और लक्ष्मण मे इस विषय पर सुन्दर सम्वाद की योजना नवीनजी ने की है । कवि का मन है कि नर और नारी मे केवल बाह्य रूप भेद ही है, अव्यक्त रूप मे दाना का अस्तित्व एक ही है ।

¹⁴ ऊर्मिला प० ५४६ ५०

¹⁵ वही, तृतीय सग, पृ० २६६

¹⁶ वही, षष्ठ सग, पृ० ३००

¹⁷ वही, तृतीय सग, पृ० ३०१

जीवन की सुगति इसमें है कि नर नारा हो और नारी नर हो। विक्रमिन्त पूण पुरुष म नारी का प्रतिबिम्ब अनिवायत हाता है। नारी के सत्य हृदय से ही पुरुष जगदित में लगता है

देवि तरात्तम है वट जितम हो तर नारी का मिश्रण,
ऐसे ही नर वर भरते हैं—जग का सखिन वेरना ग्रण।

× × ×

प्रति विकसित नर म रहती है शुद्ध नारीपन की भाई,
उसी तरह ज्यो विभु विम्बित प्रकृति नटी की परछाई।¹⁶

कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है— जिस नर में नारीपन का अंश नहीं, वह नर नहीं, बानर है।¹⁷ नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्मिता है जिसे लक्ष्मण चिर प्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और भक्ति की प्रतिमा मानते हैं

तुम हो प्रकृति रूपिणी देवी तुम ह। आदि शक्ति प्रतिमा
त्वमसि मदीया चिर प्रेरणा त्वमहि मनीय भक्ति प्रतिमा।
तुम मेरा साहय बल बभूव तुम मम हृदय जिलास प्रिये
तुम मम नेह सरणि तुम मेरा नव सदेशोल्लास प्रिये।¹⁸

लक्ष्मण के उपयुक्त कथन में जाय सस्कृति द्वारा नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

विरवबधुत्व— सर्वोत्सुर्धैवकुटुम्बकम् के आदर्श को काव्य में चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खण्डन किया है। नवीनजी का मत है कि— कभी कभी साम्राज्यवाद मनोवृत्ति एव जयलिप्ता के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में हम राष्ट्रविमुख भी चलना पड़ सकता है। अथवा जतातिया से सचिन मत्य, जान और सस्कृति का वैभव भस्मसात हो जायेगा।¹⁹ जन समूह के हृदय में आसुरी भाव जगने लगे तो हमें सामूहिकता के भी प्रतिक्ल हो जाना चाहिए क्योंकि मनीषियों के लिए तो सारा सारा ही जपना है

¹⁶ ऊर्मिता, पृष्ठ सग पृ० ६१३ १४

¹⁷ वही, पृष्ठ सग पृ० ६१४

¹⁸ वही, तृतीय सग पृ० २२५

¹⁹ वही पृष्ठ सग पृ० ५५६ ५७

“देश विदेश सकुचित जन का है अनुचिन सकुचित विचार,
है मनीषियो का स्वदेश वह जहा सत्य शिव का विस्तार ।
है जग के नागरिक समी हम सब जगभर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना मिथ्या भ्रम का सपना है।”^{११}

संस्कारों का महत्त्व—काव्य में स्थान स्थान पर भारतीय संस्कारों का वर्णन करत हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । ये संस्कृति के बाह्य आधार हैं । उदाहरणार्थ, 'विवाह नामक संस्कार को ही लें । विवाह को कवि ने दो आत्माओं का मिलन और अभिन्नत्व को जय कहकर अपनी संस्कारगत भावस्था प्रकट की है

“जाय घम म यह ववाहिक वधन परम घममय है
दो आत्माओं का मिश्रण है, अभिन्नत्व को जय है।”^{१२}

वर्णाश्रम व्यवस्था—वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय आय संस्कृति की अभूत पूर्व विशेषता रही है । बायारम्म म ही नवीनजी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है । जनकपुरी का ब्राह्मण वग दृढव्रती, घमधारी, तपस्वी, योगाम्यासी, तत्त्वदर्शी एव मनस्वी है।^{१३} देश की स्वतंत्रता के रक्षक क्षत्री वलिष्ठ भुजाओं वाले तथा परानमी हैं।^{१४} वश्य सधमीसेवी और व्यवसायी हैं।^{१५} शूद्र सेवामावी हे और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि

सेवाघम परम गहनो योगितामप्यगम्य ।^{१६}

अध्यात्म का सण्डन—आय संस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमें अध की प्रधानता कहीं भी स्वीकार नहीं की गयी है । जबकि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता में विकास और प्रगति का आधारस्तम्भ अध को ही कहा गया है । हमारे यहां भोग मग्नह भौतिकवादिता, आडम्बर प्रियता के स्थान पर त्याग, तपश्चर्या समय अपरिग्रह आध्यात्मिकता एव सादगा को स्वीकार किया गया है । 'ऊर्मिला' के रचयिता ने इ ही तत्त्वा को भारतीय संस्कृति का आधार माना है

^{११} ऊर्मिला पृ० ५५८

^{१२} वही द्वितीय सर्ग पृ० ८०

^{१३} वही प्रथम सर्ग १२८, पृ० १८

^{१४} वही, पृ० १८

^{१५} वही, छंद ३१, पृ० १८

^{१६} वही, छन्द ३२, पृ० १९

जीवन की सुगति दृग्गमे है कि नर नारा हो और नारी नर हो। विक्रमिन पूण पुरुष में नारी का प्रतिबिम्ब अतिवायत होता है। नारी के सत्य हृदय से ही पुरुष जगहित में लगता है

“देवि नरोत्तम है वह जिसमें ही नर नारी का मिश्रण,
ऐसे ही नर वर भरते हैं—जग का सचिन वेत्ना ग्रण।

×

×

×

प्रति विकसित नर म रहती है कुछ नारीपन की भाँद
उसी तरह ज्यो विभु विम्बित, प्रकृति नटी की परछाँद।”^{१८}

कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—‘जिस नर में नारीपन का धग नहीं वह नर नहीं बाँर है।’^{१९} नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्मिला है, जिसे लक्ष्मण चिर प्रेरिका प्रकृति रूपिणी देवी और भक्ति की प्रतिमा मानने हैं

‘तुम हो प्रकृति रूपिणी देवी तुम हा आदि शक्ति प्रतिमा
त्वमसि मदीया चिर प्रेरणा त्वमहि मदीय भक्ति प्रतिमा।

तुम मेरा साहज बल बमव तुम मम हास विलास प्रिये
तुम मम नेह सरणि तुम मेरा नव सदेशोत्लास प्रिये।’^{२०}

लक्ष्मण के उदयुक्त कथन में जाय ससृष्टि द्वारा नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिरायी देती है।

विश्वबन्धुत्व—सर्वबसुधवकुटुम्बकम के आदर्श को काव्य में चरिताय किया गया है। इस आश की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खण्डन किया है। नवीनजी का मत है कि—कभी कभी साम्राज्यवाद मनोवृत्ति एवं अयत्नित्वा के बशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में हम राष्ट्रविमुख भी चलना पड़ सकता है। अथवा शताब्दियों से सचिन सत्य ज्ञान और ससृष्टि का बमव भस्मसात हो जायेगा।^{२१} जन समूह का हृदय में आसुरी भाव जगने लगे तो हमें सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए क्योंकि मनीषियों के लिए तो सारा ससार ही अपना है

^{१८} ऊर्मिला, पृष्ठ सग पृ० ६१३ १४

^{१९} वही, पृष्ठ सग पृ० ६१४

^{२०} वही तृतीय सग पृ० २२५

^{२१} वही पृष्ठ सग पृ० ५५६ ५७

‘देश विदेश मनुचिन जन का, है अनुचिन सकुचित विचार,
है मनीषिया का स्वदेश बह, जहा सत्य शिव का विस्तार ।
हैं जग के नागरिक सभी हम, सब जगमर यह अपना है
सीमित देश विदेश कल्पना, मिथ्या भ्रम का सपना है ।”^{११}

संस्कारों का महत्त्व—काव्य में स्थान स्थान पर भारतीय संस्कारों का वर्णन करते हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । ये संस्कृति के बाह्य आधार हैं । उदाहरणार्थ, ‘विवाह नामक संस्कार को ही लें । विवाह की कवि ने दो आत्माओं का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी संस्कारगत आस्था प्रकट की है

‘आय धम में यह वैवाहिक वर्णन परम धममय है
दो आत्माओं का मिश्रण है, अभिन्नत्व की जय है ।”^{१२}

वर्णाश्रम-यवस्था—वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय आय संस्कृति की अभूत पूर्व विशेषता रही है । काव्यारम्भ में ही नवीनजी ने इस यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है । जनकपुरी का ब्राह्मण बग दृढवती, धमधारी, तपस्वी, योगाम्यासा, तत्त्वदर्शी एवं मनस्वी है ।^{१३} देश की स्वतन्त्रता का रक्षक क्षत्री बलिष्ठ भुजाआ वाले तथा पराक्रमी हैं ।^{१४} वश्य लक्ष्मीसखी और व्यवसायी हैं ।^{१५} शूद्र सेवामात्री हैं और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि

‘सेवाधम परम महानो योगितामप्यगम्य ।”^{१६}

अयव्यवस्था का उद्घन—आय संस्कृति का एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमें अर्थ की प्रधानता कही भी स्वीकार नहीं की गया है । जबकि पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता में विकास और प्रगति का आधारस्तम्भ अर्थ को ही कहा गया है । हमारे यहाँ योग सप्रह, भौतिकवर्गिणा आढम्बर प्रियता के स्थान पर त्याग, तपस्विया समय, अपरिग्रह आध्यात्मिकता एवं सादगा का स्वीकार किया गया है । ‘ऊर्मिला के रचयिता ने इसी तर्क को भारतीय संस्कृति का आधार माना है

^{११} ऊर्मिला पृ० ५५८

^{१२} वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ८०

^{१३} वही प्रथम सर्ग पृ० २८, पृ० १८

^{१४} वही पृ० १८

^{१५} वही पृ० ३१ पृ० १८

^{१६} वही, पृ० ३२, पृ० १६

“शुद्ध विचार प्रीति ही है
मिति सभ्यता ससृति की ।
सत्कारण शीलता मान है,
द्योतक ससृति मति, घृति की ।”

नवीनजी का मत है कि जो साग अर्घोपाजन को जन ससृति का मापदण्ड मान लेते हैं, वे सत् असत का विचार छोड़कर अथ-साग को जीवन का सत्य बना लेते हैं। अथ सचय का यति भाग्य मान को चित्तन मननभूय और जहवादी बना देती है। कवि ऋषियों ने कभी भी अथ सचय नहीं किया। वे लोकोत्तर आध्यात्मिक साधना को ही सबसे बड़ा धन मानते थे।^{१०} आज ससार में जो प्रगति हुई है वह अथवा का परिणाम नहीं है, क्योंकि

‘यति ससृति गति लोकिक आषिक,
सचय के सग सग चलती ।
तो चलफल बसने के युग में
धसे पान ज्याति जलती ।’

अस्तु मानवता के विकास एवं प्रगति का मापदण्ड अथ नहीं हो सकता मानवेतिहास की प्रगति का मापदण्ड धन धाय नहा यह समाज ससृति जा सकती नापी धन स कभी गही।^{११}

आत्मवाद में आस्था—भारतीय धर्म साधना के अनुसार कवि नवीन ने आत्मा क अस्तित्व और आत्मवाद की विचारधारा को स्वीकार किया है। उसने भौतिकतावादी जहवादी पनामवादी जीवन-दर्शनों से तुलना करते हुए आत्मवा का श्रद्धता का प्रतिपादन किया है। कवि का मत है कि विस जड पदाथ या अ धशक्ति से चित्तन भाव जगा इस प्रश्न का उत्तर भौतिकवादी दार्शनिकों के पास नहा है।^{१२} भौतिकतावादी विवचन शुष्क तर्कों पर आधारित है, इसलिए

^{१०} ऊर्मिलता, पृष्ठ सग पृ० ५५४

^{११} वही पृष्ठ सग प० ५५३

^१ वही पृ० ५५४

^{११} वही प० ५५४

^{११} वही प० ५४७

“भौतिकवाद चेतना विरहित,
है वह निपट निराशावाद ।
राजस-तामस गुणमय वह है
मानव मन का भक्त प्रमाद ।”^{११}

जबकि आत्मवाद में अनन्तता है । उसमें रुचिर ज्ञान का वैभव है । उसमें सचय वृत्ति का अभाव है ।^{१२}

इस प्रकार आय सृष्टि के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही रूपों का विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है । ‘ऊर्मिला महाकाव्य में आय सृष्टि का महान् और समृद्ध स्वरूप अंकित हुआ है । जहाँ तक सांस्कृतिक चेतना के निरूपण का प्रश्न है वह कहा जा सकता है कि—‘साकेत’ की अपेक्षा ‘ऊर्मिला’ में आय सृष्टि और धर्म की शखध्वनि अधिक प्रखर और प्रमविष्णु प्रणीत होती है ।^{१३}

युग चेतना के स्वर—आय सृष्टि के महत् आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ साथ ‘ऊर्मिला महाकाव्य में युग चेतना के स्वर भी मुखरित हुये हैं । समसामयिक जीवन की चेतना को आत्मसात करके कवि नवीन ने अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण किया है । भारत के अतीत गौरव का गायक कवि नवयुग के स्वागताथ भी सन्नद्ध है

“आओ नवयुग उन्नत मस्तक
हो हम स्वागत करते हैं ।
तेरे नव आदर्शों को हम
सिर आँखों पर धरते हैं ।”^{१४}

नवयुग की नव चेतना से प्रेरित होकर ही कवि जागरूकता को जीवन का धरा सत्याचरण को आत्मचिन्तन और जन सेवा को ईश्वर भक्ति कहता है

‘जागरूकता जीवन धर्म है
सत्याचरण आत्मचिन्तन है ।

^{११} ऊर्मिला पृ० ५४८

^{१२} वही पृ० ५४८

^{१३} डॉ० लक्ष्मीनारायण दुय, वास्तव्य नवीन व्यक्तित्व एवं काव्य, पृ० ३७१

^{१४} ऊर्मिला, संग, पृ० ५८६

निश्चल होकर जगज्जना की,
सेवा ही प्रभु का वस्त्र है।^{१०}

यदि ये माय और जीवन की व्याख्या भी इगो प्रगतिशील जीवा दृष्टि से प्रेरित होकर की है। उसके मतानुसार, मनुष्य अग्निपूज विभु के मन की आग्नेय वस्त्रपना है। माय की मानवता इसमें है कि वह आग से रोने, अर्थात् सघपरत रह।^{११} जावन सभतन गतिन का प्रचण्ड गति सन्नमण है जिसका उद्देश्य जटा का भेदन कर समना सस्थापित करता है।^{१२} जीवन धीर गम्भीर गीर का प्रवाह है जिसका माय जगन की व्यास युग्माना है। जीवन सतत् मुद है जिसमें गति और सगप है। नवीनजी ने जीवा की तुलना उस विप्लव गान में की है जिसमें स्वरो में शान्ति और परिवर्तन का संदेश है

“जीवन है चिर विप्लव गायन,
स्वर जिसके हैं सतत शान्ति।
गोत मार है नित परिवर्तन
गायन सय है चिर अशान्ति।”

यदि की कामना है कि हम विप्लव गान गाते गाते जीवन-पथ पर बढ़ना चाहिए। विप्लव कस्वो का जगत में अथक प्रसार होना चाहिए जिससे रुद्धिया का उच्छेदन हो। गिगिर कालिमा प्रकाश में परिवर्तित हो।^१

वात्मात्मन प्रभाव

‘ऊर्मिला महाकाव्य की रचना पर अनेक वात्मात्मक विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इनमें उल्लेखनीय हैं—गांधीवाद स्वच्छन्दतावाद, रोमासवाद हालावात् मानवतावाद आदि।

ऊर्मिला महाकाव्य की रचना जिस युग में हुई थी, उस युग का जीवन गांधीजी से प्रभावित था। सामाजिक राजनीतिक आर्थिक सांस्कृतिक आदि सभी जीवन क्षेत्रों में गांधीवादी विचारों और सिद्धांतों को स्वीकृत किया जा चुका था। ऊर्मिला महाकाव्य में अहिंसा सत्याग्रह साम्राज्यवाद का विरोध

^{१०} ऊर्मिला द्वितीय सर्ग पृ० ७६

^{११} वही, पृष्ठ सर्ग पृ० ५६७

^{१२} वही, पृ० ५६८

वही पृ० ५६९

^१ वही, पृष्ठ सर्ग पृ० ५-०

^१ वही पृ० ५७१

आदि गांधीवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया है। गांधीजी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरोधी थे। 'ऊर्मिला' के राम भी इसी मनोवृत्ति के समथक हैं

'है साम्राज्यवाद वा नाशक
दशरथ नन्दन राम सदा ।
है भौतिकवाद विनाशक,
जनमन रजन राम सदा।'^{११}

नवीनजी ने राम और रावण को क्रमशः आत्मवाद और साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है। राम और रावण का सघष वस्तुतः आत्मवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का ही सघष कहा गया है। एक स्थल पर राम कहते हैं

"महामहिम रावण का मेरा, नहीं व्यक्तिगत था भगडा
आत्मवाद साम्राज्यवाद का वह था अनमिल भेद बडा।"^{१२}

'ऊर्मिला' की रचना पर रोमांसवाद, स्वच्छन्दावाद, हालावाद आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। पार्श्वत्य शिखा, सम्पना और सस्कृति का तब तक भारतीय जन जीवन पर प्रभूत प्रभाव पड चुका था। कवि हरि वंशराय 'वचन' की हालावाद सम्बंधी कविताएँ तत्कालीन साहित्य जगत में बहुचर्चित थीं। उमर खय्याम की रबाइया का अनुवाद लीग बडे चाव से पढने थे। स्वयं नवीनजी हिंदी साहित्य में हालावाद के उन्नायक हैं और स्वयं ऐसी कुछ कविताएँ निब चुके थे। ऊर्मिला उन प्रभाव से अछूती न रह सकी।^{१३} कवि ने ऊर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम का निरूपण करते समय लक्ष्मण से कहलाया है

"तुम रसदात्री, मैं मधुपायी,
तुम प्याली, मैं मनवाला ।
मैं मदिरा, तुम पात्र मनाहर,
मैं गाहक, तुम मधुशाला ।
X Y X

^{११} ऊर्मिला, पृ० ५५२

^{१२} वही, ५४१

^{१३} जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, नवीन और उनका काव्य, पृ० १४०

गरलमयी तुम, सुधामयी तुम
तुम मेरी मदिरा वाला ।
अभयदान देती मदमाती
मुझको करने दो मतवाला । ४६

लक्ष्मण ऊर्मिला के प्रमालाप वणन में कवि ने रोमासवादी मनोवृत्तियों का परिचय दिया है । लक्ष्मण का निम्नांकित कथन दृष्टव्य है

“अरी रानी क्यों ललचा रही ?
साज से क्यों ठानी है रास ?
तनिक मुख तो कुछ ऊँचा करो,
रच कर लूँ नैनो से प्यार ।
× × ×
अये गड जाओ हिय मैं इसी,
भाँति लज्जा नों की पतवार । ४७

दोना के प्रेम मिलन का चित्र भी इसी सन्दर्भ में दृष्टव्य है

ऊर्मिला के उरोज पर झुके, सुलक्ष्मण की निद्रा आ गई ।
एक की मट्टु गोती मैं एक गुथे स के ऐसे सो रहे
द्विवेणी ना मानो आवेश उदधि मैं मिलते ही सो रहे ।

× × ×

ऊर्मिला की चादर पर आज चढ़ा लक्ष्मण का चोखा रंग
बिध गय के धनग नाराच तडप उटठा मन का सुकुरंग । ४८

दाम्पत्य जीवन के मधुर विनोद एवं प्रेम प्रीडाओं के अतिरिक्त देवर भाभी (लक्ष्मण सीता) के मुक्त परिहास का चित्रण भी कवि ने किया है, जिसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं । लका से लौटते हुए विमान में देवर भाभी के एक लम्बे परिहामपूण सवाद का आयोजन की गयी है, जिसके दो अंश दृष्टव्य हैं

सीता का कथन

‘घर्य भाग ऊर्मिला बहन के
ऐसा ढोंगी पति पाया ।

४६ ऊर्मिला तृतीय सर्ग पृ० २१६-२०

४७ वही तृतीय सर्ग पृ० १४४-४५

४८ वही, तृतीय सर्ग पृ० १४६-४७

भीतर भीतर रस ऊपर से
फलाई यह यति माया ।
सब बोली क्या करते हा तुम,
सदा ऊर्मिला का ही ध्यान ।^{४६}

लक्ष्मण का प्रति उत्तर

‘भाभी तनिक राम स पूछो
क्या हो जाता है मन म ।
कसे सीत सीत करते
विचरे थे व वन वन मे ।
में ता फिर भी छोटा हूँ,
मेरी कौन विसात अहो ।’^{४७}

मानवतावाद हमारे युग का सबसे उन्नत विचार दशन है । कवि नवीन ने ‘ऊर्मिला’ म इस विचारधारा के मूलमूल सिद्धांतों की प्रस्थापना आद्यांत की है । यथा

हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जगमर यह अपना है ।
सीमित देश विदेश कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है ।^{४८}

‘ऊर्मिला महाकाव्य की रचना पर विभिन्न युगीन विचारधाराओं (वादों) का प्रभाव काव्य के रचनाफलक को व्यापक परिवेश प्रदान करता है । काव्य में समकालीन चिंतन प्रवृत्तियाँ का समाहार कवि की युग जीवन के प्रति सजग आस्था का परिचायक है । सत्य तो यह है कि— नवीन का कवि सवदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा ही युग के सत्य का परचा है ।’^{४९} प्रस्तुत काव्य के जीवन दशन की मर्मसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जिस सांस्कृतिक चेतना के समाहार की चपटा की गयी है वह पौराणिक और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन आध्यात्मिक

^{४६} ऊर्मिला पद्य संग, पृ० १६१

^{४७} वही पृ० १६६

^{४८} वही, पद्य संग पृ० १५८

^{४९} केशवदत्त उपाध्याय नवीन दशन—अरुणो दात

और भौतिक जीवनादर्शों से एक साथ प्रभावित है। उसका आधार विश्व मंगल की कामना है

‘आत्मसमपण की अनहद ध्वनि,
उठे विश्व के अम्बर में,
परम भुक्ति की जगे लालसा
जग में, सकल चराचर में।’^{५३}

‘एकलव्य’ महाकाव्य
गुरुभक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान

१२

‘एकलव्य’ महाकाव्य गुरुमक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान

प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल में कोई बलवती मृजल प्रेरणा और महत् उद्देश्य की सिद्धि निहित रहती है। महाकाव्य की महाघटा शिल्पगत वशिष्ट्य एव जीवन-दशन सम्बन्धी उपलब्धियाँ के साथ साथ उद्देश्य की महत्ता पर भी निर्भर करती है। डॉ० राम कुमार वर्मा प्रणीत ‘एकलव्य’ महाकाव्य भी बलवती सजन प्रेरणा का ही प्रतिफलन है। यह सजन प्रेरणा थी—एकलव्य के चरित्र का महत्वाकन और इस चारित्रिक माध्यम से गुरुमक्ति के उच्चतम उदात्त आदर्श की अभिव्यक्ति। एकलव्य की चारित्रिक गरिमा से सम्बन्धित समाख्यान महाभारत के १३२वें अध्याय में ३१वें श्लोक से लेकर ६०वें श्लोक तक केवल तीस श्लोका में वर्णित है। ‘महाभारत’ के इसी अत्यल्प और विरल कथामूल का अधिगृहीत कर डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपना अदभुत कल्पना शक्ति और सजनात्मक मथा के बल पर ‘एकलव्य’ शोषक महाकाव्य योजित गरिमा से मन्दिन प्रबन्ध का यद्दृष्टि की सजना की है। वस्तुतः एकलव्य का प्रणयन समकालीन युग बोध और मानवतावादी जीवन दृष्टि से अनुप्रेरित होकर हुआ है। सस्वृत काव्य शास्त्र की परम्परा और कायाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का नायक सुर, सदवशीय या क्षत्रिय ही हो सकता है। किन्तु डॉ० वर्मा ने निपादपुत्र का ‘एकलव्य’ महाकाव्य के नायकत्व पद पर जासीन करके अपनी मानवतावादी जीवन दृष्टि का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में एकलव्य के रचयिता का यह कथन उल्लेखनीय है कि—‘एकलव्य न जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के नियमों का आदर्श है। वह ‘जनाय नहीं आय है, क्योंकि उसमें शील’ का प्राधान्य है। यही उसमें महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह

'सुर अथवा सद्बोध' में उत्पन्न शक्ति नहीं है। 'एकलव्यकार की एतद् विषयक अवधारणा किंवा मानवतावादी जीवन-रूप के परिनिर्माण में महाभारत के मूल वाक्य — 'हिं माणुषाच्छेष्टतरं हि किंचिन् तथा राष्ट्रविरता महात्मा गांधी के तत्कालीन अछूतोंद्वारा आत्मालन का भी उत्कृष्ट योगदान रहा है। कवि ने स्वयं आमुग में रचकार किया है कि— मरे शंशव के सस्वारो में अकुरित और वापू में अछूतोंद्वारा में पलनवित यह कथा दस वर्षों की साधना के बाद आज की युगवाणी में प्रस्पृष्टित हो रही है। डॉ० वर्मा के उद्धृत मन्तव्यों से स्पष्ट है कि एकलव्य की रचनात्मक सादृश्यता युग बोध की व्यापक विवृति और महाकाव्यादर्शों की नायक विषयक परिवर्तना के प्रान्तिकारी परिवर्तन की अवधारणा में निहित है। अपन उद्देश्या की प्राप्ति के लिए एकलव्यकार को कथानक में अपक्षित परिवर्तन भी करने पड़े हैं। इन परिवर्तनों को मूलकथा से विलग जवांतर प्रसंगा नवान उद्भावनाओं एवं काल्पनिक घटनाक्रम की आयोजना के परिपात्र में देखा जा सकता है। इतिवृत्त विधान में महाकाव्यकार का कौशल इस दृष्टि से प्रशंसनीय है कि उसने मूलकथा के प्रचलित और प्रत्यात स्वरूप को खन किण्विना नवीन उद्भावनाएँ की हैं। डॉ० गाविण राम शर्मा का मत है कि— वर्मा जी ने इस कथा में नवीन उद्भावनाओं द्वारा यत्र-तत्र परिवर्तन करके इस अधिक व्यापक प्रभावशाली और बुद्धिप्राप्त बनाया है। मूल कथा के पौराणिक रूप की यथेष्ट रक्षा करते हुए कवि ने उस आज के युग की माँग के अनुरूप नव दृष्टि से देखा है।' 'एकलव्य के कथानक की दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने— महाभारत के जतने सक्षिप्त प्रसंगा में भी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की सूक्ष्म परत की है और मनोवैज्ञानिक जिज्ञासा बिन्दु देखा है। एकलव्य की कथा की धीणता मौलिक उद्भावनाओं से पुष्ट है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में मस्पर्शी हृदय और चिंतन ने कथा गिल्प के स्तर को बहुत ऊँचा उठा दिया है।' इसके अतिरिक्त एकलव्य का सग-संयोजन क्रम भी नितान्त नाटकीय एवं अधवत्तापूर्ण है। दशन परिचय, अभ्यास, प्रेरणा, प्रदर्शन, आरंभ निवेदन धारणा, ममता, सकल्प साधना स्वप्न लाघव द्वन्द्व और दक्षिणा शीपक चौन्ह सर्गों में विभाजित और विकसित कथाक्रम

^१ एकलव्य आमुग पृ० ६

^२ हिंदी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४२८

^३ आधुनिक हिंदी महाकाव्या का गिल्प विधान, पृ० १७७

एकलव्य की एकनिष्ठ धनुर्वेद साधना और दक्षिणागुष्ठ समपण रूपी महान् गुरुमक्ति भाव की नाटकीय अभि यक्ति देने में सवया सफल है। प्रासंगिक वृत्त के अन्तगत द्रोण और कौरव राजकुमारों तथा एकलव्य-जननी के अवा-तर प्रसंग हैं जो प्रधान कथा के अङ्गभूत ही हैं। 'एकल-य' के कथात्मक विनियोजन की सवाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसके कल्पना प्रसूत अशों का चारित्रिक मनोविज्ञान से सम्बन्ध है। एकलव्य' के इतिवृत्त से सम्बन्धित कुछ प्रश्न और सम्भावनाएँ भी काव्य में उभरती हैं। उदाहरणार्थ—यह प्रश्न उठता है कि गुरु द्रोण से तिरस्त्रुत होने पर भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को ही गुरु रूप में क्यों वरण किया ? द्रोणाचार्य प्रमत्ति मेघावी और स्वामिमानों प्राचार्य ने एकलव्य के व्यक्तित्व की गरिमा और चरित्र की महनीयता से अभिभूत होते हुए भी प्रथम तो तिरस्त्रुत क्यों किया ? और फिर बिना दोषा दिए ही उससे दक्षिणा क्यों माँगी ? इन दोनों प्रश्नवाचक सन्दर्भों के पार्श्व में अनक युगीन समस्याएँ प्रतिफलित होती हैं। जस—आय सस्कृति के उच्चा दर्शों की असंगतियाँ सामन्ती शासन व्यवस्था का जातीय आधार और उसकी विपाक्त परिणतियाँ, गुरु शिष्य परम्परा के नतिक परिसन्दर्भों में मानवीय जीवन-मूल्यों की उपेक्षा आदि। 'एकलव्य' महाकाव्य के इतिवृत्त में इन सभी सम्भावनाओं को उजागर नहीं किया गया अपितु इनके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार किया गया है।

'एकलव्य' वस्तुतः चरित्रमूलक महाकाव्य है और उसके रचनात्मक वैभव और सजनात्मक गौरव का वास्तविक मूल्यांकन चरित्र विश्लेषणात्मक आयामों के परिसन्दर्भों में ही किया जा सकता है। गुरुमक्ति के चिरन्तन कीर्तिमान की प्रतिष्ठा भी एकलव्य की चरित्र योजना में ही विद्यस्त है। सामन्ती सस्कृति के अमिशापा तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था की विडम्बनाओं जातिमूलक जीवन पद्धति की विसंगतियाँ तथा वण और वगभेद की वैषम्यमूलक स्थितियों का निरूपण भी एकलव्यकार ने चरित्र सृष्टि के माध्यम से ही किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि 'एकल-य' के रचयिता की रचनाधर्मी आस्थाएँ और निष्ठाएँ आलाच्य महाकाव्य के कतिपय पात्रों के माध्यम से ही अभि व्यजित हुई हैं।

गुरुमक्ति के चिरन्तन कीर्तिमान का सस्थापक यद्यपि एकलव्य है किन्तु उसकी गुरुमक्ति के आलम्बन द्रोणाचार्य तथा प्रतिद्वन्द्वी पाण्डु हैं। अस्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में एकल-य द्रोणाचार्य और अर्जुन के चारित्रिक त्रिकोण में उभरने वाली सघष और सामञ्जस्य की धुँधली उजली रेखाओं की आधारभूमि पर

संस्थापित गुरुमठिन के आदर्श की व्याख्या अभीष्ट है। यह व्याख्या चरित्र चित्रण की परम्परित शली में नहीं अपितु इतिवस्तु चरित्र और उद्देश्य की सगन्धम आधृत सश्लिष्ट विश्लेषण-पद्धति पर की जा रही है।

काव्यारम्भ से पूर्व स्तव शीपक मंगलाचरण प्रवरण में डा० वर्मा ने एकल य के चरित्र की जिस महनीयता का बयान किया है उसी का काव्य के कलेवर में प्रतिपादन हुआ है। एकलव्य की प्रशस्ति में वे कहते हैं—

‘प्रभु ! एकलव्य ऐसा बीज है कि जिसने,
साधना शिला के बीच अग्नि रस पाया है।
ओर शुष्कता में भी हरीतिमा को जन्म दे
जीवन का सत्य, दूय नम में सजाया है ॥

(स्तव, पृ० ६)

एकलव्य महाकाव्य का समारम्भ दशन' शीपक प्रथम सग स नाटकीय शरी में एकलव्य और उसके मित्र नागद त क परस्पर धार्तालाप स होता है। एकलव्य ने कहा कि वह नाराच के लिए लौहखण्ड लेने राजधानी गया था किंतु वहाँ सब लौह भण्डार राजकुमारों के विशिष्ट अस्त्रों के लिए रक्षित थे, अतः उसे विद्रोह और निराशा लिए हुए लौटना पडा। माग में देखा कि चीटिका क कुए में गिर जान क कारण राजपुत्र निराशा और निरुपाय खडे हैं। तभी देव द्रोणाचार्य उनसे कहते हैं कि तुम कुरुवशी धीर हो, राज्यधी तुम्हारे बाहुबल की स्वामिनी है और तुम एक धुद्र चीटिका नहीं निकाल सकत हो ? तुम अपने स्वजनो को दुःख रूप स कस निकालोगे ? इसी अवसर पर कवि न द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व का प्रभावशाली शब्द चित्र अंकित किया है—

श्वेत जटा विस्तृत ललाट कसी भीह हैं
नेत्र है विशाल रक्तवर्ण उठी नासिका।
श्वन श्मश्रु बीच जाठ, जैसे शुभ्र अश्रु की
जोट सध्याकाल मध्य दुग का कलश है।'

(दशन सग, प० १२)

द्रोणाचार्य न अभिमानित सीक डानकर कुएँ से चीटिका निकाल दी तथा राजपुत्रों को प्रबोधन के स्वर में कहा कि चीटिका की भांति यदि राजदण्ड ही कुएँ में गिर गया तो उसे कौन निकालगा ? तुम धर्मिय हो ! राजघम की

रक्षा के गुरतर दायित्व का सबहन तुम शक्तिहीन बन कर नहीं अपितु वीर बन कर करो—

“क्षत्रिय हो राजघम चाहता है तुम से
जीवन धनुष पर तीर रखो प्राण का।
घम बीटिका पडी हो यदि छदम रूप मे
तो निकालो उसे शीघ्र लक्ष्य वेध करके।

× × ×

श्लाघ्य है तुम्हारी मातृभूमि पावे तुमसे
शब्द वीरता न, किन्तु शब्द वेध वीरता।

(दशम सग, पृ० २०)

द्रोणाचार्य की ओजस्वी वाणी से अभिभूत होकर राजपुत्रों ने उनसे प्रायना की कि वे भीष्म पितामह के पास चले जहा उन्हें वे राज गुरु के रूप मे प्रतिष्ठा दिलायेंगे। द्रोणाचार्य राजकुमारों के साथ चले गए। किन्तु एकलव्य द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व की गरिमा धनुर्वेद ज्ञान और वाणी की ओजस्विता से इतना अभिभूत हुआ कि उसने मन ही मन उनसे दीक्षा लेने का सबल्य कर लिया—

‘ तेजोमय रूप हे !
चाहता मैं शिक्षा धनुर्वेद की हूँ तुमसे,
प्रभु ! मुझे दिय मात्र द दो गुरु मेरे हो । ’

(दशम, सग १, पृ० २४)

‘परिचय’ शीपक द्वितीय सग के समारम्भ मे हस्तिनापुर की राजसभा के कलात्मक सौन्दर्य का वणन है। राजसभा मे नृप धृतराष्ट्र एवं समासदा की उपस्थिति मे भीष्मपितामह ने द्रोणाचार्य का स्वागत करके उन्हें अपना परिचय देने को कहा। गुरु द्रोण ने स्वपरिचय मे बताया कि वे अगिराकुत के ऋषि भारद्वाज के अयोनिज पुत्र हैं। महर्षि अग्निवेश से उन्होंने वेद वेदांगों की शिक्षा प्राप्त की है। उनका विवाह महात्मा शरद्दान की कन्या कृपि से हुआ और अश्वत्थामा पुत्र भी हुआ। द्रोण ने धनाभाव के कारण होने वाली यातना और तिरस्कार का भी वणन किया। अपने सहपाठी द्रुपदराज यक्षसेन द्वारा किए गए अपमान का वणन करते समय द्रोणाचार्य की मुग मुद्रा अत्यन्त मयावह हो रही थी। कवि के शब्दों मे—

“दात वय जस सधिहीन फसे मुल मे
बौंठ भूमि-रूप से फटे हुए शितर थे,

जीम जसे सर्पिणी सी ऐंठी निज बाँधी म,
स्वेद जसे आग की नदी बही हो सिर से ।
शत्रु विष की प्रचण्ड ज्वाला म बुने हुए,
तीर जसे निक्ले—'

(परिचय, सग २ पृ० ५०)

अपने अभावग्रस्त जीवन की कटुताओं का उल्लेख करते हुए आचार्य द्रोण अत्यन्त उद्विग्न थे । उनकी मनो-यथा का सशक्त चित्रण कवि ने चार ही पक्तियों में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से किया है । द्रोणाचार्य कहते हैं—

'शोम और ग्लानि से हृदय अगार जैसा
धक धक जलता था । मेरा रोम रोम ही
सूची के समान लिच लगा मुझे छेदने ।
पल पल का कष्ट, युग युग की पीडा थी ।'

द्रोणाचार्य ने बताया कि वे पत्नी कृपी के माई कृपाचार्य के यहाँ हस्तिनापुर में आए हैं । अन्त द्रोणाचार्य के वेद वेत्तय तथा धनुर्वेद ज्ञान एवं चारित्रिक गौरव से प्रभावित होकर भीष्मपितामह ने उन्हें ससम्मान राजपुत्रों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा प्रदान करने के लिए राजगुरु नियुक्त किया ।

'अभ्यास शीघ्रक तृतीय सग में गुरु द्रोण द्वारा सभी राजकुमारों को शस्त्रास्त्र अभ्यास कराने का वणन है । सभी राजपुत्रों को द्रोणाचार्य ने धनुर्वेद का ज्ञानदान कर निपुण बनाया । किंतु अर्जुन के प्रति उनका विशेष स्नेह था, अतः उसे लक्ष्यभेद के साथ साथ तमभेद भी सिखाया तथा वायव्य पाजय आदि दिव्यास्त्रों की संचालन विधि का भी पूरा परिचय कराया । द्रोणाचार्य ने शस्त्रास्त्र पान के साथ साथ राजकुमारों को अहंकार और द्वेष आदि दुष्ट सियाओं को भी विजित करने की भी शिक्षा दी । उन्होंने राजकुमारों से कहा—

'एक अहंकार है जो छल छद्म रूप से
वामन सा आता है विराट बन जाता है ।

× × ×

द्वेष एक ज्वालामुखी रूप लिए बड़ा है ।
क्षण क्षण आग की लपट फैकता है जो
जलता स्वयं है और अय को जलाता है ।

× × ×

नान गिरि चढना सहज है, किन्तु वीर !
 बहकार-द्वेष जीतना महा बठिन है ।
 जीतो इसको हे वीर ! युद्ध म प्रवीण हो,
 अग्र शत्रु ये हैं फिर अय कोई शत्रु है ।”

(अभ्यास, तृतीय सग पृ० ६० ६१)

द्रोणाचार्य की दिग्ग शिक्षा की ख्याति दूर दूर तक फैल गई । राजवंशी एव अय अनेक कुमार मित्र मित्र वशा म गुरु द्राण के पास शिक्षा प्राप्त करने आने लगे ।

‘प्रेरणा’ शीपक चतुर्थ सग म हम थद्धामिभूत एकलव्य को वाणो की नोक से पत्थर पर रेखाएँ खीचकर द्रोणाचार्य का चित्र बनाकर उनका गुणगान करते हुए पाते हैं, उसे खान पान की भी सुध नहीं । अपने मित्र नागदत्त से वह एक दिवा—स्वप्न का भी वणन करता है, जिसके अनुसार वह स्वयं गुरु द्रोण के सामने खड़ा है । वाटिका उसे प्रेरित करती है तभी गुरु बादलो में छिप जाते हैं । वे पुन मिट्टी के ढेर में खिल पुष्पो में लिखाई देते हैं । वह अपना दाहिना हाथ बढ़ाता है कि सप उसका अगूठा काट लेता है । एकलव्य ने नागदत्त को धताया कि प्रस्तर चित्र ने मुझे इतना अनुप्रेरित किया है कि सम्पूर्ण सृष्टि मे दृष्टि गुरु को ही खोजती है और उही की छवि प्रकृति क वण-कण पर अंकित पाती है—

“नागदत्त ! इतना प्रकाश दिया गुरु ने
 मेरी दृष्टि उनको ही खोजती है सृष्टि म,
 तारको म चन्द्र मे लता म पुष्प-पुष्प म ।

× × ×

मुझे द्राणाचार्य-श्री सकेन से बुलाने हैं ।
 खींचता हूँ चित्र, पेड, पत्र पापाण पर,
 केंपनी सी उगलिया से, कांपते से शर से ।
 लूंगा मत्र उनस में, मेरे गुरु होंगे वे ।”

(प्रेरणा, सग ४, पृ० ७४ ७५)

गुरु द्रोण से दीक्षा प्राप्त करने का दृढ निश्चय और हठ वह अपनी माता के समक्ष भी प्रकट करता है । वह मोक्षन भी नहीं करता । उसके पिता हिरण्य-धनु समयाते हैं कि निपादपुत्र की शस्त्र शिक्षा राजकुल के लोग पसंद नहीं करेंगे । अन्नन वे पुत्र के आग्रह की रक्षा-हेतु उसे राजकुमारा के शस्त्रास्त्र

प्रदशन के उत्सव पर हस्तिनापुर ल जाने का आश्वासन देने हैं। एकलव्य जननी इस कल्पनामात्र से चिंतित है कि कहीं गुरु द्रोण ने दीक्षा देना अस्वीकार कर दिया तो उसका पुत्र किसी सकटापन्न स्थिति में न फँस जाय।

प्रदशन शीपक पंचम सग में नगर के बाहर एक विशाल प्रेक्षागार में राजकुमारों के शस्त्रास्त्र ज्ञान के प्रदशन का विवरण है। इस अवसर पर अर्जुन दिव्य अस्त्रों के विलक्षण प्रयोगों द्वारा उपस्थित जनसमूह को आश्चर्यचकित कर देता है। प्रदशनोपरान्त जब नाना वेशों में नाना देशों से आए हुए राजकुमार गुरु द्रोण के प्रति कृतज्ञतापादन कर रहे थे तभी एकलव्य धृष्टाकन्यत भाव से गुरुचरणों में दृष्टि केन्द्रित किए बैठ गया। आत्मनिवेदन शीपक पष्ठ सग में एकलव्य द्रोणाचार्य के समक्ष जाकर अपने वंश पितादि का परिचय देकर उनका शिष्य बनने की जिज्ञासा प्रगट करती है। किन्तु द्रोणाचार्य ने धनुर्वेद की कठोरता का प्रतिपादन करते एकलव्य से कहा—

वत्स ! शिष्य बनने की योग्यता है तुम में
किन्तु धनुर्वेद की कठोर साधनाएँ हैं।
तीक्ष्ण बाण जसी दिन रात की तपस्या है।
अग्नि शिक्षा सी अज्ञात जीवन की गति है।
आचरण माग सघा है कृपाण धार सा,
और माग्य के समान लक्ष्य भी अदृष्ट है।

(आत्म निवेदन सग ६ प० ११६)

प्रत्युत्तर में एकलव्य ने अत्यंत शिष्टाचार पूर्वक निवेदन किया कि दास कैसे उत्तर दे ? एक पत्थर वसन्त को कैसे अर्पित हो सकता है ? कुश कुशानु के अनुरूप कस हो सकता है ? किन्तु मैं धनुर्वेद के कृच्छ्र साधना-यज्ञ के लिए अस्त्रि की समिधा और ब्रह्मचर्य को स्तम्भ बना दूँगा। यदि मैं लक्ष्य भेद में सफल न हुआ तो करागुच्छ ही काट कर समर्पित कर दूँगा। एकत्रय के कथन में उसका दृढ़ निश्चय महान सख्य आत्म विश्वास और विनम्रता एक साथ परिलक्षित होत है—

रात बने लक्ष्य और दिन मेरा बाण हो।
जीवन के यज्ञ पर अग्नि का मुकुट हो।
श्राण के कृपाण पर आचरण पानी हो।
देव ! धनुर्वेद को मैं दूँगा अध्व्य स्वेद का
दृष्टि एक मात्र लक्ष्य को ही पहचानेगी।

एकलय की आशय निष्ठा सकल्प शक्ति और गुरुभक्ति से इतने प्रभावित हुए कि वे उसकी महानता पर मन ही मन मुग्ध होकर कह उठे कि—

‘हे तो गूढ़, किन्तु जसे निष्कलक द्विज है ।
बालर निपाद का है किन्तु तेजोमय है
जसे मणि रत्न है विशाल विपथर का ।

आशय रावपुत्रों से विशेष श्रद्धावान् है,
जसे यह अकुर है प्रस्तर के पार्श्व में ।
जा कि अशम से भी रस खींचता है शक्ति से
मासित है जस वह सीप में रजत हो ।

(वही सग ६, पृ० १२५)

एकलय के निष्ठाभाव और धनुर्वेद के प्रति अनशय आस्था से प्रभावित होते हुए भी द्रोणाचार्य ने उसे शिष्यत्व प्रदान करना अस्वीकार कर दिया, क्योंकि राजगुरु होने के कारण वे एक विशेष मर्यादा का अनुपालन कर रहे थे । उन्होंने अत्यन्त कठोर वनसर एकलय से कह ही दिया कि—

किन्तु मेरे शिष्यण के वे ही अधिकारी हैं,
जो कि भूमिपुत्र नहीं किन्तु भूमिपति हैं ।

× × ×

राजगुरु हूँ विनोप पद की मर्यादा है ।
शिष्यानीति राजनीति के पदो है चलती ।
शारदा की घाणी यहाँ बोलती है स्वण में ।
गुरुकुल है वहाँ ! यहाँ तो ‘राजकुल है ।

× × ×

जाओ हे निपात्पुत्र ! तुम हो अस्वीकृत ।

(वही पृ० १२६ १२७)

किन्तु धन्य है एकलय । वह तनिक भी आवेश में नहीं आया । गुरु द्रोण द्वारा अस्वीकृत होने पर भी उसने मन ही मन उन्हीं को गुरु रूप में वरण कर लिया । एकलय के चरित्र की भूमिका पर गुरुभक्ति के उन्मेष का प्रथम स्फुरण हमें उसके निम्नादधन कथन में परिलक्षित होता है—

जसी गुरु आता ! एक क्षण के लिए नहीं,
दस राजकुल में खूँगा भूमिपुत्र हो ।

आप गुरु मेरे हैं, रहेंगे सब काल मे,
हानि क्या प्रत्यक्ष ! नहीं, मेरे मन मे तो है !
नाम ‘धनुर्वेद’ सुना श्रीमुख से आपके,
और मुझे चाहिए क्या ! साधना तो मेरी है ।’
(वही प० १२७)

साधना के प्रति एकलव्य का आत्मविश्वास और अनन्य आस्था ‘धारणा’ शीघ्रक सप्तम सर्ग मे मा अभि यजिन हुई है । हस्तिनापुरी से लौट आने पर एकलव्य क मित्रो ने योग्योक्तियो से उमका अभिनन्दन किया । उहाने योग्य प्रहार करते हुए कहा कि गुरु द्रोण पाय से भी अधिक पराय शिष्य को देख कर कृताय हो गए होने, उहीने एकलव्य को समोद गोद मे बठाकर धनुर्वेद दीक्षा दी होगी आदि । एकलव्य ने प्रशान्त भाव से अपने मित्रो को कहा कि मेरे पूज्य गुरु और धनुर्वेद शक्ति का परिहास कोई न करे । मेर उर मे साधना का जो राग उठा है वह तुम्हारे विवादी स्वगलाप से विकृत नहीं हो सकता । एकलव्य ने गुरु द्रोण क प्रति पूज्यभाव और धनुर्वेद साधना के लिए अपना आत्म सकल्य इन शब्दो मे व्यक्त किया—

दशन किए है मैंन आज पुण्य पव मे,
उस महामानव के जो कि शक्ति स्रोत हैं ।
मेरी देह को शिराए हा गई सरक्त है,
जिनमे उमग और ओज ओत प्रोत है ।
धारणा से, ध्यान से, शरीर बना धनु है,
और रोम रोम ही साधन हुए बाण हैं ।

× × ×
हस्तिनापुरी मे नहीं मानसपुरी मे ही,
अनुभव हो रहा कि एक गुरुकुल है ।
मृगमय शरीर के कणो मे एक मूर्ति है,
गुरु द्रोण की, स्वरूप मूर्तमे है पथुल है ।”

(धारणा, सप्तम सर्ग पृ० १३४-१३५)

धनुर्वेद क प्रति एकलव्य की अनन्य निष्ठा दसकर उमके साथी म्त्वध रह गए । अ नत एकलव्य ने अपने अन्तरंग बन्धु नागदत्त को अपने इस निश्चय से अवगत कराया कि वह धनुर्विद्या सीखकर ही आवेगा । नागदत्त ने साथ जाने का प्रस्ताव किया , किन्तु एकलव्य उस पर माता को सात्वना देने का दायित्व

सौंप कर एकान्त अज्ञात स्थान के लिए प्रस्थान कर गया। एकलव्य के निजन वन में चले जाने पर एकलव्य जननी के हृदय की पुत्र वियोग जय वेदना की मार्मिक व्यजना काव्य के ममता नामक अष्टम सर्ग में हुई है। अपने लाल की बालसुलभ शीडाओं की स्मृतियाँ सजोये एकलव्य-जननी अपनी सबेदनाओं को भावपूर्ण गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। ममत्व और वारसल्य की घनीभूत किंतु ऋजु अभिव्यजना इन गीतों की उल्लेखनीय विशेषता है। इस दृष्टि से कतिपय गीतांश उद्धृत हैं—

(क) मेरा लाल न अब तक आया ?
माग देखकर घबकी न कोई उसका कुशल सदेशा लाया ।
कुछ दिन में ही आवेगा ऐसा सबने मुझको समझाया ।
पर सूने दिन कहते हैं, मेरे कुमार ने मुझे भुलाया ॥’
(ममता सर्ग ८, पृ० १४७)

(ख) मैं भी साथ तुम्हारे जाती ।
उपा-काल में तुम्हें उठाने मधुर प्रभाती गाती ।
तुम उठते करते प्रणाम मैं उर से तुम्हें लगाती ।
ऐसी आशिस् देती जा कहते ही सच हो आती ॥’
(वही पृ० १४६)

श्रीरम वर्षा शरद हेमन्त शिशिर और वसन्त नामक षट्शतुओं के प्रत्यागमन की माता के मन पर प्रतिक्रियाओं का वर्णन भी कवि ने गीतों के माध्यम से ही किया है। एकलव्य जननी के चारित्रिक उत्कर्ष की व्यजना वियोग जय व्यथा की असहनीयता में नहीं, अपितु उस उदात्त भावबोध में निहित है जिसमें वह अपने लाल की साधना पर गौरव और गव का अनुभव करती है। एकलव्य जननी का यह वचन इस दृष्टि से कितना सटीक है कि—

“गुणकथन ही तो मेरा गान है ।
माता का उपमेय हृदय बन रहा आज उपमान है ।
लाल तुम्हारी कठिण तपस्या ही मेरा अभिमान है ।

(वही सर्ग ८ प० १६३)

एकलव्य की अपराजेय सकल्प शक्ति का प्रतिमान काव्य के सकल्प शीपक नवम सर्ग में द्रष्टव्य है। एकलव्य निजन अरण्य में वाराणस पर्वत पर घनुर्वेद साधना आरम्भ कर देता है। इसी मध्य उसके मन में यह विचार उठता है कि भरे आयु गुरु द्राण न यह क्यों कहा कि ‘मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी

है, जोकि भूमि-पुत्र नहीं, किन्तु भूमि पति है। वस्तुतः भूमिपति तो भूमि के प्रशासक हैं, वे सरस्वती पर शासन नहीं कर सकते। क्योंकि भूमि प्रशासन तो उन्हें सुयोग से प्राप्त हो गया किन्तु सरस्वती की कृपा तो साधना से ही प्राप्त हो सकती है—

“भूमि पति वे सही प्रशासक हा भूमि के,
किन्तु क्या सरस्वती का शासन करेंगे वे ?
राज-दंड तो विधान करता है राज्य का,
किन्तु है सरस्वती निवासिनी हृदय की।
कैसे एक मात्र वे लहंगे वेद विज्ञता ?
वेद विज्ञता ता शुद्ध साधना से आती है।
भूमिपति जा हैं, उह साधना की साध क्या ?
वे तो बिना साधना क पूर्ण सिद्धि-कामी हैं।”

(सकल्प, सर्ग ६, पृ० १७६)

एकलव्य के चरित्र का बमब उसके भूमिपुत्र होने में ही है। उसे भूमिपुत्र होने में गद है। भूमिपतियों के अकर्मण्य और साधना शून्य जीवन को वह हय दृष्टि से देखता है। इस सम्बन्ध में एकलव्य की यह आत्म स्वीकृति उद्धरणीय है कि—

‘भूमिपुत्र होना, मेर भाग्य का सुयोग है
भूमिपति में तो मुक्त मानव विकृत है
मूल्य नहीं जानते वे जीवन की गति का,
सुख है निमेष-जसा, दुख लम्बी दृष्टि है।
अरे, यह जीवन विभूति ही है भूमा की
सुख तो छिपा है यहाँ सृष्टि के विचिर में।’

(वही, पृ० १७७)

भूमिपुत्र हान के कारण गुरु द्राण द्वारा तिरस्कृत किए जाने पर एकलव्य का रोष गुरु के प्रति नहीं अपितु भूमिपतियों की उस शासन व्यवस्था के प्रति है जो भूमिपुत्रों का राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिए शिक्षा के समान अधिकार से वंचित करती है और परिस्थितिवश गुरु द्राण भी इन कुचक्रवृण व्यवस्था के चक्रुत में फँस गए हैं। एकलव्य ने कहा कि ऐसी व्यवस्था का ग्रीष्म पवन हो जायेगा जो मन्दिनों का राजनीति से और गुरुकुलों की राजकुला के रूप में संचालित करती है। इसी व्यवस्था की विडम्बना ने मानव पुत्रा में

भूमिपति नामक दो वर्गों को जन्म दिया है। एकलय का पौष्य और स्वामिमान भूमिपतियों का चेनावनी देता है कि उनका पशुबल कौशल तो सीमित है किंतु भूमिपुत्रों का आत्मबल अपरिमित है और व उसी के बल पर अमृत सिद्धि रूपी विजय का वरण करेंगे। कवि ने एकलय के एतदविषयक मानसिक उद्गारा को इन शब्दों में प्रकट किया है—

सावधान भूमिपति ! हमम भी शक्ति है
भूमिपुत्र सबदा हैं भूमिबल जानते।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल को हमारे पास सीमा है नहीं।
एक जसि भ्रूलन का है जयुत अस्थिया
अग हमारे पास कितना प्रहार है।
दखें नवनीत लग इन भुजदण्डों में,
जो कि सत्य की न राजनीति की ध्वजाएँ हैं।

(सकल्प सग ६, पृ० १७७-१७८)

एकलय मानसिक रूप से गुरु द्रोण की विवशता के प्रति जाश्वस्त होगया और उसने द्रोणाचार्य की मृगमयी प्रतिमा बनाकर उसके समक्ष घनुबिद्या का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य की प्रतिमा संरचना के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि—

मूर्ति गुरु द्रोण की है शिष्य एकलय ने
स्निग्ध चन्द्र ज्यातना और तीव्र रश्मि रश्मि ल
सोप-कण मिश्रित मृदुल रजकण में
भरवपूण हूँवार पूण नदजल डाल के
अथक करा से तथा अनिमय दृष्टि से
पूण मनायाग से गुयाग में बनाई है।'

(साधना दशम सग पृ० १६३)

गुरु द्रोण का प्रतिमा इतनी सजीव भी थी कि चात हाता था गुरु द्रोण शिक्षा दाता के लिए मनक का बन्धन है। एकलय ने ब्रह्म बला में सुमन माल शूथ कर प्रणत भाव से जायाय का पूजन किया। औरबश धारण लिए घनु विधान पानाचन कतिग सजद्ध और शुभाशीप प्राप्ति के लिए द्रोणाचार्य की मृगमयी प्रतिमा के समग समाधिस्थ एकलय्य के जाकपक व्यक्तित्व का शक्ति चिह्न महाकाव्यकार का कुञ्ज लगना न इम प्रकार अज्ञित किया है—

‘पारावत पल शीश म विचित्र हैं वसे,
लम्बा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
जसे श्याम मेघ म खचित इद्र चाप है,
खण्ड खण्ड हो के वही ऊपर है, नीचे है।
है प्रशस्त भाल घने वण उठे मीठा मे,
बीच मे मिले हैं जसे कथित घनुप है।
नासा रेख उन्नत कपाल सौम्य, कण म,
विलुलित है कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।

× × ×

हृष्ट पुष्ट विग्रह है, ब्रह्मचय-तज स,
कसा पीत बल्कल है, बल्लरी के रज्जु स।’

(वही, दशम सर्ग, पृ० १६४)

इस वीरवेश मे एकलव्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो श्याम मेघ पर बाल रवि का रश्मि हो। एकलव्य ने श्रद्धासिक्त भाव से गुरु प्रतिमा के समक्ष नमन करके प्रार्थना की कि देव ! क्षमा करना, मैंने अपने हाथों से मूर्तिका की मूर्ति म आपका रूप खींचा है। जाप महत्तम हैं किंतु प्रतीक (मूर्ति) अत्यंत लघु है, किन्तु आप तो वण वण म परिचाय्य हैं। आपके रूपावन शिर म कुछ यूनता हो सकती है किंतु मेरे प्रयाम की निगीहना और पवित्रता ही पूर्य भाव की साक्षी है। एकलव्य ने वय पशुजा व जम्बिखण्णा और मीणा का घनुप तथा द्रुम-काण्ड काटकर विशिख बनाए और अपनी धुनवेंद साधना का समारम्भ किया। गुरु प्रतिमा के समक्ष एकलव्य न पुन अपना सकल्प व्यक्त किया कि गुणदेव ! मुझे जापना सकेत मान चाहिये। लक्ष लक्ष तरुजाल और लतानुज मेरी लक्ष्य-बध दृष्टि का लक्ष्य होम पत्तन शान्ते से उठी ध्वनि गुरु दीक्षा होगी। मेरा साधना नद प्रवाह के समान तदव गतिशील रहगा, मेरा शर-क्षेप लहरो की मानि चक्राकार होगा जोर बीच मे यदि भवर भी पड़े तो वे मेरे लक्ष्य वेध चिह्न हंग। मेरा हरक्षण अब साधना निरत रहगा—

‘आज से लिमा है यह व्रत इस शिष्य न,
आपके समक्ष वह साधना मे लीन हा।

× × ×

निशानि कोई भी समय मेरी साधना
अगावार हा, हृदय ! आपके प्राप से ।

आप सब बाल, सब भानि गुरुदेव हैं,
एकलव्य शिष्य वे, जो सत्र बाल शिष्य है ।'

(वही, दशम सर्ग, पृ० १६६)

'साधना सग वे' दोषाश्रम मन्त्रि ने एकलव्य की धनुर्विद्या साधना का विशद विवचन किया है। एकलव्य ने असह्य विधियों से शर साधन किया। एकलव्य ने योगिक, त्रिया, शलाका, ज्याघाती, श्रमिक साप्राप्तिक, दूरपातदाम, दृढवेध, विकप और दीघफन नामक नाना प्रकार के धनुष बनाकर उनके द्वारा आकषण, विकषण, पर्याकषण, अनुकषण, मुक्कन मडलीकरण, पूरण, स्थारण, आसनपात दूरपात पृच्छपात आदि समा धनुष गनिया का पूणाभ्यास कर सिद्धि प्राप्त की। लक्ष्य साधन क आलीढ प्रत्यालीढ, विशाख समपाद, असम, गरुड क्रम ददुर क्रम, पदमासन स्थानक नामक आसनो का भी अभ्यास किया। प्रत्यक्षा क प्रयोग की सिद्धि क वच्यमुष्टि, मत्सरी पताका, वाकतुडी आदि विधिया और अध साधन, ऊच्य साधन समसाधन नामक धनुषमुष्टि प्रभेदा मे एकलव्य पूण पारगत हो गया। एकलव्य की साधना शुक्ल पक्ष की चन्द्रिका के समान निरंतर विक्रम वृद्ध हानी गई और अतंत उसने सभी प्रकार के लक्ष्य साधन म नपुण्य प्राप्त कर लिया—

'धनु खीचने में एकलव्य की निपुणता,
धीरे धीरे बढी व्याय पूण सिद्ध हो गया।
× × ×
स्थिर लक्ष्य लेके स्थिर-वही एकलव्य है
वेधी चल लक्ष्य म चलायमान वस्तुएँ।
चलाचल लक्ष्य मे स्वय चल अचल को,
बधा । द्वय चल म चलित को सु चल का ।'

(वही, दशम सर्ग, पृ० २११)

स्वप्न' शीपक एवाण्ण सर्ग का समारम्भ प्रकृति के कराल रूप के चित्रण से होता है। यह कराल प्रकृति चित्र श्रोणाचाय का ब्राह्ममहूत म एक स्वप्न मे दृष्टिगत होता है। यह प्रकृति चित्र डॉ० रामकुमार वर्मा की प्रकृति चित्रण शली का जीवन प्रमाण है—

'प्रकृति म श्रान्ति है। अशांत आधीरात है।
पाक भूमते हैं। तरुपन हानाकार म,
× × ×

अपचार की असीम कानिमा के क्रोध में
शूरता का शोक लिए घन पिर आए है ।

× × ×

नम में प्रचण्ड ध्वनि जस शूर-शूर हो
छिटक गई है दूर दूर का गिनाजा में ।
जसे तम राट गड ह्रास टूटता सा है
विद्युत्-सदृश में दशर दीग जाती है ।

(स्वप्न एकादश राग, पृ० २१५)

ग्राह्य बला में प्रवृत्ति के अशान्त रूप को देखकर द्रोणाचार्य विभ्रमिा हो जात हैं । उन्होंने स्वप्न में दत्ता त्रि एव घने जगत में बढे हुए एक श्यामवर्ण कुमार का अद्वितीय धनुर्विद हान का वरदान दे रह हैं । एकसम्य की एक निष्ठ साधना का सम्पूर्ण परिदृश्य उन्हें आश्चर्य गिमान कर देता है । उन्होंने तो अद्वितीय धनुषर हाने का वरदान पाप को निया या फिर यह कौन अनन्य साधक है । यहीं आचार्य द्रोण के मनस जगत में एक विषित्र अन्त दृन्द्र जन्म लेता है । यह दृन्द्र उन्हें शिपाक के दायित्व और सरस्वती साधना की मूर्तिमा का यथाय बोध कराता है । ये स्वयं का पिचटत करत हुए कहत हैं—

किन्तु यह क्या अनाचार हुआ मुझ से
आय मीधम से हूँ नियोजित दस पुर में ।
शिक्षा हूँ सदव द्वा कौरव कुमारों को
वेतन का भोगी हूँ निवास राज गृह में ।
अप को मैं वसे शिक्षा दे सकूंगा इच्छा से
गुरुकुल स्वामी नहीं, राजकुल सेवी हूँ ।

(वही एकादश राग, पृ० २२२)

शिक्षा और शिक्षण नीति के सम्बन्ध में गुरु द्रोण की स्वकीय अवधारणा निम्नोद्धत शब्दों में प्रगट हुई है—

‘शिक्षा तो सरस्वती की धारा है प्रशात है,
है अनन्त जो वही है सृष्टि के आरम्भ से ।

× × ×

जानि भेद नहीं वग वश भेद भी नहीं
शिक्षा प्राप्त करने का सभी अधिकारी हैं ।

× × ×
 शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र ताथराज तो,
 सृष्टि में समस्त मानवा की कम भूमि है।”

(वही, पृ० २२२ २२३)

द्रोणाचार्य को ब्राह्म वेला का स्वप्न आत्म बोध कराता है कि इस पुर में रहकर वे बठोर राजनीति से शासित हैं। वे सोचते हैं कि—मैं कितना विवश और अमाया हूँ कि पिता भारद्वाज के आदेश को अप्रसर न कर सका। किसी गुम्बुल की स्थापना कर शिक्षा दान का पवित्र धर्म काय कर मैं कृताघ हो सकता था। गुरु अग्निवेश की तपस्या व्यथ हुई। भागव परशुराम जब यह सुनेंगे कि मैं नान क्षेत्र की पवित्र भूमि का मात्र राजवश तक परिसीमित कर दिया है, ता वे अत्यन्त खिन्न होंगे। गुरु द्राण ने अपने का इनना अपमानित अनुभव किया कि कह उठे—

“धिक द्रोण ! तेरी सब साधनाएँ मिथ्या हैं,
 तेरा धनुर्वेद सूत्र की सम्पत्ति—जसा है।”

(वही, ११, पृ० २२३)

फिर उह अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हा आया जिसमें उन्होंने अजुन को अजेयता प्रदान की थी। स्वप्न का आलोक में वे यह सोचन को विवश हो गए कि क्या जागरण द्राण और स्वप्न द्रोण भिन्न हैं। इसी अवसर पर पाथ का आगमन होता है जिस का स्वप्न के घटनाक्रम से अवगत कराते है। स्वप्न का श्यामल कुमार का पता लगाने के लिए वारणावत वन में मृगया के भिन्न जाने का पाथ निश्चय करता है।

लाघव शीपक द्वादश राग में राजकुमारा का मृगया हनु वन में आगमन तथा उनके श्वान का एकलव्य के साधनास्थल पर जाकर भौंकना। एकलव्य सात वाणो से चोट पहुँचाय बिना श्वान का मुँह बंद कर भौंकना रोक देता है। अजुन एकनय के आश्रम में पहुँचकर उसकी धनुर्विद्या के चमत्कारपूर्ण कौशल और अद्भुत प्रदर्शन को देखकर हतप्रभ हो जाता है। अजुन के पूछने पर एकलव्य बताता है कि गुरु द्रोण की मृगमयी से ही उसने धनुर्वेद दीक्षा प्राप्त की है। अजुन ने आश्चर्य प्रकट करत हुए कहा कि इस प्रकार की विलक्षण धनुर्वेद शिक्षा हमें तो गुरु द्राण ने प्रदान नहीं की। इस कथन में गुरु निरा की गंध पाकर एकलव्य ने निर्भीकतापूर्वक पाथ का फटकारते हुए कहा—

'सावधान आय' गुरु निन्दा एक क्षण भी
सुन न सकूँगा आपके वाचाल मुख से।
गुरु पान दान निष्पक्ष करते हैं सदा,
क्षिप्य है जो प्राप्त करने में असफल है।
छेड़ें न प्रसंग । कदमूल स्वीकार करें
निज गुरु भाई का सृज्य प्रेम मान के।

(लाघव, द्वादश सग, पृ० २५४)

एकलय का असाधारण धनुर्विद्या शीशल पाथ के मन में हीन भावना को जन्म देता है। उसके अनाद्वैत का चित्रण कवि ने 'द्वैत' शीपक प्रयोदश सग में किया है। पाथ का नींद नहीं जाती। वह दीपाधारो पर रखे मृत्तिका दीपा की लौ को वायु तरंगों से हिलते हुए देखकर सिहर जाता है कि कहीं बुझ न जाय। उसके मन में विचार उठता है कि जब मृत्तिका दीपा को स्नेह का आधार ज्योतिष कर रहा है तो ही संकल्प है कि एकलय के विश्वास स्नेह से गुरु मूर्ति ज्यातिमय हो उठे। इस विचार में पाथ को एकलव्य की प्रशंसा करने को भी बाध्य किया। पाथ के द्वैत का एकलव्यकार ने इन शब्दों में व्यञ्जित किया है—

पाथ साधना है—दीप भी बन मृत्तिका से,
इनमें भी ज्योति उठी स्नेह के आधार से।
क्या आश्चर्य एकलव्य के विश्वास स्नेह से
मृत्तिका की गुरु मूर्ति ज्यातिमय हो उठे।
कितना विश्वास हागा एकलय वीर में।
जोकि गुरु मूर्ति को ही गुरु मान बठा है।
लक्ष्य भ्रम-श्रय वह गुरु को ही दता है
कितना अहंकार भूम निस्पृह वीर है।'

(द्वैत प्रयोग सग पृ० २६४)

धनन अजुन गुरु द्राण न पास जाकर उन्हें उस वचन की याद दिलाता है जिसमें अनुमार उस शीशनीय धनुष-हानि का वर्णन किया गया था। गुरु द्राण एकलव्य के आश्रम में जाने का निश्चय करते हैं।

एकलव्य महाशय्य के अन्तिम अर्थान् चतुर्दश सग का शीपक दग्निना है। आलोच्य काव्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रेरणाप्रदायक सग का समाप्ति कवि के महत्त्वपूर्ण वचन से होता है कि—

‘जीवन नराशय की है भूमि नहीं, मानवो !
सुग-दुग्ध वादलों की भाँति उडे आते हैं ।
शक्ति मिटती नहीं है अवतार लेती है,
तुमसे सदैव, तुम योग्य तो बने सही ।’

(दक्षिणा चतुदश सर्ग, पृ० २७६)

उदघृत का याग ‘एकलव्य’ के रचयिता के जीवन-दशन सम्बन्धी दृष्टि कोण का परिचायक है । जीवन को कमनिष्ठा का जो महत् सदेश कवि देना चाहता है उपयुक्त पद्यांश के माध्यम से ध्वनित हुआ है । एकलव्य का जीवन एकलव्यकार के जीवन दशन का जीवन प्रतिमान है ।

पाथ सहित द्राणाचाय एकलव्य के आश्रम पहुँचे । गुरु के दशन कर शिष्य अभिभूत हो गया । उसने पाथ के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करत हुए कहा—

‘धन्य भाग्य मेरे ! पाथ ! कितने कृपालु हो !
मेरी छोटी प्रायना को इतने महत्त्व दे,
दूसरे ही दिन लेके आए गुरुदेव को !
धन्य पाथ ! उच्छ्रुण न जीवन मे होऊंगा ।’

(वही पृ० २८०)

एकलव्य ने गुरु के आगमन की तुलना तीस रात्रियों में एक पूर्णिमा, जन मापा के मध्य मञ्जु अलंकार निर्वेद भाव में प्रकट शांत रस और आश्रय विहीन लना में ब्रिजे प्रगूण से की । एकलव्य ने श्रद्धास्पद भाव से कहा कि मैं गुरुदेव का स्वागत कैसे करूँ ? मैं किनना जक़िचन हूँ कि गुरु स्वागत सत्कार-हेतु कोई साधन भी मेरे पास नहीं । एकलव्य ने गुरु का परिश्रमा कर उनके चरणों में सप्त बाण सधान कर स्वागत किया । बाणों के इस नवीन स्वागत विधान से गुरु द्रोण प्रमुदित थे । गुरु ने वरद हस्त मुद्रा से ‘स्वस्ति कहकर शिष्य को आशीर्वाद दिया और मृण्मयी प्रतिमा के आगे वेदिका पर समासीन हो गए । गुरुदेव के पूत्रने पर एकलव्य ने विस्तारपूर्वक अपनी साधना क्रिया से अवगत कराया और कहा कि उन्हीं के मौल्य शुभाशीर्ष से वह धनुर्वेद का परि ज्ञान प्राप्त कर सका । गुरु के प्रति सश्रद्ध भाव से आभार प्रगट करते हुए एकलव्य ने कहा कि—

‘बस यह जानता हूँ गुरु अनुग्रह से,
लक्ष्य देखा मैं न, वेध उसका अटल है ।

नहीं फहरायेगा। और तुम भी दम्भ प्रण से गुरु की प्रतिमा पूज नहीं कर सकोगे। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने अश्रु विगलित नेत्रों से कहा कि वरस, एकलव्य। तुम धर्य हो जो गुरु की प्रण-भूति के लिए प्रयत्नशील हो। मैं आज विवश हूँ। मैं अपनी अयोग्यता देखकर दुखी हूँ। तुम जैसे शिष्य की महानता में गुरु छोटा है। अब तुम्हारी दक्षिणा से ही मैं कृताय होऊँगा। एकलव्य ने गुरुदेव के हृदय को खड खड होने हुए देखकर कहा—

‘गुरु का हृदय खड-खड हो, असमव ।
दक्षिणागुच्छ ही हो खड मेरा जो कि,
पाय को बना दे अद्वितीय धर्यो विश्व मे ।
गुरु प्रण-भूति करे सब काल के लिए
जय गुरुदेव ! यह रही मेरी दक्षिणा ।’

(वही, पृ० २६६)

इतना कहकर एकलव्य ने बड़े वेग से गुरु मूर्ति के समीप अपना दाहिना हाथ रखकर एक ही आघात में अगूठा काट डाला। गुरु के हृदय में एक विद्युत् तरंग सी कौंध गयी, वे कराह कर कहने लगे एकलव्य तुमने यह क्या किया ? मेरी प्रण भूति में अपनी साधना ही नष्ट कर ली। द्रोणाचार्य ने एकलव्य को कसकर अपनी बाँहों में जकड़ लिया और रक्तसिक्न होकर बोल उठे—

‘एकलव्य हे ।
तुम विप्र हो, हे शिष्य ! गुरु द्रोण शूद्र है ।
हा, तुम्हारी गुरुता में गुरु हुआ लघु है ।’

(वही, पृ० २६७)

धीर एकलव्य ने जिस साधना-तरु को सूय-चन्द्र की किरणों से दिन रात सींचा, उसको क्षण मात्र में उखाड़ दिया। एकलव्य के दक्षिणागुच्छ खडन से प्रवाहित रक्तधार ने सारा वण भेद धो दिया है। धीर एकलव्य की गुरु भक्ति भविष्य के भाल का तिलक बनेगी, उसका रक्त राजवर्षों से भी नहीं धुल सकेगा—

सारा वण भेद धुल गया रक्तधार से,
× × ×
गुरु भक्ति ऐसी जो भविष्य के भाल पर,
तिलक बनेगी रवि रश्मि को समेट के ।

पाथ ! रक्त देखो इस एकलव्य वीर का
जोकि राजवशो से भी घोया नहीं जायगा ।”

(वही, पृ० २६७)

एकलव्य की गुरु भक्ति के अप्रतिम आश्रण और उत्सर्ग भाव को देखकर पाथ का सिर झुक गया । वह सलज स्वर में एकलव्य से क्षमा याचना करते हुए बोला—

क्षमा करो, एकलव्य ! मेरी घृष्टता !
काटा है अगुष्ठ किंतु बाण ऐसा छोटा है
जो न चढ़ा पाऊँगा बभी धनुष पर मैं ।
क्षमा करो गुरु भविन सीखी आज तुमसे ।
मैं ने राजवश की अहम भावनाओं से ।
गुरु को या हीन माना । तुमने निपाद हो,
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को ।

(वही, पृ० २६७)

गुरु-दक्षिणा में दक्षिणागुष्ठ समर्पण के पश्चात् एकलव्य ने द्रोणाचार्य से कहा—गुरुदेव ! दक्षिणा में देर हो गई, किंतु इसे स्वीकार कीजिए । एकलव्य ने अपने रविनामागुष्ठ को गुरु पद के समीप रखकर रक्त रजित कर से गुरु चरणों का स्पर्श किया । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों रक्तधारा के रूप में धनुर्वेद साधना द्रव रूप होकर भूमि में लीन हो रही थी । इस रक्त धारा ने भूमिपतियों के उग्र वण भेद को समवत जोड़ने का ही प्रयत्न किया । यह दारुण दृश्य था । गुरु द्रोण हतप्रभ थे । पाथ लज्जित और मलीन था । तभी एकलव्य ने भरे हुए कंठ से कहा—

देव ! इस दक्षिणा का मूल्य इतना ही है,
मेरी साधना को आप देख लेंगे पाथ में ।’

(वही, पृ० २६६)

एकलव्य की गुरु दक्षिणा 'तनी जसाधारण और अप्रतिम थी कि सम्पूर्ण वातावरण में गुरु दक्षिणा' की ही अनुगूँज सुनाई देती थी । कवि के शब्दों में—

‘वायु की तरंग कहती थी, गुरु दक्षिणा
उष्ण रक्त धार कहती थी, गुरु दक्षिणा
सध्याकाश में उभा रहती थी, गुरु दक्षिणा,
पन्नत दृष्टि कहती थी, गुरु दक्षिणा ।

इसी अवसर पर एकलव्य के माता पिता और नागदन्त का आगमन होता है। द्रोणाचार्य एकलव्य की साधना की गरिमा और गुरु-दक्षिणा के रूप में दक्षिणागुण्ड समर्पण का वक्त मुनात हुए कहते हैं—

“आज वह धनुर्वेद का महा आचार्य है।

त्रिष्व का समस्त इतिहास चिर साक्षी है।”

(वही, पृ० ३०२)

एकलव्य के पिता हिरण्यधनु राज मयाग के कारण मयमशील थे। किन्तु एकलव्य जननी ने लिन मन में कहा कि क्या शिष्य ही गुरु दक्षिणा का दानी है? यदि आपके विधान में शिष्य का माता से भी दक्षिणा देने का विधान हो तो मेरे नेत्र ने लीजिए, जिससे मैं अपने लाल के सन्ताने हाथ का छण्डन अगुण्ड न देख सकूँ। एकलव्य जननी का यह कथन सुनकर सभी स्तब्ध हो गए, नम श्याम हो गया और निशाएँ धूमिल हो गईं। गुरु द्रोण एकलव्य जननी से क्षमा-याचना कर पाय सहित एकलव्य का शुभाशीष देकर चले गए। एकलव्य गुरुदेव की प्रणाम कर उह वन पण्ड की सीमा तक सादर पहुँचाने गया। एकलव्य के भूमि पर पड अगुण्ड को अश्रुपूरित नेत्रों से देखते हुए एकलव्य जननी ने करुण स्वर में कहा कि—

“रक्त रगमयी दक्षिणा—

जन जन मानस का एकरूप कर दे।”

(वही, पृ० ३०५)

इस प्रकार एकलव्य का सग नमानुमार क्या विद्यास चरित्र विनियोजन, गिन्य सरचना और जीवन-गणन नामक रूपविनायक तत्त्वा के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ‘एकलव्य सच्चे अर्थों में एक महाकाव्य कृति है। महाभारत के विरल कथा सूत्रों का अधिग्रहण कर डॉ० वमा ने महाकाव्योचित गरिमा से भडित इतिवत्त विधान द्वारा जहा एक आर कथा-कौशल का परिचय लिया है वही एकलव्य, द्रोणाचार्य अजुन एकलव्य जननी आदि पात्रों के मौलिक चरित्र निरूपण में पुगान दृष्टि का भी परिचय है। एकलव्य न केवल निपाद मस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक है अपितु वह आय-सस्कृति के बग भेद पर आवृत्त विगहणीय जीवनादर्शों से अपराजेय सघष करने वाला नरपुंगव भी है। आचार्य द्रोण के चरित्र में अतर्वाह्य दुःख की योजना डा० वर्मा की चरित्र विश्लेषण पद्धति की एक उपलब्धि ही है। डा० मोहन अवस्था के शब्दों में— द्रोण इस काय का सबसे अधिक गतिशील पात्र है। यदि धुक्म दृष्टि से देखा जाय, तो वास्तव में आचार्य द्रोण के

मनोविज्ञान की कक्षा में ही एकलव्य रूपी उपग्रह भ्रमण करता है। द्रोण के अतर्द्ध द्व की उष्ण रश्मियों में एकलव्य का चरित्र-कमल विकसित होकर अपनी सुगन्धी समस्त दिशाओं में याप्त कर रहा है। अतः सघष के अंतराल में बहिर्द्ध द्व की योजना महाकाव्यकार की अनोखी मूर्त्ति है।^१ एकलव्य के चरित्र विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि महाकाव्यकार ने चरित्र विश्लेषण में मनोविज्ञानिक आधार को ग्रहण करते हुए भी पात्रों की भावगत मायताओं को महाभारत के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समर्पित रखा है। जहाँ तक आलोच्य महाकाव्य की जीवन दशन सम्बन्धी उपलब्धियों का प्रश्न है, डा० धर्मा ने सम्पूर्ण काव्य में सर्वस्वशक्ति, साधना त्याग, समानता, आत्मविश्वास, पुरुषार्थ जैसे चिरन्तन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। एकलव्यकार ने युगीन सदर्भों जैसे—व्यसघष, जातिवाद भेद भावपूर्ण शिक्षा नीति आदि का भी यथाप्रसंग रूपार्थित किया है। वस्तुतः 'एकलव्य' का मूल प्रतिपाद्य गुरुभक्ति के उच्चादश की प्रतिष्ठा करना ही है। गुरु की महिमा का समाख्यान हमारे देश में अतन्त काल से हाता रहा है। गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर सदृश्य आप्त वाक्यों अथवा कवियों, तुलसी आदि मध्यकालीन सत्यों ने अपनी वाणियों के माध्यम से गुरु की गरिमा को अभिमण्डित करने के सराहनीय प्रयास किए हैं। किन्तु असाधारण कोटि की साधना और अप्रतिम उत्सर्ग का जीवन्त प्रतिमान बनकर गुरु की गरिमा को प्रतिष्ठित करने वाला एकलव्य का ही चरित्र है। एकलव्य की गुरुभक्ति निश्चयतः दुर्लभ विरल और असाधारण है। एकलव्य ने जिस प्रकार कठोर साधना से अर्जित विरल पान-गरिमा, महत्वाकांक्षाओं की समृद्धि, धनुर्वेद की सिद्धि और स्वाभिमान को गुरु चरणों में दक्षिणागुण्ट के उच्छेदन द्वारा समर्पित कर दिया वह भारत तो क्या? विश्व इतिहास में दुर्लभ है। गुरुभक्ति के इसी चिरन्तन आदर्श को एक कीर्तिमान के रूप में एकलव्य महाकाव्य के माध्यम से सस्थापित करके डा० रामकुमार वर्मा ने निश्चयतः श्लाघनीय कार्य किया है और इस दृष्टि से 'एकलव्य' हिन्दी महाकाव्य परम्परा की गौरवावृत्त का पङ्क्ति कही जायगी।

^१ घोषा—फरवरी १९६१—जीवन्त महाकाव्य एकलव्य—नामक लेख से उद्धृत।

‘सारथी’ महाकाव्य
त्रिपुर-कल्पना का युग-सापेक्ष काव्यरूपक

‘सारथी’ महाकाव्य

त्रिपुर-कल्पना का युग-सापेक्ष काव्यरूपक

हमारे युग का सबसे बड़ी समस्या जीवन-मूल्यों का संघर्ष है। इस संघर्ष का मूल कारण विघटनकारी शक्तियाँ का उदय तथा वनानिक संधाना के परिणामस्वरूप ध्वंस के उपकरणों का द्रुत गति से प्रसार है। विनाश युग की सम्यता ने मौनिकतावादी मूल्यों को सर्वोपरि मान लिया है। इसने कारण स्वाध-मरायणता, अथ-लोलुपता शोषण व्यष्टिवादिता जादि प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। प्रेम, करुणा अहिंसा, सत्य शील आदि शाश्वत जीवन मूल्यों का प्रायः लोप हो गया है। स्थिति यह है कि समस्त भौतिक उपलब्धियाँ के उपरान्त भी आज के मानव का अहम् परितृप्त या तुष्ट नहीं है। उसमें अधिक से अत्यधिक और अत्यधिक से सर्वाधिक की कामना बढ रही है। इस घोर स्वाधपरता ने चिन्तन और चेतना के स्तरों को सीमित, मनुचित और अहवादी बना दिया है। मानव का यह अहम अतीत के प्रति अनास्थावान, अनागत के प्रति अनिश्चल और वनमान से असंतुष्ट है। विचित्र विडम्बना है। मानव की अन्तश्चनना युगीन वातावरण में घुटन का अनुभव कर रही है। इन सबका कारण क्या है? निवारण का उपाय क्या है? अनुकरणीय मार्ग क्या है? ये आज युग जीवन के प्रश्न और समस्याएँ हैं। इन प्रश्नों का उत्तरदाना काय ही हमारे युग का महाकाव्य है। इन समस्याओं के संधान और समाधान में रत रचनाकार ही महाकवि कहलाने का अधिकारी है। अस्तु—

हमें महाकाव्या की परम्परा उपयुक्त मानदण्डों पर करनी चाहिए। प्राचीन

साहित्याचार्यों द्वारा निदिष्ट लक्षण और बहुचर्चित मायताएँ आज महाकाव्या लोचन के लिए अनपेक्षित प्राय हो चुकी हैं।

हिंदी के वर्तमान युग में महाकाव्य सृजन द्रुत गति में हो रहा है। हरिऔष जी के प्रियप्रदाम से लेकर दिनेशजी के सारथी तक लगभग ६० महाकाव्य लिखे जा चुके हैं। ऐसे महाकाव्य कम हैं जिनमें हमारे युग जीवन के सघप की व्यञ्जना हो जिनमें मानव के अन्तर्घटन विनासी स्तरो को रूपायित करने का विराट प्रयत्न हो जिनमें शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का आग्रह हो जिनमें वचारिक विद्रोह और आत्म प्राप्ति के द्वारा मानव में आस्था विश्वास और सोहाद्र भाव के नव जागरण की शक्ति और सामर्थ्य हो। जयशंकरप्रसाद के कामायनी कायम निश्चय ही जीवन सत्या की स्थापना हुई है। कामायनी में हमारे युग का उन्नत योष अपने व्यापकतम परिवेश में प्रतिफलित हुआ है। उसमें मानव के अन्तरवाह्य द्वन्द्व हृदय बुद्धि के सघप, प्रकृति के प्रमत्त और प्रकोप वृत्तियों की स्वाध-कामना और अध प्रवचना, रूप आकर्षण और काम वासना शोषण और नारी दौलत्य जादि युगान समस्याओं का चित्रण और यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार की दूसरी रचना डा० रामगोपाल शर्मा दिनेश वृत्त सारथी महाकाव्य है जो राजस्थान साहित्य अकादमी के अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है।

'कामायनी में मानवता के जनक मनु की कथा है। 'सारथी' में स्वयं मानव का इतिवृत्त है। कामायनी में श्रद्धा और मनु के द्वारा नव मृष्टि विधान हुआ—दोनो के मिलन से मानव उत्पन्न हुआ। मानव ने बुद्धि का साथ किया। उसके पश्चात् सृष्टि के विकास के साथ साथ मानव ने बुद्धि का अपूर्व विकास किस प्रकार हुआ? मानवता किस ओर गयी? उसका भविष्य क्या है? आदि प्रश्न रोप थे। इन शेष प्रश्नों का उत्तर सारथी महाकाव्य है। दूसरे शब्दों में इतिवृत्तात्मक दृष्टि से सारथी महाकाव्य में कामायनी ने पूणत्व प्राप्त किया है। कामायनी के कथात्मक पूर्वाद्द का सारथी उत्तराद्द है। सारथी महाकाव्य में मानवता विकास के यथाथ और वास्तविक पक्ष पर विचार हुआ है। इसमें परम्पराओं का अनुमोदन भी है और प्रगति का सम्भावनाओं के प्रति स्वस्य दृष्टिकोण भी। विज्ञान-युग की अध प्रगति से अस्त और भयाक्रांत मानवता के भविष्य पर बड़े गम्भीर एवं मननशील ढंग से सोचा गया है। सारथी महाकाव्य में भावात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष प्रवृत्त है। उसमें कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा वचारिक

श्रद्धा ने आगे कहा कि तदोपरान्त शक्ति सहित शिव ने सृष्टि का भ्रमण किया। देव, दानव और मानव सृष्टियों का अवलोकन किया। इसी अवसर पर शिव ने मानव के अहम के विषय में शक्ति से यह कहा कि

‘मनुज कितना जड़ अभी तक,
अहम की सीमा नहीं पहचानता है।’ (पृष्ठ ४८)

फिर समर की भयवर्ता का वर्णन है जो सृष्टि और मानव के विनाश का कारण है

‘युद्ध वह दानव धरा पर
सौहृद के पुर में सजाकर।
जा भयकर रूप अपना,
नाश की होली रचाता।’ (पृ० ५१)

जिसका परिणाम

‘नाश के ज्वालामुखी पर
बैठकर फिर मृत्यु रोता।
सम्पत्ता के शिखर गिरते
धूल में मिलती कलाए।
और सस्वर्तिमाँ मनुज की
भाग में जन राख हीनी।
किन्तु वह दानव
न फिर भी हारता है।’ (पृ० ५१)

यही श्रद्धा ने कहा कि देव वासना में रत हैं। मानव में कम का अहम है। यही विनाश का कारण है जिसका उपाय दाना का समन्वय है

मानव धरा पर मुर गगन में
वासना का कर समन्वय
कम भागों—पान का जमृत गहाए। (पृष्ठ ५४)

अनुभव से मानव के कम राश का वर्णन है तिमिर जन्म की मर्त्ता का व्यञ्जना सुगन्धुत्त हूँ है

कमगीन बन कर सगति का
मैं शृंगार किया करता हूँ।
अपन पीरप में निमग्न में
मैं भी तब अमित भरता हूँ।

घरती मेरे श्रम अकुर ले
 खेतों मे सोना बरसाती ।
 हरी शैलियों के वभव से
 भूम भूम मधु स्वर मे गाती । (पृ० ५५ ५६)

मानव के सजन गौरव की स्थापना इस सग की अयनम विशेषता है

'ज म दिया मैंने सस्कृति को,
 काव्य कला संगीत बनाये ।
 पापाणो मे प्राण ढालकर
 मैं नम का गीत सुनाये ।
 गिन गिन कर मर चरगो का
 इतिहास ने जीवन पाया ।
 भरा चिन्तन मनन विवेचन
 कितने ही दशन बन आया ।' (पृ० ५७)

मानव न सोचा कि वह परम्पराओं का निर्माता है अमाघ शक्ति का अनन्त भण्डार है लोहनगर और रजतपुर का ध्वस कर सकना है धरा को धूलि मे मिला सकता है असुरों का शासन स्वर्ण लोक से हटा सकता है वासना के अन्धल म चिर प्रकाश भी भर सकता है किन्तु

'फिर क्यों भरा पीत्य मुझ स
 छाया सा छिपता फिरता है ?
 आज अनागत के भय से मा
 बोला क्यों अ उर डरता है ? (पृ० ५६)

तब श्रद्धा न मानव को परिस्थिति बोध कराया । श्रद्धा न कहा—
 मानव जीवन का लक्ष्य अथ और काम नहीं उस एकांत भी तृप्ति नहीं द
 सकता । जीव जगत् की नश्यर वस्तु है, फिर उसे मृत्यु से भय क्यों ? जीवन
 व साधनों का अस्त्र शस्त्रों से सरक्षण क्या ? अपार वभव पावर भी हृदय से
 दोन क्या ? जीवन प्रमावाक्षा है, समरसता ही जीवन की शीतलता है

जीवन तुझमे स्नेह मागता
 तू उसको देना है ज्वाला ।
 चिन्ता के सोपानों से चढ़
 पीता विद्वान बुद्धि की हाला ।
 भूल गया तू तृष्णा म जल

जीवन की शीतल समरसता ।
 दीड रहा जड़ता के पीछे
 गुप्त हुई जाती चतनता ।
 पुत्र न भय से मुक्ति मिलगी
 जब तक त्रिपुरो के अधीन तू ।
 बभ्रु वासना गान समवय
 कर न रहेगा इन्हें तीन तू ।' (पृ० ६५)

तभी बुद्धि जा गयी । बुद्धि का सग पाकर मानव ने साचना प्रारम्भ किया —

“बुद्धि प्रिया मेरी परिणीता
 मरे जीवन का सबल है ।
 इसका त्याग करूँ मैं कस
 यह मेरे मन की हलचल है ।' (पृ० ६६)

आगे सारथी के कतिपय प्रेमगीत हैं । विस्तारमय के कारण उनकी प्रथम पक्तियाँ ही उद्धृत हैं

- १ तुम्हारे राग में अपना प्रिय ! मैं स्वर मिलाऊँगा । (पृ० ७६)
- २ प्रिये चलो जीवन के मधुवन में दो वासन्ती फूल खिलादों ।' (पृ० ८०)
- ३ स्वर लहरी के साथ ढले जो वह मधुपान मधुर होता है । (पृ० ८२)
- ४ हमें पतझड़ से क्या मतलब सरस मधुमास लाये हैं । (पृ० ८४)

इस प्रकार गीत गाते बुद्धि के साथ मानव भ्रमण करता रहा । फिर थक कर जब उसने बुद्धि से उसके बंधस्थल की सरस छाया की याचना की तो बुद्धि ने कहा

हे मनुज । मुझको कभी
 तुम किसी भी बिंदु पर यो रोक कर
 पा नहीं सकते अटल विश्राम वह ।
 तक के पथ पर सदा मैं घूमती
 वल्लभ मेरे खड़े तुम बिंदु से
 केन्द्र बनकर देख सकते हो मुझे
 किंतु मेरी परिधि तो निस्सीम वह
 है जहाँ पर बिंदु का स्थल न कोई भी कहीं ।
 चाहते हो साथ रहना
 त्याग दो तो केन्द्र को

और आ मुझम समाओ
नष्ट कर अस्तित्व निज । (पृष्ठ ८८)

मानव यह सुनकर चकित हो गया । बाला

“बुद्धि ! अब समझा तुम्हारा मद सब
तुम मुझे अनुचित दिशा दिखला रहीं
कम मेरा ध्येय
सुर का जान है
वासना है भोग्य असुरा का प्रिये ।” (पृष्ठ ८९)

मानव ने हड़ता से कहा—मेरा ध्येय कम है । तुम मुझे तीनों पर
अधिकार दिलाना चाहती हो, जो मेरे लिए असम्भव है । मैं अपने अस्तित्व का
विलय त्रिपुरा में नहीं कर सकता । मानव ने यहाँ तक कह दिया

मैं तुम्हें भी साथ रखना चाहता
किंतु श्रद्धा के बिना मुझका प्रिय
तुम अकेले तो नहीं स्वीकार हो । (पृष्ठ ९०)

किंतु बुद्धि ने यह स्वीकार न किया

‘किंतु मैं हूँ बुद्धि
मैं तो समन्वय का कमी
मांग अपनाया नहीं है आज तक ।
पास श्रद्धा के पहुँच कर भी मुझे
बिंदु पर रचना नहीं अच्छा लगा ।
तुम मुझे एकान्त में जाय बिना
पा नहीं सकते ।
मनुज ! भ्रम त्याग दो ।’ (पृष्ठ ९०)

बुद्धि के उत्तर से मानव काँप गया । उसने चीखकर कहा कि मुझे भूमि
पर ही पहुँचा दो, मैं यहाँ बिना दौन और असहाय हूँ । किंतु बुद्धि ने कहा

‘पर असम्भव हो गया
लौटकर जाना यहाँ से भूमि पर
एक क्षण में देवता मानव यहाँ
छेन्न वाले महा सग्राम हैं ।

लोह के जो अस्त्र मैंने दे तुम्हें
 अग्नि का आश्रय दिया था भूमि पर
 आज लौहपुर के आश्रय से
 छीन उनको हो चुके असहाय तुम ।
 और मुझको भी उड़ी का साथ दे
 रजतपुर तक युद्ध में
 लड़ना पड़ेगा विवश हो । (पृष्ठ ६१)

बुद्धि ने कहा—मैं अपनी उपेक्षा का दवा से प्रतिशोध लूंगी । अतः तुम भी दानवों का साथ दो । और यदि मेरी आज्ञा न मानाग ता तुम्हें असहाय छोड़कर मैं चली जाऊँगी तथा मनु द्वारा निमित्त समस्त सृष्टि का सहार होगा । मानव विषम परिस्थिति-द्वन्द्व में फसा था

मीत मानव चीखता था
 दोड़ता उदघ्रात होकर —
 बुद्धि ? मेरी बुद्धि ? या मेरी प्रिय ।
 तुम मुझ असहाय छोड़ो मत यहा ।।
 मैं बख्खोगा अब वही, जो चाहती
 रास में मिलना पडे चाहे मुझे मेरी प्रिय ।' (पृष्ठ ६३)

इस प्रकार मनुज बुद्धि पर आसुरी तमस छा गया । वह विलासी हो गया । उसमे दानव सस्कृति की सभी विशेषताएँ आ गयी । फिर युद्ध हुआ । देव और दानव का कुल नहीं बिगडा । मानव सृष्टि का विवश हो गया

' कि तु हुआ परिणाम नहीं कुछ क्योंकि वासना सरि म ।
 असुर नहा जीवित हो उठने, धार बार लडत व ।
 दव नहीं मर सके क्याकि व अमर जीव समृति क ।
 अप्सरियो को छुडा भाग वे जाये स्वर्ग नगर म ।
 किंतु मनुज की सृष्टि ध्वस पर बठ बुद्धि को राई ।
 निमाणा की गम रास पर अविरल अश्रु बहाती ।

(पृष्ठ १०५)

तब बुद्धि को छोड़ मानव शिशु के समान सिसक रहा था और धड़का के पुकार रहा था

दूर बुद्धि को छोड़ आज जा
 शिशु सा सिसक रहा था

श्रद्धा । श्रद्धा । की पुकार थी
गूँज चतुर्दिक भरती ।” (पृ० १०६)

तभी मानव की प्रार्थना पर ज्योतिवसना श्रद्धा कलास शिखर से आयी । उसने मानव को जीवन का रहस्य समनाया । वह रहस्य था आत्मानन्द की उपलब्धि का । वह भोग और तन का नहीं बरन मुक्षम भाव निपय है जिसके समयने पर बुद्ध भी पाना नैय नहीं रहता । उसे समझने के लिए दशन और विज्ञान की भी आवश्यकता नही रहती । उस आनन्द का विश्लेषण ब्रह्मा भी नहीं कर सकते । उसके अनुगमन म बुद्धि महायक नहीं बन सकती । श्रद्धा ने कटा ‘सत्यम शिवम सु दरम्’ हो जीवन के शाश्वन मूल्य हैं । बुद्धि ने ता तुम्हें विचलित किया है

‘या आतक अय आहम्बर
तुम्ह बुद्धि ने देवर
गूँय अहम का दास बनाया
सत् शिव, सुदर खीकर । (पृष्ठ ११६)

और—

‘महानाश के पहले मैंने तुम्हें सचेत किया था ।
शिव और उसकी महाशक्ति का तुमको पान दिया था ।
समझाती हूँ आज तुम्हें फिर तुम उसको पहचानो ।
भास्तिक बनो आस्था लेकर भेद सृष्टि का जानो ।’
(पृष्ठ ११७)

श्रद्धा ने कहा कि देव-दानव के मग्राम मे भी त्रिपुर जल नहीं पाया । क्योंकि देवा ने ज्ञान वन ही लगाया था । मानव ! तुम हृत्चेतन मन हो । देव भी त्रिपुर ध्वंस के लिए प्रयत्नशील हैं । मानव श्रद्धा की वाणी से सजग हो उठा । उसकी कलात मुद्रा शांन ही गयी

“यका हमारा पान पराजित
साहस और पराक्रम ।
हं शिव अमरलोक की सुगमा,
तम म डूब रही है ।
नाश करा या ता त्रिपुरों का
या फिर सृष्टि प्रलय ही ।

महाकाव्य में 'वामावती और पावती से मा बागे हैं। उसमें परम्पराओं के अनुमोदन में प्रगति का पथ प्र सित किया गया है। सारधा' महाकाव्य की विचारणा विषय ही महत्वपूर्ण है। उसमें वामावा जीवन के लिए सन्ने है। आपुतिव हि नो महाकाव्यों की गृहण परम्परा में सारधी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

‘उर्वशी’ महाकाव्य

नारी के नाना रूपों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा

‘उवशी’ महाकाव्य

नारी के नाना रूपों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा

हिन्दी महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा में ‘उवशी’ का प्रकाशन अभूत-पूर्व घटना है। ‘कामायनी’ के अनन्तर प्रकाशित होने वाली काव्यकृतियों में ‘उवशी’ श्रेष्ठतम है। ‘उवशी’ की श्रेष्ठता का आधार उसकी कलात्मक योजना और जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियाँ हैं। ‘उवशी’ की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का इतिवृत्तात्मक आधार वैदिक पुरास्थान होते हुए भी उसमें वर्तमान युग जीवन की चेतना का महाघोष है। इस दृष्टि से ‘उवशी’ का नारी निरूपण दृष्ट्य है।

‘उवशी’ मूलतः नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धों का विवेक काव्य है। इन्हीं सम्बन्धों का विवेचन करते हुए कवि ने नारी के नाना रूपों का निरूपण भी किया है। ‘उवशी’ में मुख्यतः नारी के तीन रूप उल्पाटित हुए हैं वे हैं—प्रेयसी, पत्नी और माता। इनमें प्रेयसी नारी के पुनः दो वर्ग किये जा सकते हैं—उच्छ्वला और समयशीला। इन आधारों पर ‘उवशी’ के नारी पात्रों को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है

१ प्रेयसी—(अ) उच्छ्वला—अप्सराएँ

(ब) समयशीला—उवशी

२ पत्नी—

औशीनरी

३ माता—

उवशी, सुकन्या और औशीनरी

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उवशी मुख्यतः समयशीला प्रेयसी होते हुए भी काव्य में दो अन्य रूपों में भी अंकित की गयी है। अप्सरा उवशी जहाँ प्रेयसी है

वही पुहरवा को धरण करने और पुहरवा के ससग से आयु को जन्म देने के कारण पत्नी और माँ भी है।

प्रेयसी नारी—(अ) उच्छ खला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व काव्य में अप्सराएँ करती हैं। अप्सराएँ सौन्दर्य की अपार निधि हैं। वे अम्बर की सुषमा मनमोहिनी, अभुवत प्रेम की जीवित प्रतिमाएँ मंदिर नयनों से देवों की रण कलाति का हृरण करने वाली और काम के मन की कामना हैं।^१ उन्हें किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं। प्रेम उनके लिए क्रीडा और स्वाद है। वे किसी एक की होकर नहीं रह सकती हैं। उनके जन्म का साधक सबका मनोविनोद है। रम्मा के शब्दों में

जमी हम किसलिए ? मोद सबके मन में मरने को,
किसी एक को नहीं मुग्ध जीवन अर्पित करने को।
सष्टि हमारी नहीं सकुचित किसी एक आनन्द में,
किसी एक के लिए सुरभि हम नहीं सजोती तन में।^२

अप्सराएँ कभी देवता और कभी मनुज का आलिंगन करती हैं। वे उन्मुक्त और उच्छ खला हैं। उनमें सिन्धु की लहरियों के समान कामनाएँ तरंगित रहती हैं

‘रचना की वेदना जगतीं पर, न स्वयं रचती हम,
बन्ध कर कही विविध पीडाओं में न कभी पचती हम।
हम सागर आत्मजा सिन्धु सी हीअसीम उच्छ खल हैं
इच्छाआ की अमित तरंगों से झड़त, चंचल हैं।’^३

अप्सराओं का वाय मनुष्य को वासना की वेदना से पीड़ित करना है। वे ‘प्रेम की पीर से अपरिचित हैं। उनमें पुरुष के प्रति समपण भाव नहीं। इसलिए वे किसी एक पुरुष की होकर नहीं रह सकती हैं। सहजया और रम्मा व सन्वा से विदित होता है कि उन्हें नारी का माता रूप कृत्सित लगता है। भूगोल की परिणीता नारी का पुरुष से आजीवन प्रममय मिलन घृणित लगता है।’ इत प्रकार दिनकरजी ने अप्सराओं के माध्यम से नारी के उस

^१ उवशी प्रथम अंक पृ० ६७

^२ वही, प्रथम अंक पृ० १५

^३ वही पृ० १५

वही पृ० १६ १७

रूप को व्यजित किया है जो भौतिकता, विलासिता और रवायपरता की प्रवचनाओं से पूण है। वस्तुतः ऐसी नारियाँ सामाजिक जीवन का अभिशाप हैं।

(ब) सयमशीला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व उर्वशी करती है। उर्वशी अपरिमित सौंदर्याशालिनी है। कवि दिनकर की सम्पूर्ण सौंदर्य-कल्पना में उर्वशी की देह यष्टि का निर्माण हुआ है। सहज-या के शब्दों में, "उर्वशी नन्दनवन की ऊषा, सुरपुर की कौमदी, इन्द्र के मन की कलित कामना, रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा, विश्वमय नर की तृपा विद्यु की प्राणेश्वरी और काम के कर की आरती शिखा है। वह सिद्धो और वरागियों की समाधि में राग जगाकर देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली है। उसके चरणा पर चढ़ने के लिए जन जन यत्न है। उर्वशी की सुपमा के मंदिर ध्यान में त्रिभुवन मग्न मुग्ध है।" काव्य के तृतीय अंक में अपना परिचय स्वयं देते हुए उर्वशी ने कहा है

“मैं नाम गोत्र से रहित पुण्य,
अम्बर में उड़ती हुई मुक्त आनन्द शिखा
इतिवृत्तहीन,
सौन्दर्य चेतना की तरंग,
सुर नर किन्नर गणध्व नहीं,
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्वनर के अतृप्त इच्छा सागर से समुद्भूत ।”

उर्वशी अपने परिचयक्रम में पुरुषवा को बताती है कि मत्त गजराज मेरे समक्ष नत हाकर रहते हैं। वेसरी शरम और घादून अपना हिंस्र भाव छोड़ कर गृह मग समान अहिंस्र बन जाते हैं। मेरी धू स्मिति का देखकर शूरमा चकित, विस्मित और विमोह हो जाते हैं। मैं अनवरुद्ध जीव मुक्त काम बल्लि शिखा के समान जप्रतिहत और दुर्निवार भाव से सदाव धूमता हूँ। उर्वशी को कवि न नारी की चरम कल्पना कहते हुए उसका "यापक परिचय निम्नांकित प्रकार से दिया है

‘जन जन के मन की मधुर बल्लि, प्रत्येक हृदय की उजियाली
नारी की कल्पना चरम तर के मन में बसने वाली।

‘उर्वशी, प्रथम अंक, पृ० १३

‘वही, तृतीय अंक पृ० ६५

×

×

विस्तीर्ण सिंधु के बीच शून्य, एकांत द्वीप
यह मेरा उर ।

देवालय में देवता नहीं केवल मैं हूँ ।

×

×

मैं कला चेतना का मधुमय प्रच्छन्न स्रोत ।

×

×

भू नम का सब सगीत नाद मेरे निस्सीम प्रणय का है
सारी कविता, जयगान एक मरी शयलोक विजय का है ।

×

×

मैं देशकाल से परे चिर-तन नारी हूँ ।

मैं आत्मतंत्र यौवन की नित्य नवीन प्रमा
रूपसी अमर मैं चिर युवती सुनुमारी हूँ ।

×

×

मैं भूत, भविष्यत, वतमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त,
मैं विश्वप्रिया ।'

उवशी आदि नारी है । उसका अस्तित्व सदा रहा है—

'कौन पुरुष जिसकी समाधि में मेरी क्षणक नहीं है ?

कौन त्रिया, मैं नहीं राजती हूँ जिसके यौवन में ?

×

×

×

मरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्राण क्या है

उसी भाँति निस्सीम, असीमित जैसे स्वयं प्रकृति है ।^८

ऐसी त्रिकाल बाधा से विमुक्त अपार वैभवशालिनी विश्वप्रिया उवशी भी एक अप्सरा है । किंतु पुरुषवा के प्रति उसका प्रेमभाव अनन्य है । प्रेम भाव से प्रेरित होकर वह तन मन सहित पुरुषवा के प्रति समर्पित होती है । इसी समर्पण भाव के कारण पुरुषवा के मिलन से उसे जहाँ सुखानुभूति होती है वही उसका वियोग उवशी की ध्यया का कारण बनता है । उवशी के मन में प्रिय मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है वह चित्रलेखा से कहती है

* उवशी तृतीय अंक, पृ० ६६ १००

^८ वही, पृ० ६३

"यदि आज कान्त का अब नहीं पाऊँगी,
तो शरीर को छाड़ पवन म निश्चय मिल जाऊँगी ।

× × ×

तृप्ति नहीं अब मुझे सास भर भर सौरभ पीन से
उब भयी हूँ दवा कण्ठ, नीरव रह कर जीन से ।

× × ×

कहतो हूँ इसलिए, चित्रलेखे ! मत वर लगाओ,
जस भी हो मुझे आज प्रिय व समीप पहुँचाओ ।"^१

अन्तत उवशी और पुष्करवा का मिलन होता है । वे दोनो एक वष तक गन्धमादन पवत पर आमोदपूषक अभिमार त्रीटाएँ करत हैं, किन्तु उवशी म अतृप्ति घनी रहती है । उसे समय चक्र की गति का भी ध्यान नहीं रहता । वह कहती है कि

"जब से हम तुम मिल, न जान, क्या हो गया समय का,
लय होता जा रहा मरुदगति से अतीत गह्वर म ।

× × ×

कट गया वष ऐसे जैसे दा निमिष गये ।"^२

उवशी मे कामेच्छा है । वह चाहती है

'वक्षस्थल पर, इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो ।

बसे रहो, बस इसी भाँति, उर पीडक आलिंगन म,

और जलाते रहो अघरपुट को कठोर चुम्बन से ।"^३

ऐसी उद्दाम वामनामयी उवशी से शारीरिक मिलन की बेला मे ही महा राज पुष्करवा कहते हैं कि देह प्रेम की जन्मभूमि अवश्य है किन्तु प्रेम के विचरण की सारी लीलाभूमि रघिर या त्वचा तक ही सीमित नहा है । प्रेम का प्रसार मन के गहन गुह्य लोको तक है, जहाँ रूप की छवि अरूप का अन्न करती है । और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी के मुखमण्डल म किमी दिय, अयकन कमल को नमस्कार करता है । प्रेम के उस निरभ्र आकाश म ऐसी निर्विकल्प सुषमा है, जहाँ पुरुष और स्त्रा का भेद मिट जाता है । वहा पुरुष न

^१ उवशी, प्रथम अंक, पृ० २०-२१

^२ वही, तृतीय अंक पृ० ४३ और १०२

^३ वही, पृ० ६५

केवल पुरुष और नारी न केवल नारी रहती है, वरन् वे मूलसत्ता के प्रतिमान दिखाई देते हैं। उस स्थिति का परिणाम मासत आवरण हटाकर और तनका अतिक्रमण करके प्राप्त किया जा सकता है।" इसी तथ्य की ओर दिनकरजी ने काव्य की भूमिका में भी संकेत किया है कि— 'नारी के भीतर एक और नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का साधन पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धागा उछालते उछालते, उस मन के समुद्र में फेंक देती है जब दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचकर निस्पाद हो जाता है।" किन्तु पुरुषवा की यह अनासक्तिपूर्ण विचारणा उवशी के मन में नय उत्पन्न कर देती है। वह कह उठती है कि

"अनासक्ति तुम वही किन्तु इस द्विधा ग्रस्त मानव की
झाकी तुममें दख मुझे, जाने क्या, मय लगता है।
तन से मुझको कैसे हुए अपने दृढ आलिंगन में,
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो?"

उवशी नहीं चाहती कि पुरुषवा अनासक्ति की चिन्तधारामें डूब कर अनादि सत्य की खोज में लग जाय और उसे भूल जाय। महाराज पुरुषवा को अपने आकषणपाश में निबद्ध करने के लिए वह समर्पण कर देती है

'आ मेरे प्यारे तपित ! श्रान्त ! अतसर में मज्जित करके,
हर जूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलों से सज्जित करके।
रसमयी भ्रमशाला बनकर मैं तुम्हें घेर छा जाऊँगी
पूना की छाह तले अपने अधरो की सुधा पिलाऊँगी।"

उवशी का यह वह रूप है जिसमें वह वासनाप्रिय नारी दिखायी देती है। उवशी का एक और रूप भी है जिसमें वह एक उदात्त प्रेममयी नारी दिखायी देती है। उवशी के इस रूप का परिचय हम उसकी दस पृष्ठों की सम्बन्धी वक्तव्यता में मिलता है जिसमें वह पुरुषवा को तबसम्मत समाधान प्रस्तुत करती है।" उवशी की दृष्टि में पुरुष परमेश्वर का और नारी प्रकृति का प्रतीक है।

" उवशी पृ० ६३

" वही भूमिका, पृ० ५

" वही तृतीय अंक पृ० ५७

" वही पृ० ५७

" वही, पृ० ७७ = ६

पुरुषवा की इस धारणा का वह प्रतिवाद करती है कि प्रकृति मायाविनी है और परमेश्वर का प्राप्ति के लिए प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ता है

“जिसने कहा तुम्ह, जो नारी नर को जान चुकी है,
उसने लिए अलभ्य ज्ञान हो गया परम सत्ता का ।
और पुरुष जो आर्तिमन में बाँध चुका रमणी को,
देश काल को भेद गगन में उठो योग्य नहीं है ?”^१

उर्वशी का मानना है कि प्रकृति को माया कहकर उसने अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता

“माया कह क्या मया भटत हो अस्तित्व प्रकृति का ।”^२

क्योंकि—

‘हम निमग्न के स्वयं कम हैं कम स्वभाव हमारा,
कम स्वयं आनन्द, कम ही फल समस्त कर्मों का ।”^३

इसलिए प्रकृति और ईश्वर में कहीं भी द्वन्द्व या सघप नहीं है। द्वन्द्व तो द्विविधाग्रस्त मानस की रचना है। कोई भी घम साधना प्रकृति से मित्र होकर नहीं चल सकती

“द्वन्द्व रच मर नहीं कहीं भी प्रकृति और ईश्वर में,
द्वन्द्वा का अभ्यास द्वैतमय मानस की रचना है।

× × ×

घम साधना कहीं प्रकृति से मित्र नहीं चलती है।^४

कवि के अनुसार काम के दो रूप हैं

काम घम, काम ही पाप है, काम किसी मानव को,
उच्च लोक से गिरा हीन पशु जन्तु बना देता है।
और किसी मन में असीम सुषमा की तृषा जगा कर,
पट्टेचा देता उसे किरण सेवित अति उच्च शिखर पर।”^५

^१ उर्वशी, पृ० ७७

^२ वही पृ० ७८

^३ वही, तृतीय अंक पृ० ८०

^४ वही, पृ० ८३ ८४

^५ वही, पृ० ८४

जिस काम कृत्य के संपादन में मन आत्माएँ नहीं, बरन् दो वपुस ही मिलते हैं, जो काम क्रिया स्नेहावृष्ट होकर नहीं, बरन् छल बलपूर्वक की जाती है वह बलात्कार के पाप को जन्म देती है। दूसरी आर फलासक्ति से भूय निष्काम काम-सुख स्वर्गीय पुलक के समान है। अस्तु, काम का यही रूप वरेण्य है।

इस प्रकार उवशी के जिस प्रेमिका रूप का कवि ने चित्रण किया है उसके दो पक्ष हैं—एक वह, जिसमें वह अपना सबस्व अपण करके शरीर सुप्त की प्राप्ति के लिए व्यग्र है। दूसरे जिसमें वह फलसंनिपण वामुकता की त्याग, काम भावना के उदात्त रूप को ग्रहण करना चाहती है। वस्तुतः उवशी की चरित्र सृष्टि द्वारा कवि ने अपने उस मन्तव्य की पुष्टि कर दी है जो उसने नारी के सम्बन्ध में भूमिका में प्रतिपादित किया है।

पत्नी—नारी के पत्नी रूप का प्रतिनिधित्व काव्य में पुरुरवा की परिणीता औशीनरी करती है। उसे आदर्श पत्नीत्व की भाँकी सुक्या के चरित्र में भी उपलब्ध है। प्रेमिका के विपरीत पत्नी पुणत पति के प्रति समर्पित होती है। उसका सबस्व पति ही होता है। सुक्या इसी भाव को व्यक्त करत हुए कहती है कि

‘एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोग का ?
मेरे तो आनन्द धाम केवल महर्षि भर्ता है।
योग भोग का भेद अप्सरा की अबध श्रीडा है,
गृहिणी के तो परम देव आराध्य एक होत हैं
जिससे मिलता भोग, योग भी वही हमें दता है।’

सुक्या की यह भी मान्यता है कि नारी को जीवन रहत ही किसी एक पुरुष के साथ गिखिल जीवन का तार बाध लेना चाहिए जयथा सौन्दर्य से विगलित म्लान अगा वाली नारी पुरुष को आर्कषित करने में समर्थ न होगी। अप्सराएँ अपने जीवन पर उन्नत रहती हैं कि तु पतिव्रता नारी के जीवन का आनन्द उसका मधुपूर्ण हृदय होता है जो जीवन की जीणता पर जीण नहीं होता। इसीलिए पति पत्नी एक दूसरे के हृदय में ऐसे बसे रहते हैं जैसे एक वृत्त के दो प्रसून हैं। वे साथ साथ युवा और बद्ध होते हैं। पति पत्नी एक नौका पर चढकर जीवनोदधि को पार करने हैं। अस्तु सुक्या के शब्दों में

'असरियाँ उद्विग्न भोगती रस जिस चिर यौवन का,
उससे कहीं महत सुख है जो हमे प्राप्त होता है,
निश्चल, शान्त, विनम्र, प्रेम मर उर के उत्सजन से।'^{११}

परिणीता नारी के जीवन के अपने अभाव हैं जिनकी व्यजना औशीनरी के चरित्र में हुई है। वह पतिपरायणा नारी है। उसके पति (पुरुखा) का उवशी से मिलन उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है। पुरुखा के उवशी के साथ गंधमादन पवत पर चले जान पर वह प्राणान्त करना चाहती है, तभी निपुणिका पुरुखा का यह सदेश देती है कि महाराज एक वप पश्चात् लौटकर नमिपय यज्ञ करेंगे जिसकी पूति के लिए कुलवामा औशीनरी का जीवित रहना आवश्यक है। औशीनरी विचित्र दुविधा में पड जाती है। वह अपनी व्यथा और उवशी के प्रति आक्राश एक साथ यक्त करती है

"हाय मरण तक जीकर मुझको हलाहल पीना है।
जानें, इस गणिका का मैंने कब क्या अहित किया था,
कब किस पूव जन्म में उसका क्या सुख छीन लिया था।

× × ×

छीन ले गयी अधम पापिनी मुझमें भेरे पति का।
ये प्रवचिकाएँ जानें, क्या तरस नहीं खाती हैं,
निज विनोद के हित कुलवामाओं को तडपाती हैं।'^{१२}

औशीनरी की असहायावस्था का कवि ने बड़ा ममत्पर्शी चित्र अकित किया है। वह कहती है

'पति के सिवा योपिता का कोइ आधार नहीं है।
जब तक है यह दशा, नारिया यथा कहीं खोयेंगी,
आँसू छिपा हँसेंगी, फिर हसते - हँसते रोयेंगी।'^{१३}

अथवा

कितना विलक्षण याय है।
कोई न पास उपाय है।

अवलम्ब है सबको, मगर, नारी बहुत असहाय है।'^{१४}

^{११} उवशी, पृ० २१०

^{१२} वही, द्वितीय अंक, पृ० ३३

^{१३} वही पृ० २६

^{१४} वही, पृ० ४०

उवशी के पुत्र आयु के समझ अपनी मनोम्यथा व्यक्त करती हुई औशीनरी कहती है कि विधाता ने नारी के भाग्य में रुन ही सिरजा है

“और हाथ तब भी, मैं बेबल श्रिया, मोरू नारी हूँ,
रुदन छोड़ विधि ने सिरजा क्या और भाग्य नारी का।”^{१३}

इस प्रकार परिणीता नारा का जो रूप उवशी महाकाव्य में अंकित हुआ है उसमें दो विशेषताएँ स्पष्ट दिशाधी होती हैं। प्रथम पत्नी नारी का पति के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दूसरे, परिणीता नारी के जीवन की मूक व्यथा, जिसे वह अंतरतम में सहेंजे हुए जीवनयापन करती है।

माता—आयु की जननी हान के कारण उवशी माता है किन्तु माता के दायित्व का सबहल सुक्या ही करती है। नारी के मातृत्व की प्रशंसा काव्य के सभी पात्रों ने मुक्त कण्ठ से की है। उच्छ्वसल स्वभाव वाली अप्सराएँ भी मातृत्व के गौरव को स्वीकार करती हैं। मनका के शब्दों में

‘पर, रम्भे ! क्या कभी बात यह भी मन में आती है
मा बनते ही श्रिया कहीं से कहीं पहुँच जाती है ?
गलती है हिमशिला, सत्य है गठन देह की खोकर,
पर हो जाती वह असीम कितनी परस्विनी होकर ?
युवा जननि को देल शक्ति कसी मन में जगती है
रूपमती भी सखी ! मुझे तो वही श्रिया लगती है ।
जो गोदी में लिय क्षीरमुख शिशु को मुला रही हो,
अथवा सड़ी प्रसन्न पुत्र का पालना बुला रही हो।”^{१४}

मातृत्व पद की प्राप्ति से पति पत्नी का प्रणय दृढ़तर हो जाता है। दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध रूपी मृदुल घागो रेशम की कडियों के समान मजबूत हो जाते हैं

‘यह भी क्या वे नहीं जानते सतति के आने पर
पति पत्नी का प्रणय और भी दृढ़तर हो जाता है ?
बाला रहती वध्वी मृदुल घागो से शिरिप सुमन के,
किन्तु अक में तनय पयस के आते ही अचल में
वही शिरिप के तार रेशमी कडिया बन जाते हैं।

^{१३} उवशी, पंचम अंक, पृ० १५५

^{१४} वही प्रथम अंक पृ० १६

धीर कौन है, जो तोड़े मटके से इस बंधन को ?

रेशम जितना ही कोमल, उतना ही हृद होता है ।^{११}

मातृत्व की महिमा से मण्डित गमिणी नारी को महर्षि अथर्वण सत्वशीला और लोकोत्तर कहते हैं । उनका मत है कि नारी का प्रजनन कम किसी तपश्चरण से कम नहीं है

“धीर नारियो म भी श्लय, गमिणी, सत्व शीला को,
देख मुझे सम्मानपूण कहणा सी हो आती है ।
कितनी विवश, किन्तु कितनी लोकोत्तर वह लगती है ।

× × ×

कितनी सह यातना पान्ती त्रिया भविष्य जगत का ?
कह सकता है कौन पूण महिमा इस तपश्चरण की ?^{१२}

महर्षि अथर्वण के अनुसार प्रजा सृष्टि यत्र म नारी का महत्वपूण अनुदान है । नारी रूपी महासेतु पर चलकर ही नये मनुज अदृश्य जगत से आते हैं

“नारी ही वह महासेतु जिस पर अदृश्य से चल कर,
नये मनुज नव प्राण दृश्य जग मे आते रहते हैं ।
नारी ही वह कौष्ठ देव, दानव, मनुष्य से छिपकर,
महाधूम्य, चुपचाप, जहा आकार ग्रहण करता है ।

× × ×

सच पूछो तो प्रजा सृष्टि मे क्या है नाग पुरुष का ?
यह तो नारी हो है जो सब यज्ञ पूण करती है ।^{१३}

मातृत्व भाव का प्रदर्शन कवि ने उवशी सुकन्या और औशीनरी तीनों के चरित्र मे किया है । आयु के प्रति तीनों नारियो मे अतुल्य वात्सल्य भाव है । उवशी अप्सरा है किन्तु आयु को जन्म देने के कारण उसम मातृत्व का गौरव आ जाता है । चित्रलेखा से वह कहनी है कि यदि मैं मानवी नहीं हूँ तो क्या मैं ने मानव रत्न लाल को तो जन्म दिया है ।^{१४} वात्सल्य भाव से भरकर आयु को चुप कराते हुए वह अलौकिक आनन्द की अनुभूति करती है—

^{११} उवशी, चतुर्थ अंक, पृ० १२१

^१ वही पृ० ११६

^{११} वही, चतुर्थ अंक, पृ० ११७

^{११} वही, पृ० ११८

‘कितनी मृदुल ऊर्मि प्राणों में अकथ अपार सुगंध की !
दुग्ध धवल यह दृष्टि मनोरम कितनी अमृत सरस है !
और स्पष्ट में यह तरंग सी क्या है सोम-भुषा की,
अक लगाते ही आँखों की पलकें झुन जाती हैं ।’^{११}

उवशी से लासन पालन के लिए आयु को लेकर सुक्या भी वात्सल्य भाव से भर जाती है। आयु के सम्बन्ध में यह नाना कल्पनाएँ करती है। आयु को गोद में लेकर पुचकारते हुए बह कहती है कि मेरा मुना घुटनों के बल दीड दीडकर कर कभी हिरनो के वान पकड़ेगा, कभी कबोत केनी के डैनों को पकड़ेगा, और जब राडा होकर चलने लगेगा तो शशको गिलहरियो, कुरग छौनों से रार रोपेगा ।^{१२} तनिक और बडा होकर गोचारण के लिए बन जाया करेगा। सायकाल गायें चराकर सिर पर कुशा दम और समिधा का बोझ लेकर लौटा करेगा। फिर पवित्र होकर महर्षि के साथ यज्ञ वेदिका पर बठकर मन्त्रोच्चार सहित हवन करेगा। हवन धूम से जब उसकी आँखों में वाष्प उमड आयेंगे तो मैं अपने आचल से उसकी आँखें पोछ दूँगी—

‘हवन धूम से आँखों में जब वाष्प उमड आयेंगे
तब मैं दोनों नयन पाछ दूँगी अपने अचल से ।’^{१३}

आयु को पाकर औशीनरी राजमहिषी से राजमाता हो जाती है। आयु को देखकर औशीनरी भी मातृत्व भाव से भर जाती है। उसके मन को तो वही वेदना सालती है कि आयु यदि अपनी बाल्यावस्था में ही मिल जाता तो उसका पालन पोषण करके अनंत सुख की अनुभूति करती —

आ धेटा ! लूँ जुडा प्राण छानी से तुम्हें लगाकर ।

[आयु को हृदय से लगाती है]

किनना भव्य स्वरूप ! नयन नायिका लजाट, चिबुक में,
महाराज की आकृतियों का पूरा बिम्ब पडा है ।
हाय पानती कितने सुख कितनी उमंग, आशा से
मिला मुझे होता यदि मेरा तनय कही बचपन में ।।^{१४}

^{११} उवशी, पृ० १२०

^{१२} वही, पृ १२६

^{१३} वही, पृ० १३०

^{१४} वही, पंचम सर्ग, पृ० १५३

प्रत्युत्तर में आयु से कवि ने जो कहलाया है उसमें मातृत्व पद की महिमा झलकती है। आयु कहता है—माँ ! हताश मत हो। मैं माताओं के स्वर्णिम भविष्य का अमृत बसकर आया हूँ। मैं ने माँ का केवल दूध ही नहीं पिया वरन् बह्मामयी त्रिया के क्षीरोज्ज्वल कल्पना लोक में पल कर बड़ा हुआ हूँ। आयु कहता है कि उसके जीवन में माता की ममता ही मूल्यवान रही है—

“जो बुद्ध मिला, मातृ-ममता से, माँ के सजल हृदय से,
पिता नहीं, मैं ने जीवन में माताएँ देखी हैं।
दिया एक ने जन्म, दूसरी माँ ने लगा हृदय से,
पाल पोस कर बड़ा किया आँखों का अमृत पिलाकर,
बच मैं होकर युवा खोजने हुए यहाँ आया हूँ,
राजमुकुट को नहीं, तीमरी माँ के ही चरणों को।
मा, मैं पीछे नप किशोर, पहले तेरा बेटा हूँ।”

इस प्रकार मातृत्व की व्यञ्जना उर्वशी, सुक्या और औशीनरी तीनों के चरित्र में हुई है।

यहाँ तक 'उर्वशी' महाकाव्य में उल्लिखित नारी पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं और नाना रूपा (प्रेयसी, पत्नी, माता आदि) का विवेचन किया गया। अब हम काव्य में नारी के प्रति कवि के सामान्य दृष्टिकोण का मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे।

पुरुषों उर्वशी का आर्यान् (जो प्रस्तुत महाकाव्य का क्यात्मक आधार है) मूलतः ऋग्वेद में उपलब्ध है। इस दृष्टि से यदि हम वैदिक कालीन नारी की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक स्रोतों से पता लगायें तो पता होता है कि आदिम सामाजिक संगठन का रूप गण संगठन द्वारा होता था, जिसका आधार मातृ सत्ता थी।^{१६} इस मातृ-सत्तात्मक समाज में नारी बलवती, गृह की स्वामिनी और सम्पत्ति की प्रभु थी।^{१७} इतिहासकारों का मत है कि वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति जितनी ऊँची थी, उतनी बाद

^{१६} वही पृ० १६५

^{१७} श्री अमृतपाद डांगे भारत, पृ० ४६ (अनु० आदि-य मिश्र)

^{१८} डा० सगवतशरण उपाध्याय, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ० २४७

मे कमी नहीं रही ।^१ "समाज व मानसिक एव धार्मिक नेतृत्व मे भी स्त्रियों का हाथ था ।"^२ आर्यों के समाज मे स्त्रियाँ की पुरुषों व समान सभी अधिकार रहते थे इसी से उनको पुरुषों की अर्धांगिनी भी कहा गया है । स्त्री के बिना घर को घर नहीं माना जाता था । अतिथि सत्कार तथा धार्मिक काम स्त्रियों द्वारा सम्पादित होते थे और बिना उनके कोई यज्ञ या उपासना तथा अचना सागोपाग नहीं थी । इनको वेद पढ़ने पढ़ाने का पूण अधिकार था । घोषा लोषामुदा अपाला, विश्ववारा इत्यादि ऋषि पत्नियों वेदों की टीकाकार थी । शास्त्रार्थों मे या समाजों मे उनको भाग लेने की पूरी स्वतंत्रता थी । सम्पत्ति अधिकार मे उनका भी हाथ था ।^३ सद्यप मे "नारी के विकास एव अधिकार की दृष्टि से बदिक युग का इतिहास नारी का स्वण काल है ।"^४ अस्तु—

बदिक कालीन नारी के सम्बन्ध मे उपयुक्त ऐतिहासिक सन्दर्भों मे 'उवशी महाकाव्य मे रचयिता की नारी सम्बन्धी धारणाओं का अध्ययन किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दिनकर जी ने प्रस्तुतकाव्य मे नारीपात्रों को एक ओर तो वेद कालीन नारों की गरिमा से मण्डित चित्रित किया है तो दूसरी ओर वेदोत्तर काल से अद्यावधि नारी के प्रति पुरुष के स्वेच्छाचारी व्यवहार, सामाजिक असमानता और उसकी विवशतापूण स्थितियों का भी धार्मिक अंकन किया है ।

दिनकर जी की धारणा है कि मानवता के इतिहास मे नारी और पुरुष के योगदान का समान रूप से महत्वाकन नहीं किया गया है । इतिहासों की दृष्टि केवल पुरुषों के पौरुष सद्यप और मशोगान तक केन्द्रित रही है । नारी की मूक वेदना को इतिहास ने मुखरित नहीं किया है—

' इतिहासों की सकल दृष्टि केन्द्रित बस एक क्रिया पर ।
किन्तु नारियाँ क्रिया नहीं प्रेरणा, प्रीति करुणा हैं
उद्गम स्थली अदृश्य जहाँ से सभी कम उठते हैं ।
X X X

हरिदत्त वेण्णलकार भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५१

^२ डॉ० वेनी प्रसाद हिन्दुस्तान की पुरानी सम्यता, पृ० ३७

^३ डॉ० गोपीनाथ शर्मा भारत का सम्पूर्ण इतिहास पृ० २६

^४ डॉ० श्याम सुन्दर व्यास, हिंदी महाकाव्यों में नारी चित्रण पृ० २२

अवेपी इतिहास धूरता का, सधप सुयश का,
विनु हाय धूरता नारियों की नीरव होनी है,
वह सशब्द आघात नहीं, ममता है बध्ट सहन है।"४४

'उवशी' की सुक्या कहती है कि नारियाँ इतिहास की धारा से छिन्न नहीं हैं। समरागण के थके पुरुष की प्रेरणा नारी ही होती है। नयी ऊर्मा और नूतन उमंग से सजाकर प्रति प्राण काल नारी ही पुरुष की जीवन रण में भेजती है और समरक्षेत्र से लौटे हुए पुरुष से सामकाल नारी ही दिनभर का इतिहास कभी आँसू बहाकर और कभी मद स्मिनि सहित सुनती है। अतः इतिहास नारी के आदान के प्रति मौन क्यों है ? इस प्रश्न का निदान कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

"नारी श्रिया नहीं वह केवल क्षमा, क्षान्ति, करुणा है।
इमीलिए इतिहास पहुँचता जमी निकट नारी के,
हा रहता वह अचल या फिर कविता बन जाता है।"४५

नारी को 'वासना का प्रतीक' या 'मायावनि' कहा जाना रहा है। कवि ने ऐसे मतधर्मों को अस्वीकार किया है। उसकी मान्यता है कि —

'नारी जब देखती पुरुष को इच्छा भरे मन से,
नहीं जगाती केवल उद्वेलन, अनल सहिर में,
मन म किसी कात को भी जम दिया करती है,
नर समेट रखता बाहों में स्थूल देह नारी की,
शोभा की आभा तरंग स कवि श्रीडा करता है।"४६

कवि के मतानुसार दिव्य मानवीय गुणों के निकट भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही है —

'और देवि ! जिन दि य गुणा को मानवता कहने हैं,
उसके भी अत्यधिक निकट नर नहीं मान नारी है।
जितना अधिक प्रभुत्व तृषा से पीडित पुरुष हृदय है,
उतने पीडित कभी नहीं रहते हैं प्राण श्रिया के।"४७

* उवशी, पंचम अंक पृ० १६३

** वही पृ० १६४

*** वही, तृतीय अंक प० ६१

**** वही पंचम अंक, पृ० १६४

इस प्रकार 'उवशी' महाकाव्य में आद्यात कवि ने नारी की गौरव गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है। वास्तव में 'उवशी' महाकाव्य नारी की महिमा का काव्य है। उसमें परम्परित और प्रगतिशील सदमों में एक साथ नारी का स्वरूप विश्लेषण हुआ है। नारी जाति के भविष्य के प्रति भी कवि सगलाकाक्षी है। औशीनरी के शब्दों में —

'नारी का स्वर्णिम भविष्य, जानें, वह अभी कहीं है।
हम तो चली भोग उसको जो सुख-दुख हमें वदा था,
मिले अधिक उज्ज्वल, उदार युग आगे की ललना को।'^५

‘जननायक’ महाकाव्य

स्वाधीनता-सगर में राष्ट्रपिता के आदान का
समाख्यान

‘जननायक’ महाकाव्य

स्वाधीनता-सगर में राष्ट्रपिता के आदान का समाख्यान

आधुनिक युग की महान विभूतियाँ म गांधी जी का स्थान सर्वोपरि है। व्यक्तित्व की गरिमा और कृतित्व की महाघटा के कारण भारतीय जन गण ने उन्हें राष्ट्रपिता, राष्ट्रनायक, राष्ट्रनिर्माता, अमरशहीद, देवपुरुष, महारमा, स्वाधीनता सेनानी, युगपुरुष, सद्दृश्य सनाओ से सञ्चालित किया ता अंतराष्ट्रीय जगत में वे महामानव, लोकनायक, जगदालोक, विश्व ज्योति, विश्वदत्त, आदि अभिधानों से अलङ्कृत हुए। आधुनिक भारतीय जीवन और चेतना के विकास में गांधी जी का योगदान इतना बिलक्षण और अभूतपूर्व है कि वे ‘श्वेतारी-पुष्प’ के समान प्रतीत होते हैं। उनकी चिन्तनधारा ने भारतीय समाज, साहित्य, संस्कृति, अर्थनीति, राजनीति, अचारण-वृद्धि और व्यवहार दर्शन को इतना अधिक प्रेरित और प्रभावित किया है कि इन सभी क्षेत्रों में एक आपातक परिवर्तन परिलक्षित होता है, जो मध्ययुगीन चिन्तन श्रम से स्पष्टतः पाथक्य का द्योतनकता है। सहस्राब्धियाँ से पराधीन भारत को सत्याग्रह का शस्त्र सौंप कर प्रातिमत्त बनाने और सत्य अहिंसा के पाथेय पर अग्रसर करते हुए स्वाधीनता सगर में जूझने का नतिक बल और राष्ट्रीयता रूपी भाव शक्ति आदोलित करने में गांधी जी का योगदान अद्वितीय है। भारत के स्वाधीनता सघष में योगदान करने वालों की सूची बड़ी लम्बी है और उनके बलिदान के प्रतिमान भी अप्रतिम हैं, कि तु गांधी जी का एतद विषयक अनुदान तो अपरिमित विस्तार और अन्ततः याप्ति ग्रहण किए हुए है। स्वाधीनता सगर में अमर सेनानी की भाँति वे स्वयं जूझे, करोडा देशवासियों का

मर मिटने के लिए उत्साहित किया और सबसे बड़ी बात इस राष्ट्र के जजरि, रुद्धिप्रस्त और पतनशील जन जीवन को स्वाधीनता समानता और सहअस्तित्व का ऐसा भाववत संदेश दिया जिसने राष्ट्र निर्माण की महत् भूमिका प्रस्तुत की। इसका अतिरिक्त गांधी जी ने मृत्यु, अहिंसा कृष्णा, प्रेम, सहिष्णुता सौहार्द सदाचार जैसे चिर तन जावन मूल्यों का सामाजिक परिवेश और समजालीन परिस्थितियाँ के अनुरूप पुनराख्यान भी किया साथ ही जातिवाद छुआछूत, साम्प्रदायिकता प्रांतीयता, भाषा विवाद दहेज अनमेल विवाह जमींदारी जागीरदारी शोषण जमी कृषथाओ और कुसस्कारों का निरोध किया। गांधी जी के चिन्तन के परिणामों और उदात्त जीवनादर्शों की प्रति प्रियाआ को स्वाधीन भारत राष्ट्र के परिनिर्माण की योजनाओ, सामाजिक पुनरख्यान के कामधर्मों और राजनीतिक व्यवहार पद्धतियाँ में स्पष्टतः देखा जा सकता है। इसीलिए व राष्ट्रपिता कहे जाते हैं। उनकी दूरदर्शी नीतियों ने अफ्रीका और एशिया के भी असह्य दशों में अत्याय और शोषण से संघपरत होने वालों जन जागृति को तावतर किया इसीलिए वे 'विश्व ज्योति या जगन्नाथक' कहे गये।

ऐसे महान् नरपुण्य का साहित्य मनीषियों द्वारा मारस्वत बन्धन और कायाभिनन्दन सह्य स्वाभाविक है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में— महान् गांधी आधुनिक युग के थच्छ जननायक थे। उनके प्रत्येक आचरण में सच्च्यी प्रेरणा और स्फूर्ति का स्वर मरा हुआ था। उनका जीवन कविया का काव्य स्फूर्ति देने का मट्टन बड़ा प्रेरणादायक मात्र है। 'श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के अनुसार— महत्माजी जस महत्पुरुष जल शताब्दियाँ के बाद इस भूमि पर अवतरित होय हैं और यह संवधा स्वाभाविक है कि अनेक लेखक और कवि उनका गुणगान करके अपनी कलम को पवित्र करें।' इसीलिए गांधीजी के जावन काल से ७० भारतीय रचनाकारों द्वारा विभिन्न भाषाओ की काव्य-तरचना में उनका यत्तित्व और कृति व का महत्वाकन प्रारम्भ हो गया था। विगत रूप से भारती के रचनाकारों ने गांधीजी के प्रशम्य चरित्र का आधार बनाकर काव्य के अनिरिक्त ज्येष्ठ विधाआ में मा प्रकीण रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। काव्य के रूप में मोहनलाल द्विवेदी का जय गांधी सण्ड काव्य उत्तमनाम है। संवदा मपितोशरण मुक्त सुमित्रानन्दन पन्त, राम

¹ जननायक—वर्षाई, पृ० १६

² महा—विचार और विवचन प० १०

पारोसिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, निगला, सिधारामशरण गुप्त प्रभृति समय कवियों ने समय समय पर गाधीजी को काव्याजलिया समर्पित की। किन्तु गाधीजी का गौरवाचित चरित्र महाकाव्य निबद्ध हाकर ही पूर्णतः अभिव्यक्त हो सकता था और यह हृष का विषय है कि गाधी चरित्र पर अद्यावधि अनेक बृहत् प्रबंधकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से उल्लेखनीय हैं—

महामानव (ठाकुरप्रसार्दासिंह), जगदालोक (गोपालशरणसिंह), गाधीचरित्र मानस (विद्यापर महाजन), देवपुरय गाधी (रमेशचन्द्र शास्त्री), गाधी पारायण (अबिवादात्त दिव्य), विश्वज्योति बापू (गिनेश), जननायक (रघुवीर शरण मित्र) और लोकायतन (सुमित्रानन्दन पंत)।

उल्लिखित प्रबंधकाव्यां में मुख्यतः गाधीजी की जीवनी और कृतित्व को आधार बनाकर काव्य-संरचना की गई है। इन काव्यकृतियों में गाधीजी के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं का समायोजन है। विशेष रूप से श्री सुमित्रानन्दन पंत द्वारा 'लोकायतन' महाकाव्य यद्यपि सन्नान्ति काल की युग गाथा है और उसमें 'विकासकामी मानवता के जीवन सत्य की जागी' प्रस्तुत की गयी है और कवि ने स्वयं इसे 'ग्रामधरा के अचल में, जनभावना के छंद में बँधी, युग जीवन की भागवत कथा' कहा है तथापि इसमें गाधीजी के चरित्र की प्रमुखता है। वैसे गाधीजी के श्रमिक चरित्र विकास का इस प्रबंध काव्य में भी अभाव ही है।

गाधी चरित्र मूलक प्रबंधकाव्यों के रचनाक्रम में श्री रघुवीरशरण मित्र प्रणीत 'जननायक' महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। इस काव्य में गाधीजी की सम्पूर्ण जीवनी को आद्योपात्त कलात्मक पद्धति से चित्रित किया गया है। इतिवृत्तात्मक आधार के लिए मित्र जी ने मूलतः गाधीकृत "मय क प्रयोग" (आत्मकथा) को अधिगृहीत किया है। स्वाधीनता-आंदोलन के घटनात्मक तथ्यों की सुरक्षा करते हुए कवि ने कल्पना शक्ति का समुचित प्रयोग किया है। वस्तुतः गाधीजी के चरित्र को महाकाव्योचित गरिमा के अनुरूप विराट रचना फलक पर जननायक महाकाव्य के माध्यम से प्रथम बार ही प्रस्तुत किया है। इस काव्य के विराट फलेवर और व्यापक रचनात्मक आधार के सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि— यह भारतवर्ष की जनता के सबसे महान् नेता का केवल जीवा काव्य ही नहीं बल्कि पिछले पचास साठ वर्षों का जीवत-इतिहास भी है। यह सरस और प्रेरणादायक इतिहास है। इन पंक्तियों में भारतवर्ष के अनीत, वर्तमान और भविष्य

बोला रहे हैं।^१ अस्तु स्पष्ट है कि मिश्रजी वृत्त 'जननायक' एक महत् काव्य सफल है और एक युगांतरकारी लोकनायक के सघनपूण जीवन तथा एक महान राष्ट्र के मुक्ति-आंदोलन का जीवत इतिहास होने के कारण सच्चे अर्थों में महाकाव्य है।

जननायक की सज्जन प्रेरणा किंवा रचनाधर्मी सोद्देश्यता भी चिन्तनीय है। इस सद्ब्रह्म में कवि का यह मत उद्धरणीय है कि— घरती चाहे अवतारो का ऋत्सान न माने पर महात्मा गांधी के पुण्यो से उद्धरण नहीं हो सकती। यदि बापू न आते तो घरती कभी की मर चुकी होती। गांधीजी का जन्म उस नयी विचार धारा का जन्म है जिससे शांति और सुन्दर व्यवस्था सुरक्षित है। बापू के जन्म से तलवार को पून का जन्म मिला, आग पानी बनकर प्रकट हुई मृत्यु में जिन्दगी मुस्कराई। इतिहास उनके चरणों में बदला है, पीडा को उनके प्राणों से शांति मिली है मृतकों को उनकी वाणी ने जीवन दिया है और दासता को उस मुक्त की महिमा से मुक्ति मिली है। गांधीजी देश का स्वाधीन कराने वाला एक आतंककारी महापुरुष ही नहीं थे, अपितु उन्होंने हर वृत्त पर अपना सौन्दर्य उड़ेलना है। उन्होंने असुन्दर को सुन्दर किया है। न जाने कितने पाप उनके पुण्यो से दीपक राग बन गये। उनमें अद्भुत चमत्कार था। उनकी वाणी के स्पर्श से मृतक भी बोल उठे। जिसको उस महापुरुष की सहायता मिल गयी वह हार से जीत बन गया। बापू ने मिट्टी के गिलीनों को जीवन दिया है। उन्होंने राग में सद्ब्रह्म बनाया है। ऐसे ज्योतिर्वन्त को धट्टाजलि के रूप में मैंने 'जननायक' काव्य रचा है।^२ इसी क्रम में श्री मिश्रजी ने बापू के जातिर्भाव को राम कृष्ण जीर भगवान बुद्ध की आत्मशक्ति से अनुप्रेरित तथा भारतीय संस्कृति के प्राणभूत तत्त्वों से अनुस्यूत मानते हुए 'जननायक' काव्य के प्रणयन की प्रेरणा का बापू के बलिदान की वृत्त से सम्बद्ध बनाया है। उनका कथन है कि— मैं गांधीजी के अमर तत्त्वा का पुजारा हूँ। बापू के चरण चिन्हा में चाँद जोर सूरज की अन्त मुला-प्राप्ति है। उनकी ध्वनि में शाश्वत सत्य है। पुरातन उनके प्रकाश से हमें उठा और नूतन उनकी कृपा में सुन्दर है। वे समन्वय की सुन्दर इकाई हैं। राम कृष्ण और बुद्ध उनके हृदय में आसक्त थे। उनमें उन ऐतिहासिक दशकों का जन्म जिनसे लगा रहा जो भारतीय संस्कृति के प्राण स्रोत हैं।

^१ जननायक—वर्षा १९२०

^२ बहो (पंचम सम्स्करण) कवि की प्रस्तावना पृ० २१

वह सधर्म के लोकोत्तम है, जब गांधी जी शहीद हुए थे। उस समय शून्य भी रो रहा था। सारी घरती मातम मना रही थी, किन्तु मैं रोया नहीं पौडा क्लम में भर ली। मैं ने तभी से गांधी जी पर महाकाव्य लिखने के विचार को क्रियात्मक रूप दिया। उस दिन से जब तक काव्य पूरा नहीं हुआ मैं लिखने में लगा ही रहा। ‘काव्य के ‘ममपण’ पृष्ठ को एक मात्र पक्ति में भी कवि ने यही मनोभाव अंकित किया है—

“अमृत के दानो को अर्घ्य’

मंगल ज्याति’ शोपक प्रथम सग की भावामिव्यक्ति में भी कवि का यही अमीष्ट अमि यजित हुआ है—

‘जिनकी चरण धूलि चदन है, दीपक । उनक चरणो में जल ।
जिनकी पूजा में प्रसाद है, वाणी । उनके मन्दिर में चल ॥
जहाँ अनक एक में मिलते, काव्यकला । उस सङ्गम पर गा ।
अखिँ अर्घ्य चढाने आई, मन्दि । रसामृत-गङ्गा भर गा ॥
× × ×
पूजा उसकी जा विप पी ल, नर से नारायण बन जाये ।
हलचलम सतरणवही जो तरणि विना तट तक खे लाये ॥”

(प्रथम सग, पृ० २५)

‘जननायक’ महाकाव्य की रचनाधर्मों सोदेश्यता और सृजन प्रेरणा के विवेचन के पश्चात् आलोच्य काव्य के इतिवृत्त विधान, चरित्र याजना एवं प्रतिपाद्य पर विमश अमीप्सित है।

जसा कि पहले कहा जा चुका है, ‘जननायक’ के इतिवृत्तात्मक संयोजन के लिए कवि ने बापू हुत जात्मकथा (सत्य के प्रयोग) का आधार बनाया है।

काव्य के कथा चयन में इतिवृत्तात्मक शली को ही अधिकांशतः ग्रहण किया गया है। गांधी जी की जीवन कथा का विषय समकालीन होने के कारण काल्पनिक कथाप्रसंगा की संयोजना का अवसर कवि को बहुत कम मिला है। फिर भी काव्य के कुछ स्थल कथा विधान की दृष्टि से ममस्पर्शी बन पडे हैं। और इन प्रसंगों के समायोजन में मौलिकता का परिचय भी मिलता है। उदाहरणार्थ—बापू और वा के दाम्पत्य जीवन के कतिपय प्रसंग अफ्रीका प्रवास के कट्टू अनुभव बाँ का देशावसान भारत के विभाजन की भूमिका तथा बापू के बलिदान में सम्बन्धित परिदृश्य विशेषतः द्रष्टव्य हैं। इनके अतिरिक्त

'जननायक' के घटनात्मक विनियोजन में पूर्वापर प्रसगाविति आघात विद्यमान है। कथानक में ऐतिहासिक तथ्य कहीं भी खचित नहीं हुए हैं किन्तु इतिहास और कल्पना का अपेक्षित समवाय सवन दृष्टिगत होता है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि गांधी जी ने अपनी आत्मकथा को मात्र तथ्यपरक जीवन वृत्तांत के रूप में नहीं लिखा है वरन् स्वकीय जीवन में किए गये सत्य के प्रयोगों और उनके निष्कर्षों के रूप में प्रस्तुत किया है और इस प्रस्तुति के मूल में जनहित की कामना मुख्यतः विद्यमान रही है। स्वयं गांधीजी के शब्दों में—“मुझे आत्मकथा कहा लिखनी है? मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य क जो अनेक प्रयोग मैंने किए हैं, उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमें मेरा जीवन ओतप्रोत होने के कारण कथा एक जीवन वृत्तांत जसी बन जायेगी। लेकिन अगर उसके हर पंने पर प्रयोग ही प्रकट हों, तो मैं स्वयं उस कथा को निर्दोष मानूँगा। मैं मानता हूँ कि मेरे सब प्रयोगों का लेखा जनता के सामने रहता वह लाभदायक सिद्ध होगा, अथवा यो समझिये यह मेरा मोह है।”^६ और यह सतोष का विषय है कि 'जननायक' के रचयिता ने गांधी जी के उदघाटन तथ्य को लक्ष्यीभूत करते हुए आलोच्य काव्य का घटनात्मक चयन किया गया है। इसीलिए कथानक में शुष्क ऐतिहासिकता ही नहीं अपितु भावप्रवणता और रोचकता भी है। सम्पूर्ण काव्य इक्तीस सर्गों में वर्गीकृत है और प्रत्येक सर्ग का क्रमांक के साथ साथ नामकरण भी किया गया है। यथा—मगल ज्योति, श्रीडा, पय का प्रसाद मुस्काते आँसू अमृतध्वनि, दीपाजलि, असहयोग, अन्तर्द्वन्द्व, आहृति, अरणोदय, प्राणदान आदि।

'जननायक' मूलतः चरित्रप्रधान प्रबन्धकाव्य है। अस्तु कवि का कौशल चरित्र विन्यास के परिप्रेक्ष्य में मुख्यतः विवचनीय है। आलोच्य महाकाव्य के काव्यनायक के रूप में गांधीजी का चरित्र सर्वप्रमुख है। किन्तु गांधीजी के चरित्र केन्द्र के परिधि विस्तार के अन्तर्गत आने वाले सैकड़ा पात्रों का भी कवि ने यथाप्रसंग समुचित मूल्यांकन किया है। इस सम्बन्ध में श्री बनारसी दास चतुर्वेदी का यह कथन उद्धरणीय है कि— एक वान से हम आश्रय भी हुआ और हथ भी वह यह कि अहिंसा के पगम्बर महात्माजी की पवित्र चरित्र गाथा लिखने समय भी मित्र जी सशस्त्र क्रान्ति के पुजारिया का नहीं भूले और उत्कृष्ट प्रतिमित्रजी से साफ हाँ मिली है।”^७ और यह सत्य है कि

^६ आत्मकथा—प्रस्तावना पृ० ६ (नवजावन टस्ट का १९५७ का संस्करण)

^७ जननायक—विचार और विवचन पृ० १३

'जननायक' के रचनाकार ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सेनानियों और शहीदों को श्रद्धा मुमनाजति आलाच्य काव्य के माध्यम से समर्पित की है। काव्यारम्भ के प्रथम छंद में ही वह अपनी वाणी का साफल्य तथा काव्य कला का साथक्य उन नरपुंगवों की अभिव्यक्ति में मानता है जो जग के पीड़ा-गरल का पान कर नर से नारायण बने हैं। गांधी जी धरती से आसुआ और दोन होना के वेदना-गरल का पान कर नर से नारायण बने थे। इसीलिए कवि ने गांधीजी के प्रादुर्भाव का युग युग का वरदान कहा है—

'वरमन्त्र' 'पुतलीवाइ' के, मन मोहन ने जन्म ले लिया।
ईश्वर ने सारी दुनिया को युग युग का वरदान दे दिया ॥
खेले तीनों लोक गान्धे में दिया उजाला अंधकार में।
सबत उन्नीस सौ पचीस में, रूप धरा उस निराकार ने ॥'

(प्रथम सग, पृ० २८)

प्रथम सग में ही कवि ने गांधीजी के जन्म, बाल्यावस्था, शिक्षा दीक्षा और विवाह का वर्णन किया है। बालक गांधी के जीवनादर्श एवं आचरण पद्धति इतनी उदात्त थी कि कवि ने उसकी तुलना प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र से की है—

'माना देश भक्ति ने उस दिन, पहिन लिया बालक का चोला।
माना फिर 'प्रह्लाद' जन्म ले बालक के चोल में बाला ॥
मानो 'हरिश्चन्द्र' का सच फिर, प्रभु को देने लगा परीक्षा ॥
सान वप का मोहन बालक, गुरु से लेन पहुँचा दीक्षा ॥'

(मंगल ज्योति, प्रथम सग, पृ० ३०)

गांधी जी की किशोरावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि वे देववाणी के रसिक थे। बुरीतियों एवं कुमस्वारों से वे आरम्भ से ही जूझने लगे थे। हरे भरे खेतों में माताआ सागर तट की लहरों, चन्द्र ज्योतिस्ना आदि प्राकृतिक उपादानों के प्रति उनके मन में अपार आकर्षण था। नतित मयूर पश्चिम का पीन प्रकाश तथा इसी प्रकार के अथ प्रकृति दृश्य उनके मन में स्वतंत्रता के महत् महत्वों की उदभासना करते थे। मिन जी के शब्दों में—

'कभी प्रकृति के दृश्य देखते, कभी गान्धेता मोर देखते।
पश्चिम के पीले प्रकाश में, स्वतंत्रता का मार देखते ॥
सकल्य के बीच तरते, करते थे कल्पना करोडा।
कभी कहाँ स यह ध्वनि सुनते, ताडो मा के बंधन तोडो ॥

(श्रीडा, सग २, पृ० ३६)

माहनदास के मन में 'राम' नाम के प्रति अडिग आस्था रममाबाई गामक

सेविका के ससग तथा रामायण भागवत आदि सदग्रंथों के सतत पारायण से उत्पन्न हुई। इसी आस्था का सम्बल लेकर बापू ने कुटुंबियों पर विजय पाई और जीवन-सधप में सफलता का वरण किया। समकालीन समाज कितना रूढ़िग्रस्त और अधविश्वासी था, इसका निरूपण कवि ने तृतीय सग में गांधीजी की विलायत यात्रा के परिसरदम से किया है। जब उनके भाई बरिस्टर बनाने के लिए बापू को विलायत भेजने के निणय पर अटल रहे तो पचो ने निणय कर उह जाति से निष्कापित कर दिया—

नही मोठ बनिया म अब तक, गया विलायत पदने कोई ।
मोहन का दुस्साहस है यह, उसने लाज जाति की खोई ॥
वह जा सकता नही विलायत, पचो ने यह बात सुनाई ।
मोद जाति के इस निणय पर, बढ मोहन ने लात लगाई ॥
इस पर उन निमम पचा ने, उनका बहिष्कार कर डाला ।
हुक्का पानी ब द कर दिया, मोठ जाति' से उह निकाला ॥'

(विलायत यात्रा, सग ३, पृ० ५०)

विदेश प्रवास में मोहनदास के आत्मबल की कड़ी परीक्षा हुई। उहोंने माँ की शिक्षा को ध्यान में रखकर भूखा रहना स्वोकार किया किन्तु माँस मदिरा का सेवन नही किया। विलायत के जीवन की रगीनिया से मोहन अप्रभावित रह। उहे विलायत का विलासितापूण जीवन देखकर अपने देश की दारुण और विपन्न परिस्थितियों में जीवन यापन करते हुए करोड़ों देशवासियों का स्मरण हा आता था—

मिले विनायत क मित्रा म, सत्रा म भी हुए उपस्थित ।
सकिन उन सार सत्रा म मरे मोहन रहे यवस्थित ॥
इन मोजा म गय किन्तु वे, पास नही पटक शराब के ।
मोब्रो म फल-फूल बचे, पर किण नही दशन कवाब के ॥

×

×

×

दु ग और मुम क भून म माहन अपना दग न भूल ।
वे फूलों की तरह तिल हैं जा नर शूला पर भी भून ॥

(पय का प्रसांग सग ४ पृ० ६३)

स्वदेश प्रेम किंबा भारतीयता की भावना गांधी जी के मन-महािष्य पर छाई हुई थी। य अपन प्रत्येक आचरण और कृत्य का मू-यावन स्वश्री' क परिप्रदय में करत थे। इसालिए उहान जब बरिस्ट्री किमी तरह पास कर ली तो प्रसन्न जमा कि यह जान तो भिज्ञा है इयम अपन दन धम का ता ज्ञान

है ही नहीं, अस्तु, इस ज्ञान का व्यावहारिक लाभ क्या होगा ? यह प्रश्न नितान्त चिन्तनीय था—

“जो कुछ वहा पढा था वह तो भारतीय अध्याय नहीं था ।
अपने देश घम का उसमे, ज्ञान नहीं था, ज्ञान नहीं था ॥

× × ×

भारत की पवित्र सभ्यता का, पश्चिम में सम्मान नहीं था ।
हिन्दू शास्त्र तथा इस्लामी, कानूनो का ज्ञान नहीं था ॥

× × ×

वरिस्टर तो हुए किन्तु मन मेरे मोहन का अशांत था ।
वरिस्टरी किस तरह होगी, इस दुविधा से हृदय घ्रात था ॥ ’

(पय का प्रसाद, सग ४, पृ० ६४)

यही कारण था कि भारत लौटकर उठोने बम्बई में वरिस्टरी प्रारम्भ की किन्तु असफल रहे । अन्ततः वे वरिस्टरी करने अफ्रीका गए । वहाँ डरवन न्यायालय में जब पगडी पहने मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित हुए तो उन्हें पगडी उतारने को विवश किया गया, क्योंकि गोरे काने भारतीयों को गुलाम मान कर उन्हें अपमानित करते थे । इस व्यवहार की गांधी जी पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई । उठोने कहा—

“भारत मा के स्वाभिमान से, तडप उठा गांधी का अन्तर ।
मेरी पगडी नहीं यहा पर भारत की पगडी है सिर पर ॥
चाहे मर जाऊंगा लेकिन पगडी नहीं उतरवाऊंगा ।
अगर उतार घरी पगडी तो, माँ को क्या मुँह दिखलाऊंगा ॥

(अफ्रीकागमन, सग ६, पृ० ८७)

इस घटना का वहाँ के समाचार पत्रों में खूब प्रचार हुआ । उनका विरोध भी हुआ और समर्थन भी, किन्तु गांधी जी दक्षिणी अफ्रीका में विख्यात हो गए । कवि के शब्दों में—

“ वे ‘दक्षिण अफ्रीका देश में मूरज से प्रख्यात हो गए ।
काली रजनी के आगमन में, गांधी स्वर्ण प्रभात हो गए ॥’

(सग ६, पृ० ८७)

अब अफ्रीका में गांधी जी के परिचय का क्षेत्र बढ़ा । बेकर, हैरिसवेग, फोर्दस तयब हाजी खान मुहम्मद आदि से सम्पर्क स्थापित कर गांधी जी ने

रग भेग नीति के विरोध में देश-व्यापी आन्दोलन का समारम्भ किया। उन्होंने प्रवासी भारतीयों की सभा में उनका दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि भारतवासी पुटपाय पर नहीं चल सकते, रेलों से उनको विस्तार फेंक दिए जाते हैं, मतदान का अधिकार नहीं, आगिर क्यों? तुम कुली और वेटर बने हुए जीवन यापन कर रहे हो। उन्होंने निर्भीक स्वर में उद्बोधन करते हुए कहा—

“यह हिंदू वह मुसलमान क्या ! कौन पारसी ? क्या ईसाई !
 मानव मानव सभी एक हैं सब आपस में भाई भाई ॥
 देख रहे हो यहाँ तुम्हारा, कौनी मर सम्मान नहीं है ।
 गोरे तुम्हें कुली कहते हैं यह थोड़ा अपमान नहीं है ॥
 भारत माँ के स्वामिमान को, तुम गोरो से रूँदवाते हो ॥
 अपनी दुबलता के कारण अपने पर उल्टेबाते हो ।
 तुम क्या जानो इन गोरो ने, बाँध लिए हैं पर तुम्हारे ॥
 गोरो की छाती के नीचे-दबे हुए अधिकार हमारे ।

× × ×
 मत देने का या चलने का, कोई भी अधिकार नहीं है ।
 गोरो का अधिकार यहाँ कालो का सत्कार नहीं है ॥’

(अमृतध्वनि संग ७, पृ० ६८)

इसी बीच श्री बेकर से गांधी जी की प्रगाढ़ मित्रता स्थापित हो गई। उनके साथ वे गिरजाघर भी गए। वहाँ बड़े-बड़े ईसाइयों ने उन्हें ईसाइयत स्वीकाराने का आग्रह किया। गांधी जी की सभी धर्मों और धर्मगुरुओं के प्रति अपार श्रद्धा थी किन्तु पारिवारिक सत्कारशीलता ने उन्हें अपने धर्म के प्रति अडिग भावना और अनन्य निष्ठा प्रदान की थी अतः गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मेरा धर्म वही है जो जननी ने सिखलाया है—

“ईसा, मैं श्रद्धा मेरी, ईसा’ ईश्वर नहीं मानता ।
 अद्वितीय दैविक शिक्षक थे, मानवता की ज्योति जानता ॥

× × ×
 लेकिन मैं ने तो भय भयकर, हिन्दू धर्म पूजा पाया है ।
 मेरा सच्चा धर्म वही है, जो जननी ने सिखलाया है ॥’

(अमृत ध्वनि, संग ७, पृ० १०१)

इसी बीच फ्रेञ्चाइज बिल सामने आया जिसके द्वारा भारतीयों को मताधिकार के प्रयोग से वंचित किया गया था। गांधी जी ने इस बिल के

विरोध में जनमत तयार किया। जब विरोध पत्रों, विरोध समाजों और नारों से कुछ होता न दिखाई दिया तो उन्होंने बिल के विरोध में पूण आन्दोलन करने का निश्चय किया। कवि के शब्दों में—

“तब उस कमवीर गांधी ने पूरे आन्दोलन की ठानी।
पीडा से बिजली भी तडपी, उनकी जागी हुई जवानी ॥
बादल बन कर गिरा आग पर, गांधी को वाणी का पानी।
शब्द शब्द में नया ग्रथ है शब्द शब्द में अमर कहानी ॥”

(अमृतघ्वनि, सग ७, पृ० १०५)

इस आन्दोलन के लिए ‘भारतीय नेटाल कांग्रेस’ नामक सावजनिक संस्था की वहाँ स्थापना की गई। दादा अब्दुल्ला की ही बैठक को इस समाज का कार्यालय बनाया गया। गांधी जी स्वयं एक पौढ प्रतिभास चंदा देते थे। इस समाज की सदस्यता तेजी से बढ़ने लगी—

‘ऐसे बड़े सदस्य समाज के, जैसे बड़ी कीर्ति गांधी की।
ऐसे उठी भावना उनकी, जैसे परछाई आंधी की ॥”

(वही, सग ७, पृ० १०६)

‘फ्रेञ्चाइज बिल’ विरोधी आन्दोलन तीव्रतर होता गया, इसी के साथ-साथ गांधी जी का यश भी अफ्रीका भर में फलने लगा। गौरी सरकार की भेदभावपूर्ण नीतियों का विरोध नरेश शासन का विरोध था। इसे पददलित, पीडित और शोषित जनता का अपूर्व समयत प्राप्त था। इसीलिए सम्पूर्ण अफ्रीकी जनमानस में वर्णभेद का प्रबल प्रतिरोध करने वाली नई चेतना आविर्भूत हुई, ऐसी चेतना जो अहिंसा और आत्मशक्ति पर आधारित थी—

‘जन जन में चेतना जगाई जीवन में ज्वाला दहका दी।
बिजली सी दौड़ी रग रग में, गांधी जो ने क्रांति मचा दी ॥
बाह्य जगत के साथ हृदय में, महाशक्ति ने शक्ति जगा दी।
जिस जीवन में जान नहीं थी, उस जीवन में शक्ति जगा नी ॥
मानव की मानसिक गुलामी गांधी के मानस ने धोई।
दुनिया की पीडा आ आकर, गांधी की आंखों में राई ॥

×

×

×

अफ्रीका में छिड़ी लड़ाई गांधी जी ने शक्त बनाया।
सत्य, अहिंसा, आत्मशक्ति से, शांति पूण सशाम रचाया ॥’

(वही, सग ७, पृ० १०६)

अफ्रीका से लौटकर भारत में गांधी जी ने 'हरी पुस्तिका' का प्रकाशन किया जिसमें अफ्रीकी शासकों की नृशंसनाश्रितता अफ्रीकी जन जीवन में व्याप्त असन्तोष का वर्णन था। इस पुस्तिका के वातायन से विश्व को, विशेष रूप से भारतवासियों को, अफ्रीका के काने कारनामों की झलक दिखाई दी। बवि के अनुसार—

“अफ्रीका का दद पिघलकर आँखों में बादल बन छाया।
नगर-नगर में धूम धूम कर गांधी ने यह दद दिखाया ॥”

(नीपाजति, सग ८ पृ० ११७)

गांधी जी को पुनः डरबन से तार मिला कि पार्लियामेंट की बैठक होने वाली है, तुरन्त आओ। गांधी जी, कस्तूरबा और दोनों बच्चों सहित 'कुरल्लंड यान' से डरबन रवाना हो गए। डरबन पहुँचने पर गोरो ने गांधी जी को घेर कर पत्थर बरसाये और अपमानित किया—

“पगडी फेंकी, कपड़े पाड़े गले सड़े बड़ों से मारा।
कक्कड़ मार, पत्थर मारे गला भर नाली का मारा ॥
घप्पड़, सात और घुँसा से, गांधी जी की कमर तोड़ दी।
गोरो ने अपने घुँसों से, अपनी ही तबदीर फोड़ ती ॥
हडडी चर्बी मसि फेंक कर गांधी का बेहूश कर दिया।
इतने ही में और किसी ने, उनके सिर पर वट्ट धर दिया ॥”

(अगारो की राह सग ६, पृ० १२५)

इतनी दुदशा के पश्चात् भी गांधी जी अपन उद्देश्य की सिद्धि के पथ पर अग्रसर होने रहे। उन्होंने हिंसा का प्रतिकार अहिंसारमक मदाचरण एवं सेवा भाव से किया। वे वहाँ कोठियों की सेवा सूधुवा में लग गये। जन में जनादन के द्रष्टा बापू ने त्रिपन्नना से अपना पारिवारिक जीवन-यापन करते हुए जन सेवा का यापक अभियान चलाया। उनके सेवाभाव पर मुग्ध होकर 'जननायक' के प्रणता ने लिखा है कि—

“महापुरुष गांधी की जय है जिसने मन में मय ब्रह्म निकाला।
उस मानव के ब्रह्म तेज ने, सारे जग में किया उजाला ॥”

(वही, सग ६, पृ० १३१)

मातृ भूमि की आह्वान पर गांधी जी अफ्रीका से भारत लौट आये और मोक्षम जी के नेतृत्व में उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन और जन-सेवा के अभियान

को साथ साथ चलाया । वे देश प्राप्ति दौरा करते हुए कनकती के काली मन्दिर में पहुँचे और वहाँ उहोने पशु शक्ति का मयकर विरोध यह कह कर किया—

“बकरे के प्राणों की कीमत नरप्राणों से घून नहीं है ।
जड़ वनन में व्यापक ईश्वर, देता किस को घून नहीं है ॥
फिर बकरो की हत्या करके पापी पेट पालना कसा ?
अगर कसाई ही बनना है, तो बन ‘सदन कसाई जैसा ॥’

(स्वदेश यात्रा, सग १०, पृ० १४२)

अफ्रीका से पुनः तार मिला और गांधी जी स्वदेश के स्वाधीनता कार्यक्रमों को बीच में ही छोड़कर वहाँ पहुँच गये । अफ्रीका जाकर उहोने ‘तीन पाँड’ कर का विरोध प्रारम्भ कर दिया । भारत में उनके हंग अनुज का निधन हो गया किन्तु वे विचलित हुए बिना चल-याद रह गये । धातू का सेवाभाव अभूत पूर्व था । पनग और कोढ़ से पीड़िता के मलमूत्र तक को भी वे सह्य उठाते थे । उनके कार्यों में वस्तुतः का योगदान भी अविस्मरणीय है क्योंकि—

“‘वा वायु की हर पग ध्वनि पर विजय ज्योति बनकर चलती थी ।
पथ में सूरज सी खिलती थी, घर में दीपक सी जलती थी ॥”

(लपटें और लहरें, सग ११, पृ० १६२)

अन्ततः अफ्रीका में गांधी जी ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया । इस आंदोलन का प्रभाव सम्पूर्ण अमिरीक वग पर हुआ । ट्रामवाल और यूकेमल में महिलाएँ भी आन्दोलन में सम्मिलित हो गई । स्वाधीनता की इन देवियों के सम्बन्ध में कवि का कथन उद्धरणीय है—

‘घूँघट पलट दिये बहनों ने, पहन लिया केसरिया बाना ।
रुन भुन की मनहर लहरो पर, गुंज उठा वीरो का बाना ॥
आक्षेपण था, लेकिन उसमें आवाहन था अमरलोक का ।
रूप ज्योति थी, लेकिन उसमें जलता था दीपक अशोक का ॥

× × ×

लाली थी अघरो पर लेकिन देशप्रेम के अभिमानों की ।
रोली थी माथा पर लेकिन स्वतंत्रता के बलिदानों की ॥”

(लपटें और लहरें, सग ११ पृ० १६५)

सत्याग्रह ने कतना उग्र रूप ग्रहण किया कि मजदूरों में अफ्रीका की जेलें भर गयीं । इसी आन्दोलन में जोहंस वग में जमी कुमारी बलिभम्मा का भी प्राणोत्सव हुआ । बलिभम्मा का बलिदान असाधारण था । उससे बलिदान

का प्रयास यह हुआ कि मजदूरों के 'द्रोहप्रसक्त' का काम करता छोड़ दिया, माँ-बहिनों का सम्पर्क करने के लिए घरों से निजम पड़ी—

'मैं 'वागियामा' हुआ तो, छोड़ गयी यह अमर कहानी ।
रथग अमारों में अक्षिण है, देना प्रेम पर मिठी जवानी ॥

× × ×

महो विग कर रंग दे गयी, काम छोड़कर मजदूर घर लिये ।
गांधी जी की सेवा थाकर, डोर छोड़ मजदूर पत्त लिये ॥
घरना को गाँव में से से-सायाप्रह के लिए चली गई ।
पानी पागिया पानी बेगम चली रविमनी चली गलीमाँ ॥
अपना धारानी ता वा-गुरुर देविषा का दल निवसा ।
सायाप्रह का अमर अक्षय ल, देना सविषा का बन रिजसा ॥

(बही साग ११ पृ० १६७)

गारी सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया । गांधी जी की गिरफ्तारी से सत्याग्रहियों में जय-जय का संचार हुआ । ये सिंगुलिन उल्लाह से आदेशों के तहत गये । उधर जारम स्त्रुकिन और पोचर ने सत्याग्रहियों पर अत्याचारों का दमा चला पना दिया—

"नमक उठी सरकार यहाँ की योता में दूधों पर पानी ।
ब-दूधो या सतवारों से चोरी न उठनी हुई जवानी ॥
घोरे छोटे, पत्नी मोलियाँ किन्तु न कहीं अहिंसा हारी ।
पायस हूण, मरे भी सैनिक विधवाए हो गयीं विचारों ॥

(बही, साग ११, प० १६८)

किन्तु सरकारी दमन चक्र की गति के अनुरूप ही सत्याग्रह भी तीव्रतर होता गया । कवि के अनुसार—

वाङ्ग वीन बब रोक सचा है ! सत्याग्रहियों के दल आये ।
दूढ़े बालक, माँ-बहने सब गांधी की जय-जय चिल्लाये ॥"

अन्तत जनरल रमटस सत्याग्रहियों को घातित के आगे झुक गये । कर-गीति पर विचार के लिए कमिशन की नियुक्ति हुई और गांधी जी की न्याय सगत भाँगा को मान लिया गया । यह गांधी जी के राजनीतिक जीवन की अपूर्व सफलता थी । वास्तव में यह हिंसा पर अहिंसा की विजय थी—

सत्य अहिंसा का चरणा में हिंसा की तनवार झुक गयी ।
गांधी जी की गति के आगे, चलती हुई कृपाण रुक गयी ॥

स्वतंत्रता की अमरजीत में, प्रसन्नता से मनी दिवाली ।
जहां घरण पहुँचे गांधी के, वहां तभी खिल गयी उजाली ॥

(वही, सग ११, पृ० १७०)

द्वादश सग में गांधी जी के अछूतोद्धार के लिए किये गये प्रयत्नों तथा चम्पारन के सत्याग्रह का वणन है । अफ्रीका से लौटकर भारत आगमन पर चम्बई में गोखले जी ने बापू का हार्मोन्लास से स्वागत किया । उनके अभिनंदन हेतु जनसभा समायोजित हुई जिसमें स्वागत-गीत और जिना साहब का स्वागत भाषण अंग्रेजी भाषा में हुए । स्वदेशी प्रिय गायी का मन रो पड़ा । उन्होंने निर्भीकतापूर्वक उस सभा में स्वदेशी भाषा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा—

‘बोले भारतीय भाषा में, मातृभूमि के गुण-गण गायें ।
अपनी भाषा, अपना भारत, मंगलमय आचरण दिखायें ॥
वह क्या राष्ट्र जहाँ क चासी, अपनी भाषा बोल न पायें ।
भाषा की शमना पाप है अपनी ही भाषा में गायें ॥
वह स्वतंत्र भी पराधीन है जिसके पास न अपनी भाषा ।
भाषा में ही बसी हुई है मातृमाता की अभिभाषा ॥”

(निम्नोद्धार सग १२ पृ० १७३)

भारत आकर गांधी जी ने वकालत प्रारम्भ कर दी । किंतु उन्होंने सदैव सत्य का ही पक्ष लिया । इसी बीच बापू ने शांति निकेतन, राजकोट, पूना, रगून, हरिद्वार, आदि का भ्रमण कर सामाजिक समानता का प्रचार किया । चम्पारन पहुँचकर उन्होंने जमींदारों के कृचक्र में फसे कृषकों के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया और लम्बे सधप के पश्चात् उन्हें सफलता मिली—

सुनह हुई छूटा लगान वह गांधी जी ने मुक्ति दिलाई ।
कृषकों की दुःख मजिल पर गांधी न पग झूलि विछाई ॥

(मृदुन विरोध-सग १३, पृ० १८७)

चतुदश सग का शीर्षक है—‘असहयोग’ । इस सग में असहयोग आन्दोलन में राष्ट्रपिता की भूमिका का समोल्नेष है । जन जीवन में जागृति लाने के लिए बापू ने ‘नवजीवन’, ‘यग इण्डिया’, ‘आनिरल’ और ‘हरिजन’ नामक समाचार पत्रों का सम्पादन-संचालन किया । किशोरों के दहिष्कार की याजना के अंतर्गत खादी अपनाने और चरखा बानन का दशव्यापी अभियान प्रारम्भ हुआ । नागपुर व काप्रेय अधिवेशन में उन्होंने स्पष्ट शक्तियों में अछूतोद्धार, खादी एवं हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल दिया—

“करो अछूतोद्धार माइयो । कहा नागपुर काप्रेस में ।
एक रहो सब, एक रहो सब, बनी रहे एवता देश म ॥
सादी फ तारो को जोडो, धो लो चुआछून की स्याही ।
बगा हिंद मुसनमान क्या, हिंदू मुस्लिम हैं हमराही ॥”

(असहयोग, सग १४ पृ० २१३)

पचदश सग मे बापू द्वारा “बहिष्कार” आन्दोलन के संचालन तथा उसके
नेतृत्वपूर्ण प्रभाव प्रसार का निरूपण है । ‘बहिष्कार’ आन्दोलन उत्तरोत्तर
शक्तिशाली होता गया । बापू को जवाहर पटेल, सुभाष मीताना आजाद,
जयप्रकाश नारायण, राजेन्द्र प्रसाद प्रमति देश सेविधो का पूण समयत प्राप्त
हुआ । काप्रेस सस्या स्वाधानता रपी महायन की वदिका बन गई । स्व
त प्रता-देवी के स्तवन हेतु सभी ने गांधी जी के चरण चिन्हों पर चलते हुए
सवस्व समर्पण करने का सक्न्प किया । गांधीजी ने असह्य श्रमिका और
श्रमिकों को अद्वनग्न देखकर स्वकीय वस्त्र त्याग दिया और लगीटी बांध ली ।
उहोने स्थान स्थान पर ‘गांधी आश्रमो’ की स्थापना की जिनम सादी बिकने
लगी । घर घर मे विदेशी रेशमी वस्त्रो की होली जलने लगी—

गांधी आश्रम खुले खिला श्रम बिकने लगा देश में खदर ।
फुक्ने लग विदेशी कपडे जनी देश में होली घर घर ॥
भारत के कोने कोने म जली विनायत की रगानी ।
हसो सं सपेत् खदर से, उडी मुगधें भीनी भीनी ॥

× × ×

गली मुहल्ला बाजारा म निकली गांधी जी की टोली ।
शहर शहर मे, गाँव गाँव मे जली विदेशी बिप की होली ॥

(बहिष्कार सग १५, पृ० २१७-२१८)

बहिष्कार आन्दोलन स चिढकर अंग्रेजी प्रशासका ने दमन चक्र और तेज
कर दिया । इसी अवसर पर गांधी जी ने ‘यंग इण्डिया’ में जन जाति का
उग्र रूप देा जाने उत्तेजक लेख लिखे जिह अंग्रेजी प्रशासन ने राजद्रोह के
अप्रतिपत् की सजा देकर अनियोग लगाया और मुक्त्मा चलाकर छुड़ वप का
कारावाग दिया । कारागृह म बापू ने ‘आत्मकथा’ लेखन का काय किया ।
षोडश सग मे साम्प्रदायिकता निवारण हेतु गांधी जी के टक्कीस दिवस के
उपवास तथा साम्प्रदायिकता निवारण क विरोध का कवि ने वणन किया है । रण
भेरी’ शीघ्र सप्तम सग म लाला लाजपत राय, सरदार भगतसिंह सुब्बदेव,

राजगुरु, चन्द्रगोखर, यतीन्द्रनाथ प्रभृति द्रान्तिकारियों के आत्मदान का वाव्योलनेस है। इन वीरा के अद्भुत बलिदान ने देश भर में स्वाधीनता आन्दोलन की दशा दिशा को ही बदल दिया। लाहौर अधिवेशन में १० जवाहरलाल नेहरू ने ‘पूण स्वतंत्रता’ प्राप्ति के लिए तारा लगाया। स्वतंत्रता की व्याख्या करते हुए कहा गया—

“स्वतंत्रता का अर्थ यही है—ब्रिटिश राज्य से देश मुक्त हो।

बन्धन तोड़े, पूण मुक्त हो, मुक्त देश मित्रता मुक्त हो ॥

×

×

×

हर सम्भव उपाय से तय है, सत्ता हाथ हमारे आए।

ब्रिटिश राज्य अपने झण्डे को अब इङ्ग्लैंड साथ ले जाए ॥

×

×

×

जन जन ने यह करी प्रतिज्ञा, स्वतंत्रता-अधिकार हमारा।

हम स्वतंत्र हो जियें, अथवा जीना ही अधिकार हमारा ॥”

(रणभेरी, सग १७, पृ० २४६)

इसके पश्चात् ‘नमक कानून’ तोड़ने का आन्दोलन गांधी जी द्वारा संचालित किया गया। सत्याग्रह से पूर्व बापू ने इरविन का चेतावनी के रूप में पत्र भी लिखा कि मैं सत्य और अहिंसा का समर्थक हूँ। अंग्रेजों से भी मुझे प्रेम है किन्तु उनके अत्याचारों से घृणा है। ब्रिटिश राज्य ने भारत माता का बहुत शोषण किया है, हमारी संस्कृति की जड़ें खोखली कर दी हैं और पीछे का अपहरण कर लिया है। भारत में सत्ता स्थापित रखने के लिए अब और कुछ नहीं चल पायेंगे क्योंकि—

सत्य अहिंसा का बल लेकर सोया भारत जाग उठा है।

यही अहिंसा विनय अथवा, सत्याग्रह का पाग उठा है ॥

सत्य अहिंसा के द्वारा मैं ब्रिटिश राज्य का मन बलूंगा।

पहले देश स्वतंत्र कहूंगा, पाछे अपना तन बदलूंगा ॥

इमोलिण यह सत्याग्रह है सावधान कर रहा आपकी।

भारत सहन नहीं कर सकता पारतन्त्र्य के महापाप को ॥

(रणभेरी, सग १७ पृ० २५०)

आन्दोलन को उग्र रूप ग्रहण करते देखकर अंग्रेजी शासकानें काँग्रेस को गिरवाने की धमकियाँ देना शुरू कीं। मोतीलाल नेहरू सहित अन्य कांग्रेसी नेताओं

को बंदी बना लिया। उससे जनता भडक उठी तथा आन्दोलन और तीव्र हो गया। अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा। 'गोलमेज कांफ्रेंस' बुलाई गई। समझौते का माग अपनाना पड़ा। इसी बीच रणनावस्था में मोतीलाल नेहरू का नियुक्त हो गया। उनके निष्ठा पर कवि की भावमौनी थढ़ाजति कितनी मार्मिक बन पड़ी है—

“भारत माता की मुटठी से मोती काल कराल ले गया।
मोती गया, किन्तु जननी को ज्योति जवाहरलाल दे गया ॥
सागर में हीर मोती हैं, लेकिन एसा एक न मोती।
दूट गया माला का मोती, पगली सी भारत माँ रोती ॥
मोती अब न रहे सागर में, सागरिका सी जनता रोती।
मोती के बलिदान दीप पर, बरस पड़े आला से मोती ॥’

(शक्ति की किरण, सग १८, प० २६६)

गांधी इरविन समझौते से देश के जनमन में आशा की किरण दिखाई दी थी किन्तु लाड विनिगडन के आते ही पुनः निरकुश शासन का दमन चक्र चल पड़ा। उधर काँग्रेस के नेतृत्व में स्वाधीनता सगर में द्रुत गति से चला। इसी मध्य गांधी जी गोलमेज कांफ्रेंस के लिए इत्तराड गये और वही जाज पचम से मिले। जाज पचम और जननायक का मिलन अभूतपूर्व था। भारत की जनजीवन की वास्तविकताओं से जाज को अवगत कराने के लिए बापू खहर की लंगोटी धारण किए हुए ही मिले—

“मिले ‘जाज पचम’ से गांधी बाधे खहर की लंगोटी।
वह उस भारत का प्रतिनिधित्व था जिनकी छिनी हुई थी रोटी ॥
मानो नगा भूखा भारत, ब्रिटिश राज्य से मिलने आया।
खड़ा ब्रिटिश सम्राट हो गया, उन चरणों में हृदय भुकाया ॥’

(रित क अक्षर, सग १६, प० २८२)

गोलमेज कांफ्रेंस में जिस निर्भीकता और सन्चाई से गांधी जी ने भारतीय-मस का प्रस्तुत किया वह उनके चरित्र की दृढता का परिचायक है। उन्होंने कहा अस्पृश्यता निवारण मरा जावन-अन है। काँग्रेस भारत का शासन चलाने के मवधा योग्य है। वह विदश और रक्षा विमाणा का गुरुतर दायित्व भी सगमतापूर्वक सवहन कर सकती है। हम अग्रजों से मित्रता चाहते हैं किन्तु स्वशासन का अधिकार चाकर नहीं। हम पर गालियाँ बरसें या दम पियें, किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के लिए बड़े कदम नच नहीं खेंग—

"कहा जोर से गाधी जी ने-वसुधरा यह वीर भोग्य है ।
उत्तरदायी शासन के हित-काप्रेस सब तरह योग्य है ॥
वैदेशिक विभाग, रक्षा तक, हम ले सकते हैं व घों पर ।
भारत में अश्रेजी सत्ता भारत को दिखलाती है डर ॥
हम हैं योग्य समाल सर्वे, सब उत्तरदायित्व देश का ।
हर विभाग पर सहारायगा, ऊँचा झंडा काप्रेस का ॥

×

×

×

जब तक हम यह कर न सकेंगे वियावान में ही मटकेंगे ।
उठें बवण्डर, गिरें त्रिजलिया, जगि परोक्षा भी देंगे ॥
चलें गोलियाँ या वम वरसेँ कदम हमारे नहीं रुकेंगे ।
स्वतन्त्रता का मोर न जब तक, तब तक तारे नहीं लुकेंगे ॥'

(वही, सग १६, पृ० २८३ २८४)

स्वाधीनता सगर में जूझत हुए बापू यह समझ गये थे कि इसकी सफलता के लिए राष्ट्रीय-जीवन में अस्पृश्यता निवारण और दृढ एकता परमावश्यक है । अस्तु, व इसके लिए प्राणपन से प्रयत्नशील हो गए । उन्होंने अस्पृश्यता को गरल बतते हुए अपने प्राणों को आहुत करके भी इससे देश को बचाने का सकल्प किया—

"जननायक ने बाणी खोली, अस्पृश्यता गरल बतलाया ।
अलग अछूत नहीं हिंदू से, हिंदू को दीपक दिवलाया ॥
छुआछूत का भेद मिटेगा, वर्ना मेरी लाश चलेगी ।
या तो यहाँ एकता होगी, वर्ना मेरी चिता जलेगी ॥"

(बहती घारा सग २०, पृ० २८६)

हरिजन-आंदोलन के लिए बापू गाँव-गाँव गए । उन पर वम भी फेंका गया किन्तु प्रयास असफल रहा । बार-बार अनशन और उपवास करके उन्होंने राष्ट्रीय जीवन में जागृति का शखनाद किया । अंततः बापू की विचारधारा कांग्रेस का नारा बन गयी । कवि के शब्दों में—

"जागृति की वीणा बजत ही, अद्भुत हलचल हुई देश में ।
पाचजय सुन जननायक का, आधी आँई काप्रेस में ॥
जीवन जागा, लहरें उमड़ी, एक नया परिवर्तन आया ।
पुन सगठन हुआ दश में, वीणा छोड़ी शख उठाया ॥'

(वही, सग २० पृ० २६५)

ऐसे भी अवसर आए जब बापू की सत्य जीर अहिंसा की नीतियों के प्रति कांग्रेस के क्रांतिप्रिय और उग्रवादी सदस्यों द्वारा असहमति प्रगट की गई। यहाँ तक कि श्री सुभाषचंद्र बोस ने कांग्रेस छोड़कर पथक रूप से अग्रगामी दल' की स्थापना कर ली। रामगढ़ में सम्पन्न हुए कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन में गांधी जी ने विशाल जनसमूह को सम्बोधित करते हुए पुनः एकता के लिए आह्वान किया। उन्होंने कहा कि सत्याग्रह की हार कभी नहीं होती। 'यरवदा' चरों से जीवन के धाग कात रहा हूँ इ ही धागों से पराधीनता की जूतीरें कटेंगी। सत्याग्रह की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने कहा—

'सत्याग्रह की परिभाषा यह—सच्चे पथ पर खड़े रहो तुम।
माला की नाको के आगे, महावज्र से अड़े रहा तुम ॥
माल टूटेंगे ढाला से, सत्याग्रह पूजा जायगा।
विश्व शांति की ज्याति यही है, सूरज कभी न बुझ पायेगा ॥

(जाजादी की आवाज सग २३, पृ० ३३०)

बापू ने देश के जन जन को मातृभूमि पर उत्सव हाने के लिए आह्वान करते हुए ओजस्वी वाणी में कहा—

बार बार ये यज्ञ न होते कब कब जात हैं ये अवसर।
अपने दोना लाक बना लो, भारतमाता की पूजा कर ॥

× × ×

भूक भूम गा रहा तिरगा आओ जाजा बीरा आओ।
घूम घूम गा रहा तिरगा, मातृभूमि पर शीश चढाओ ॥
दोनों हाथों में लड्डू है, यहाँ मुकुट है वहाँ मुक्ति है।
स्वतन्त्रता के लिए होड़ है दीडा, दोनो 'अमर उक्ति है ॥'

(वही सग २३, पृ० ३३०)

बापू की वाणी का जादू जसा प्रभाव हुआ। काटि कोटि कण्ठों ने जम भूमि का जय जयकार करते हुए वलिदान का संकल्प किया। स्वाधीनता संग्राम की इस बेला में अपार श्रद्धा और अनन्य निष्ठा भाव से भारतीय जन मानस बापू का अनुसरण कर रहा था। कवि के अनुसार—

जाते जहाँ चरण बापू के—जनता उमड़ उमड़ कर आती।
जहाँ कहीं भी पलभर को बठ—बदली घुमड़ घुमड़ कर गाती ॥

× × ×

मेरे विश्ववन्द्य बापू की—गाँव गाँव में लहरें लहरें।
राष्ट्रपिता के पदचिह्नो से, चारों ओर ध्वजायें फहरें ॥”

(आन्दोलन, सग २४, पृ० ३४३)

अतत भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का वह एतिहासिक अभियान प्रारम्भ हुआ जिसे ‘भारत छोड़ो’ आन्दोलन की संज्ञा दी गयी थी। अंग्रेजी प्रशासन की अवसरवादी, आतङ्कवादी और शोषण पर आधारित नीतियों से विन्मुक्त होकर कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों का भारत छोड़ने के लिए विवश करने वाला साहसिक आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन को सभी वर्गों एवं दल का समर्थन प्राप्त हुआ। ‘भारत छोड़ो’ जादातन भारतीय जनमानस के श्रेष्ठ की आग्नेय द्वैतता के रूप में उद्भूत हुआ—

दिल में जलती होली वाली—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ।
छाती में घुस गोजी बोली—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ॥
बोली मा बहना की रोली—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ।
कह उठी शहीदा की टोला—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ॥
फासी के तख्ते बोल उठे—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ।
भूकम्प भयानक डोल उठे—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ॥
कवियों के शखनाद वाले—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ।
नवयुवकों के तवर बोले—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ॥
यह धीर जवाहर का नारा—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ।
हुँकार रहा झण्डा प्यारा—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ॥
वीरा की आत्मा का नारा—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ।
सबने परमात्मा का नारा—भारत छोड़ो ! भारत छोड़ो ॥”

(आन्दोलन, सग २४ पृ० ३६१-३६३)

यह आन्दोलन सन् १७ की शक्ति से अधिक व्यापक और रोमाचक था। आन्दोलन की उग्रता और त्यागवृत्त का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि—

ग्राम ग्राम में शहर शहर में, गली गली में था आन्दोलन ।
लहरें लपकीं, ज्वाला बरती अड्ड अड्ड कर आया हल्लन ॥
काटे तार, पटरियाँ तोड़ी, कुट्ट धाना में आग लगाई ।
धधक उठा प्रतिशाप हृदय में, वीरो में तलवार उठाई ॥”

(वही, सग २४, पृ० ३६५)

उधर प्रशासन न योजनायुक्त ढंग से आन्दोलन को प्रशमित करने के लिए निममतापूर्वक दमन चक्र चलाया। अंग्रेजी प्रशासन की पंगुता और दबर्ता का मर्मांतक शब्द चित्र 'ननायक' के प्रणेता ने इस प्रकार अंकित किया है—

'धानेदार गवनर बनकर वह आन्दोलन लगे दवाने ।
 सत्पाप्रह पर, भोपडिया पर-बम दुनालियां लग चलाने ॥
 बच्चाको बूटा से रीटा, बूटो को कीलो स भेदा ।
 मां बहनों के अङ्ग अङ्ग को दुष्टा ने माला से छेदा ॥
 कितनी ही जवान बहिना पर नारा की पशुता गुराई ।
 याद हम के मां बहिनें हैं, जिनकी थोटी-थोटी साई ॥
 सन् सत्तावन की बरता, फिर से नाच रही थी ।
 शोणित का सागर उमडा था, जिसम इसानियत बही थी ॥

(वही, सग २४, प० ३६६)

पचविंश सग के प्रारम्भ में कवि ने बापू के जीवन में कस्तूरबा के योगदान का प्रशस्तिगान किया है। बापू जब आगाला महल में बंदी थे तब 'बा' भी वही उनकी सेवा में अहिंसा रत रहती थी। राष्ट्रपिता के जीवन की अर्द्धांगिनी 'बा' के सम्बन्ध में कवि का कथन है—

' बा थी काय भिया थे बापू के रुई वह भावुक तकली ।
 बापू सूत और बा लडडी बापू वपा बा थी बदली ॥
 बा चखा, व तार सूत के वह बासुरी और वे थे सुर ।
 त्याग तपस्या के गीतो स पीचित बंदीगृह था सुरपुर ॥
 वह रचना, वे रचनात्मक थे वह भावुकता वे थे कविता ।
 वह थी धार और वे लहरें वह थी रश्मि और वे सविता ।।

(आहुति, सग २५ प० ३६६)

हिंसक नीतिया के विरोध में बापू ने बंदीगृह में ही आभरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन से बापू का जजरित तन प्रतिपल गिरने लगा किंतु आत्मिक शक्ति के जलौकिक तज से उनका मन टूट सकत था। डाक्टर गिल्डर सुशीला नयर बी० सी० राय भण्डारी तथा माण्डलिक बापू की नाडी की परीक्षा कर रहे थे। बापू का वजन साढ़े चवन सर से घटकर चालीस सर रह गया। १२व दिन उनकी हातत अत्यंत चिंताजनक हो गयी। बापू के अनशन की विश्व यापी प्रतिक्रिया हुई—

“जगतपिता का व्रत करना था, देश विदेशो म हलचल थी ।

×

×

×

अनशन से ‘एशिया’ हिल गया, हिलता था ‘यूरोप’ पात सा ॥”

(वही, सग २५, प० ३७४)

ब्रिटिश सरकार को असह्य तार प्राप्त हो रहे थे कि गांधी को छोड़ो ।
जाल बर्नाड शॉ और विश्व कवि ने बिना शत बापू की रिहाई की मांग की ।
देश भर के नेताओं और जन जीवन ने बापू से उपवास तोड़ने की प्रार्थना की ।
अन्ततः बापू ने एक गिलास रस पीकर उपवास समाप्त किया । बापू के
तपश्चरण की ही विजय हुई—

‘उपवास समाप्त हुआ उनका,

तप म जननायक जीत गये ।

व्रत से सत से गति से यति से,

सब सकट के क्षण बीत गये ।

सब ने प्रभु स विनती करके,

जग की बहू ज्योति प्रभाकर ।

जय भारत की, जननायक की

जिसने तप स दुनिया बदली ॥”

(वही, सग २५, प० ३७६)

‘आगाखाँ महल के बंदीगृह म ही कस्तूरबा का लम्बी रग्णावस्था के
पश्चात् देहावसान हो गया । ‘बा का निधन प्रकारांतर से स्वाधीनता यन म
एक आहुति थी । जननायक’ के रचयिता ने भाव भीनी काव्याजलि समर्पित
की है—

‘सती साधना जननायक से पल भर म ही बिदा हो गयी ।

भरी हुई ऐसी लगती थी मानो पलकर अभी सो गयी ॥

देश भक्ति की दिव्य मूर्ति मा, मानो लैट बन गयी प्रतिमा ।

जगदम्बा बन गयी आत्मा बनी विश्व की गौरव गरिमा ॥

सध्या मे शिव रात्रि दिवस की ‘बा’ माता निर्वाण हो गयी ।

भारतमाता की पूजा कर, चिर निद्रा म शान्त सो गयी ॥

(वही, सग २५, प० ३८३)

बुभुते शोले शीपक पडविंश सग मे बगाल के उस भयाक दुर्मिष का
वणन है जिसम सडक और गलिया म पडे हुए लाग भूख से तडफ रह थे ।
भूखे ककालो को पागल कुत्ते नाच रह थे । मृत माँ के स्तन अनाथ शिशु काट

‘नोआखली’ के साम्प्रदायिक दगो से जननायक बहुत दुखी हुए । उन्होंने सूझम आहार लेना प्रारम्भ कर दिया और अपना निश्चय इन शब्दों में व्यक्त किया—

‘और अबेला मैं जन जन मे, जा जा कर सद्भाव भूँगा ।
या तो शांति यहाँ पर होगी वर्ना मैं बस यही मरुगा ॥
नोआखली के ग्रामो म, जब तक शांति नहीं पाऊँगा ।
तब तक सेवा यही कूँगा बापिस लोट नहीं जाऊँगा ॥”

(शांति के चरण, सग २८, पृ० ४२८)

इसी प्रकार के दगो बिहार म भडक उठे । उन्हें भी बापू ने शांति प्रयत्नों से रोका । बापू ने भारत के विभाजन का भी प्राणपन से विरोध किया किन्तु राष्ट्रहित में उन्हें यह गरलपान करना पडा । अन्ततः गांधी जी की अथक साधना और त्याग से देश स्वतंत्र हुआ । राष्ट्रध्वज का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए मेहरू जी ने बापू के योगदान का बखान करने हुए कहा—

‘हम जितने भी बड़ अगाडी वह सब बापू का प्रसाद है ।
इस झण्डे के तार तार मे, गांधी जी की अमर याद है ॥
पराधीनता में भी उसने भारत का सम्मान बडाया ।
उसी महामानव ने हमको अंतिम मजिल पर पहुँचाया ॥ ”

(अरुणोदय, सग २६, पृ० ४६२)

सविधान सभा मे डा० राजेन्द्रप्रसाद न जननायक का पुण्य स्मरण करते हुए कहा—

‘धयवाद बापू का जिसने, आज रात मे दिन दिखलाया ।
श्रद्धाजलि उस महापुरुष को, जिमने हमे स्वतंत्र कराया ॥

×

×

×

बापू अमर प्रकाश स्तम्भ हैं शास्वत माग प्रदशक हैं वे ।
वे जीवन हैं वे ससृति हैं दिग्गजक आकषक हैं वे ॥
वे आचार्य अहिंसा वे हैं जिससे हम आजाद आज हैं ।
जो जो हैं जो जो भी होंगे बापू वे सम्पूर्ण साज हैं ॥”

(वही, सग २६, पृ० ४६४)

देश स्वतंत्र हो गया । स्वतंत्रता की चहल पहल ने भारतीय जनमानस को अभिभूत कर लिया । कि तु जननायक का हृदय साम्प्रदायिक दगो के कारण खिन्न था । वे गाँव गाँव और नगर नगर म भ्रमण करते हुए साम्प्रदायिकता के बलुप का प्रशालित करने का अथक प्रयास कर रहे थे—

‘पूज्य महामानव पीडा के, पोछ रहा था आंसू सारे ।

खून धो रहा था धरती का, सत एक लगेटी धारे ॥’

(तपालोक सग ३०, पृ० ४७१)

बापू ने कलकत्ता के उपद्रवों को रोकने के लिए उपवास किया और उन्हें सफलता भी मिली। वस्तुतः बापू ने शिव की भाँति साम्प्रदायिक धमनस्य रूपी विष का पान किया—

जितना जहर फलता था सब युग के शिव पल में पी जाते ।

आ आ कर भूचाल ममनर गाधीजी को हिला न पाते ॥

बापू ने उपवास कर दिया कपि उठा कलकत्ता घर घर ।

मानवता की नींव रोक ली नर नारायण ने अनशन कर ॥”

(वही, सग ३०, पृ० ४७६)

दिल्ली में भी दगे मडक उठे। बापू को तार देकर दिल्ली बुलाया गया। बापू अपनी प्रायना-सभा में हिंदू मुस्लिम एकता पर बल देते थे। उनकी बाणी ईश्वर और जल्ला का एक साथ स्तवन करती थी। हिंदुस्तान हिंदुओं का है।—इस भाव में आस्था रखने वाले लोग बापू की प्रायना-सभा में हल्ला गुल्ला करते थे। प्रायना सभा में बम विस्फोट भी होने लगे। किंतु अहिंसा के पुजारी निश्चिन्त भाव से साम्प्रदायिक एकता के प्रयत्नों में निरत रहे। किंतु हिंदुत्व के उमादी जल्ला गोडस ने प्रायना सभा में ही पिस्तौल की गोलियों के आघात से मानवता के मातृण्ड को अस्त कर दिया। बापू के निधन पर शोक मत्पन्न स्वर में जननायक के रचयिता ने उचित ही लिखा है कि—

‘भाज डसा भगवान मक्त ने आज घरा डकराई ।

आज रिजिज क पार स्वग में पूजा की तिथि आई ॥

स्वग लोक को गया घरा में जग मन्दिर का ईश्वर ।

मानवता को दूँड रहा है घोर मन्न धरती पर ॥

पुछा स्वण सिद्धूर मष्टि का रगा रक्त से आचल ।

रोने रोने आज घरा के प्राण बन गए पावन ॥’

(प्राणदान सग २१ पृ० ५०३)

इसके पश्चात् कवि ने बापू के निधन पर भारतीय जनगण के करुण विनायक के उन्नेय करन का विधा है कि हम सूचना का क्रमने मुना वही भाव मिथु में दूव गया। अनु-यथा हम व्यथा में व्यथित प्रतीत हो रह थ। बासक बड युवा सभी रा रह थ। ऐसी प्रतीत हा रहा था कि मानों जनता

वाल विधवा हो गई है। सभी ढोड दौड़कर जननायक को श्रद्धाजलि समर्पित कर रहे थे—

‘जिसने खबर सुनी भरने की, वही सुन सा खड़ा रह गया।
जिसने मरण सुना बापू का, शोक सिन्धु में वही बह गया ॥

× × ×
बच्चे रोये बूढ़े रोये, दुनिया का हर प्राणी रोया।
ऐसा लगता था दुनियाँ में, हर मनुष्य मरघट में सोया ॥
जनता का विलाप मत पूछो, मानों हुई बाल विधवा बह।
मानो जल सूखा सरिता का, मड़ली तड़प रही थी रह रह ॥

× × ×
हाहाकार हुआ सारे में, शोक सिन्धु पर धन मँडराये।
जहाँ सो रहे थे जननायक जनजन वहाँ दौड़कर आये ॥’

(वही, सग ३१, पृ० ५०५-५०६)

राजकीय सम्मान के साथ बापू का सस्वार किया गया। ससार भर के महान कवियों बलाकारों नेताओं, राजनीतिज्ञ राज्याध्यक्षों और सम्राटों ने बापू के निधन पर भारतीय जनता एवं सरकार के नाम श्रद्धेयता-सन्देश प्रेषित किए। विशेष रेलगाड़ी द्वारा बापू के पार्थिव अवशेष प्रयाग में त्रिवेणी के संगम पर लाये गये और वहाँ स्वस्तित्वाचन के वेद मंत्रों की अनुगुंज में उन्हें प्रवाहित कर दिया गया। इस प्रकार उस महामानव का पार्थिव व्यक्तित्व सागर के महाप्रवाह में अंतभूत हो गया, किन्तु बापू की तप साधना भेष बन कर अनन्तकाल तक बसुंधरा को अमरत्व दान करती रहेगी, क्योंकि गांधीजी जनजीवन की असरय धाराओं को मिलाने वाले संगम स्थल थे। वे धरती के समान सहिष्णु सागर के समान गम्भीर और गंगा के समान पवित्र थे। कवि ने उचित ही कहा है कि—

‘गांधी वह संगम है जिसमें, आकर मिली करोड़ा धारा।
गांधी वह धरती जिस पर चलना यह पीडित जग सारा ॥
गांधी वह मागर है जिसमें रत्नों का भण्डार भरा है।
गांधी वह गंगा है जिसमें, हर आसू ने प्यार भरा है ॥’

(मृदुल विरोध सग १३, पृ० १८८)

इस प्रकार ‘जननायक’ महाकाव्य के माध्यम से मित्र जी ने स्वाधीनता सगर में राष्ट्रपिता के योगदान का वाच्यार्थक समाख्यान करत हुए उनकी चारित्रिक विशेषताओं को उदघाटित किया है। जहाँ तक जीवन दर्शन की व्यञ्जना

का प्रश्न है कवि ने वापू की चरित्र-योजना के अंतर्गत ही गांधीवाणी विचार-दर्शन की प्रमुख उपपत्तियों को ध्येय बना लिया है। राज्य अहिंसा, त्याग, करुणा प्रेम, सौहार्द सहिष्णुता सर्वोत्थ प्रभृति जीवन मूल्यों की प्रस्थापना के लिए कवि ने किसी विशिष्ट सद्धान्तिक आधार विधि को अधिग्रहीत नहीं किया है, अपितु गांधीजी की उत्कृष्ट चरित्र भूमिका पर उन्हें स्थापित किया है। इसीलिए जननायक में जीवन-दर्शन एक स्वतंत्र प्रत्यय के रूप में नहीं अपितु काव्य सरणियों में प्रवाहित होता हुआ व्यावहारिक रूप में चित्रित हुआ है। 'जननायक' के रचनापक्ष का यही ध्येय है कि इनमें आख्यान तत्त्व चरित्र तत्त्व और जीवन दर्शन का प्रत्यय की अद्भुत समाह्वति परिलक्षित होती है, जो महाकाव्य सृष्टि के लिए वापू का यही सामान्यतः दुर्लभ होता है। वस्तुतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चरित्र में राम, कृष्ण, बुद्ध प्रभृति युग पुरुषों की भाँति इतना आयाम विस्तार है कि अनेक काव्यों का प्रणयन करने में उसे पूणतः निबद्ध नहीं किया जा सकता। वापू के चरित्र पर लगभग एक दर्जन प्रबंध काव्यों का प्रणयन हिन्दी में हो चुका है किन्तु उनके चरित्र में अभी भी असंख्य अनुद्घाटित सम्भावनाएँ हैं जो महत्-संजन की अपेक्षा करती हैं। जननायक के प्रणयता ने उचित ही लिखा है—

वापू के जीवन का हर डग हम दे गया नया कथानक ।
महाकाव्य कितने ही लिख लो इतने विस्तृत हैं जननायक ॥”

(जननायक, अरणोत्थ संग २६ पृ० ४४३)

‘मानवेन्द्र’ महाकाव्य
लोकनायक नेहरू की भाव-सदीप्त कीर्तिकथा

१६

‘मानवेन्द्र’ महाकाव्य

लोकनायक नेहरू की माव-सदीप्त कीतिकथा

आधुनिक भारत के निमाताओं में नेहरू जी की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने पराधीन भारत के मुक्ति आंदोलन और स्वाधीन भारत के पुनर्निर्माण दोनों में अद्वितीय योगदान किया है। स्वाधीनता संग्राम के सेना नियंत्रण में उत्तम के कीर्तिमान स्थापित करने वाला म नेहरू जी का स्थान महात्मा गांधी के तुरंत पश्चात् और स्वतंत्र भारत के जननेताओं में सर्वोपरि है। नेहरू जी स्वदेशी जीवन और अंतर्राष्ट्रीय जगत में समान रूप से सुविख्यात हुए। नेहरू जी की प्रतिष्ठा का मूल कारण उनका बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय जीवन में असाधारण कृतित्व है। कमठ कायकर्ता, आतिथ्यकारी, राजनीति समाज सुधारक, प्रशासक विचारक लेखक इतिहासकार आदि के रूप में उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हमारे सम्मुख हैं। नेहरू जी के व्यक्तित्व का विशेषण विदु बौद्धिकता और भावुकता वनानिकता और सस्कारशीलता, शांतिप्रियता और भ्रान्तिमन्तता तथा परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत सामंजस्य है। श्री मोरार जी देसाई के शब्दों में— अपने दृष्टिकोण में एकदम आधुनिक और धर्म की परम्परागत रूढ़िवादिता से सर्वथा पराङ्मुख यह व्यक्ति देश की पुरातनवादा और रूढ़िवादी जनता में उतना ही लोकप्रिय रहा जितना कि विदेशों के बुद्धिजीवियों में। उनके देश प्रेम में अत्यंत बौद्धिकता तो थी ही लेकिन इससे अधिक भावुकता थी। यही कारण है कि उन्होंने बलीयत में अपनी भस्मी को भी देश की मिट्टी में बिखेरने और प्रयाग के संगम में प्रवाहित करने को

लिखा।^१ इसी वैलक्षण्य के कारण वे लोकनायक के दुर्लभ अभिधान से अलकृत हुए। हमारी इतिहास परम्परा में गौतम बुद्ध और गोस्वामी तुलसीदास को लोकनायत्व प्रदान किया गया है, किंतु काय-भेद की व्यापकता, लोकधर्मों आस्थाओं के संरक्षण, साव्य-व्यवहार पद्धतियों के संस्कार, लोक विश्वासों के परिशोधन, लोक चिंतन के अनुदार आदर्शों के परिष्कार तथा लोक जीवन के बहुमुखी विकास की दृष्टि से नेहरू जी का अनुदान कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। स्वाधीन भारत के विकासवादी जनजीवन को रूढ़िवादिता, अध विश्वास, सम्प्रदायिक-सकीणता, अजरित-परम्परानुमोदित सामाजिक विषमता और प्रतिगामी प्रतित्रियावादिता के दुर्निवार अंतर्वाह्य सघन से निवारण कर सर्वोन्मुखी प्रगतिशीलता का पाथेय प्रदान करने में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अविस्मरणीय भूमिका है।

विश्व के पराधीन राष्ट्रों के मुक्ति आंदोलनों में भी नेहरू जी का उल्लेखनीय अंशदान रहा है। श्री आरिंगपूडि के शब्दों में—सबह घण्टों के स्वतंत्र अस्तित्व में यदि भारत कितने ही और देशों की स्वतंत्रता प्राप्ति का साधन बना तो सबमुच इसका श्रेय श्री नेहरू को है—उनके देशभक्तिपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण को है।^२ इसी प्रकार के विचार प्रगट करते हुए डा० जाकिर हुसैन ने लिखा है कि—भारत के प्रधानमंत्रियों के रूप में उन्होंने भारत को जिस तरह संभारा, उसका नव निर्माण करके उसे जो उज्ज्वल रूप दिया उससे सम्पूर्ण विश्व के अध विकसित और अविकसित देशों को एक नई चेतना मिली। वास्तव में विश्व नागरिकता की भावना तथा सह अस्तित्व के जन्मदाता होने के नाते वे केवल भारत के ही नहीं बल्कि समस्त विश्व की विभूति थे।^३ पञ्चशतक के सिद्धांतों पर आधुनिक दृष्टिकोणों के सम्बन्धों तटस्थ वैदेशिक नीतियों के समर्थन, रणभेद, राजनीतिक गुटवाद (Power Block Politics) शक्ति सन्तुलन, सैनिक तानाशाही तथा विध्वंसक परमाणु शक्ति प्रसार के विरोध द्वारा नेहरू जी ने अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में एक दूरदर्शी नेता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की। निष्कपट व्यक्तित्व और दृष्टित्व के इस गुणात्मक उत्कृष्ट के कारण ही वे मानवों में मानवेंद्र कहलाये। मानवेंद्र महाकाव्य का प्रणयन निश्चयतः एतादृशी रचनाधर्मों प्रयास है क्योंकि इस काव्य

^१ मानवेंद्र—साधुवाद पृ० ६ (प्रथम संस्करण १९६५)

^२ साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नेहरू स्मृति अंक, ३० मई १९६५ पृ० ७

^३ मानवेंद्र—भूमिका, प० १ व २ से उद्धृत

के माध्यम से एक महामानव के महान व्यक्तित्व और गरिमापुण कृतित्व को कालजयी चिरतनत्व प्राप्त हुआ है।

श्री रघुवीरशरणमित्र एक समथ रचनाकार हैं। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में विपुल परिमाण में सृजन करके अपनी मृत्युजयी रचनापरिमिता की आयाम विस्तृति का प्रभूत परिचय दिया है।

प्रबन्धवाक्यकार के रूप में जननायक और ‘मानवेन्द्र’ श्री मित्र की कृति के अक्षय स्रोत हैं। इन दोनों प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन भारत की दा महान विभूतियों की चरित्र गरिमा को साकार करने के लिए हुआ है। ‘जननायक’ के समान ‘मानवेन्द्र’ भी महती सृजन प्रेरणा का परिणाम है। कवि ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को स्थितप्रज्ञ प्रबुद्ध मानव मानते हुए कहा है कि—“कभी-कभी ही धरती पर कोई ऐसा आलोक पुरुष आता है जिससे दुनियाँ बदल जाती है। जन मानस श्री जवाहरलाल नेहरू इस युग के अग्निज प्राति कारी, कुशल राजनीतिज्ञ, विचित्र दार्शनिक और अदम्य शांतिदूत हुए हैं। वे न जाने कितने युगों के सत्यो के तत्त्वों को मथ मथ कर हमें दे गये। वे एक महामानव ही नहीं मानवेन्द्र थे। वे तप से परे थे, सिद्धियों से आगे थे और

* श्री रघुवीरशरणमित्र प्रणीत साहित्य—

- (क) काव्य—जननायक, भूमिज्ञा, ज्योतिपुरुष, जलते तारे प्रतिध्वनि, गीलेगीत भूमि के भगवान, बंदी, प्रेरणा, फासी, परतंत्र।
- (ख) उपन्यास—आग और पानी, ढाल तलवार, उजला कफन, राख की दुल्हन अंग के आँसू, दिन रोया रात हँसी, प्यास और शोले, तप का तेज रूप के जाले, रगीन शीशे धुंधले चित्र, पहली हार सोने की राख काँपती आवाज़, बलिदान।
- (ग) नाटक—राष्ट्रध्वज, भारतमाता, धरती माता।
- (घ) बाल किशोर साहित्य—अमर रहे यह देश मुनो वचचो, कदम मिलाते बड़े चलो, कहानियाँ अमर हैं भारत गौरव आओ खेलें आओ गायें, प्यारा देश हमारा देश भारत के लाल, महापुरुष परीक्षा वचचो का देश वीर बालक बालवीर कृष्ण हरिजन झरने और पूल, कर मला हो मला, बुद्धि के हीरे, मेल के मोती बीनी बावू।
- (ङ) विविध—हमारे स त, कला की कलम आवश्यकता जीर लेख।

कीर्तियों के वेतु थे। उनके निष्काम कम युग युग के अमृत फल हैं। जवाहरलाल जी 'यक्ति न रह कर समष्टि हो चुके थे। उनका श्वास श्वास विश्वकल्याण के लिए परिश्रमा करता रहा। उनकी रचनात्मक क्रान्तियाँ समस्त युगों की उज्ज्वल परम्पराओं की पुनीत हैं।' इसी श्रम में मित्र जी आगे कहते हैं कि— 'मानवेन्द्र' महाकाव्य मैंने तपस्वी जवाहर के जीवन-तत्त्वा की प्रेरणा से लिखा है। इसकी रचना मैं कुल मिलाकर ग्यारह वर्ष लगे हैं। इसमें मैंने लोकनायक व जीवन-तत्त्वों के साथ युग चेतना की किरणों विकीर्ण की हैं शाश्वत सत्या का छंदो व स्वर दिये हैं। मानवेन्द्र' में मेरी अतीत के प्रति श्रद्धा वक्तमान व प्रति प्रसन्नता और भविष्य के प्रति मंगल कामना है। इसकी रचना मैंने काव्य नायक की गति के साथ साथ चला हूँ मानव हृदय से आत्मसात कर सम्बन्धना के गीत गाने की भावना रहा है युगों की बदलाव पर कभी करांडा में कोई एक ऐसा वीरोदात्त युगपुरुष आता है जिस पुरुषों में पुरुषोत्तम अथवा मानवों में मानवेन्द्र कह सकते हैं। ऐसे महामानव प्रवृत्ति में प्राकृत जन्म से मिलते हैं। इस प्रकार के पुरुष पर ही कवि किसी महाकाव्य की रचना करने को उत्सुक होने हैं। मानवेन्द्र के यक्ति में समष्टि के वे सभी गुण मुखरित हैं जिन्हें सष्टि का शिव होता है युगों की चेतना मिलती है सज्जन के दीप जगमगाते हैं।^५ 'मानवेन्द्र' की प्रस्तावना के उद्धृत कवि मत्त य से स्पष्ट है कि श्री मित्र जी ने आलोच्य प्रबंध काव्य में नेहरू जी के महामानव रूप की विराट रचना फलक पर प्रस्तुत किया है।

'मानवेन्द्र' महाकाव्य चार खण्डों में विभाजित है प्रत्येक खण्ड को पुनः सर्गों में वर्गीकृत किया गया है। सर्गों का विषयानुरूप नामकरण भी किया गया है। प्रथम खण्ड में ६ द्वितीय सर्ग में ११ तृतीय खण्ड में ६ और चतुर्थ खण्ड में ११ सर्ग हैं। सर्ग क्रमांसार खण्डों का नामकरण इस प्रकार है—

(क) प्रथम खण्ड—सवभूतेषु बालारण्य कमल सरावर ज्ञान ज्याति, सिद्धूर सौरभ, चाह और राह परिधायक परिदाह और यथित छोह।

(ख) द्वितीय खण्ड—परिश्रमण पद्यान्तिस ग्रामात्मा द्वन्द्व अशुदीप अग्निशिला विरोधधरण रक्तस्नान वाराणस जागम्य और मत्य आह।

(ग) तृतीय खण्ड—सरदार सधि मन्म शायन सूय अनुताप सपात प्रवरण सत्तापन आलाप विरण और मुक्ति पूजा।

^५ मानवेन्द्र—कवि की प्रस्तावना, पृ० ८८ से उद्धृत।

(घ) चतुष्षण्ड—पराधरण, जन मन, मृजन-सोपान, अन्नदाह, सुयास्त, भावलोक, गंध पवन मीमांशु ध्रुवामृत्यु परिवर्तन और शेष पुरुष ।

उपयुक्त सग्न म म पूवापर अचिन्ति आद्यान परिलक्षित हाती है । घटनाओं के सयाजन और प्रस्तुतीकरण म नाटकीयता और काव्यात्मक सर सता भी सवत्र प्रशंसित हुई है । ‘मानवेन्द्र’ से पूव मित्र जी द्वारा रचित जन नायक’ महाकाव्य क कथा विधान के सम्बन्ध म नीरसता, आत्मकथात्मक पुनरावृत्ति और इतिवृत्तात्मकता के जो आक्षेप किए गए थे उनका कवि न आलाच्य काव्य म यथासम्भव परिष्कार कर लिया है । ‘मानवेन्द्र’ के वक्त नियोजन म कवि न न कवल नहरू जी की जीवनी, राष्ट्रीय आन्दोलन क इतिहास और तत्कालीन परिस्थितियों के परिणाम का परिचय दिया है जपितु नहरू की भावसदीप्त कीर्तिकथा से तादात्म और सघषणील युग चेतना स सम्बेदन सम्पक का भी प्रमाण प्रस्तुत किया है । स्वाधीनता आन्दोलन-काल के युग सत्य और यथाथ को कवि ने चिरतन जीवन मून्या की सस्यापना क एक महाप्रयास के रूप म अंकित किया है । कल्पना और वास्तविकता तथा आदश और यथाथ के समन्वय का पन्धर होने के कारण कथानक म कवि ने जनचेतना के संबेदन सत्य और भावजगत क आदर्शों को मूर्त रूप दिया है । अपने समन्वयमूलक सज्जनात्मक दृष्टिकोण का प्रस्तावना-वक्तव्य म स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि—‘काव्य युगा के इतिहास के एक सूक्ष्म दपण की तरह होता है जिसमे वनमान अतीत क साथ गविष्य के रूप का निहारता है । काव्य को स्थूल जगत का सूक्ष्म दशन भी कह सकते हैं । रविमण्डल की तरह वाणी का तज अतजगत के जनजातो को खिलाता है । तपत हुए सूर्य की तरह काव्य क प्रकाश म मानव मन के कमल विकसित हान हैं अतश्चतना का प्रसार हाना है । यथाथ को मैं काव्य का सत्य मानता हूँ और आदर्शों को छोटना नहीं चाहता । कवि की कल्पनाएँ नून्य स सम्बन्ध जोडती फिरती हैं किन्तु क्या कोई भी कल्पना वास्तविकता स पृथक हाता है । कल्पना वही की जा सकती है जो सम्भव है । किसी विनाय अवस्था स न तो समस्त सत्तों को असत्य कह सकते हैं और न हम भगुर मोतिक चमकारा मे अमत्या का सत्य मान सकते हैं । जीवन क उज्वल पक्ष स्तुत्य रठ हैं और रहेंगे ।’^६ और यह प्रमत्तना का विषय है कि लाकनायक नहरू का कीर्ति कथा की सरचना म कवि ने अपने दृष्टिकोण को मूर्तिमत् किया है ।

^६ मानवेन्द्र—कवि की प्रस्तावना, पृ० ८

‘सबमूलेपु’ शीपक प्रथम सग का समारम्भ यद्यपि शिव, गणनायक, सरस्वती धरित्री आदि की बंदना से होता है किंतु ‘मंगलाचरण’ का वास्तविक स्वरूप ‘भारत देश’ के सारस्वत जमिन्दान में दृष्ट्य है। कवि के अनुसार घरा पर अनेक देश हैं किंतु अबुजास भारत ही अणुविभु की अमि सापा है। त्याग, तपस्या और धम-कम की वाणी भारत धीणा ने ही मुखरित की है। यह सत्तो और धीरो का देश है। परपीडा को प्राणा में सजोये, सत्य का सबल लिए, प्रेम का पारावार भारत जगन्नाधार है। यही आदर्श भारत के चिरंतन अस्तित्व के मानक बिंदु हैं। कवि के शब्दों में—

‘भारत का शोभा सुगंध से जामावान घरा है।
लाख मरण ने किए जात्रमण, भारत नहीं मरा है ॥
सत्तों का सदेश देश यह सबके लिए सहारा।
मिटा नहीं है नहीं मिटेगा, भारत अमर हमारा ॥
ऋषियों का रावेश देश यह, शीतल शान्त कगारा।
सत्तों का सदेश देश यह सबके लिए सहारा ॥’

(सब मूतपु सग १ पृ० १६ १७)

स्वदेश बंदना के साथ साथ कवि ने धरती मा की अचना का है। का प के कथाक्रम का समारम्भ इसी सग में वायनायक श्री नेहरू के पूवजों की जन्मभूमि काश्मीर की सोदय सुपमा के वणन से होता है। कवि ने काश्मीर को धरती का स्वग, रूप दपण साकार रति समृति का जीवन केसर की वयारियों से सुरभित अमरनाथ का पावन स्थल आदि कहकर भूरि भूरि प्रशंसा की है। काश्मीर की प्राकृतिक सुपमा का वणन करते हुए कवि ने कहा है कि—

‘धरती पर काश्मीर किसी ने रचा रूप दपण पर।
मानो नप की सिद्धि इस पड़ी तन मन धन अपण कर ॥
शल श्रणिया, धरनी का जल वर्षिले सुदर पथ।
किरणों के आभरण प्रकृति की सजी नासिका म नथ ॥

× × ×
सबसे प्यारा सबसे-यारा शाश्वत स्वण लकीर।
गर्वोन्नत कश्मीर हमारा गर्वोन्नत कश्मीर ॥

(वही सग १ पृ० २२ २३)

इसी प्रदेश का 'राजकौल' नामक यात्री कमी राजा फुल्लसिंघर के समय दिल्ली में आकर ठहरा जिसे बादशाह ने कुछ जागीर देकर नहर किनारे बसा दिया। इसी कौलवंश में गंगाधर हुए। इनके ही पुत्र मोतीलाल नेहरू और पोत्र जवाहरलाल हुए। गंगा यमुना और सरस्वती के संगम पर स्थित प्रयाग में कश्मीरी-वंश ब्रह्म का पुत्र जवाहर जन्मा। कवि ने जवाहरलाल के जन्म की समता अवतार से की है—

“कश्मीरी सौन्दर्य खिन्ना था प्रिय प्रयाग के तट पर।
मगलमयी घड़ी आई थी दीप जलाने घर घर ॥
एक जन्म अवतार हो गया, मन मन का अधिनायक ॥
एक जन्म सत्तार बन गया, ध्रुप युग उसके गायक ॥
धन्य धन्य सन अटठारह सौ पारस पूण निवासी।
धन्य नवम्बर चौदह जिस दिन-आया अमर प्रवासी ॥”

(वही, सग १, पृ० २४)

श्री जवाहरलाल नेहरू के जन्म को कवि ने एक असाधारण घटना के रूप में स्वीकारा है, जवाहरलाल के नर व्यक्तित्व में नारायण की प्रतिछवि आभासित हुई थी—

‘कमी कमी इस धरती पर होता जन्म अनोखा।
कमी कमी होता नर सन म-नारायण का घोखा ॥
कमी कमी ही दि य ज्योति की रश्मि यहाँ आती है।
कमी कमी ही उस अन त की आभा मुश्कती है ॥

× × ×

कभी कभी हों तो सागर में—कामधेनु पाने हैं।
कमी कमी ही तो पुण्या से—निराकार आते हैं ॥
धन्य धन्य वह पूजा जिमने, निगुण के गुण पाये।
मोती मिले, जवाहर आये, धरती के धन आये ॥’

(वही, सग १, पृ० २५)

नेहरू के जन्मोत्सव पर प्रकृति भी प्रमुदित थी। प्रकृति का उत्साह पक्षियों के सुमधुर कतारव, रश्मिया की बिरबन, उर्मिया की कलकल, पत्तों की पी पी और बिजली की चमक में प्रगट था। मोतीलाल और स्वरूप रानी

स्वयं को अहोभाग्य मान रहे थे। पिता ने प्रेम से पुत्र को 'न हूँ' कहा और वही नाम परिवार में प्रचलित हो गया।

'बालारुण शीघ्र द्वितीय सग म कवि ने नेहरू जी के बाल जीवन की वात्सल्य भाव भरी छवियाँ अंकित की हैं। नटखट न हूँ की केलि श्रीडाए जहाँ पिता को प्रमुदित करती थी वहीं उनके असंगत वृत्तों पर वे उह प्रताडित भी करते थे। बालक नेहरू को प्रारम्भ से ही पिता की प्रेरणाएँ प्राप्त थी। मातीलाल नेहरू पुत्र को राम, भरत दधीचि, ध्रुव और हरिश्चंद्र के समान यशस्वी बनने के लिए प्रेरित करते थे। मोतीलाल की प्रेरणा के स्वर थे—

बंदा स शीतलता से लो, सूरज से ला ज्वाला ।
नाम जवाहरलाल तुम्हारा, जग का दा उजियाला ॥
बन जाओ ऐस बन जाओ याद करे यह धरती ।
देला धरती सब कुछ सहकर सबकी पीडा हरती ॥

× × ×

रामचंद्र से बीर बनो तुम, बना भरत से राजा ।
दानी हो दधीचि सा तन मन जग ध्रुवलोक बना जा ॥
हरिश्चंद्र को कभी न भूलो दया धम मत छोडो ।
मोडो मुँह अनोति से मोडो सब से नाता जोडा ॥

(बालारुण द्वितीय सग, पृ० ३२)

बालक न हूँ मयावी और जिज्ञासु था। उसने मन में सूय धरा और भारत का जानने की जिज्ञासा थी। ज्यो ज्यो वह इतिहास के गौरव ग्रथों का अध्ययन करता उसके मन में कुतूहल बढ़ता जाता था। अपने चतुर्भुज परिवेश के प्रति भी सजगता का भाव बालक जवाहर के मन में था। सामाजिक जीवन की विषमताएँ उन्हें यह साधन को विवश करती थी कि हसा रत्न तपस्या और भोग तथा ओषडियाँ और गगनचुम्बी भवनो का एक साथ अस्तित्व किम अपम्य के कारण है। पराधीन भारत का मूल्यहीन जीवन और सक्दप्रस्त विम्नवग का दयनाय दशा न हूँ को बहूत कुछ साधने का विवश करते थे। गदर का इतिहास शहीदों की कथाएँ और अतीत का वमव एक अर्थ ही प्रकार की प्रतिश्रिया का नेहरू के मन में जम देते थे। माना के सद्भावनापूर्ण प्रेरक उपदेश बालक नेहरू के मां मस्तित्व में चिंतन का परिपक्व बना रहे थे। माता की प्रेरणा थी—

‘मा ने कहा, राम का जीवन काम धरा के आया ।
मां ने कहा, नान गीता का कृष्ण चंद्र से पाया ॥
भारत के आदश पुराने मां ने खूब बखाने ।
मानो सुत म राम कृष्ण को जननी लगी जगाने ॥’

(वही, द्वितीय सग पृ० ४४)

और मां की प्रेरणा सचमुच रग लाई । जवाहर धरा के ही काम आया ।
कम के प्रति निष्ठा भाव जगाने मे माता पिता के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्व
के प्रयो का अनुशीलन भी काम आया । नेहरू व मन मे यह धारणा धर कर
गई कि—

‘कम फल आन द उज्ज्वल अमित सुख ।
वे नपुसक, जा न करते कम हैं ।
वे निरथक भोग जिनक धम हैं ॥
भोग उसका धम जा है कम रत ।
दे रहे हैं ज्योति कण रवि शशि सतत ॥

(वही, द्वितीय सग, पृ० ४६)

अध्ययन-काल म ही नहें की चि तन भूमा पर वदिनी भारत मां की
आकृति अकिन हा गई थी । ज्ञासी की रानी के समाख्यान ने उह यह सोचने
को विवश किया कि—

देश हमारा दास रहे कयो कोटि काटि हम जन हैं ।
फूतो पर शूलो का पहरा, बंधन मे उपवन हैं ॥
बन्दी भारत की मिटटी है बंदी हैं दीवारें ।
बन्नी ताजमहल मंदिर हैं, बंदी हैं मीनारें ॥
बंदी गंगा जमुना का जल, बन्नी गगन हमारा ।
बंदी हुवा हमारे घर की बंदी भारत प्यारा ॥

×

×

×

लग सोचने, बालक ही थी—भाँसी वाली रानी ।
उसम कसा पानी था जो—खूब लड़ी मर्दानी ॥

(कमल सरोवर सग ३, पृ० ५१)

बालक जवाहर के मन म गण्ट्र के प्रति ललक निर तर बढ़ने लगी ।
मित्र जी ने नह की तुलना विक्रासमान उत्पल से दी है । ऐमा उत्पल जो
युगो के पश्चात धरा सरोवर में उत्पन्न होता है । वे शिव के समान जग का
शिव बनने के लिए प्रदाह गीप लेकर सन्नद्ध थे—

'किन्तु युगों के बाद ताल में—गिलना ऐसा उत्पन्न ।
जय को ज्योतिन कर रना है—जिसका जीवन उ—पन्न ॥
बहुन युगों के बाद गिता है—न हा न हा कमल मनोहर ।
जिसके लिए मूय तपना था, देना अघ्य सरोवर ॥”

(वही सग ३, पृ० ६०)

उच्च अध्ययन के लिए नेहरू जी सदन गए । श्री मातोलास नेहरू की विशेषों में पूर्ण प्रतिष्ठा थी और धन की कमी नहीं थी, अतः जवाहर की उच्च शिक्षा प्राप्ति के सभी साधन और सुविधाएँ विदेश में प्राप्य थी । विद्याप्राप्त के पश्चात् वे स्वदेश लौट कर दवास्त करने लग गए । किन्तु अतपचेतना की आवाज उन्हें सदैव सजग बिय रहनी थी कि पसा ही सब युद्ध नहीं है । जीवन का लक्ष्य धन पाना और खोना नहीं अपितु स्वयं को दुलम धन के रूप में परिवर्तित करना है अर्थात् परहित करना और राष्ट्र को वधन मुक्त करना है—

‘आत्मा का उत्थाय यही क्या—मैं रोज़ धन पाऊँ ।
तेसा कम नहीं क्या कोई—मैं ही धन बन जाऊँ ॥
× × ×
सारहीन नीरस लगना है—पराधीन का हँसना ।
मुझ को बहुत दुःख देता है—जग जालो में फसना ॥’

(नान ज्योति—सग ४, पृ० ८१)

सिद्धूर सौरभ शीपक पंचम सग में कवि ने नेहरू और कमला के परिणय का सरस वणन किया है । दुःख के रूप में सजा कमला की माध्यम बनाकर कवि ने नारी के चिरंतन गौरव का इस प्रकार पकत किया है—

‘मह मसति की मूलाहृति है यही मूर्ति प्राणो की ।
यही कीर्ति मानव महान की, यही मूर्ति प्राणो की ॥
यही अमृत की धार, इसा में—सुख की सारी निधिर्मा ।
इसके श्वासो में अवित है—ससति की गतिविधिर्मा ॥

× × ×
मंगलमयी यही कल्याणो यह तुलसी की वाणी ।
इसके प्राणो से प्लावित है—धरती का हर प्राणो ॥
यह स्वर्ग की सिद्धि बुद्धि की, शक्ति इमी में हारी ।
यही नान की गीर्वा गरिमा यही भक्ति है प्यारी ॥

(सिद्धूर सौरभ, सग ५, पृ० ९४)

कमला सचमुच भारतीय जीवनादर्शों से ओत प्रीत आदर्श नारी थी। ‘बाह और राह’ शीपक पष्ठ सग में कवि ने जवाहर और कमला के काश्मीर भ्रमण का वर्णन किया है। ‘परिधायक’ शीपक सप्तम सग में मित्र जी ने प्रत्याख्यान शैली के द्वारा अंग्रेजों के भारत पर छद्मपूण आधिपत्य का निरूपण और परतंत्र भारत की दयनीय-दशा का चित्रण किया है। कवि का मत है कि अंग्रेज ‘पापारी बन कर आये थे किन्तु शाहों की गफलत के कारण यहाँ के शासक बन बठे। उसके पश्चात् सन् १८५७ के विप्लव में उन्हें निकालने के लिए देशव्यापी महाप्रयास हुआ, जिसमें झाँसी की रानी, तातिया टोपे, जफर प्रभृति देशमत्तो ने प्राणपन से उत्सग भी किया, किन्तु मोर जाफिर जैसे गद्दारों और देशद्रोहियों ने देश का साम्राज्यवादियों के शोपक चगुल में फँसा दिया—

‘देश द्रोहियो ने विक विक कर भारत को बन्दी बनवाया ।

परो म बेडियाँ गले में—तीक विदेशी ने पहनाया ॥

×

×

×

शोपण करते लग देश का—सामन्ती परदेशी ।

झोपडियो पर महल बनाकर हँसते थे प्रतिवेशी ॥

×

×

×

आभूषण उतरे माता के भारत माता बंद हो गई ।

गौरागी के मधुर राग में, जन जन की तकदीर सो गई ॥’

(परिधायक सग ७, प० १२८ १३१)

बन्दी देश के प्रदग्ध मानस का अध्रेजी प्रशासको ने सब प्रकार की अनि तियाँ अपना कर शोपण किया। भेदभाव की कूटनीति, दमनचक्र, भाषाई, साम्प्रदायिक एवं जातीय पृष्ठ को उठोने अस्त्रों के रूप में अपनाया। कवि ने अंग्रेज प्रशासकों की दमन और शोपण की नीतियों को इन शब्दों में व्यजित किया है—

‘दमन कि जिसमें दया न बिल्कुल, जैसे धधशाला में ।

दमन कि जैसे रत्न तृपित की—होश न हो हाला में ॥

×

×

×

जो भी गाय गीत प्राप्ति का उसकी बाणी काटो ।

जो रत्न-त्रता सेने निरुने, उसका भाणित चाटो ॥

×

×

×

बंदी जिसे बनाओ उसके—मन को बंदी कर लो ।
जिसका शोषण करना चाहो—उसकी सत्कृति हर लो ॥

× × ×

दास भारत दीन भारत कर दिया ।
हर तरह से हीन भारत कर दिया ॥”

(परिदाह, सग ८, पृ० १३५ १३६)

देश में परम्परित धर्म की विडम्बना से पीड़ित पन्दलित और शोषित वर्ग को अप्रेमो ने गले से लगा लिया । जिन्हें 'अछूत' कह कर तिरस्कृत किया जाता था उन्हें गिरजाघरो में सम्मान मिला । भारत की जन्म कम आघत वर्ण व्यवस्था की नींव हिल गई । हमारे जातीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की एकता को विदेशी शासकों ने सबथा छिन्न मिन्न कर दिया । उनके इस कुकृत्य पर पश्चातापपूर्ण स्वर में कवि कहता है कि—

“हमने अपनी को दुतकारा उसने गले लगाया ।
उसने बूड़े के फूलों से—अपना बाग सजाया ॥

× × ×

मिटती गई एकता अपनी अपनी ही भूलो से ।
हमने करी घृणा उपवन में अपने ही फूलों से ॥
छिन्न भिन्न एकता हमारी, कर दी धीरे धीरे ।
सीता सी सम्पदा एकता हर ली धीरे धीरे ॥

(वही सग ८ पृ० १५० १५१)

और अतंत परिणाम यह हुआ कि—

“धेरा डाल दिया घर में हथकड़िया पहनाइ ।
फूलों के पर्दों के पीछे फुलझडियाँ सुलगाइ ॥
शोषण करने लगे देश का रक्तस्नान करा कर ।
सोने की चिडिया को फूका, छल से हम हराकर ॥”

(वही सग ८, पृ० १५३)

इस प्रकार व्यापारी बनकर आए फिरगी भारत के शासक बन गये । देशवासियों के तन-मन बंदी हो गए । वे अपने ही घर में पराए से हो गए । पराधीन भारतवासियों की विवशता का शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

“शासन करने लगा फिरगी, फूलों में फणि लाया ।
नींद किसी की आई मद में, शैया पर अहि आया ॥
तन बंदी थे, मन बंदी थे, सब ये आनाकारी ।
अपना घर ही गया पराया, रोती थी लाचारी ॥”

(व्यथित छाँह, सग ६, प० १५८)

व्यथित भारत की दशा देखकर जवाहरलाल व्यथित थे । उन्हें धन से नींद भी न आती थी । स्वप्न में भी उन्हें भारत की स्वाधीनता का ही बोध हाता था । कवि के शब्दों में अशोक के शिलालेख चन्द्रगुप्त की ध्वजा, चाणक्य की शिक्षा ललनाओं के पुछे हुए सिद्धूर, जौहर की ज्वाला, हल्दी घाटी की आत्म पुकार राणा की ललकार आदि ऐतिहासिक वीरता के सदम जवाहर की निद्रा भग्न कर रहे थे । भारत माता का वरुण क्रन्दन सुनकर तक्षण जवाहर की सुप्त जवानी जाग उठी । जवाहर ने माँ के आसू पोंछने का सकल्प लिया । जवाहर की व्यग्रता बढ़नी गई । उन्होंने कमला से स्पष्ट शब्दों में कहा—

पारतत्रय परिदाह आह यह, मेरा भारत जलता ।
मेरे तरुण वरुण से मन में—माँ का आसू ढनता ॥
पराधीनता में रगरलिया श्रोटा सहन न होती ।
मुझे दुलार पुकार रही है—माता रोती रोती ॥
× × ×
मुझको नींद न आती कमला, मेरा धीरज छूटा ।
मुझे शोध आता है उस पर, जिसने भारत लूटा ॥”

(वही, सर्ग ६, पृ० १६४ १६५)

कमला स्वयं उच्चादर्शों वाली महिला थी । वह प्रिय के पथ का अवरोध न बनी । उसने सह्य पति को स्वाधीनता सगर में जूझने को सम्प्रेरित किया और कहा कि—

कमला बचन नहीं राह में, कमला सिद्धि तुम्हारी ।
बिना ताज के बादशाह में बोली राजकुमारी ॥
जाओ प्रियतम ! माँ के बचन काटो ।
मुक्त करो आत्मा भगुर बचन से ।
निलक करो माँ का स्वतंत्र बचन से ॥

मैं छाया की तरह धूप सह लूंगी ।
 दूर दूर रह साथ साथ रह लूंगी ॥
 काटो प्रिय ! पतंग सा दुश्मन काटो ।
 बाँटो मरा धन जन जन को बाँटो ॥”

(वही, सग ६, पृ० १६८)

कमला की उत्सगमयी वाणी से जवाहर रसप्लावित हो गए । उन्होंने द्विगुणित उत्साह से मातृभूमि को बंधन भुक्त करने का दृढ संकल्प किया । किंतु बन्दी देशात्मा को मुक्त कराने का उपाय क्या है ? तभी उन्हें पथ प्रदर्शक के रूप में तपस्वी महात्मा गांधी का सान्निध्य प्राप्त हुआ । महात्मा गांधी के व्यक्तित्व की गरिमा का बखान करते हुए कवि ने लिखा है कि वे समुद्र की गहराई, सूर्य का प्रकाश पृथ्वी की सहिष्णुता, हिमगिरि का बल, परहित की तपश्चर्या दया धर्म का अम्यास और अमर विजय की अदम्य आकांक्षा लेकर बिना शस्त्र के वीरव्रती सेनानी की भाँति स्वाधीनता के पाथेय पर अग्रसर थे । कवि ने उन्हें भारती की आरती बहकर सम्बोधित किया है—

‘ये मनीषी भारती की आरती हैं ।
 साथ इनके माधना सी बाँसती हैं ॥
 पास इनके सिद्धियाँ निधियाँ बड़ी हैं ।
 कीर्ति की किरणें यहाँ बिखरी पड़ी हैं ॥

सूर्य का तन, सोम का मन ।
 मोम का तन, होम का मन ॥”

(परिप्राण सग १०, पृ० १७७)

ऐसे महान मनस्वी और कमठ देशसेवी से जब देश सेवा की दीक्षा (श्रिण्णा) ली जवाहर पढ़ेंगे तो उन्होंने प्रश्ना की शब्दी लगा दी । उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता बलिदान चाहती है । मर मिटने का अभिमान और परहित हेतु शिब के समान गरलपान का साहस चाहती है । स्वतंत्रता के लिए तुम्हें तन में धन सबस्व समर्पण करना होगा । फूलों का पथ त्याग शूलों पर चलना होगा । भारत के जन-जन से आत्मिक सम्बंध स्थापित कर देश मुक्ति के अभियान में जुटना होगा । बापू ने उदबोधन के स्वर में युवक जवाहर के अन्तश्चेतन को आदोलित करते हुए कहा—

‘देश मुक्ति के लिए चाहिए—भोगों से मुक्तात्मा ।
 देश यज्ञ के लिए चाहिए—जन जन से युक्तात्मा ॥
 क्या सबके दुखों को अपने—दुख बना पाओगे ?
 क्या ‘आवाज लगाकर—सोया देश जगा पाओगे ?
 राजमहल में रहने वाले’ । कारा में रह ‘लेगा ?
 स्वतंत्रता के लिये यत्रणा, हँस हँस कर सह लेगा ?

× × ×
 बोलो युवक ! अग्नि पीकर क्या—ज्योति हृदय की दोगे ?
 क्या धरती के लिए रत्न तज-भरल पान कर लोगे ?
 शान्ति दूत बन कर मानव को, छाया दे पाओगे ?
 शांति दूत बन कर जन जन की, काया बन जाओगे ?

(वही, सग १०, पृ० १८२)

युवक जवाहर ने सक्लप किया कि स्वतंत्रता यज्ञ के लिए सभी प्रकार की आहुतिया दूँगा । अग्नि-यज्ञ को शोणित की धार ध्रुवा के रूप में ‘कम-रतहस्त और स्वर में प्रगति भन्त्र लेकर जन जन के कल्याण हेतु धरा-का-अर्चन’ करूँगा । बापू ने प्रसन्न होकर कहा—

‘कहा साधु ने सुनो जवाहर ! तुम नर तुम नारायण !’

(वही, सग १०, पृ० १८४) ।

बापू न बौर जवाहर को निष्काम कम की महत्ता का गीता के कम योग की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में महत्व बताया । जवाहर ने सश्रद्ध नमन कर बापू को गुरु रूप में वरण कर लिया—

‘मैंने तो गुरु मान लिया है तुम ही राष्ट्रपिता हो ।
 तुम में प्रभु की ज्योति दीखती तुम ही श्वेत सिता हो ॥
 तन मन धन जीवन दे दूँगा, बापू की आज्ञा पर ।
 सागर में नौका खे दूँगा, बापू की आज्ञा पर ॥
 ज्ञान योग से बुद्धि योग से, तुम धरती की बल हो ।
 हिमगिरि से गरिमाशाली हो, गंगा से निमज हो ॥

× × ×

मुझको बढने का पथ दे दें, बढने चरण तुम्हारे ।
 रण में लडने का पथ दे दें, बढते चरण तुम्हारे ॥

(वही, सग १०, पृ० १८६) ।

बापू और जवाहर के मिलाप को कवि ने कृष्णाजुन के मिलन की सजा दी है। बापू ने कृष्ण की भाँति निष्काम कमयोग रूपी देश सेवा का प्रखर सदेश युवा जवाहर को दिया। बापू ने शुभाशीप देते हुए कहा—

“बापू बोले—ओ सेनानी ! निश्चित विजय तुम्हारी ।
हिंसा बदल अहिंसा होगी, मति है धार दुधारी ॥
स्वतन्त्रता हित रण करने को—जनता की खेना है ।
चलता हुआ यान सागर के—दृग जल में खेना है ॥
गीत जीत के गा सकते हो, तुम जनता के बल से ।
मन के विप को धो सकते हो नयन नयन के जल से ॥
हे भारत के रूप ! समी की—श्रद्धा से जय पाओ ।
जय के लिए समी के मन ले एक शक्ति बन जाओ ॥”

(वही सग १०, पृ० १८६)

देश के स्वाधीनता आन्दोलन में वीर जवाहर की भाँति अथ असह्य देश भक्त भी योगदान कर रहे थे। प्रमुख स्वाधीनता सेनानियों में कवि ने सुभाष पटेल, राजेन्द्रप्रसाद मौलाना आजाद, जिना, लाजपतराय मालवीय जी प्रमति नेताओं के व्यक्तित्व और महनीय कृतित्व का श्रद्धापूर्वक पुण्य स्मरण ‘पद्मादित्य’ शीपक एकादश सग में किया है। ये समी देशभक्त पराधीन मातृभूमि को बचन मुक्त करने के लिए कृत सक्ल्प थे। कांग्रेस अधिपेशनों के अवसर पर इनकी विचारधारा की अनुगुञ सुनायी देती थी। सुभाषचन्द्र बोस श्रातिमन्त चिन्तनधारा के पक्षधर थे। वे अपनी ओजस्वी वक्तृताओं द्वारा श्रातिकारी ढंग से देश को स्वतन्त्र कराने की बात कहते थे। उनका अभिमत था—शस्त्र उठाकर प्रहार करने और रक्त दान से ही धरित्री मुक्त हो सकती है। ‘वीरभोग्या बसुधरा’ के सिद्धांत का समयन करते हुए कहते थे—

वीर मोगते हैं धरती को शस्त्रों के वारों से ।
प्यास बुझा करती देवी की, प्यासी तलवारों से ॥
शस्त्र उठा कर रक्त दान लो स्वतन्त्रता पाओगे ।
स्वामिमान से रक्त दान से नयी सुबह लाओगे ॥’

सुभाषचन्द्र बोस की वक्तृता उनके अप्रतिम शीप की आग्नेय हैकृति के समान प्रतीत होती थी। वे रक्तदान और बलिदान को ही सर्वाधिक महत्व देते थे। उन्हीं के शब्दों में—

सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् के गुण त्रिगुण त्रिकाल तिरगा ।
गंगा यमुना सरस्वती की लहर रही नम गंगा ॥

× × ×

झरने गूँजे यमुना मचली, गरजी गंगा घारा ।
वहा जवाहर ने ध्वज लेकर—हिंदुस्तान हमारा ॥'

(वही, सग ११, पृ० २०८-२०९)

नेहरू जी के नेतृत्व में कांग्रेस के जो कार्यक्रम बनें उनमें पीड़ित शोषित और पददलित वर्ग के अभ्युत्थान को प्रमुखता दी गई। इस वर्ग में श्रमिकों और कृषकों को मुख्यतः परिगणित किया जाता था। नेहरू जी पूँजीपतियों के शोषण से विक्षुब्ध थे। वे कमला जी से भी इस सम्बन्ध में अपना आश्रोण प्रकट करते रहते थे—

“शोषण करते हैं समाज का— शोषक पूँजीवादी ।
इनके लिए जोतता बोता—मीन कृषक परियादी ॥
रोता है किसान भारत का पूँजीपति हँसता है ।
महल बनाने वाला भोला—कूड़े में बसता है ॥

× × ×

देख कृषक की दशा महल में मुझको नींद न आती ।
सोच रहा ८ घण्टे लार्ड लुटी कृषक की घाती ॥

(ग्रामात्मा सग १२ पृ० २१४)

कृषकों की दशा सुधार के लिए जमींदारी प्रथा उन्मूलन का आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन को अमूलपूर्व समयन प्राप्त हुआ। कृषकों और श्रमिकों ने प्राणपण से लोकनायक का साथ लिया। ग्रामों के कोटि बाटि जनों के सहयोग से जमींदारी कानून का विरोध प्रारम्भ हुआ। आदान-व्यवहारियों के उत्साह का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

बरो शक्ति का यज्ञ सिपाही ! खेती में खलिहाना में ।
देर बरो मत आग लगा दो रावण के जमिमाना में ॥

× × ×

जमींदार के रंग महल में श्रान्ति मचाव बढ़े घसा ।
मानव मन के अधकार में दीप जलाव बढ़े घसा ॥

दीप धरो, हम साथ हैं ।

भारत मा के, गाँव गाँव के कोटि कोटि हम हाथ हैं ।

यज्ञ करो, हम साथ हैं ॥

(ग्रामात्मा, सर्ग १२, पृ० २२६)

इस आंदोलन में समाज के निम्न वर्ग के सत्रिय योगदान-कृताओं में बूढी बुगली भगन, बुडू नाई बुद्धन मोची, अकखड ताई हीरा माली, दुर्गी मोटी, अनिमा बाई कल्लू तेली, घसियारे, बालक, बूढ़े सभी सम्मिलित थे । इतने विराट जन समथन से संचालित आंदोलन अन्ततः सफल हुआ और अवध काश्तकारी बानून बदल गया । यह लोकनायक नेहरू के नेतृत्व की अपूर्व सफलता थी । इसके पश्चात् ‘खिलाफत’ आंदोलन शुरू हुआ । ‘बहिष्कार’ आंदोलन द्वारा विदेशी वस्त्रों का परित्याग किया गया । लोगों ने सोस्ताह मूल्यवान रेशमी वस्त्रों की होली जलाई । अंग्रेजों के प्रति घृणा का प्रदर्शन जनता ने इस प्रकार किया—

‘फूँको वस्त्र विदेशी फूँको, पवनारोही नारा ।

भारतभ्य के लिए घृणा का, दहक उठा अगारा ॥

×

×

×

विदेशी वस्त्र फूँको, हर तरफ थी एक ही बोली ।

दिशाआ म, गली म हर तरफ थी जोश में टोली ।

बनी ज्वाला बनी हाला, किसी की भाँति की बोली ।

लगी होली, जली होली, विदेशी माल की होली ॥”

(द्वन्द्व, सर्ग १३, पृ० २४४ २४५)

जनगण ने प्रसन्न चित्त से खादी को अपनाया । विदेशी वस्त्रों की होली की लपटें भाँति की ज्वाला बन गई । घर घर में स्वतंत्रता की भावना सुलग उठी तथा धरा मुक्ति की कामना जन जन में जाग उठी । बहिनों ने घघूट पलट दिये माताएँ हुँकार उठीं, भोली माली कुमारियाँ नागिन की भाँति फुकार उठीं । नेहरू की ओजस्वी वाणी से अबलाएँ सबला बनकर बहिष्कार के लिए ‘पिकेटिंग’ करने निकल पड़ीं । देवियों ने शराबखानों के आगे धरना देकर मदिरा-पान करने वालों को रोक़ा, क्योंकि इन मदिरालयों के माध्यम से देश का श्रमोपाजन धन विदेशों में जाता था । मद्यपान ने मदिरा के प्याल तोड़ कर देशहित में प्राणोत्सर्ग का प्रण किया । सम्पूर्ण जनगण में देश प्रेम की लहर दौड़ गयी थी । कवि के शब्दों में—

“किन्तु सगन थी नर नारी मे, देश प्रेम जागा था ।
मातृभूमि ने वीर सुता से - रक्तदान मांगा था ॥
स्वतंत्रता के लिए आग थी आँखों के पानी मे ।
बहिष्कार की प्रबल प्यास थी जनता अभिमानी म ॥’

(द्वंद्व, सग १३, पृ० २४६)

‘अश्रुदीप’ शीपक चतुदश सग मे कमला की वियोग व्यथा और आशकाओं का वणन है । साथ ही कमला नेहरू के मन में राष्ट्र के लिए कुद्य करने की व्यग्रता का भी अंकन है । श्री जवाहरलाल नेहरू जिन दिना देशव्यापी भ्रमण करते या जेलों में थे तो कमला जी व्यथित मन स्थिति से पुत्री इन्दिरा को समझाती रहती थी । कवि के शब्दों में—

‘बड़ा लेकर गये जवाहर, कमला पगध्वनि भजती ।

सिद्धि हेतु अपने प्रियतम की, ज्योति सुन्दरी तपती ॥

(अश्रुदीप, सग १४, पृ० २५३)

नेहरू जी की बहिन विजयलक्ष्मी सगव भाभी का समझाती थी कि भया की जय के नार देश भर में गूँज रहे हैं । बिना ताज के राजा भया पर तुम्हें गव होना चाहिए । पति का यशोगान सुनकर कमला के नेत्र गव से छनक उठते थे । दूसरे ही क्षण उनके मन में विचार उठता था कि प्रियतम रण में हैं । तो मैं घर में बयो ? क्या मैं कुद्य योगदान नहीं कर सकती । कमला के मानसिक सघष को मित्र जी ने इस प्रकार व्यजित किया है—

‘प्रियतम रण में, मैं क्या घर में ।

मन उठना है ध्वजा उठाऊँ ।

बलिदानों के गीत सुनाऊँ ॥

हथकड़ियाँ पर आँसू उगवूँ ।

घरती के अगारे चुगवूँ ॥

आग उगाऊँ डगर डगर में ।

(वही, सग १४ पृ० २६२)

अन्तत कमला नेहरू ध्वजा उठा कर स्वाधीनता-आन्दोलन में जुट पड़ी । स्वाधीनता-नगर में कमला का पत्रापत्र मानों विजय की बोध का समान था । वे स्थान-स्थान पर मन्त्रिणाओं को लेकर पिक्केटिंग करने लगीं । तन से दुःख होने हुए भी वे अग्निगंगा का समान दीप्तिमान थीं । कवि के अनुगार—

"धूषट पलट तपस्या निबली-सत्याग्रह करने को ।
कम क्षेप में कमला आई-करने या मरने को ॥

× × ×

तन से दुबल मन से दीपित, अग्निशिखा लहराई ।
अग्निभाग पर सबसे आगे, कमला दी दिखलाई ॥
अमर जवाहर की उजियाली, सत्याग्रह में चमकी ।
क्षणिक क्षीण विजली की रेखा, आदोलन में दमकी ॥'

(अग्निशिखा, मग १५, पृ० २७२)

'मानवेन्द्र' के रचयिता की मति में पति के स्वाधीनता यज्ञ को सफल करने के लिए कमला जी आदोलन का आग में आहुति बन कर प्रविष्ट हुई । कमला ही क्या नेहरू-परिवार की सभी नारियाँ स्वतंत्रता के रण में प्रविष्ट हो गई । स्वहृदयानी विजयलक्ष्मी, कृष्णा, कमला सभी घर का सुख त्याग कर दीपित ज्योति शिखाओं की भाँति हँकार उठीं । कमला का स्वास्थ्य निरन्तर क्षीण हो रहा था किन्तु वह आन्ति की ज्वाला के समान प्रज्वलित थीं । जवाहर लाल पत्नी के स्वास्थ्य की चिन्ता से प्रसन्न थे किन्तु राष्ट्रीय स्वाधीनता की चिन्ता वहीं अधिक विकट थी । वे कक्षस्थ पथ से तनिक भी विचलित नहीं हुए । जवाहर ने द्विगुणित उत्साह और कमठ भाव से 'सविनय अवना' और बहिष्कार आदोलन का सञ्चालन किया । 'नमक कानून तोड़ा गया । प्रशासनिक आगएँ मग हुई । अराजकता बढ़ने लगी । साण्डस, स्काट, हडसन, डायर कजन प्रभृति अंग्रेज प्रशासक दमन चक्र को तीव्र गति से चलाते रहे । सभी प्रमुख नेताओं को नेहरू जी सहित बन्दी बना लिया गया । नेहरू को बन्दी बना कर भी अंग्रेज उनकी आवाज को न दबा सके—

"बंद जवाहर लाल कर दिये, बंद न थीं आवाजें ।

बन्दीगृह की दीवारों में, मन्द न थीं आवाजें ॥"

(विरोधाचरण, मग १६, पृ० ३०२)

तिरगे ध्वज, भारत माँ, चापू और स्वतंत्रता के नारे के समान नेहरू का नाम भी अंग्रेजी प्रशासन के विरोध और विद्रोह का प्रतीक बन गया । अंग्रेजी प्रशासन का निम्नोद्धृत बठोर आदेश इस तथ्य का यज्ञक है कि नेहरू का नाम स्वाधीनता सघन-काल में कितना आन्तिकारी बन चुका था—

'जो भी नाम जवाहर का ले बन्दी उसे बनाया ।

जो भारत माँ की जय बोले, फाँसी उसे चढ़ाओ ॥

जो गांधी जी की जय मांसे, उसको कफन उड़ा दो ।
गांधीजी का नाम धरा स, कर-बर जुल्म उठा दो ॥
जहाँ तिरगा झंडा देखा, वहीं चलाओ गोली ।
उठो मिटा दो सदा सदा को, आजादी की बोली ॥
काटो जबान जिन पर है स्वतंत्रता के नारे ।
बढ़ते चरण रात हो जायें, सुलगें वे अगार ॥”

(रक्तस्नान, सग १७ पृ० ३०५)

जन-मन के स्वातंत्र्य भाव का दमन अप्रेज लाठी चाज हटर प्रहार और गोली चला कर रहे थे । बमो और गोलियों की आग सुलगती और बुझ जाती । किंतु जनमानस में स्वाधीनता भाव की जो चिरंतन ज्योति लोकनायक नेहरू की ओजस्वी वाणी ने प्रज्वलित की थी, वह निरन्तर प्रसर और प्रगल्भक हा रही थी । नेहरू की वाणी का प्रभाव का वणन करता हुआ कवि कहता है कि—

‘वह बिना ताज का बादशाह, भाषण से आग फूकता था ।
उसके शब्दा में पूजा थी, उसकी वाणी में जन मन था ॥

× × ×

वह बाला जनता बोल उठी, वह डोला जनता डोल उठी ।
वह चला जिधर चल पड़े सभी भूगाल उठा गति बाल उठी ॥

× × ×

उसके चरणों पर मचल उठा जनता सबस्व लुटाने को ।
उसके दशन को तडप उठी, धरती निज ध्यया सुनान को ॥

(वही सग १७ पृ० ३०७)

नेहरू जी जिस जनसमा में भाषण देते थे, वही जन समूह समुद्र की मूर्ति उमड़ पड़ता था । नेहरू जी ने अपने भाषणों में बताया कि वर्तमान शासन शोषण की नींव पर खड़ा है उसे ढहा दो । उन्होंने राम कृष्ण तुलसी नानक, तिलक, बंदा बरारी गोखले और गांधी की युग वाणियों का स्मरण दिलाते हुए जनमानस को सबस्व बलिदान कर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया । लोकनायक की उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत ओजस्वी वक्त्रता का पुष्कल प्रभाव यह होता था कि सिर से कफन बांधे हुए आजादी के दीवान इकलाव का नारा लगाते हुए बड़े बड़े बलिदान को सन्नद्ध हो जाते थे । यही कारण था कि—

“जितने जुलम किये गोरो ने, उतनी दहकी। ज्वाला ।
 हर जवान को चढी हुई थी, देशभक्ति की हाला ॥
 × × ×
 स्वतंत्रता के भीषण रण म क्षण क्षण जोश नया था ।
 स्वतंत्रता के लिए सिपाही सब कुछ भूल गया था ॥”
 (वही, सग १७, प० ३१६, ३१६)

वाराणसी शीपक १८वें सग म कवि ने बंदी जवाहरलाल की जीवन चर्या का वर्णन किया है। कवि के अनुसार आनंद भवन का राजकुमार कारागृह म योगी की भांति जीवन यापन कर रहा था। पुनी इंदिरा को जेल से लिखे गये पत्रों, हिंदुरतान की कहानी और ‘विश्व इतिहास की क्षलक’ शीपक रचनाएँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू की असाधारण रचनाधर्मिता को प्रगट करती हैं। थी यशपाल जन व शब्दा म—‘कुल मिलाकर नेहरू जी स्वराज्य की लड़ाई के दिना मे ६ बार जेल गए और उनके ८ वष ११ महीने १२ दिन बंदीगृह म व्यतीत हुए। कारावास का जीवन सुखद नहीं होता। जेल की इस विचित्र दुनिया म शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसका मन कुण्ठित न हो उठे। लेकिन जवाहरलाल जी तो असामान्य व्यक्ति थे। उन्होंने बंदी-जीवन के एक एक क्षण का उपयोग किया और तभी वह इतना साहित्य देने मे समर्थ हो सके।’ नेहरू जी की कृतियाँ उनके भावजगत के सघष, ऐतिहासिक आस्थाओं विश्व मानवतावादी दृष्टिकोण और रचनात्मक सामर्थ्य को एक साथ व्यजित करती हैं। जग्नेय शीपक १६वें सग म महाकाव्यकार ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के उग्र रूप और भगतसिंह विस्मिल, अश फाक, राजगुर, सुखदेव लाहड़ी प्रभृति देशभक्ता की श्रांतिकारी भूमिका का उल्लेख किया है। चंद्रशेखर जाजान क हृदय मे स्वतंत्रता का यनातल धक्क रहा था। उस मतवाल श्रांतिकारी का विप्लवा जाह्वान सुनकर चंद्रशेखर के दल मे प्राणदान करने वाली बलवती अदम्याकाशा जग गयी। कवि के शब्दो म—

“श्रांतघोष सुनकर शेखर का-नौजवान फुकार ।
 प्रात प्रात के युवक लाडले समर मध्य हुँकारे ॥

* साप्ताहिक हिंदुस्तान—नेहरू स्मृति जक ३० मई १९६५, पृ० ६ “अद्वितीय लेखक और साहित्यकार नेहरू’ शीपक लख ।

विय से विय उतारने के हित-बना त्रान्तिकारी दल ।
बम पाटों बन गई देश मे, घघका आँखो का जल ॥

× × ×

दल बन गया 'चन्द्रोत्तर का, दल म रक्त नया था ।
दलहित प्राणदान करने का, बल मे रक्त नया था ॥”

(आनय, सग १६, पृ० ३४१)

बम दल ने साँडस की हत्या, रेल की लूट पाट और विध्वंसक प्रहारों द्वारा आतंक का वातावरण उत्पन्न कर दिया । इन निमय त्रान्तिकारियों ने आनय कृत्यों द्वारा अंग्रेजी प्रशासन की नींव हिला दी । अंग्रेजों प्रशासन के प्रतिक्रिया स्वरूप भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दे दी । इन देश भक्तों के बलिदान से सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन में त्रान्तिमत्त चेतना प्रदीप्त हो गयी । कवि क शब्दों में—

‘चेतना आई शहीदों की चिता से,
रक्त की हर बूँद बिजली बन गई थी ।
फाँसियों से आग फली हर दिशा म
हर तरफ आजाद युवकों के काम थे,
रक्त की लहर ध्वजा म फहरती थी

× × ×

घुड़िया दूटी हुई लावा बनी ज्वाला बनी है
हर पुँछे सि दूर की लानी जवाती म भरी है
बिंदियाँ शिव को जगाती हैं प्रलय के गीत गाकर
प्यार की प्यासी उम मे गति जवाहर के अघर पर ।’

(वही सग १६, पृ० ३४७)

शहीदों की चिताओं से उठी चिनगारिया ने जन मन म विद्रोह की आग लगा दी । जन क्रान्ति की भीषण हलचल धीरे धीरे सेना तक पहुँच गई । पुत्रिस वाले तन से सेवक होते हुए भी मन से विद्रोही बन गए । स्वतंत्रता की आग प्रत्येक भारतवासी के मन म गुलग चुकी थी । इस भाव प्रदीप्ति का श्रेय लोकनायक नेहरू के भोजस्वी भाषणों को भी है । नेहरू जी क्रान्तिदूत बनकर जन मन म स्वातंत्र्य चतना का आह्वान कर रहे थे । कमला जी लखनऊ जेल म और नेहरू जी नयी जेल मे बन्द थे फिर भी वे हतोत्साह नहीं थे । जेल से

छूटकर उहोंने रग्ण पिता की दयनीय दशा देखी, उनका निघन देखा, दाह सस्वार किया किंतु वे स्वाधीनता सगर के पाथेय पर अग्रसर होने से विचलित नहीं हुए। उहोंने स्वयं को सान्त्वना देते हुए कहा कि—

“आंसू रोको अभी न जाने कितने वष्य गिरेंगे।
स्वतन्त्रता के लिए मृत्यु से—अगणित बार घिरेंगे ॥
एक नहीं दो नहीं न जाने—कितने वीर मरेंगे ॥

× × ×
घरा रत्नगर्भा है इसमें—हैं मोती ही मोती।
अम्बर ही रोया करता है घरनी कभी न रोती ॥”

(मत्य आह, सग २०, पृ० ३६२)

'मानवेन्द्र' महाकाव्य के तृतीय खण्ड के प्रथम चौर प्रारम्भिक भ्रम के 'सस्वार शीपक २३वें सग में कवि न बताया है कि जनविद्रोह के समक्ष आग्ल प्रशासन को अन्तत भुक्ना पडा। गालमेज काफ्रेस' का प्रस्ताव अग्नेजो-शासन ने शांति और व्यवस्था की दृष्टि से किया। 'सिधिसदम नामक २४ वें सग में गाधी इरविन समझौते का उल्लेख है। अन्तत अग्नेजी प्रशासन ने प्रातीय स्तर पर जनशासन की बात को सिद्धान्त स्वीकार कर लिया और फल स्वरूप देश में प्रातीय परिपदा के निर्वाचन हुए। नेहरूजी ने सुयोग्य जन प्रतिनिधियों के निर्वाचन हेतु दशध्यापी भ्रमण किया और मतदाताओं को उनके मत का मूल्य समझाया। वस्तुतः जन शक्ति की यह प्रथम विजय थी, जिसके द्वारा काफ्रेस के प्रतिनिधि राजकीय परिपदों में पहुँचे—

“विद्यारी जनता हुई एक मत, चुना देश मत्तो को।
मिलने लगे थोठे जन प्रतिनिधि, प्राता के तन्ना को ॥
काफ्रेस के प्रतिनिधि पहुँचे—राजकीय परिपद में।
जनता के मनचाह पहुँचे—शासकीय परिपद में ॥
सत्याग्रह की प्रथम विजय थी, जय का प्रथम चरण था।
पयहीनों को महासिधु म—मानों मिला धरण था ॥”

(शामन सूत्र, सग २३, पृ० ४०५)

जनता के प्रतिनिधि तो चुने गये किंतु उनकी निर्धारित नीतियों को संचालित करने वाला अधिकारी बग विदेशी था, अतः बात विलायत की ही चलनी थी। इस दोहरी नीति से जनता को प्राण नहीं मिला। जनता

विशुद्ध हो जठी। नेहरू जी पुन प्रशासन के विरोध में जनमत तैयार करने लगे। इसी बीच कमला जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। वे मरणासन्न दशा को पहुँच गयी। विदेश में अध्ययन हेतु गयी पुत्री इन्दिरा और जेल से पति नेहरू ने आकर कमला को देखा तो स्तब्ध रह गये। पत्नी को विधिवत सभाल भी नहीं पाये थे कि बिहार के भयंकर भूकम्प और बाढ़ के कारण अपार जन घन की हानि ने उनका ध्यान आकृष्ट कर लिया। बिहार के जननेता राजे द्रप्रसाद के साथ नेहरू जी ने जनसेवा के कार्यों का संचालन किया। वे स्वयं बाढ़ पीड़िता की सहायता कर रहे थे और उन्हें सब प्रकार से आश्वस्त भी कर रहे थे किन्तु—

‘गूजता था एक नारा ।
वह विवट भूकम्प था या धी प्रलय की क्रूर धारा ।
धूलि था ससार सारा ॥
मैं मरण के वक्ष पर इतिहास मेरी गति अमर है ।
मैं क्षणिक विश्राम में हलचल, अचल की यति अमर है ॥
डूब जायेगी धरा ऐसा कभी सम्भव नहीं है ।
आ परामर्श । काल से हारा कभी वैभव नहीं है ॥
लोट जाओ क्रूर धारा !”

(अनुताप, सग २४, पृ० ४१६)

इस दबी प्रकोप से जनजीवन को मुक्त कराने के प्रयत्न पूर्ण भी न हो पाये थे कि नेहरू जी को पुन बाँदी बना लिया गया। कमला का भय टूट गया। कमला की मम-यथा को कवि ने इन शब्दों में व्यजित किया है—

ससुर गये परलोक नाथ को—जेल से गए जालिम ।
हाथ । मृत्यु शया पर मुझको—दुख दे गए जालिम ॥
कह न पाई आज तक मन की यथा मन को क्या ।
क्या पता किसको कि मैं न सिंधु आँखों में मया ॥
रोकती हूँ पर हृदय घमटा नहीं क्या हो गया ।
जान पडता है कि मरा आज सब कुछ तो गया ॥

(वही सग २४ पृ० ४२४)

अन्तत कमला का निधन हो गया। कमला की अर्थाँ सबहन करत हुए जवाहर व मन सक्ल्य को शब्द करत हुए कवि कहता है कि वह

अद्वितीय देश सेधिका थीं क्योंकि देश की स्वतंत्रता के लिए उसने सब प्रकार का त्याग किया और कष्ट सहें। उसका प्राणदान महान् उत्सव का ही परिचायक है—

“सत्र सकल्प त्याग कर कमला मुक्ति हेतु जीती थी।
स्वतंत्रता के लिए दगो म, सब आसू पीती थी ॥

× × ×

लो मरघट आ गया, कहानी खत्म हो गई सारी।
प्राणदान दे गई देश को एक पुरुष की नारी ॥”

(वही, सर्ग २४, पृ० ४३५)

द्वितीय विश्व युद्ध का समाारम्भ हुआ। यह युद्ध इतना भयानक था कि धरती कांप उठी थी। महायुद्ध के भीषण क्षण में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हिटलर के शस्त्रस्त्रो से इसी युग में महाप्रलय हो जायगी। द्वितीय विश्व युद्ध के विनाशकारी परिदृश्य का काव्यात्मक कवि ने सकौशल किया है। एक अश द्रष्टव्य है—

‘सन्क्रो की टोलियाँ लावारिसा सी जल रही हैं,
जगलो म सड रहे शव, न कोई पास उनके
चीन कौवे तक घणा करने लगे हैं

× × ×

दृश्य ये बीभत्स मरघट से— भयानक,—
हड मुडों से भरे मदान देखो
वे भुजाएँ काल जिनसे कांपना था—
काल कबलित हो गइ बन में पडी हैं,
चीटिया जिनको लिपट कर छा रही हैं
रक्त आमिष और मज्जा से लिपे मदान देखो।

(सघात, सर्ग २५, पृ० ४४४ ४४५)

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं से पूछे बिना ही भारत को युद्ध में घसीट लिया। फलस्वरूप काप्रेसी मन्त्रि मण्डला ने त्यागपत्र दे दिए। गांधीजी ने सत्याग्रह का समाारम्भ कर दिया। अग्नेज युद्ध में बुरी तरह उलझ गये थे। भारतीयों से सहयोग प्राप्ति हेतु ब्रिटिश सरकार ने एक मिशन क्रिप्स के नेतृत्व में भारत भेजा और क्रिप्स ने विभिन्न प्रस्तावों द्वारा आश्वासन और

प्रलोमन दिए। इन्हीं दिनों सुभाषचंद्र बोस ने प्रवासी भारतीया की एक शक्तिशाली सेना का संगठन जापान में कर लिया था, जिसका नाम — 'आजाद हिन्द फौज' था। वे भी भारत का स्वतंत्र कराने के लिए प्रयत्नशील थे। अतः नेताजी ने नेहरू जी सहित भारतीय जननेताओं को परामर्श दिया कि अंग्रेज कभी भारत नहीं छोड़ेंगे, इनके आश्वासन घोषे से मरे हैं। अपने उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए सुभाष ने कहा—

‘मैं सभी को मुक्ति देना चाहता हूँ,
मैं दलित को जितनी भी मुक्ति देना चाहता हूँ,
मैं गुलामी की लकीरो को मिटाना चाहता हूँ,
भागा वाले फकीरो को बसाना चाहता हूँ,
चाहता हूँ सब जिनमें शक्ति हो कुछ,
शक्ति हो निज देश हित अनुरक्ति हो कुछ,
व्यक्ति को मैं शक्ति का दीपक बनाना चाहता हूँ,
मैं तुम्हारे हित स्वयं तक को मिटाना चाहता हूँ,
मैं अंधरे को नया दीपक लिखाना चाहता हूँ
मान 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' माना चाहता हूँ।’

(वही, पृष्ठ २५ पृ० ४४६)

कवि ने सुभाषचंद्र बोस के जाश की भूरि भूरि प्रशंसा की है। सुभाष चंद्र बोस सचमुच भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के महान नेता थे। उनकी प्रान्ति भावना निष्कलुष, श्रेय प्रेम निष्काम और समय निस्वाध था। इसीलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर पर भारतीयों का आह्वान करते हुए उन्हें राष्ट्र मुक्ति के लिए अनुप्रेरित करते हुए कहा था —

‘इस तरफ से मैं बढ़ूँ उस ओर से तुम
मुक्त करलो देश निज तलवार से तुम
तुम विजय पाओ, तुम्हारा देश होगा
हर गली पर राज्य करना मुझे इसमें सुगी है।
मैं तुम्हारे नित सदाई में सजग हूँ
चाहता हूँ मुक्त हो हर देश, जग में सब मुची हों।
नियम के आधीन हा सब
और अनुशासन प्रशामन में सभी निरत बभरत हा,
व्यक्ति अपने देश-हित व्यक्तित्व अपना भूल जाये,

देश ही हो धम उसका, देश ही हो बम उसका,
व्यक्ति की आत्मा अखिल आलाक में हो,
देवता हर देश में दिव्याणु सा हो,
रण नहीं, यह अचना है ।”

(वही, सग २५, पृ० ४४७)

इसी बीच भारत में ‘माग्त छोड़ो’ आन्दोलन का समारम्भ हो गया । भारतीय नेता अंग्रेजी शासन की अवसरवादी कूटनीति से अवगत हो गए थे । अब उन्होंने नेहरू के नायकत्व में पूण स्वतंत्रता की माँग की । एक ऐसी व्यापक क्रान्ति भावना जन-जन में जाग उठी, जिसने अंग्रेजी प्रशासकों को दहला दिया । वीर जवाहर ने अपने सकल्प को इस प्रकार व्यक्त किया—

“व्यापक क्रान्ति भावना जागी, जन जन में मन मन में ।

× × ×

वायसराय, गवर्नर, सेना, पुलिस दहल थी सब में ।
स्वतंत्रता का महासागर था, चहल पहल थी सब में ॥

× × ×

जन जन के मन बने जवाहर झण्डा फहराते थे ॥
ध्वज की लहरो से धरती के, सागर लहराते थे ॥
कहते थे सभ ठोक जवाहर, हम स्वतंत्रता लेंगे ।
या तो आजादी लेंगे हम, या जीवन दे देंगे ॥”

(प्रवरण, सग २६, पृ० ४५६)

जवाहर ने कहा कि अब ब्रिटिश शासन समाप्त होगा । या तो हम आजाद होंगे या मर मिटेंगे । देशवासियों को स्वाधीनता-सगर में प्राणोत्सर्ग के लिए आहूत करते हुए उन्होंने कहा—

“चाहे सम्मुख काल आ अडे, पीछे हम न हटेंगे ।
सम्पा नाचे, अणु बम बरसैं, आगे वीर डटेंगे ॥
शपथ हमें है भारत माँ की, शपथ ध्वजा की हमको ।
युद्ध क्षेत्र से नहीं हटेंगे, बिना हटाये तम को ॥
फर फर उड़ता हुआ तिरगा, जन जन का तनमन धन ।
इस झण्डे से बड़ा नहीं है—तन मन धन या जीवन ॥

इस झण्डे को उठा बड़ चलो, स्वतन्त्रता के रण में ।

आओ प्यारे धीरो ! आओ, इकलाव बण बण में ॥”

(धनी, सग २६, पृ० ४१६)

आठ अगस्त सन् १९४२ का ऐतिहासिक दिवस आया । अंग्रेजों ने सभी भारतीय नेताओं को बन्दी बना लिया । कवि के अनुसार यद्यपि जवाहर बन्दी थे किन्तु उनका प्रातिमन आह्वान जन जन में गूँज रहा था । प्रत्येक देश वासी आज आरभोत्सव के लिए सन्नद्ध था—

“नेता बन्दी बन्द नहीं था प्रातिद्वन्द्व का नारा ।

बही ताप से आग घषकनी, ओर कहीं अँगारा ॥

×

×

×

एक जवाहर बन्द कर दिये, कौटि जवाहर जागे ।

करने या मरने को अर्गणित, ये मशाल से आगे ॥

चलीं गोलियाँ, रवे न सनिक, माता की जय बोले ।

मानो मन्दिर में भक्तता के स्वर गूँजे बम बोले ॥

फट-फट कर शीश गिरे घरती पर उठ उठ बढ़े सिपाही ।

मरने धाले स आगे था बढ़ने वाला राही ॥

×

×

×

सब शहीद होने को आकुल में आगे बढ जाऊँ ।

पल पुजारी से कहता था, पहले मैं चढ जाऊँ ॥”

(वही सग २६ पृ० ४६३)

सन ४२ में जो अदम्य उत्साह जन जीवन में उमड़ा था वह अभूत पूर्व था । स्वाधीनता पत्र पर मरण को महोत्सव मानकर प्राणोत्सव करने वाले देश भक्त कौटि कौटि की सख्या में निकल पड़े थे । इन देश भक्तों के सकल्प और उत्साह को कवि ने इस प्रकार शब्दांकित किया है—

‘बलिदाना की चाह मरी धी हर जवान के मन में ।

ध्वजा उठाने की इच्छा थी हर उठते यौवन में ॥

जेल भेज दो फाँसी दे दो, तोपों से उडवा दो ।

तन मन धन सब कुक् कराओ गोलो से फुकवा दो ॥

सब सह लेंगे स्वतन्त्रता हित मिटने को हम आये ।

सर से बफन बाँध आये हैं शीश हाथ पर लाये ॥

(वही, सग २६, पृ० ४६६)

इन देश भक्तों में स्वातंत्र्य चेतना का आह्वान लोक नायक नेहरू ने ही किया था। जवाहर एक ऐसे आलोक स्तम्भ के समान थे जिनमें जन जागृता को अलौकित किया। वे अमरदीप थे, जिन्होंने प्रत्येक जन के चेतना दीप को दीप्तिमान किया। कवि के शब्दों में—

“एक दीप यह देश दीप है, अमर जवाहर प्यारा।
सकीर्तन हम युगनायक के यह आखों का तारा ॥
हम सब उसकी वाणी के पग हैं हम सब उसके नारे।
यह मत समझो शलम जल गये, शलम बने अंगारे ॥”

(वही, संग २६ पृ० ४६६)

‘भारत छोड़ो आन्दोलन एक अभूतपूर्व श्रान्ति प्रयाण था। इस प्रयाण की ओर प्रथम चरण लोकनायक नेहरू ने बढ़ाया था, किन्तु कालांतर में करोड़ों कदम इस ओर बढ़ते गये। और प्रत्येक बढ़ता कदम बलिदान का कीर्तिमान स्थापित करने के लिए वृत्त सकल्प था। अस्तु, जवाहर की वंदी बना कर भी अंग्रेजी प्रशासक जनशक्ति को शांत करने में सफल न हो सके। कवि के शब्दों में—

“आओ, दो बलिदान देशहित, गता था अगारा।
जाओ, हटो शोड दो भारत या कण कण का नारा ॥

× × ×

समय आ गया भारत छोड़ो वर्ना मिट जाओगे।
अतिथि चले जाओ आदर से, वर्ना पछताओगे ॥

× × ×

घद जवाहरलाल किन्तु हर प्राणी मतवाला है।
स्वतंत्रता का अंतिम मोर्चा, हर मनुष्य भाला है ॥

× × ×

देखा जिधर उधर ही देखी-स्वतंत्रता की ज्वाला।
आज़ादी की आग राग स-काय उठा तब काला ॥

(वही, संग २६, पृ० ४६६-४७१)

‘सन्तापन’ शीर्षक २७वें संग में कवि ने भारत विभाजन की पृष्ठभूमि का मर्मन्तिक चित्रण किया है। विभाजन के लिए ललनाओं के सुहाग लुटे, बहनों के रक्षा बचन हूँ, रुढ़ों के सहार लड़वाइये, बालकों के माय्य डूबे,

कुमारियों की लाज छुटी और राजनीतिक कुत्सा का बीमत्स कलुषित और नृशस बाढ देगकर जन-नेता सतप्त हो उठे। लोकनायक नेहरू का हृदय सन्तप्त था यह सोचकर कि स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व ही भारत का एक अंग विदेश बन जायगा तथा गंगा और यमुना की धाराएँ बँट जायेंगी। जवाहर की सतप्त मनोदशा का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि—

‘स्वतंत्रता आने से पहले कितना रक्त छनेगा।
क्या मेरे भारत में निश्चित नया विदेश बनेगा ॥
क्या गंगा जमुना का पानी दो धारों में होगा।
क्या अमियेक देश का मेरे सहारों में होगा ॥’

(संतापन सग २७, प० ४७८)

देश को मुक्त कराने के लिए जननेताओं को विभाजन रूपी विषपान करना पडा। अतत लोक और लोकनायक के अथक प्रयत्न तथा अप्रतिम बलिदानों से भारत माँ की दासता के बंधन टूटे। आलोक किरण’ फूटी। भारत स्वतंत्र हुआ। लाल किले पर ‘विजयी विश्व तिरगा पहराया। स्वतंत्रता की आलोक किरण से जन मानस जगमगा उठा। कवि न स्वाधीनता की देवी का अभिनन्दन करते हुए राष्ट्र के अभ्युत्थान और जवाहर तथा जनता जनादन के मुखद मविष्य के लिए मांगलिक कामना इस प्रकार की है—

‘अमर ज्योति आलोक किरण हो पाराशरि के स्वर हो।
स्वतंत्रता की उजियाली से विषापीय विषघ्न हो ॥
जया, जवाहर ज्योति, जनादन ? जय ब्रह्मा की वय हो।
अणवोद्भवा ! आओ गाओ द्रव्याजन अक्षय हो ॥’

(आलोक किरण, सग २८, प० ५०३)

मुक्तजन मानस ने स्वाधीनता की देवी का मुक्त मन से अभिनन्दन किया। देश ने गांधी जवाहर, सुभाष, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद प्रभनि नेताओं के प्रति आभार प्रगट किया जिनकी त्यागमयी कमठ साधना से स्वतंत्रता का प्रकाश भारत में फला। नेहरू की प्रशस्ति में कहा गया—

“धय धय वह मानवेन्द्र जो दीप लिए आता है।
मानो इन्द्रपुरी को अपने हाथों पर लाता है ॥
जय जय जय घरणेन्द्र ? धरित्री धय तुम्हारी गति से।
मुक्त ! देश को मुक्ति मिली है अगारों की अति से ॥

(मुक्तिपूजा सग २६ पृ० ५०७)

किन्तु नेहरू जी ने अपने भाषणों और व्याख्यानोँ में सबत्र ही स्वाधीनता प्राप्त का श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को दिया । उन्होंने देश पर बलित होने वाले असह्य ज्ञान अज्ञात देशभक्तों का वृत्तन्तापूर्वक यथाभवसर पुण्य स्मरण किया । नेहरू जी ने कहा कि स्वाधीनता का इतिहास शहीदों ने सुख-स्याही से और मा बहिनो ने आँसुओं से लिखा है । उन्होंने स्वाधीन राष्ट्र को जन सम्पदा घोषित किया । उन्होंने कहा कि राष्ट्र का नव निर्माण शक्ति, श्रम और साधना से ही सम्भव है—

“गा रहा घरजेद्र पूजा के स्वरो मे,
ओ महामानव ! घरा यह धय तुझ से ।

× × ×

मुक्ति का स्वागत नये इतिहास से है,
यह नया इतिहास बदला या पुरानन फिर नया है,
सिद्धि जनता, साधना जनता प्रजा राजा वनी है,
यह सभी का देश है अब, राज्य है इस पर सभी का,

× × ×

मंदिरों में देवताओं की नई आराधना यह,
शक्ति से श्रम से, हृदय से, बुद्धि से, शाश्वत स्वरोँ से ।’

(वही, सग २६, प० ५१२ ५१३)

‘मानवेद्र महाकाव्य के ‘चतुथ खण्ड’ के ‘धमाचरण’ शीपत्र ३०वें सर्ग में कवि ने स्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था के आदर्श रूप का निरूपण किया है जिसका निर्देश राष्ट्रपिता गांधी ने लोकनायक नेहरू को दिया । बापू ने जवाहर को कहा कि देश का पुनर्जन्म हुआ है तुम दिवाकर की भाँति तप कर कठोर साधना द्वारा देश के जन जन की सेवा का व्रत ला । राजधम को तप प्रचर्या मानकर उसका निर्वाह करो । शासन का ऐसा आदर्श रूप निर्मित करो जो सवहित सबद्धक हो—

वीर केसरी ! राजधम का चरण शुरू होता है ।
राजा बड़ है जो जनताहित-तन मन धन खोता है ॥
मानव ये अब मानवेद्र ही निज पथ भूल न जाना ।
सिंहासन पर राजधम को, तप तप धरुण निभाना ॥

मानवेन्द्र ! तेरे शासन को कोई ताप न घेरे ।
दहिक दहिक मोतिल दानव चरण तले हा तरे ॥”

(धर्माचरण सग ३०, पृ० ५२७)

इसी बीच काश्मीर पर पाक आक्रमण हुआ, जिसका भारतीय सेनाओं ने मुह्तोड उत्तर दिया । देश की एकता और जनता की सामकता के लिए सरदार पटेल के कूटनीतिक प्रयासों से रियासतों को मिलाया गया । जनता की व्यवस्था में राजतंत्र की शासन पद्धति बाधक ही थी, अतः उसका निवारण आवश्यक था । क्योंकि—

‘प्रजातंत्र का अर्थ प्रजा का, राज्य प्रजा का धन हो ।
प्रजातंत्र के सिंहासन पर कोटि कोटि का मन हो ॥
जन जन मानवेन्द्र बन जाये प्रजा राज्य ही ऐसा ।
प्रजातंत्र के मगम पर है—राज्यतंत्र यह बसा ।

(जन मन, सग ३१ पृ० ५४४)

बापू ने स्पष्ट शब्दों में मानवेन्द्र का बता दिया कि स्वाधीन—भारत के विधान और शासन का लक्ष्य जन कल्याण ही है । जन जीवन की विषमता का सभी स्तरों पर निवारण स्वशासन का मूलभूत प्रयोजन है । भारत के प्रधानमंत्री से बापू ने अपेक्षा की कि—

‘मानव का मन अमृत स्रोत हो, कम करो अब ऐसे ।
समृद्धि घम दीप हो जाए घम करो सब ऐसे ॥
अरे ! राज्य का अर्थ विषमता मिटे सरम हों जन मन ।
जनहित स्वयं समर्पित कर दें जन जन सब तन मन धन ॥

× × ×

‘यद्यपि सभी सघम अगर जन-जनहित रह न जीने ।
व्यय कम सब जो जनता के पात्र रह गये रीने ।

× × ×

निद्रि मिलेगी, मुक्ति मिलेगी, जनता के अचन से ।
रत्न मिलेंगे अमृत मिलेगा जनता के मथन से ॥

(वही सग ३१, पृ० ५४७ ५४८)

मृजुन सोपान शीपव ३२ वें सग में बापू ने राष्ट्र निर्माण की योजनाओं एवं विकास कार्यक्रमों का वर्णन करते हुए कहा है कि—

“पढ़ अनन्त के गीत प्रकृति में मुखर हुई युग भाषा ।
मानवेद्र के मुख से निकली, जन जन की अभिलाषा ॥
धधे बढ़ने लगे देश में—यत्रा की गतिविधि से ।
बड़े बड़े उद्योग खुल गए—यहां वहाँ की निधि से ॥’

(सृजन सोपान, सग ३१, पृ० ५६६)

देश स्वाधीन हुआ, स्वशासन हुआ और सर्वशोभनीय विकास के कार्यक्रम भी बने, किन्तु पूँजावादी तथा साम्प्रदायिक शक्तियाँ देश के जन मन का शोषण भी करती रही । स्वार्थी तत्व राष्ट्रीय जीवन को खोबला बनाते चले गए । सामान्य जन की शांतिपूर्ण दशा और अन्तर्दाह को कवि ने इन शब्दों में व्यञ्जित किया है—

भारत को प्रतिभा अधीर है, अचन अभी अधूरा ।
जब तक हैं अनथ जन मन में, तब तक अथ न पुरा ॥

× × ×

यह कसा उत्यान, पतन के—पूत आक्रमण करते ।
मन में झतना गरल भर गया, मधु पी पी कर भरते ॥

× × ×

बढ़ने जाते स्वाय देश पर, आँधी आती जाती ।
भव्य भावना दीप जलाती, हवा बुझाती जाती ॥’

(अन्तर्दाह, सर्ग ३३ पृ० ५७८)

कवि पश्चात्ताप पूर्ण शब्दों में कहता है कि देश का शासन बदल गया किन्तु देश वासी नहीं बदले । देश की सम्पदा पर पूँजोपति नाग की भाँति शोषण की कुण्डली मारे बठे हैं । लाखों शहीदों के बलिदान से जो धरती आजाद हुई वही शोषण से पीड़ित होकर आँसू बहा रही है । लाखों आस्थाएँ, जिहाने, सिद्धों की राख में बदलकर देश के भाग्य को बन्ला वे व्यथित होकर आह भर रही हैं । इसी प्रकार यदि विपमना का विन्तार होता गया तो स्वतंत्रता सक्कट में पड़ सकती है । अस्तु कवि ने राष्ट्र का सजग करते हुए कहा कि—

‘अमर शहीदा की छाती है, बलिदानों की श्री है ।

काटि काटि लाला की निधि है, अमिमाना की श्री है ॥

× × ×

यह गुम कर्मों की छाया है, बडी तपस्या का फल ।

यह जीवन की अमर ज्योति है नयनों का गगाजल ॥

इस पर आच न आने पाये, सावधान रखवालो ।

इस की जय के गीत छाह मे, श्रम साजो पत्र गालो ॥'

(अ तर्दाह, सर्ग ३३, पृ० ५८७)

नवस्वतन्त्र राष्ट्र की दारुण परिस्थितियों ने राष्ट्र नायक नेहरू को चिन्तित बना दिया । उन्होंने कहा कि बापू के तप और शहीदों के बलिदान से अर्जित स्वातन्त्र्य सम्पदा को हम यो नहीं लुटने देंगे । नेहरू जी और अधिक शक्ति से राष्ट्र के अन्धुदय के लिए कृतसकल्प हुए —

'स्वतन्त्रता को दुखी देखकर, दुखी हुए नरनाहर ।

जनता के हित जनशासन में, तपने लग जवाहर ॥

× × ×

पर जब तक माँ ! श्वास दह म हार नहीं मानूँगा ।

जीते जी जग के जीवन को, मार नहीं मानूँगा ॥

× × ×

जग का सारा विप पी लूँगा, माँ ! मतकर इतना गम ।

तब तब जलज नहीं सूखेंगे जब तक रविशशि का दम ॥

(बही, सर्ग ३३ पृ० ५६३)

स्वतन्त्रता रूपी अमृत के साथ साथ राष्ट्र को विभाजन रूपी गरल भी मिला । विभाजन के परिणाम स्वरूप देशव्यापी साम्प्रदायिक दंग प्रारम्भ हो गए । कवि के शब्दों में—

स्वतन्त्रता के दाप जल ता—वनी रक्त का धारा ।

पाकिस्तान बना क्या, जावन—बना जहर अगारा ॥

मानव को बन् नर विभीषिका—बढ़ती हा जाती थी ।

हिन्दू मुस्लिम रक्तपात में—रक्तपात घाता थी ॥

(सूपास्त, सर्ग ३४ पृ० ५६५)

बापू नोआगनी पक्ष । उन्होंने अग्रगण्य समाज ममायात्रिन कीं । हिन्दुओं और मुसलमानों का मानवता का एकत्रित राष्ट्रिय एकता का मन्त्र समझाया । बापू के अन्तर्गत समाज जनमन तथा प्रायना समाज का अर्थात् प्रभाव भी हुआ । हृदय भी मज्जित होकर उक्त आग नमस्त्वक हा गए नृगार मन् प्रदिन हा समा रत्निकता नत्र आंगू बहान सग और मरघ

सदृश्य उजड़ा जीवन पुन सहनहा उठा । यद्यपि वापू का विरोध भी किया गया किन्तु वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए । कवि के शब्दों में एक लँगाटी वाला घरता का विषयान शिव के समान कर रहा था—

विजय कम की, जीत दान की, घम फना करता है ।
सघर्षों मे जीने वाला कमी नहीं मरता है ॥
घरती का विष पीने निकला एक लँगाटी वाला ।
दिशा दिशा म घूम रहा था एकाकी उजियाला ॥”

(वही, सग ३४ पृ० ५६६)

इधर दिल्ली म भी साम्प्रदायिक दग मडक उठे । वापू न दिल्ली आकर अपनी प्रायना समाआ म हिंदू मुस्लिम एकता तथा ईश्वर-अल्ला के अमोदत्व का प्रतिपादन प्रारम्भ किया । किन्तु अन्धे साम्प्रदायिक तत्त्वा न पढ्यन रचकर तीन गालिया दागी और युगपुरुष शिव को शान्त कर दिया । काल क कूर नयन की दृष्टि स युगद्रष्टा वापू भी न बच सके—

तभी काल न कूर नयन से—राष्ट्रपिता का देखा ।
पुण्य भूमि पर स्वर्ग भूमि पर खिची रक्त की रेखा ॥
नमन काल ने किया और फिर-तीन गालिया दागी ।
युग का शिव सा गया शान्ति से—सूय रश्मियाँ भागी ॥”

(वही, सग ३४ पृ० ६०१)

वापू का निघन इतना दुखद था कि सबत्र करुणा का परिदृश्य व्याप्त हा गया । चन्दा ओर मूरज रोये, विश्व शून्य हो गया, चेतन जड हो गए, मेदिनी करुणा विगलित हाकर मातम मना रही थी । वापू के अवसान पर साकनायक नहरू इतन शाक सतप्त थे कि मानो सबस्व लुट गया हो । गाधी की घिना क मद्रिकट खडे शोक सतप्त जवाहरलाल की मनोदशा को अकित करते हुए कवि न लिखा है—

‘जो अनाथ का नाथ आज वह—है अनाथ यह दशो ।
चिता विनाग अथ पाछना—मानवेद्र वह दशा ॥
आह ! जवाहरलाल आज यज्ञ—सडा नूय म ऐसे ।
जम जम में गान प्राप्त कर—जान अमित हो जैसे ॥
जमे सिद्धि प्राप्त कर कोइ—विस्मृति म लाया हा ।
जमे योगसिद्धि का फन पा—सिद्ध पुत्र्य माया हा ॥’

(वही, सग ३८ पृ० ६०४)

‘भावलोक’ शीपक ३५वें सग में कवि ने स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के नवनिर्माण और विश्वशांति के लिए किए गये नेहरू जी के महाप्रयासों का समोल्लेख किया है। लोकनायक नेहरू ने यह महत् सकल्प किया था कि राजतंत्र की विडम्बनाओं और छलछद्मों से सन्नस्त भारतीय जन जीवन को सत्य श्रम, कर्तव्यनिष्ठा और स्वतंत्र साधना द्वारा अभावयुक्त राष्ट्र के रूप में बदलूंगा। निर्माण के इस पुनीत सकल्प का शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

‘सत्य से शिव से घरा की आरती होगी,
आरती श्रम से, सभी के धर्म के फल फूल,
मृत्यु से ऊपर रहेंगे धर्म की हागी
प्यार से सौ दय में सौरभ रहेगा
शक्ति हाथों में लगन में महकती होगी।
ये सभी निर्माण करने हैं मुझे पावन घरा पर—
जा घरा पर हा चुक हैं हा रहे हाते रहेंगे,
दीन हीनों के अभावों को हरेंगे जा।’

(भावलाक सग ३५ पृ० ६०६)

स्वराष्ट्रीय अभ्युत्थन के साथ साथ नेहरू जी ने पञ्चशील के सिद्धान्तों सह अस्तित्व की भावना और गुट निरपेक्ष नटस्थ वदेशिक नीतियों के प्रचार प्रसार द्वारा विश्व में शांति और सुरक्षा की भावना उत्पन्न की। मानवात्मान के चिरन्तन सिद्धान्तों के प्रसार हेतु उ होने विश्व यात्री भ्रमण भी किया। नेहरू जी के विश्व मानवतावादी प्रयासों के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि—

‘देश देश न बात सुनी यह देश देश ने मानी।
दीप जलाने लगा विश्व में वह दीपों का दानी ॥
मानवेन्द्र गुण पुष्प जवाहर, दीप निश्चिन्ता घूमा।
पञ्चशील के सिद्धान्तों का—सगर मिलाता घूमा ॥
कमी चीन में कमी रूस में कमी एशिया भर में।
पथ निश्चिन्ता भ्रमण कर रहा दीपक डगर डगर में ॥’

(गद्य पवन, सग ३६ पृ० ६२७)

नेहरू जी ने एशिया और अफ्रीका के दुर्जन और पराधीन राज्यों के मुक्ति सपनों का भी समर्थन किया। मानवता का बन्ध्याग का जा पावन-साधन गौतम और ईसा ने किया था वही युगवाणी का रूप में लोकनायक नेहरू के मुख से सरस्वती कल्पानी का स्वर बन कर सुनारित हुआ—

“देते हैं सदेश मेल का, सहअस्तित्व सिखाते ।
मानवेद्र मेंवधार पी रहे तट का दीप दिखाते ॥
जो सदेश दिया गीतम ने, वही गीत गाते हैं ।
जो सदेश दिया ईसा ने, वह ये फँलाते हैं ॥
मानो नीति पुरुष के मुख से, मुखर विदुर ये वाणी ।
मानो शान्ति पुरुष के मुँह पर, सरस्वती कल्याणी ।’

(वही, सग ३६, पृ० ६३६)

मानवता के सुखद भविष्य के मंगलाकाशी मानवेद्र के अथक प्रयत्न अमी चल ही रहे थे कि पड़ोसी और माई राष्ट्र चीन ने घोखे स अपनी बर्बर विस्तारवादी आवाधाआ की सम्पूर्ति हेतु भारत की सीमाओं पर आक्रमण कर दिया । हिमालय रक्त रजित हो गया । युग से भारत के गौरव का रक्षक स्वयं रक्षा के लिए पुकारने लगा । देश की मान मर्यादा पर आच आती देखकर जवाहर नरनाहर बनकर हँकार उठे । सम्पूर्ण राष्ट्र को बलिदान करने के लिए आह्वान किया । उन्होंने कहा—

‘यह धरती अभिमानो से, यह धरती बलिदानो से ॥
बलिदानो स सीमा रक्षा बलिदानो से होती जय ।
तप से सिद्धि मिला करती है तप से सुरमित्त होती वय ॥
स्वतंत्रता बलिदाना की निधि अरमाणा की याती है ।
फूलो के मिस भौन घरा यह, वीरों से मुस्काती है ॥
होगी जीत जवानो से, यह धरती बलिदानो मे ॥’

(सीमाग, सग ३७, पृ० ६४६)

लोकनायक की वाणी का विनक्षण प्रभाव हुआ । सम्पूर्ण राष्ट्र उत्सग के लिए सन्नद्ध हा गया । कोटि-कोटि स्वरो म लोकनायक की ही अनुमूर्ज सुनाई दी कि मर मिटेंगे किन्तु भारत की मान मर्यादा को खर्वित नहीं होने देंगे । दुश्मन से लोहा लेने का सम्पूर्ण राष्ट्र एकजूट हा गया । देश मे एकता, बलिदान और राष्ट्रमत्ति का थपुव भावोद्दिधि तरगिन हो उठा—

“भारत की मिट्टी मिट्टी से मूजे स्वर धरती पर ।
मिट जायेंगे, घरा न देंगे, सदा सहायक शकर ॥
रक्त बटुत है पर पीने को-दान नहीं हम देंगे ।
मर जायेंगे स्वतंत्रता का मान नहीं हम देंगे ॥

कण कण की आवाज यही थी, भारत भर हँकारा ।
 तन से नाता छोड़ युद्ध में हर सैनिक फुकारा ॥
 कोटि कोटि स्वर एकहो गये कोटि कोटि पगमचल ।
 बालक बदले, बूढ़े बदले, भोल शकर बदले ॥ '

(वही संग ३७ पृ० ६५४)

सम्पूर्ण राष्ट्र ने पूरी शक्ति से यद्यपि जाक्रान्ता से लोहा लिया और उसे हकेल भी दिया किन्तु आकस्मिक आक्रमण के कारण कुछ सीमांत प्रदेश शत्रु हृष्टप गया । लोकनायक नेहरू को राष्ट्रीय क्षति से मानसिक आघात पहुँचा । नेहरू जी की शारीरिक रुग्णता के प्रति समय समय पर इंदिरा जी न चिन्ता भी प्रकट की । किन्तु मानव द्र ने अपने अपराजेय साहस के बल पर अपनी कमनिष्ठा की उद्योति को अमद और प्रज्वलित ही रखा । पुत्री की चिन्ता का निवारण करते हुए उन्होंने अदम्य उत्साह से भरे स्वर में कहा—

“जब तक तन में श्वास इन्दिरा तब तक मैं न रुकूंगा ।
 बटी । किसी कष्ट के आगे-हरगिज नहीं झुकूंगा ॥
 सुते । देह का अथ चले तन पाप पलायन करना ।
 दुःख दीप बन जाते पथ के दुःखा से क्या डरना ॥

×

×

×

दसो दिशाया में जाना है अम्बर में जाना है ।
 सागर में गाना है मुक्ता पवत पर गाना है ॥

(ध्रुवो मत्सु संग ३८ प० ६७३)

जावन के अन्तिम क्षण तक नेहरू जी उसी उत्साह और निष्ठा से कमरत रहे । किन्तु मत्सु ध्रुव सत्य है । कराल काल ने मात्सी की भाँति एक दिन जवाहर गुलाब का जीवन द्रन से तोड़ लिया । नेहरू के निधन की सूचना से सम्पूर्ण राष्ट्र शाक सिन्धु में डब गया । मानवद्र के देहावसान पर निशाण था पही । चराचर में शाक-सवेत्ता परिमाण दृष्टिगत हुई । शोक-मातृत्त प्रकृति को चित्राकित करते हुए कवि ने लिखा है—

हर निशा से रत्न गीत आने लग ।
 दद बहाग मानम मनान तग ॥
 चीर तार र्व गूय का र्म घुग ।
 मत्सु के हाथ से द्रष्ट कना तुग ॥
 × × ×

सि धु बेहोश था, पेड बेहोश थे ॥
 शोक ऐसा बढा, शब्द खामीश थे ।
 हर दुआ रो पढी, हर हवा रुक गई ।
 हर दिशा का नमन, हर छवजा भुक गई ॥
 आह ! शशि सो गया, आह ! रवि मो गया ।
 आह ! क्या हो गया, आह क्या हो गया ॥”

(वही, सग ३८ प० ६७८)

नेहरू के निधन पर विश्व भर में शोक सत्रेदनाएँ प्रगट की गयीं राष्ट्र ध्वज झुक गए, कवियाँ नानाविध भावाजलियाँ समर्पित कर युग पुरुष का स्तवन किया । 'मानवेन्द्र' के रचयिता ने पश्चातापपूर्ण स्वर में कहा है—

‘तुम मरण पर भा वरण हो, युग युगा तर के चरण तुम ।
 दान धरती के गमन को दवताआ के वरण तुम ॥
 जन्म ले तुम को धरा की बंदना हरनी पडेगी ।
 धर धरा ! वीरज मरण की अति सहन करनी पडेगी ॥’

(वही, सग ३८ प० ६८७)

राष्ट्रनायक नेहरू के पश्चात भारतीय जीवन में परिवर्तन के कुछ परिदृश्य उभरे । परिवर्तन के क्रम में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी—पाक आक्रमण । इस अवसर पर पुनः देश के नौनिहालों ने प्राणोत्सर्ग कर राष्ट्र रक्षण किया । इस अवसर पर राष्ट्र प्रेम का उदात्त स्वरूप सबके दृष्टिगत था । देश के जन जन का एक ही नाग था—

“भारतवप अजेय हमारा, झडा नहीं भुकेगा ।
 कह दो झमाओ स कह दो—दीपक नहीं बुझगा ॥
 × × ×
 देशहित जीना हमारा दशहित मरना हमारा ।
 देश मंदिर देश माला, देश मूरज, देश तारा ॥’

(परिवर्तन सग ३६, पृ० ७१२ ७१३)

नेप पुरुष श्रीपक काव्य के जतिम अर्थात् ६० वें मग में कवि ने दार्शनिक शली में नेहरू के आविर्भाव को नारायण के अवतरण की संज्ञा दी है । सर्गांत में कवि ने मानवता के अन्तुदय की मंगन कामना की है—

‘भूमा धर्य बन मानव से शक्ति यत्न से सुख हः
 शिव के चरणों में कविना का, शल सुता सा मुख हो ।

मक्ति शक्ति का गठ बंधन हा। क्षय पुण्य की जय हा।

क्षय ही सब दुःखताआ की, आत्मनेज निमग हो।

(यही सग ४०, पृ० ७२७)

इस प्रकार सोचनायक जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व एवं वृत्तित्व का सग क्रमानुसार मानवेन्द्र' महाकाव्य के माध्यम से अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि वे बहुमुग्गा प्रतिभा के धनी थे। इस सम्बन्ध में डा० भागीरथ मिश्र का यह कथन उद्धरणीय है कि—'पंडित नेहरू का व्यक्तित्व और जीवन इतना बहुमुग्गी था कि उसको किहीं निश्चित पक्षों के धरे में बाँधना सम्भव नहीं। वे धर्मस्थानों में परम धार्मिक के रूप में स्थित लायी पढ़ते थे। शिकारगाह में शिकारी, घस वृद्ध के मदान में खिलायी, बरता वारों के बीच बरता ममन साहित्यकारों के बीच शूद्रान्त साहित्यिक राज नीतियों के मध्य में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ तथा सामान्य जन एवं मजदूरों के बीच उनके अपने सगे बन जाते थे। मैं नहीं समझता सत्तार का कोई भी अन्य महापुरुष व्यक्तित्व के इस लचीलेपन और विविधता से सम्पन्न था। यह विविधता उनके व्यक्तित्व की परिपूर्णता है।'^८ मुगपुण्य नेहरू के व्यक्तित्व के विषय को मानवेन्द्र के रचयिता ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सेवादत्त में सेनागी थे, वृषवा में हलधर थे।

श्रमिकों में श्रमसाध्य सिद्ध थे दवा में शक़र थे ॥

विद्वानों में विद्याधन थे भावुकता में कवि थे।

शांत चन्द्रमा से शीतल थे, अंधकार में रवि थे ॥

ऋषियों में शुक्ल देव सहस्र थे, तारा में ध्रुव तारे।

फूलों में थे कमल फूल थे, गुण थे यारे यारे ॥

गीता सी शाश्वत बातें थी—उस अदभुत नेता में।

शायद यहाँ मिला द्वापर में और यही प्रेता में ॥

(जनुताप, सग २४ पृ० ४२०)

इस महान देश को महान नेतृत्व सदैव प्राप्त होता रहा है किन्तु नेहरू जी के नेतृत्व का बलक्षण्य उसका आयात विस्तृति और एकत्र छत्रता में है। उन्होंने पराधीन भारत के स्वाधीनता आन्दोलन और स्वाधीन भारत के निर्माणों में मुख्य स्वरूप दोनों का ही अद्वितीय नायकत्व किया। स्वातन्त्र्योत्तर भारत के

धूढात प्रशासक के रूप में उनकी नीतिमन्तता और दूरदर्शिता आज भी राष्ट्र को फलदायी सिद्ध हो रही है। नेहरू जी ने नेता के रूप में राष्ट्र को जो नारा सौंपा, वह भी उनके चरित्र की महाधना का परिचयक है। यह नारा था— ‘आराम हाराम है’। वस्तुतः एक निर्माणोन्मुख राष्ट्र के लिये इस से श्रेष्ठ प्रेरक संदेश हो भी क्या सकता था? मरणोपरांत नेहरू जी की ‘वसीयत’, जिसमें उन्होंने शवदाह के पश्चात् मस्मी को गंगा में प्रवाहित करने तथा खेतों पर बखेरन की इच्छा प्रगट की थी, इस तथ्य को ज्ञाप्ति करती है कि इस देश की पुण्य सलिला मागीरथी और बीरप्रसू मृत्तिका के प्रति उनका अनन्य अनुराग था। ‘वसीयत’ का एक एक शब्द प० जवाहर लाल नेहरू के राष्ट्रप्रेम, उच्च सस्कारशीलता और सांस्कृतिक उदात्त भाव का द्योतक है। नेहरू जी की जीवन चर्या, अभिर्घचियाँ चिन्तन पद्धति, कृतित्व वशिष्ट्य और व्यक्तित्व वैविध्य उनके जीवन को पुराण गाथा वं समान व्यापक, विराट और विस्तारपूर्ण सिद्ध करते हैं। ऐसे महिमामय व्यक्तित्व पर महाकाव्य सृजन कर श्री रघुवीरशरण मिश्र ने निश्चयत श्लाघनीय महाप्रयास किया है।

‘मानवेद्र’ महाकाव्य है, इतिहास ग्रन्थ नहीं। ‘मानवेद्र’ भाव सदीप्त प्रबन्धकाव्य कृति है शुष्क तथ्य सकुल आत्मकथा या जीवन चरित नहीं। फिर भी महाकाव्यकार का कौशल इस दृष्टि से अनुमन्धेय है कि उसने इतिहास के घटनात्मक सत्यां आत्मकथा के तथ्यों और प्रबन्धकाव्य शली की विगेपताओं का अदभुत सामंजस्य ‘मानवेद्र’ की संरचना में प्रदर्शित किया है। ‘मानवेद्र’ की भाषा में भावसम्प्रेषण के अतिरिक्त प्रसंगानुरूल शब्द विधान, उक्ति वचिष्य लाक्षणिक प्रयोग शीलता और अलङ्कृति सबत्र द्रष्टव्य है। शैलीगत प्रयोगों का वैविध्य मिश्र जी की रचना-सामग्र्य का ही व्यञ्जक है। काव्य में उँगलियों पर गिने जाने लायक स्थान ही ऐसे हैं जहाँ इतिवृत्तात्मक विरसता, भाषा में सपाट-बयानी और छंदा में लुका-नना का अनिरीकन व्यामाह रचनात्मक शयिल्य को प्रगट करता है। नेहरू जी की वसीयत एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्मृति सन्दर्भ है किन्तु कवि ने उसका उल्लेख तक काव्य में नहीं किया है और पाठक को यह खटकता है। ध्रुवो मृत्यु शीपक ३२वें सग के पश्चात् ‘परिवसन’ और नेप पुरुष शीपक ३६वें और ४०वें सग कवि ने दार्शनिक अनुचिन्तन को भल ही उजागर करें किन्तु क्याक्रम सं असम्बद्ध हैं। अल्छा होता यदि कवि ने नेहरू जी की ‘वसीयत’ का अपने ढंग से गगनचूँच करके लोकनायक की उस अन्तिम कामना की भाव-सम्पूर्ति की होती कि जिसमें उन्होंने अपनी धूल से गंगा की गोमू को मरन तथा खेतों जगलों में सिखर कर भारती

यसुपरा के पार्ष्व अस्तित्व में विलीन होने की अन्त्य आकाशा प्रगल्भी थी। काव्य के अन्तिम राग (दोष पुरण) की रचना में कवि का मतव्य नेहरू जी को नर के रूप में नारायण का अर्थ सिद्ध कर उनकी अतिमानवीय शक्तियों को प्रमाणित करना रहा है, किन्तु कवि की यह श्रद्धास्पन्नावदृष्टि विज्ञान-युग के प्रबुद्ध पाठक वर्ग की तन्मूलक जिज्ञासाओं और विवेक सम्मत आस्थाओं को कितना आश्वस्त कर सकेगी, यह चिन्तनीय है ? प्रश्नचिह्नो के अन्तराल में उमरे इन कतिपय रचनात्मक नृति सकेतो के अतिरिक्त अपने सम्पूर्ण रूप में मानवेन्द्र एक श्रेष्ठकाव्यवृत्ति है। मानवेन्द्र के महाआकार में काव्यनिबद्ध होकर लोकनायक नेहरू के विराट् व्यक्तित्व ने जिस महानता और महापता का वरण किया है, यह उन्हें काव्य-कला के चिरन्तन क्षितिज पर मृत्यु जयी बना कर अमरत्व प्रदान करने वाली है। इस महान लक्ष्य सिद्धि की दृष्टि से 'मानवेन्द्र' सर्वथा अभिनन्दनीय महाकाव्य-वृत्ति है।

**‘श्री गुरु गोविन्दसिंह’ महाकाव्य
आत्मोत्सर्ग का जीवन्त समाख्यान**



१७

‘श्री गुरु गोविन्दसिंह’ महाकाव्य आत्मोत्सर्ग का जीवन्त आख्यान

‘श्री गुरु गोविन्द सिंह’ महाकाव्य की सजन प्रेरणा के मूल स्रोत हैं—महत् चरित्र सृष्टि और जातीय जीवन को स्थापित करने की अदम्य आकांक्षा । गुरु गाविन्द सिंह का गौरवाचित चरित्र मध्ययुगीन भारतीय इतिहास का उत्सवमय जीवन्त आख्यान है । राष्ट्रीय गौरव, जातीय स्वामिमान, स्वदेश प्रेम, अनन्त शौर्य, अनुलनीय पराक्रम और रक्तिम बलिदान गुरु गाविन्द के यशस्वी चरित्र की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं । विदेशी शासकों के अत्याचारों से सन्नत और पदगलित हिन्दू जाति को शस्त्र और शास्त्र उठाने का आह्वान कर गुरु गाविन्द ने जातीय अभ्युत्थान के निःस अप्रतिम अभियान का कुशल नेतृत्व किया था उसके कारण उनका चरित्र निश्चयन महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण है । ‘झौंसी की रानी’ प्रबन्धकाव्य के रचयिता स्वर्गीय श्री श्याम नारायण प्रसाद न समकालीन समाज और जीवन चेतना के भतिशील स्तरों का स्थापन करते हुए उसके परिप्रेक्ष्य में गुरु गाविन्द के चरित्र की महायता का आलोच्य महाकाव्य के माध्यम से महत्वाकन करके सचमुच श्लाघनीय प्रयास किया है ।

वाव्यारम्भ में ही कवि ने नवाब के अत्याचारा और नृशंसाशा का वर्णन करते हुए कहा है—

अन्ना हो अकबर की जय में, सउ ये भूक जात,
मुली रह परवरन्गार नय स ये समो भनान ।
अनाचार से पवन प्रकम्पित पथ पर रुक जाता था,
अम्बर भी उग दम नवाब के, सम्मुख भूक जाता था ॥

×

×

×

तन से तोड़ जोड़ हिन्दू, शिला छिपाते जाते,
माला डार गले का चमन, टीका त्वरित मिटाते ।

(सग १, पृ० १६)

नवाब के आतंक के कारण हर हर महादेव की ध्वनि मौन हो गई थी । गुरद्वारों की प्रभा पाप का लोहा मान चुकी थी । ऐसे वातावरण में अवतरित हुए—गुप्त गोविन्द । वे बायात्वास्था से ही निर्भीक दृढ़चेता और स्वामिमानी थे । नवाब की सवारी को आती देख जहाँ सामान्य जनमन में सन्नास व्याप्त हो जाता था, वहाँ बालक गोविन्द अपनी टोली सहित राजमाग अवरुद्ध कर डट जाते थे । नवाब के सैनिकों की घमकियों के प्रत्युत्तर में वे कहते—

हमने जीना भी सीखा है, मरना भी सीखा है ।
जाति धम के लिए अगारे पर चलना सीखा है ॥

× × ×

यहाँ मौन की छाती पर भी हस हँस कर चढना है ।
वैठ हुतासन के आसन पर ग्रथ सदा पढना है ॥

(सग १, पृ० १६)

गुरु गोविन्दसिंह के आविर्भावकाल की परिस्थितियाँ अत्यन्त शोचनीय थी । अन्त से दिगन्त तक सधन अधम का निवास था । स्वजातीय गौरव का भाव नष्टप्राय हो चुका था । स्वधम का प्रकाश क्रूर शासकों के अमय रूपी तिमिर में अन्तभूत हो गया था । तत्कालीन जनजीवन और समाज की दुदशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—

अह कहीं विलस रही स्वदेश की दुलारिया ।
छिपी कहीं कही प्रभो ! सतीत्व की कटारिया ॥
यग की सुरभि न आज योम बीच खेलती ।
भक्ति की लहर न आज कण्ठ कण्ठ खेलती ॥
विलस रही ब्रजागना न कृष्ण आज बोलते ।
मुमूष है पडा अवध न राम आँस खोलते ॥
भला किसे बूँ कि लाल ! लाज देश की बचा ।
भना किसे बूँ शिला स्वजाति की अमय बचा ॥ '

(सग २ पृ० २६)

ब्राह्मणों का कलमा पढ़ने के लिये बाध्य किया जाता था। (सर्ग ४, पृ० ४१) स्थिति यह हा गई थी कि वे स्वधम त्याग कर पुराण की जगह कुरान वाचने का विवश थे। युवा वग जातीय स्वाभिमान का परित्याग कर मुगलों के आगे नतमस्तक हो गया था। सम्पूर्ण समाज प्रशासकीय क्रोधानल में विदग्ध था। वातावरण इतना भयावह और दारुण हो गया था कि कवि पश्चाताप भरे स्वर में कहता है कि—

‘न एक इंच भूमि है जो भवत्व सय का पले,
न एक इंच भूमि है जो दीप धम का जले।

× × ×
ब्रती स्वधम का प्रखर दिनेश क्षेप हो गया।”
यती अनल असत्य मोह राख बीच सो गया।”

(सर्ग ११, पृ० १०५)

इही परिस्थितियों में गुरु तेगबहादुर ने गुरुद्वारे में एकत्र सहस्रो सिक्खा से स्वयं और जातीय स्वाभिमान के लिए ओजस्वी वाणी में आह्वान किया। उ हाने कहा कि मुगल शासक का यह एलान कि पृथ्वी पर एक ही धम होगा और कुरान पढ़ने से ही मगन होगा, राज्यमोह है। यह क्रूर और नृशत नृप का स्वर है धम का उद्घोष नहीं। हमें इस विडम्बना के प्लावन से माँ भारत को बचाना है। हम इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु पुरुषाय का वरण करना है। हम हलवाले के बन नहीं जो गाली और मार सहकर चलते रहें। न ही हम काबुल के कबूतर हैं जिन्हें पापी डकार जाए। हम उस अगस्त ऋषि की संतान हैं जिसने गण्डुलि पर रखकर अगम मिधु का पान कर लिया। जाति धम के लिए हमारे पूर्वजों ने अस्थिदान किया था सत्यरक्षण के लिए दाम के हाथों विक्रम हुए थे। अतः हमें अब प्राणों का मोह त्याग कर धम की ध्वजा को फहराना है—

तो अब प्राण मोह को त्यागी बफन बांध लो सिर पर।
और उडा दो ध्वजा धम की नम मस्तक पर फर फर ॥
जब तक सतलज और भेजलम की नदियाँ मे है पानी।
तब तक जाति धम पर करते चलो बिहम बुकानी ॥

(सर्ग ३, पृ० ३४)

गुरु तेग बहादुर ने स्वधम रक्षण हेतु अपने पाचों प्यारे शिष्यों सहित प्रयाण किया। वहाँ उन्हें प्रलाभन और भय से विचलित करने के सभी

शासकीय प्रयास निष्फल हो गए। औरगजेब की भरी सभा में गुरु तेगबहादुर ने निर्भीक स्वर में कहा—

“शाह ! सोचने हो तेरी लोहित कटार मुझे,
सत श्री अकाल के सुप्रय से हटाएंगी ।
शास्त्र का विजेता कभी शास्त्र नहीं जान पाया,
मौन क्या सुप्रय से कुरान पढ़वाएंगी ॥”

(सग ६, पृ० ५७)

और अंततः गुरु तेगबहादुर ने हँसने हँसने प्राणोत्सर्ग कर दिया, किन्तु इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। अपने पिता के शहीद हो जान पर गुरु गोबिन्दसिंह ने सम्पूर्ण हिंदू जाति को राय भर स्वर में स्वघम रक्षण हेतु आह्वान किया। उन्होंने कहा—

‘क्या यह जाति कभी झुकेगी मदनो का आघात ?
बचक उस फगीश के सिर पर मारो पवि सम लात ॥’

(सग ७, पृ० ६६)

गुरु गोबिन्द ने अपने सन्देश में कहा कि सभी वीर शहीदी भेष धारण कर लें। भारत में कसपूत कुमुमित कामिनी दुलार का त्याग कर बुपिन कुठार धारण कर। अब प्रत्येक मदन को शस्त्रालय देवालयों को बलिबेदी तथा गुरुद्वारी को समरागण में बदल दो। उन्होंने वीरोचित स्वर में कहा—

‘जोना उसने सीरा जो पढा मृत्यु इतिहास ।
जिसने देखा है विभीषिका का करवाल विलास ॥’

(सग ७ पृ० ६६)

गुरु गोबिन्द ने इतिहास पुरुषों का स्मरण दिलाते हुए कहा कि—

सूयबद्र वश क सपूत । तुम प्रकाश हो,
असत्य मोह के लिए बने प्रलय विलास हो ।

× × ×
जवान । राम कृष्ण के पवित्र रक्त रूप हो
महान चन्द्रगुप्त औ अशोक व स्मर्य हा ॥

(सग ११ पृ० १०६)

गुरु गोबिन्दसिंह ने कहा कि आज देवताओं का नृत्य गान व्रतविधान या समाधि ध्यान से नहीं रिझाया जा सकता। व सुद्ध गान से ही रोझेंगे—

“नहीं हैं देव रीसते प्रसून नृत्य गान से,
नहीं हैं देव रीसते अभुक्त व्रन विधान से ।
नहीं हैं देव रीझते समाधि और ध्यान से,
सही है देव रीझते हैं, वीर युद्ध गान से ॥”

(सग ११, पृ० १०७)

फिर क्या था ? गुरु गोविन्द के उदबोधनात्मक संदेश की जन मन पर मयकर प्रतिक्रिया हुई । सम्पूर्ण जन जीवन दावानल के समान भमक उठा । असहाय और मलीन मन वाले लोगो ने शहीदी वाना पहन कर आत्मोत्सग के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर दिया—

“सुन गुरु का उपदेश समुज्वल, सब मे जागा नूतन ज्ञान ।

× × ×
छाड़ शक्ति का सम्बल जो जन, बटे थे असहाय मलीन ।

× × ×
वे जन बना शहीदी वाना, उठा लिया कर मे करवाल ।

ज्वालामुखी हृदय मे उनके, भमका शीघ्र हुताशन ज्वाल ॥’

(सग ८, पृ० ७६, ७७)

कुछ श्रद्धालु भक्तजना ने गुरु गोविन्द देव को मणि वगन भेंट किए । कि तु गुरु ने विहस कर कहा कि मुझे मणिकगन की भेंट या फूला का उपहार नहीं वरन मलच्छ रक्त के तृपित चमकीले कटार चाहिए । माताएँ अपने पुत्रो की भेंट दें । शक्ति स्वरूपा गुल ललनाएँ अपने पतियो के वर मे मुक्त कृपाण देकर तथा बहनें भुक्ति मन से भाइया के सगर साज सजा कर विजय वजन्ती वरण वरन के लिए विदा करें । गुरु गोविन्द के इस आह्वान का परिणाम यह हुआ कि—

रणभेरी बज उठी गुरु की, क्षत्रियत्व का ध्वारा तज,
जिसके सम्मुख अनाचार का, भाग्य हुआ धूमिल निस्तन ॥

(सग ८, पृ० ७६)

गाँव गाँव और नगर नगर मे हथियार बनन लग । सम्पूर्ण पचनद प्रदेश स्वाभिमान मे प्रमत्त होकर प्रतिशोध की अग्नि से णिव के त्रिनत्र के समान उत्सप्त हो गया । गुरु गोविन्द का रात दिन नए नए जस्व शस्त्र भेंट किए जान लग । गुरु ने उच्च शल शिखरा के समान प्रस्तरमय कोना का निमाण कराया ।

अपनी युद्ध सज्जा और जातीय एकता का प्रखर रूप देखकर गुरु गोविन्दसिंह गद्गद् हो गए—

शस्त्रागार बने गुरुद्वारे, ध्वजा बनी रणक्षेत्र निशान ।
हुए रौद्र रस म मतवाले, बच्चे, बूढ़े और जवान ॥
रौद्र रूप गुरुदेव हो गए, गद् गद् देरा जाति को एक ।
ऋद्धि सिद्धि आशा मण्डप में करने लगी मुक्ति अभिप्रेक ॥

(सग ८, पृ० ८०)

प्रस्तुत काव्य के द्वादश सग में गुरु गोविन्द के दलबल सहित प्रयाण का दृश्य बड़ा ही रोमांचक है। सिक्ख सेनानी सिंहपूत और बालदूत के समान काल का वक्ष चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे। उनका लक्ष्य एक ही था कि—

‘योम म लस अमय फूल सा हसे अमय ।
कामधेनु हो अमय, सामगान हो अमय ॥

(सग १२, पृ० ११२)

सिक्ख सनानियों का नेतृत्व धम सेतु बने हुए गुरु गोविन्द कर रहे थे। गुरु गोविन्द श्याम तुरग पर चढे हुए थे जो वायु वेग सा बढ रहा था। वे कहते जा रहे थे कि देश के जवानों! धम की नाव का पार लगाने के लिए—

‘सात सिंधु सोख लो, आसमान रोक लो ।
अरि प्रवाह केर दो, मृत्यु द्वार धेर लो ॥’

(सग १२ पृ० ११७)

और वे वीर— बोले सो निहाल, सत्त थी अकाल कहते हुए शत्रुवाहिनी पर टूट पडे। युद्ध क्षेत्र में विनाश का भयकर दृश्य उपस्थित था। अरि वाहिनी प्रकम्पिता हो त्राहि त्राहि कर उठी। काय के चतुदश सग में मुगल सनिकों और सिक्ख सनानियों के मध्य हुए सगर का लोमहर्षक वणन हुआ है। कवि के शब्दों में—

रण द्विरद घर शुण्ड से नर मूड को नम में नचाते
फूक कर भूधर सदृश्य दृग बंद कर रद बडकडात ।
शुडहीन द्विरद कही खा मार भू पर तडफडाता
मेदिनी घसती प्रकम्पित शल डगमग लडलडाता ॥

× × ×

रुण्ड मुण्ड वितुण्ड से थी मदिनी तिल भर न खाली,
मौन निष्प्रभ थ पडे थी सूखती व्रण रक्त लाली ॥

(सग १४, पृ० १२७)

युद्ध क्षेत्र में भी गुरु गोविन्द सिंह सेनानियों को उत्सव के लिए आह्वान करते हुए कह रहे थे—

“एक एक कदम शहीदो । तीयराज समान होगा,
मेदिनी अपवग होगी, वीर गति का भान होगा ।

× × ×

जन्म के ही साथ वीरो । मृत्यु का इतिहास बनना,
कर्म के ही साथ धीरो । स्वत्व का इतिहास बनता ॥’

(सर्ग १४, पृ० १३५)

अतः गुरु के वाण से सेनापति अमरचन्द दीवान का प्रागान्त हुआ और मुगल सेना उल्टी गई । सिक्ख सेना की घम ध्वजा विजय गव की गरिमा से फहराने लगी ।

आलाच्य महाकाव्य के उत्सवमय आख्यान का तृतीय सोपान गुरु गोविन्द के पतहसिंह और जोरावर नामक दो पुत्रों के अनुपम बलिदान से अनुरजित है । जयचन्द के समान कुपित जाति द्रोही गण ने प्रलाम्बन में बार-बार छद्म पृथक वीर जननी और दाना लालों का मुगलों का बन्दी बनवा दिया । मौल वियो ने घम परिवर्तन के लिए दोनों बालकों को असह्य प्रलोभन और प्रतारणाएँ दीं, किंतु वे वीर बालक अपनी घम निष्ठा और जातीय स्वामिमान के प्रति अडिग आस्था धारण किए रहे । उन्होंने निर्भीक स्वर में शाह से कहा—

“जो जनमा, उमको मरना है शाह । तनिक परवाह नहीं ।

चाहे कीलो पर सुलवा दो, इसकी कुछ भी आह नहीं ॥

जन्मघुटी के साथ जननि ने, हमको घम पिलाया है ।

जाति घम पर तुम मर मिटना, इसका पाठ पढाया है ॥

(सर्ग १७, पृ० १५८)

और जन्मतः जना वीर बानका को जिंदा लोवारों में चिनवा दिया गया । उत्सवमयी गाथाओं के इतिहास में यह अदभुत प्रकरण था । वक्त्र के शब्दों में—

‘वे दोनों माँ के सपूत चुन दिए गए दीवालों में ।

घम घम तेज घमक कर जागा, किसलय की करवाला मैं ॥

× × ×

बड़ा जाति का मान शहीदों, बलिबेनी मुसकाना म ।

भोगित सिन्धु अचना करता, जगो धम ! बलिदानो म ॥”

(सग १७, पृ० १६२)

दोनो पुत्रों के आत्मोत्सर्ग से गुरु गोविन्द क मन म उमरे धोम ने एक अन्तर्द्वार को जन्म दिया । वे सोचने लगे कि—

‘पिता चले गए स्वधम बुद्ध दीप धारने

चले गए सपूत चार आरती उगारते ।

हँसी जननी अनन्त म सुपथ को सवारती,

तो एक ओर धम है, औ एक ओर भारती ॥’

(सग १६ पृ० १७६)

किन्तु अन्त म वे इसी निणय पर पहुँच कि स्वजाति और स्वधम रक्षण हेतु सधपरत रहना ही होगा । अपने तप प्रताप से जाति का उद्धार करना होगा । उन्होंने दृढ संकल्प किया कि—

बिना न तप प्रताप स स्वदेश है कमी जगा

बिना न व्रत विधान से असत्य मोह है मगा ।

बिना न खडग मान से प्रतान मान का तना,

बिना न शीशदान से विधान स्वत्व का बना ॥

(सग १६, पृ० १८७)

इसके पश्चात् गुरु गोविन्द ने बेश बदल कर देश भ्रमण किया । अपनी ओजस्वी घाणो से उहाने जातीय जन जीवन म नवीन चेतना का संचार किया । उन्होंने माधवदास को (जो विरक्त हो गए थे) देश की दुदशा से अवगत करात हुए कहा कि देश म यवनो का तूफान थाया हुआ है । उनके उत्काषात से अहर्निश आय भवन भस्मीभूत हो रहे हैं । काशी विश्वनाथ के धाम को ध्वस्त करके मसजिदों का निर्माण किया जा रहा है । सामनाथ अनाथ हो गए हैं । यन्त्रियों पर घास उग थायी है । म्दि दरों मे उत्तूक निवास करते हैं ग्रथ और पुराण जलाए जा रहे हैं । और तुम वश की आन और धम का मान भूतकर एकांतवास कर रह हा । गुरु गोविन्द ने प्रेरक स्वर म कहा—

‘यदि स्वदश के सारे धीर, जगपीडा स बलात् अधीर ।

पाकर जगत म एकांत, ध्यान लगाकर दून् शानि ॥

सीमातिनी वीरता तार किसके लिए सजावे गात ?
 कौन करे सिद्धूरी दान ? जिससे हो उसका सम्मान ॥
 कौन करेगा शख निनाद कसे घूम नम प्रासाद ?
 कौन पढ़ेगा श्रुति का मन्त्र ? कौन करेगा जाति स्वतन्त्र ॥”

(सर्ग २२, पृ० २००)

गुरु गोविन्द के इस प्रेरक प्रबोधन से माधवदास ने वैराग्य का परित्याग कर ग्रन्थ और खड्ग धारण किया और बन्दा नाम से देश धम और जाति रक्षण के कायम जुट गए। इस घटना के कुछ समय पश्चात् दो पठान खालसा का भेष धारण कर आए और साते हुए गुरु गोविन्द के वध पर खड्ग प्रहार किया। गुरु ने जागकर अपनी अस्ति के एक ही बार से उनके टुकड़े कर दिए। वक्ष का घाव अभी भरा भी नहीं था कि उन्होंने पांच मन भार वाले शरासन की प्रत्यक्षा पर अपने भुजबल से बाण चढाकर मत्त जना के मन में जातीय स्वाभिमान का भाव जागृत किया। इस शौर्य प्रदर्शन के कारण उनके हृदय का टाका टूटकर फट गया और वीर बन्ग को ग्रन्थ रक्षा का गुरतर दायित्व सौंपकर सत्यधामवासी हो गए।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तप पूत कमयोगी और महान् जननायक श्री गुरु गोविन्द सिंह का जीवन चरित्र सच मुच उत्सर्ग का जीवन्त आर्यान है। धम, जाति और राष्ट्र रक्षण के लिए अपने पिता गुरु तेग बहादुर के बलिदान से वे स्वयं और उनके पुत्र ही अनुप्रेरित नहीं हुए बरन् सम्पूर्ण जातीय जीवन ही आत्मोत्सर्ग से आन्दोलित हो गया। लाकमगल की पूत भावना, स्वजातीय गौरव के अन्मुत्थान की अदम्य आकांक्षा, स्वधम पालन की अनन्य निष्ठा और राष्ट्र सेवा का अखण्ड सकल्प गुरु गोविन्द के चरित्र की महनीय विभूतिया हैं। इन्हीं के कारण गुरु गोविन्द का चरित्र एक साथ युगपुरुष महापुरुष और इतिहास पुरुष की उत्तम भूमि काष्ठा पर अधिष्ठित हाता है। उन्होंने अपने समकालीन हतचेतन जनमानस और परमुत्सापेक्षी समाज को धम परायणता, आत्म जाग्रति और राष्ट्रीय-गौरव की भावना से आन्दोलित करने के लिए अजम लाकोत्तर साहस और अनन्त शौर्य का दिग्दर्शन और अद्वितीय बलिदान किया, उसके कारण गुरु गोविन्दसिंह भारतीय इतिहास चेतना के अवच्छिन्न अंग बन गए हैं।

गुरु गोविन्द सिंह की चारित्रिक गरिमा का एक आयाम उनका कवि रूप भी है। आलोच्य महाकाव्य के भूमिका लक्षक डा० हरमजनसिंह के शब्दों में—'गुरु गोविन्द सिंह हिंदी काव्यधारा के प्रथम सचेत राष्ट्रीय कवि हैं।

हिन्दी वाङ्मय में उन्होंने जो विद्रोहाग्नि सुलगाई, उस उन्हीं के आश्रित बावन कवियों ने प्रचण्डतर रूप देने का यत्न किया। गुरु गाबिर्दसिंह की सुनिर्दिष्ट प्रेरणा के फलस्वरूप वीरकवम और वीरवाध्य समानांतर, जीवतधाराओं के रूप में प्रवाहित होने रहे।^१ इसी सभ में डा० महीपसिंह का मत्तय उद्धरणिय है कि—“लोगों की दुबलतापूर्ण भास्यति में परिवर्तन लाने के लिए गुरु गोबिन्दसिंह ने जिस उपास्यदेव की कल्पना की वह भक्तिकालीन सतो का सुन्दर कोमल और मधुर रूप वाला ईश्वर नहीं था। उन्होंने ईश्वर के उस रूप को प्रधानता दी, जो दुष्टों का दमन करने वाला रूप है। गुरु गोबिन्दसिंह के साहित्य में परमात्मा के लिए अगणित नामों का प्रयोग हुआ है परन्तु उन्हे काल नाम सर्वाधिक प्रिय था। काल को उन्होंने अकाल, सवकाल, महाकाल श्रीकाल आदि नामों से पुकारा। काल के रूप में उन्होंने ईश्वर के वीर और उग्र रूप की प्रतिष्ठा की। डमरू वजात दृष्ट फणिधर के समान फुफकारत हुए बाध के समान दहाडते दामिनी के समान हँसते, रक्त पीने हुए, अष्टायुध धारण किए सिंह पर सवार अपनी दाढ में समी को चबाते हुए महाकाल या महाकावी के रूप का चित्रण उन्होंने अपन साहित्य में अनेक स्थानों पर किया है।^२ इस प्रकार कवि के रूप में गुरु गोबिन्दसिंह जी का योग महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। वस्तुतः काय और शीय तथा कला चेतना और पराक्रम का सामञ्जस्य गुरु गोबिन्दसिंह जी के चरित्र का बलक्षय्य चातित करते हैं।

निष्कपत यह कहा जा सकता है कि कवि ने गुरु गोबिन्दसिंह के महान चरित्र को महाकाव्य प्रणयन का माध्यम बनाकर अपनी लेखनी को धर दिया है। गुरु गोबिन्दसिंह के महत् चरित्र की अवतारणा के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य में मत्तयुगीन इतिहास का ममस्पर्शी समारधान तत्कालीन लोकमानस की यजना राष्ट्रीय चेतना के विकास का स्पाकन धर्मोत्थान के पुनीत सकल्पा और स्वजातीय मरक्षण के महाप्रयासों का विशद निरूपण होने के कारण श्री गुरु गाबिन्दसिंह का यग्रथ वास्तविक ज्यों में महाकाव्य और उसका रचयिता महाकवि अभिधान का अधिकारी है।

^१ श्री गुरु गोबिन्दसिंह—भूमिका, पृ० ६

^२ घमयुग—१६ अप्रैल १९७२ पृ० २१, (डा० महीपसिंह के लेख से उद्धृत)

‘रामराज्य’ महाकाव्य

रामकथा के परिवेश में विश्वजनीन शासनादर्शों की व्याख्या

हिंदी रामकाव्य परम्परा की आख्यायिका का सम्बन्ध प्रमुख रूप से आदि कवि वाल्मीकि वृत्त रामायण से है। रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य-साधना के अमर प्रतीक हैं। यह दोनों ग्रंथ सहस्राब्दियों से काव्य रचना की प्रेरणा के अक्षय स्रोत रहे हैं। वैसे रामकथा के प्राचीन रूप की उपलब्धि वैदिक वाग्मय से ही होने लगती है। रामकथा की प्राचीनता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि एतद्विषय गाथाओं और उपाख्यानो की मृष्टि छठी शताब्दी ई० पू० से ही होने लगी थी।^१ प्रसार की दृष्टि से रामकथा विश्वव्याप्त है।^२ किन्तु रामकथा का सम्यक् स्वरूप प्रदान करने का समस्त श्रेय आदि कवि को ही है। विद्वानों का मत है कि—“ विश्व साहित्य के इतिहास में शायद ही किसी अन्य कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जो प्रभाव की दृष्टि से भारत के आदि कवि वाल्मीकि की तुलना कर सकें।^३ सृष्टि में रामकाव्य के कवियों ने तो ‘रामायण’ को आधार-ग्रंथ के रूप में ग्रहण किया ही है। हिंदी के रामकाव्य रचयिताओं ने प्रेरणा प्राप्त की है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रंथ ‘रामचरित मानस’ के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने भी आदि कवि के ऋण को सामार स्वीकार किया है। तुलसी के उपरान्त हिंदी की सम्पूर्ण रामकाव्य परम्परा ने

^१ हिंदी साहित्य कोश, पृ० ६४१

^२ डा० कामिल बुल्क रामकथा उत्पत्ति और विकास

^३ हिंदी साहित्य कोश, पृ० ६४६

रामायण को कथात्मक आधार के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी में मानस की रचना के अनन्तर रामकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है।^५

राम के आख्यान को लेकर वर्तमान युग में अनेक काव्यों की रचना हुई है। आधुनिक युग के बहुचर्चित प्रबंधकाव्यों में 'रामरसायन 'श्रीरामचन्द्रोदय' रामचरित धि तामणि, कोशल विशोर, 'साकेत वदेही-वनवास, साकेत सत, उर्मिला' 'ककेयी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में राम का चरित्र और वस्तु यह भारतीय जन जीवन की चेतना में आत्मसात हो गया है। राम का व्यक्तित्व भारतीय सृष्टि की अनिवाय विशेषताओं (यथा सत्त्व, शील मर्यादा आस्था पुरुषार्थ) का सगम स्थल है। राम के चरित्र में युग जीवन की आकांक्षाओं को परितृप्त करने और मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करने की अमोघ शक्ति विद्यमान है। इसीलिए राम की जीवन गाथा रामकाव्यों का प्रतिपाद्य रहा है। अधिकांश काव्यों में रामचरितमानस की भाँति ही कथा का विकास हुआ है। हा, कथा के प्रस्तुतीकरण और निर्वाह सभी में राम काव्यकारों का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न भौतिक रहा है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि चरित्र विश्लेषण को केन्द्र बिन्दु मानकर इन काव्यों में राम कथा का परिधि विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए, 'साकेत, साकेत सन्त, 'उर्मिला वदेही-वनवास रावण 'ककेयी आदि काव्यों की रचना इनके पात्रों के चरित्र उत्कृष्ट के लिए हुई है। आलोच्य महाकाव्य (रामराज्य) इसी परम्परा की रचना है। किन्तु प्रतिपाद्य की दृष्टि से डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र के रामराज्य महाकाव्य का विशेष महत्त्व है। राज्य की भाँति रामराज्य की परिकल्पना भी बहुत प्राचीन है। रामराज्य शब्द आदर्श राष्ट्र और शासन व्यवस्था का सूचक है। वाल्मीकि और तुलसी के ग्रंथों में रामराज्य की व्यवस्था के जिस रूप का अंकन हुआ है वह शासन-तंत्रों के इतिहास की अदभुत और अनोखी वस्तु है। डॉ० शम्भूनाथसिंह का मत है—“ तुलसी ने रामराज्य की जो कल्पना की है, उसी को महात्मा गांधी ने लोकतंत्र और स्वातन्त्र्य के युग में भी अपना आदर्श और लक्ष्य निश्चित किया।^६ विद्वानों ने रामचरितमानस का मुख्य काव्य और फलाम रामराज्य ही माना है। मानस के महत्त काव्य का उल्लेख करते हुए डॉ० शम्भूनाथसिंह ने लिखा है कि— रामराज्य की स्थापना को तुलसी ने कितना महत्त्व दिया है, इसका

* हिन्दी साहित्य कोण हिन्दी राम साहित्य खण्ड पृ० ८६३-६६

५ - शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का उद्भव और विकास पृ० ५६०

अनुमान इसी में किया जा सकता है कि रामराज्य की सुख-सम्पदा का वर्णन वाल्मीकिरामायण (उत्तर काण्ड सग ६६) और अध्यात्मरामायण (युद्ध काण्ड २६) में केवल कुछ ही छंदों में किया है, जबकि मानस में उसका वर्णन ११ दोहों (कडवको) में हुआ है। अतः क्या की कद्रीय घटना की महानता की दृष्टि से राम रावण युद्ध, रावण-वध और रामराज्य की स्थापना ही भागस का महत्त्वपूर्ण काव्य है। अस्तु—

रामराज्य की धारणा भारतीय सभृति और साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपपत्ति रही है। डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र ने इसी महत्त्वपूर्णता को ‘रामराज्य’ महाकाव्य में साकार करने का प्रयास किया है। आज के विश्व जीवन की अनेक विषम समस्याओं में आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना भी एक है। सत्ता की सभी शासन प्रणालियों और राज्य की व्यवस्थाओं में लोकतंत्र का आज अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। किन्तु जनहित की भावना, लोकमंगल की साधना, सामान्य जन की सुख समृद्धि का संचयन और मानव मूल्यों का संरक्षण इस व्यवस्था के द्वारा कहाँ तक हो रहा है, आज विचारणीय है। हम विश्वसरकार (World Government) या विश्वराज्य की कल्पना कर रहे हैं। किन्तु राष्ट्रराज्यों का रूप अव्यवस्थित है। आन्दोलन और श्रान्तियों के द्वारा सरकारों के तख्ते उलट दिये जाते हैं। व्यक्ति समूह के हितों की अवहेलना कर रहा है और बहुसंख्यकों का शोषण कर रहा है। शासक और शासितों में संघर्ष चल रहा है। व्यवस्था में सर्वत्र ही दमन, शोषण, स्वाध लिप्सा, प्रयचना पडय और भ्रष्टाचार व्याप्त है। जाधिर क्यों? जीवन मूल्यों के विघटन के कारण, राज्यादर्शों के पतन के कारण, शासक और शासित में भाव-साम्य के अभाव के कारण या सत्ताधारी की दुर्भोति के कारण? ऐसे वातावरण में रामराज्य जैसे काव्यों की रचना निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। ऐसे काव्य प्रेरणा और प्रोत्साहन की वस्तु हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ‘रामराज्य’ महाकाव्य वर्तमान जीवन की समस्याओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष समाधान प्रस्तुत करता है? क्या उसमें व्यवस्थाओं के व्यावहारिक आदर्श रूप का अंकन हुआ है? क्या ‘रामराज्य’ की रचना सच्चे मानों में रामकाव्य परम्परा को विकसित करने में समर्थ हुई है? अथवा क्या प्रस्तुत सृजन हिन्दी काव्य जगत की उपलब्धि है? इन्हीं प्रश्नों में रामराज्य महाकाव्य का मूल्यांकन हमें अभीष्ट है।

‘रामराज्य’ के सृजन की मूल प्रेरणा कवि को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई थी। काव्य रचना के उद्देश्य में जन समुदाय का कल्याण

और हिन्दी के सीमाव्य की श्रीवृद्धि दो प्रमुख कारण थे, जैसा कि कवि ने इमे काव्य के भूमिका भाग में स्वयं स्वीकार भी किया है। निम्न ही प्रेरणा और लक्ष्य दोनों महान् हैं। रामराज्य के रचयिता ने इन लक्ष्यों को प्राप्त भी किया है।

रामराज्य की धारणा यद्यपि कल्पित विचारणा (Utopia) है। किंतु रामकथा की ऐतिहासिकता उसे प्रामाणिकता प्रदान करती है। अतः 'रामराज्य' के प्रणेता ने रामकथा को ही ग्रहण किया है। कथा का प्रारम्भ उस स्थल से होता है जबकि निवासित राम गुप्त के माय रथ पर बठकर बड़े रहे हैं। इससे पूर्व के कथन प्रसंगों (तकेयी की वर-याचना और दशरथ मरण आदि) का कवि ने संकेत मात्र ही किया है। दगवें सग में राम के राज्याभिषेक का वचन है और इससे पूर्व दूसरे से दसवें सग तक परम्परित रामकथा है। काव्य के दो महत्त्वपूर्ण सग ११ और १२ हैं जिनमें प्रथम भारतीयों का मानव धर्म की घोषणा और रामराज्य की व्यवस्था का उल्लेख है। सब पुष्टा जाय तो क्यात्मक दृष्टि से इस काव्य की मौलिक उपलब्धि अनिम दो सग ही हैं। 'रामराज्य के कथा चयन हेतु कवि ने प्रमुख रूप से मानस को मुख्य आधार के रूप में ग्रहण किया है। किन्तु कवि की सृजक कल्पना और सृजन प्रतिभा के कारण इस काव्य में रामकथा अपने नवीनतम परिवेश में प्रस्तुत हुई है। मिश्रजी ने भूमिका में कहा है कि — कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है। इतिहास में यदि वर्तमान का प्रतिबिम्ब न हो और भविष्य के लिए प्रेरणा न हो तो उसे प्रायः काव्य का विषय नहीं बनाया जाता। ग्रन्थकार ऐतिहासिक कथानक लिखते समय भी अपने युग को कमेंट्री भुला सकता है? परन्तु हा उसका कर्तव्य यह अवश्य होना चाहिए कि वह ऐसी कोई बात न लिख जो उसके कथानक के युग में न पब सके। (भूमिका पृ० ६) स्पष्ट है कि मिश्रजी ने रामराज्य महाकाव्य की कथा निमित्त में इतिहास की परम्पराओं के निवाह के साथ साथ युग चेतना का भी प्रतिबिम्बन किया है।

रामराज्य के प्रतिष्ठापक और संचालक श्रीराम हैं। कवि ने राम के व्यक्तित्व का निरूपण यथाथदर्शी लोकनायक के रूप में किया है। वह उन्हें युग युग की प्रेरणा का धाम मानता है

नेता युग के नहीं, राम तो युग युग के प्रेरणाधाम हैं।

पूर्ण पुरातन चिर नवीन के भाव स्रोत हृदयामिराम हैं।।

(प्रस्तावना, पृ० ३)

राम ब्रह्म हो, राम विष्णु हो किन्तु राम नर तो हैं निश्चय ।
युग द्रष्टा ही नहीं, आप ही युग कर्ता भी जो नि सशय ॥'

(सग १२, छंद ८२)

राम मुमूत्र के साथ रथारूढ वन गमन कर रहे हैं, उस अवसर पर उनके मन में विश्वबन्धुत्व के भाव जाग्रत हो रहे हैं

“क्या मेरा बन्धुत्व अवय की सीमा में आबद्ध रहे ।
क्या न विश्व का मानव, लग मग तक मुझको निज बन्धु कहे ॥
बड़ी बात है वह मुझको तो इस पल है भारत का ध्यान ।
भरत यशस्वी हों, भारत का सर्वोदयमय हो उत्थान ॥”

(प्रथम सग, छंद २६, २७)

रामचरित के अनेक गायक ने राम रावण-युद्ध को उत्तर-दक्षिण के सघप की सना दी है, आय और द्रविड सस्कृतियों का द्वन्द्व कहा है और इस विचारधारा को लेकर हमारे देश में बड़ा विषम स्थितिया भी उत्पन्न हुई हैं । दशहरा के अवसर पर उत्तरी भारत के लोग रावण का पुतला जलाते हैं तो दक्षिण वाले राम की प्रतिमा को भी जलाने लगे हैं । मिश्रजी ने 'रामराज्य महाकाव्य' में इस स्थिति का निम्न स्वयं राम के द्वारा ही बड़े सुंदर ढंग से कराया है

“इसका जन-जन पावन चिमय, ग्राम ग्राम है अवघ महान,
इमका जन जन स्वजन सजन है उत्तर दक्षिण एक समान ।

×

×

×

दक्षिण यदि विकलाग रहा तो उत्तर की समृद्धि निष्प्राण,
सब अवयव हों स्वस्थ समजस, तभी स्वस्थ है पुरुष महान ।
किसी समय सम्भव है दक्षिण में भी हो ऐसे आचाय,
उत्तर के दीक्षा गुह हा जा और बनें आयों के आय ॥
किन्तु अभी जो अघकार है वहा प्रकाश जमाना है,
पुरुष परम पुरुषत्व देख ले वह सस्कृति फलाना है ॥’

(प्रथम सग, छंद २६ ३० ३१)

इसी काव्य के अनेक स्थानों पर भी उत्तर दक्षिण की एकता की बात कही गयी है । उदाहरणार्थ, सग ६/२७, १०/११, १०/४७ आदि ।

राम के उपयुक्त कथनों में भारत की विभाषकर उत्तर दक्षिण की एकता का संदेश है । वह दक्षिण में सांस्कृतिक प्रकाश का प्रसार करने के लिए जाना चाहते हैं । इसी सग में कवि ने विदेशियों की कूटनीति के कारण राज्य

की अव्यवस्था तथा ग्रामीण एवं नागरिक जीवन की सन्तुलित प्रगति का उत्सव किया है। ग्रामीण जीवन के प्रति कवि की अनन्य आस्था है, क्योंकि भारत का यथाय रूप वही रक्षित है—

“नगर ग्राम्यो से बढ़कर हो वभव म गुण दोषो म,
किंतु धनी हैं, ग्राम्य धन्य थे अपने दृढ़ सन्तोषो म।”

(सग १ छंद ४२)

× × ×

“जन आत्मा यदि जग न पायी तो शासन के व्यथ सुधार,
नगर बढ गये गाँव सुसाकर तो उस बन्ती को विकार।
नगर बढ़ें पर साप ही चलें बढाये गाँवो को
वह विकास है, विकसित करदे जो जन जन के भावो को।”

राम के चारित्रिक शील और आदर्श विचारणा का रूप द्वितीय सग में अंकित हुआ है। राम की मायता है कि— नही भोग म किन्तु त्याग मे खिलता जीवन। आधुनिक शिक्षा के रूप पर व्यंग्य करते हुए कवि ने कहा है कि

“जान नक्षत्रो को यदि लिया आप अपने से रहे अजान।
बुद्धि से भरा तक विस्तार, किया सकीण हृदय का मान ॥
ग्रन्थ के बोझ, पथ के बोझ खो गयी जिनम मन की शान्ति।
ज्ञान की साक्षरता वह कौन, ज्ञान है वह तो केवन भ्रान्ति ॥

शिक्षा का उद्देश्य यह है कि

कुजन हो सज्जन सज्जन शान्त, शान्त हो मव बंधन मुक्त।
मुक्त हो जो वे जागे बढें, करें औरा को भी उमुक्त।
यही शिक्षा का है ध्रुव ध्येय, न लद चलना उसको स्वीकार।
मनुज की मानवता बढ जाय, रचो प्रिये ऐसे रचिर उपाय,
यही लक्ष्मण ! शिक्षा उद्देश्य, इसी से विकसित जनसमुदाय।”

भारतीय संस्कृति को आधार मानकर विवेचन सह प्रस्तित्व और सबजन हिताय की घोषणा इस प्रकार की गयी है

नहीं चाहने हम कि बडे साम्राज्य हमारा
काम्य यही है बडे शिवद संस्कृति की धारा
गोरे काले लाल कि पीले जग के वासी,
समझें चातुर्वर्ण्य और ही हो सुख रासी।

(सग ५ छंद ३४)

विज्ञान युग की भौतिक प्रगति के प्रति भी लेखक जागरूक है, किन्तु भारतीयता की पुनीत भावना से ओत प्राप्त होन के कारण जीवन के आध्यात्मिक

मनुष्य मे महाशक्ति, जागे सो शिव के लिए ।
 मनुष्य के लिए श्रेष्ठ यही घम है ॥
 मनुष्य ही महासत्य मनुष्य मन के लिए ।
 वही परम आराध्य वही प्रत्यक्ष विष्णु है ॥
 व्यक्ति की प्रेरिका होवे लोक कल्याण भावना ।
 सनातन सुखोद्रेकी सही वणव भाव है ॥

द्वादश सग की कथावस्तु ममस्पर्शी और करुणापूरित गाथा है जिसमे सीता के निवासन और रामराज्य का उल्लेख है । रामराज्य के व्यावहारिक रूप का स्पष्टीकरण भी इसी सग म हुआ है । रामराज्य मे राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार लोक इच्छा का पूति और सबजन सम्मान की भावना आदि का वणन है । रामराज्य म पंच परमेश्वर के तुल्य था ग्रामी वा जीवन स्वयं के समान था सहकारिता म लोगो की विश्वास था । विनाश के आविष्कार भी सहार नही, सृजन के लिए होते थे

पचो मे परमेश्वर वसते पचायनी राज सुग छाये ।
 पाये थे पचा ने ऐसे पचशील के तत्त्व सुहाये ॥
 सहकारिता विली पडती थी कृपियो म गृह उद्योग म ।
 सामूहिकता का महत्व था विविध उत्सवो मुख भोग म ॥
 गाँव-गाँव म पूण स्वच्छता गाँव गाँव के सुपथ मनोरम ।
 गाँव गाँव क सुख सुविधामय देव गृहापम भवना के क्रम ॥
 वनानिक आविष्कारो के नित्य प्रयोग हुआ करते थ ।
 विन्तु सहारक वाता पर विनाश निजमन धरते थे ॥

इस प्रकार रामराज्य का चित्रण भी कवि ने यथाथ की भूमिका पर युगीन सदर्भो म प्रस्तुत किया है । रामराज्य क सम्बन्ध म प्राय यह भ्रान्ति हुआ करती है कि यह राजतन्त्रीय व्यवस्था (Monarchy) है जो आज की सब जनतन्त्रीय व्यवस्था (Democracy) के प्रतिकूल है । किन्तु यहाँ उल्टपनीय है कि रामराज्य की सामन्त व्यवस्था सच्च माना म राजा और प्रजा की सम्मिलित व्यवस्था है । राजा तो प्रजा की भावनाओं और इच्छाओं की पूति का माध्यम मात्र है । यथा

महाराज थी रामचन्द्र न रामराज्य इस भाँति चलाया ।
 राजतन्त्र या प्रजातन्त्र है भ्रम न यह कोई लग पाया ॥
 कवि न उचित हा कहा है कि
 रामराज्य न शक्ति नहीं था जितने मानव मूल्य सिखाया ।
 अमुरों क या कृतिन वगैरे, नर भक्षण निमूत कराया ॥'

यही कारण है कि शताब्दियों के उपरान्त भी रामराज्य की धारणा हमारी राज्य कल्पना का आदर्श है। मिश्रजी ने ठीक ही लिखा है कि—‘यद्वेय महात्मा गांधी न रामराज्य और सुराज्य को समानार्थक मानते हुए इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जाग्रत कर दी है रामराज्य एक कल्पना ही सही, परंतु वह ऐसी कल्पना है जो व्यवहार में भी असीम लाभप्रद हो सकती है।’ (भूमिका पृ० ६, १०)

यहां तक हमने काव्य की रामराज्य विषयक विचारणा पर विचार किया। कवि की अर्थ मायताएँ इस प्रकार हैं

नारी को कवि न पुरुष का पूरव माना है। इसे शक्ति की संगा से सम्बाधित भी किया है। यथा

“तत्त्व यदि नर है नारी शक्ति, कहा ऋषि पत्नी न यह आप।
उभय का होता जब सहयोग, जगत का चलता काय बलाप ॥
बुद्धि है नर तो नारी भाव, इष्ट हो नर को जग बल्याण।
किन्तु है नारी का यह धर्म, करे वह उत्तम नर निमाण ॥
रही नारी है भावुक सदा, न भावुकता में वहना ज्येष्ठ।
नियंत्रक भावुकता का पुरुष, इसी से पुरुष कहाना ज्येष्ठ ॥
न कोई हीन न कोई उच्च उभय का अपना अपना मान।
उभय समझे अपने क्तव्य, प्रकृति नियमों का रखकर ध्यान ॥”

‘रामराज्य’ व रचयिता व शब्दों में कविता और साहित्य की परिभाषा निम्नांकित प्रकार है

‘कविता सविता ज्याति शशाङ्क सुधा है।
कविता मात्रा से वेद प्रबुद्ध हुआ है ॥
हित सहित रहे साहित्य वही सुन्दर है।
जो समुदय अक्षर करे, वही अक्षर है ॥’

कवि की महिमा और कतव्य का उल्लेख इस प्रकार किया गया है

कवि चाहे नर को अक्षर करे स्वर द्वारा।
कवि चाहे जन इतिहास बन्दल द सारा ॥
जन जन के अक्षर तत्त्व जगाता है कवि।
दिक्-काल बंध सब आप भगाता है कवि ॥

जीवन के प्रति मिश्रजी का दृष्टिकोण यह है

जीवन आशा उल्लास सुखों का घर है।
जीवन नम सा विन्तोष न वह नश्वर है ॥

इस विस्तृत नम पर विघ्न मेघ से आय ।

यह सम्भव ही है नहीं कि उसे मिटायें ॥”

इस प्रकार ‘रामराज्य’ महाकाव्य में राज्य के आदर्श रूप के साथ साथ मानवतावादी जीवन दृष्टि का भी विकास हुआ है । कवि ने विनाश युग के विकास और ह्रास प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य में रामराज्य की प्रतिष्ठा का आग्रह किया है । राष्ट्रीय एकता, शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा ग्राम्य जीवन की महत्ता, सहकारिता, पचशील आदि जीवन प्रेरक प्रवृत्तियों के निरूपण के कारण इस काव्य में रामकथा का युगीन पुनराख्यान हुआ है । रामराज्य काव्य में उत्तर दक्षिण की अभेद स्थिति का निरूपण निश्चय ही रामकथा के विकास में एक नवीन अध्याय की सृष्टि करता है । एक प्रकार से रामकथा के गायकों की एक वृष्टि का कवि ने माजन किया है । उद्देश्य की महानता, विवेचन की गम्भीरता, शली की उत्कृष्टता, शिल्प विधि के समुन्नत स्वरूप, चरित्र विश्लेषण की मानवतावादी पद्धति, पौराणिक कथातत्त्व के पुनर्मूल्यांकन और कलात्मक औदात्त के कारण ‘रामराज्य’ महाकाव्य निश्चय ही हिन्दी काव्य जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है । आज के युग जीवन में ऐसी रचनाओं का स्थायी महत्त्व है । मिश्रजी भारतीय सस्कृति के अनन्य उपासक रहे हैं । उनके कृतित्व से हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष हुआ तथा भारतीय सस्कृति की अखण्डता सिद्ध हुई है । ‘रामराज्य से पूव कोशल विश्वी और साकेत सत’ जसी अनुपम कृतियों से वह हिन्दी साहित्य भण्डार की पूर्ति कर चुके हैं । उनका तृतीय महाकाव्य (रामराज्य) हिन्दी जगत में अमिन्ननीय है । मविष्य में भी वे हिन्दी ससा का एसी कृतियाँ प्रदान करेंगे, ऐसी आशा है । रामराज्य के कवि की मगलाङ्गना शताधनीय है—

‘श्रेता युग का रामराज्य वह कलियुग की आलोक निखाय ।

जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन स्वप्न सत्य बन जाये ॥

भारत की सीता समृद्धि को रावणत्व से मुक्त कराकर ।

खिल जाय रावणत्व मनुज का, ऐसे योग रचें विश्वेश्वर ॥

(द्वादश सर्ग, पृ० १४८)

‘लोकायतन’ महाकाव्य

विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की भागवत-कथा

१६

‘लोकायतन’ महाकाव्य

“विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की भागवत-कथा”

कविश्री सुमित्रानन्दन पन्त की सुदीर्घ कालीन-काव्य साधना के क्रम में ‘लोकायतन’ महाकाव्य का प्रणयन अभूतपूर्व है। ‘लोकायतन’ महाकाव्य न केवल पन्त जी की काव्य साधना की चरम उपलब्धि है अपितु यह आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा की भी गौरवावित प्रवृत्ति काय-कृति है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए श्री इलाचन्द्र जोशी ने कहा है—“‘लोकायतन’ हिन्दी के मध्ययुगीन और आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा के साथ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और नवीनतम कड़ी के रूप में जुड़कर हमारे सामने आता है। इस महाकाव्य की विशिष्टता का एक कारण यह है कि इसमें पन्त जी की जीवन ध्यापी साधना एक ऊँच धरातल पर उभर कर समग्र युग के विस्मय को समेटती और सजोती हुई अपनी सिद्धि का महाकाल के परिप्रेक्ष्य में साकर सडा कर देती है।” ‘लोकायतन’ सचमुच लोकचेतना का महाकाव्य है, जिसमें भारतीय लोकभूमि को आधारमान बनाकर विश्वजीवन की सन्नमणशील परिस्थितियाँ और विघटनशील जीवन मूल्यों के परिवेश में विकास कामी मानवता के गतिशील चेतना स्तरों को स्थापित किया गया है।

पन्त जी ने सदा से ही काव्य-सृजन को एक सचेतन सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है और युग जीवन की चेतना और प्रवृत्तियों के अनुरूप काव्यकृतियों का प्रणयन किया है। यह तथ्य विभिन्न युगों में रचित काव्य कृतियों के द्वारा प्रमाणित हो जाता है कि पन्त जी की काव्य चेतना

‘आलोचना त्रमासिक स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विवेका’, भाग १, जून १९६५, पृ० १५५

निरन्तर विकासशील रहो है। प्रकृति प्रेम और सौन्दर्य नामक विात्वा का काव्यवर्ता छायावादी कविपन्त यन् 'योगी', प्रिय, पल्लव और 'गुञ्जन म दिखाई देता है तो धमिका, वृषकों, पीडिता और पदलितों स सहानुभूति प्रगट करता हुआ पवि प त युगात्', 'युगवाणा और प्राग्या म दृष्टिगत होता है। प्रारम्भिक काव्यकृतिया म कवि दृष्टि सौ न्य मूलक, आत्मो-मुग्ध, काल्पनिक भावुक और प्रकृति प्ररित है ता 'प्रगतिवादी काल की कृतियों म यथाथ प्रिय, बहिर्मुखी युगसंवेद्य, भौतिक बौद्धिक और मानसवादी विचार दशन से आदीलित प्रतीत होती है। काव्य-साधना के तृतीय चरण म कवि महर्षि अरविन्द के ऊप्य चतन भावबोध स अनुप्रेरित होकर सांस्कृतिक काव्य गृजन मे प्रवृत्त होता है। 'स्वर्णकिरण' स्वर्णमूर्ति, मधुञ्जाल 'युगलय' 'उत्तरा' अतिमा', वाणी युगात्तर कला और ब्रूवा ची नामक काव्य सफलता तथा रजत शिखर, गिल्ली सौवर्ण शीयक काव्य रूपका म अरविन्द दशन की ऊप्य चेतन विवासात्मक अनर्वाह्य जड चेतन सामक सामजस्यवादी चिन्तनधारा का पुष्कल प्रभाव स्पष्टत परिर्लित हुआ है। काव्य चतना क इस विकासक्रम को ध्यारयापित करते हुए पत काव्य के एक समीक्षक न उचित ही तिया है कि — पत जी के काव्य धभव का स्वर प्रकृति के विशाल प्रागण से प्राग्भ होकर प्रम की परिधिया म श्वास लेकर लोक कल्याण के पथानुगामी साम्यवात् को स्वीकार करता हुआ अन्त म मानवात्मा और सांस्कृतिक उत्थान के लिए अध्यात्म म विश्राम लेता है। ' पत जी की काव्यसाधना म विषय बबिध्य और चतना स्तरो म परिवर्तन होते हुए कही विस्तराव नही है। सुधी महादवी यर्मा के शब्दा म — उनका काव्य जीवन क विरस क्षणो मे बिसरा नही है प्रत्युत वह प्रत्येक क्षण को जोडता हुआ उसी प्रकार सश्लिष्ट होता गया है जस स्वर की सम विषम विभिन्नता और उसके आरोह अवरोह किसी रागिनी म सश्लिष्टता प्राप्त कर लेते हैं। उनकी रचना ऐसे छप्पा का गृजन है जो युग के अन्तजगत म अभियक्ति के लिए विकल भावनाओ और विचारो को वाणी देता है। जीवन क मागल्य लक्ष्य के प्रति उनकी आस्था अद्व त और साधना अडिग है। ' अस्तु स्पष्ट है कि पत जी युग चेतना के कवि रहे हैं और उनकी का कृतियों मे युगीन

^१ युग कवि पत की काव्यसाधना (विनयकुमार शर्मा), पृ० ५३

^१ श्री मुमित्रान दन प त स्मृतिचित्र पृ० १७१ १७२

चिन्तनधाराओं की सफ़्त समाह्वति, समझालीन जीवन बोध की सटीक व्यञ्जना और मनीषिमा के चिन्तन का पुष्पल प्रभाव देखकर उनके काव्य को 'युग चेतना का काव्य' कहा जा सकता है।

उपयुक्त विवेचन के आलोक में यदि हम 'लोकायतन' की सृजना प्रेरणा और रचनात्मक सोद्देश्यता पर विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस प्रकाश का यमपत जी की काव्यमाधना का चरम निदर्शन है। लोकमानसिक आस्थाओं, शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रस्थापना के आग्रहों, युगचेतना के परिवर्तनशील स्तरों सांस्कृतिक निष्ठाओं, आध्यात्मिक मायताओं, विश्वजीवन में परिध्याप्त नैतिक सभ्रमणशीलता तथा वैज्ञानिक सभ्यता के अभिशापो और वरदानों को 'लोकायतन' के महाकार कायदपण में कवि ने मनोयोगपूर्वक प्रतिबिम्बित किया है। इसीलिए 'लोकायतन' को लोकचेतना की महागाथा सर्वांगीण चेतना का उद्गीर्ण^४, यममुखी रम से प्लावित बहिर्मुखी लोक जीवन की अमरगाथा^५ तथा 'दाशनिक' और वचारिक सम्भावनाओं का लक्ष्य प्रधान नविष्योमुखी काव्य^६ कहा गया है।

बीणी से 'वाणी' तक की काव्य यात्रा में यमपत जी को कविवर और कविश्री होने का श्रेयता प्राप्त हुआ किन्तु 'महाकवि' अभिधात के अधिकारी के लोकायतन के प्रणयन के पश्चात् ही हुए। वस्तुतः 'महाकाव्य' जातीय जीवन और सांस्कृतिक चेतना के जाकलन का यम प्रयास होते हैं। उनमें गम्भीर समस्याओं का महत्वपूर्ण निदान होता है। इसीलिए यम काय महा' विशेषण से विभूषित किये जाते हैं और उनके रचयिता 'महाकवि' कहलाते हैं। 'लोकायतन' का रचयिता महाकाव्य की कायमन माधता से पूणत परिचित था इसीलिए उमने अपनी काव्यसाधना के प्रौढ और परिपक्व स्तर पर पहुँच कर एक महाकाय का सृजन किया। ऐसा महाकाय जो शिल्पगत वैशिष्ट्य और जीवन लक्षण सम्बन्धी उपलब्धियों, दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग में यमपत जी की महाकाव्य सम्बन्धी अवधारणा का अवलोकन भी

^४ समीपालोक—सुमित्रानन्द पत विद्यापीठ—वय ३, अक्ष २ अक्टूबर १९७२ पृ० ६६, डॉ० राजवशसहाय का लेख

^५ वही पृ० १०४, डा० ब्रजविहारी तिवारी का लेख

^६ डा० सावित्री सिहा तुला और तारे, पृ० १६५

^७ १० देवीप्रसाद गुप्त, हिंदी महाकाय सिद्धांत और मूल्यांकन, पृ० ३७८

समीचीन होगा। श्री गिरिजादत्त मुनन गिरीश क 'तारकवध' महाकाव्य के प्राक्कथन में लोकायता' क प्रणयता स पूव पत जी न तिगा था— 'महाकाव्य कवि का विराट मानस प्रासादा हाता है जिसका विन्यास विधाना की ही सृष्टि कला का नमूना होता है, जिसने अत पुर म बटना आसात नहीं होता। महा काव्य क निर्माण म कवि अपने समस्त जीवन की व्यापक सम्मौर, सूक्ष्म, बहु मूल्य अनुभूतियों का मानव कल्याण क लिए उपयोग एव पत्तारमक प्रयोग करता है, उसके भीतर देश, जाति या विश्व मातृता की अनक पीढ़िया का जीवन सत्य निवास करता है। सक्षेप म, महाकाव्य मानव सम्यता के सधप तथा सांस्कृतिक विनास का जीवत पयताकार दपण होता है जिसम अपन मुग को देखकर मातृता अपने को पत्तचाने म समय ढानी है। 'और यह प्रसन्नता तथा सताप का विषय है कि पत जी ने महाकाव्य सम्बन्धी स्वकीय धारणाओं क अनुदप ही लोकायतन की रचना की है।

लोकायतन का प्रकाशन यद्यपि सन १९६४ म हुआ और कवि के कथ नानुसार लोकायतन का आगणन में न ८ अक्टूबर सन् '५९ का किया था। सयोगवश ८ अक्टूबर सन् '६३ को ही समाप्त भी हो गया।" तथापि इस काव्य की प्ररक भूमिका का परिनिर्माण द्वितीय विश्व युद्ध की विमोषिका के भयावह वातावरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के समापन चरण (सन १९४२ क भारत छोड़ो आंदोलन) म ही हो गया था। था वचन के इलाहाबाद स्थित वगल पर सन् ४२ म लोकायतन नामक सस्था की स्थापना का कवि सकल्प द्रष्टव्य है।" वापू क निधन क पश्चात श्री वचन जी के निवास स्थान पर ही लोकायतन की स्थापना की पुन चर्चा हुई और सस्कृतज्ञ विद्वान के सुझाव पर इसका नाम लोकायतन किया गया। इस सस्था की स्थापना समिति क सन्स्य चुन गये नियमावली प्रकाशित हुई सस्था का रजिस्ट्रेशन हुआ और उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा सस्था को दस हजार रुपय का अनामतक अनुदान भी प्राप्त हुआ। धनाभाव ने 'लोकायतन' की स्थापना के सकल्प को ठस पहुँचाई और पत जी जानाशवाणी की सेवा म निरत हो गय।" लोकायतन या लोकायन की स्थापना के लिए पत जी की तीव्रा

१ तारकवध (महाकाव्य) प्राक्कथन, पृ० १

२ लोकायतन— नातव्य' स उदधृत

३ कवियों मे सौम्य सत—वचन, पृ० ७४

४ वही पृ० ७७ ७८

कौशाभ-अनुमान-अनके-द्वारा-बच्चन जी को लिखे गये पत्रों से लगाया जा सकता है।" इस विवेचन से प्रगट होता है कि 'लोकायतन' काव्य का प्रणयन कवि के एक महत् भाव-सकल्प का मूर्तरूप है।

'लोकायतन' के वष्य विषय और प्रतिपाद्य का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर पात होता है कि साम्प्रतिक विश्वजीवन में विघटनशील और ह्रासो-मुखी भौतिक एवं वज्ञानिक सम्यता की कृत्रिमताओं, विकास के विध्वंसक रूपों तथा परिवेश जय विसगनिया को उजागर करने की महत्वाकांक्षा ने कवि को सृजन प्रेरित किया है। सुन्दरपुर नामक काल्पनिक जनपद की गाथा तो निमित्त मात्र है। वस्तुतः कवि हमारे समकालीन जीवन और युग की विनाशकारी सम्भावनाओं को अनुभूत सवेदन सत्य के रूप में रूपायित करना चाहता है। 'लोकायतन' की सृजन प्रेरणा के इस आयाम को समझने के लिए हमें वर्तमान युग की असाधारण परिस्थितियों के अन्तराल में भी प्रविष्ट होना पड़ेगा। 'विश्व इतिहास का वर्तमान युग कोई साधारण युग नहीं है। यह एक बध्या वज्ञानिक सम्यता के विकास की चरमावस्था का युग है, जो हजारों वर्षों से विकास प्राप्त महान मानवीय मूल्यों को कुचल कर, सामूहिक मानवीय प्रगति की प्राकृतिक रेखा को बीच में ही लापकर कुछ विचित्र ही प्रकार के वैयक्तिक, सामाजिक आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक उलझनों में अपने आप का उलझाता हुआ महानाश की मरीचिका की मोहक ज्वालाओं की ओर तेजी से भागता चला जा रहा है।" श्री इलाच द्र जोशी इसी क्रम में युग विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि— दूसरे महायुद्ध के बाद सारे ससार में ऐसी उलझी हुई समस्याएँ और चञ्चलपूण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं कि उनके समुचित समाधान या सही व्यवस्था के लिए रास्ता ही अंतर्राष्ट्रीय नेताओं को नहीं सूझ पा रहा है। आज केवल राजनीतिक या आर्थिक क्षेत्रों में ही हमें अव्यवस्था, अशांति और असंतोष नहीं पात, बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी एक विचित्र विश्रुतला लक्ष्यहीनता, आत्मविद्रोह जीवन और प्रकृति के नियमों के अस्तित्व या उपयोगिता के प्रति सशय, विराट सृष्टि की नियामिका शक्ति के प्रति मूलगत अविश्वास और अनास्था का बोलबाला सर्वत्र दिखाई देता है। मनुष्य आज लाखों वर्षों से चली आ रही, क्रमिक विकास सम्बन्धी

" कवियों में सौम्य सत, बच्चन पृ० ५६ ५७, ७१, ७२, ७६

" समसामयिक हिंदी साहित्य उपलब्धियाँ—सम्पादक श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ३४

प्रगति के इतिहास के प्रति केवल उन्मत्त ही नहीं जविश्वासी भी हो चला है। जड़ विनाश की हवाई प्रगति से शतराया हुआ आज का यात्रिक मानव सवध्वसी, वन्द्या राजनीति के हाथ अपनी आत्मा बेच चुका है। पर जब चारों ओर कर्पात की संध्या का घुघलका छाया हा हास और विनाश की व्यापक योजनाओं के ऊपर प्रलय भेधों से घिरी कराल काल रात्रि सघन से सघनतर होती हुई, घिरती चली आ रही हो तब किसी महाकवि की वाणी अपने भीतर की घुटन में बंधी भी नहीं रह सकती। 'लोकायतन' सामूहिक जीवन की ऐसी ही परिस्थितियों में लिखी गयी महाकवि है जो कवि की उपचेतना से चारा जोर घिरी दीवारों को तोड़ फोड़ कर, ढाकर, बाहर से मुक्त और विस्तृत प्राण में असह्य धाराओं में प्रवाहित होकर, उदात्त भावों, प्रतीकात्मक चित्रों और गहन विचारों के रंग विरग फूलों को सहज भाव से खिलती चली जाती है। वर्तमान युग विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में 'लोकायतन' का रचनात्मक साधक यह प्रमाणित करता है कि आलोच्य वृत्ति का रचनाफलक विराट है प्रतिपाद्य उदात्त है सजनात्मक आयाम विस्तारपूर्ण है और भावसवेदन विश्वव्यापी सचेतन रचनाधर्मिता से अनुबद्ध है। इसी व्याप्ति के कारण कवित्री पंन के दार्शनिक अनुचितन की उपलब्धियाँ भावजगत की अनुभूतिपरक सन्नान्तरियाँ, सचेतन मनस के सकल्प विकल्प सामूहिक अचेतन से प्रादुर्भूत रचनात्मक प्रतिश्रियाएँ और मानवता के मगन विधान की भागवत कामनाएँ 'लोकायतन' के वृत्त में समीकृत हो गई हैं।

'लोकायतन' की सृजन प्ररणा और रचनात्मक सोदशयना के उपयुक्त विश्लेषण के अनंतर जब हम काव्य के समीक्षण में प्रवृत्त होते हैं तो सवप्रथम हमारी दृष्टि इतिवृत्त विधान का ओर उन्मुख होती है।

पन्नजी ने काव्य के प्राक्कयन में 'लोकायतन' को इतिवृत्तात्मक दृष्टि से 'युग जीवन की भागवतकथा तथा सन्नान्तिकाल की युगगाथा' कहा है। वस्तुतः इस काव्य का कथापट तथ्य और कल्पना के मिश्रित सूत्रा से बुना गया है। भारतीय स्वाधीनता सघष से सम्बद्ध घटनाएँ ऐतिहासिक सीता राम, वाल्मीकि आदि के सन्नान्त पौराणिक तथा मुन्नेरपुर जनपद का उपास्याय काल्पनिक हैं। 'लोकायतन' के इतिवृत्त में एक ओर 'महाभारत' के समान व्याप्ति और विस्तार है त्रिसका नियाजन कवि ने इतिहास पुराण घम दशन और विश्व भ्रमण के प्रसंगा द्वारा किया है तो दूसरा धार मुन्नेरपुर नामक अचल में कला-मन्त्रि की स्थापना से सम्बद्ध काल्पनिक कथामूत्र नितान्त विरल खियाई देना है।

सच तो यह है कि 'लोकायतन' कथाप्रधान प्रबन्धकाव्य है ही नहीं। 'लोकायतन' 'कथा प्रधान न होकर बुद्धि प्रधान रचना है।'^१ डॉ० तिवारी के अनुसार भी— 'लोकायतन कथाप्रधान नहीं कथ्य और विचार प्रधान काव्य है। विचार की गहन धींधिया में कथामूत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।'^२ श्री इलाचन्द्र जोशी के अनुसार 'ऐसे ममृण तन्तु से इस काव्य-कथा का पटन' बुना गया है जो मक्खी के जाले के तन्तु से भी अधिक सुकुमार है।'^३ इसी प्रकार का मत प्रगट करत हुए डॉ० सावित्री सिन्हा ने लिखा है— 'कवि का उद्देश्य कथा कहना नहीं है 'लोकायतन' के पात्र और उमम वर्णित घटनाएँ एक दार्शनिक 'थीसिस' को प्रस्तुत करने के निमित्त जीर माध्यम मात्र हैं।' कथानक की विरलता के कारण यद्यपि 'लोकायतन' की कायगत महाभूता खचित नहीं हुई है किन्तु इतिवृत्त विधान निश्चयत महाकाव्य की गरिमा के अनुरूप नहीं बन पाया है। अनागत अतीत और वर्तमान से अनुबद्ध त्रिकाल दृष्टि, इतिहास, पुराण, कला, विनाय धर्म, राजनीति और संस्कृति की युगसापेक्ष महत्ता को निरावरण करने की महत्वाकांक्षा, विश्वजनीन चिन्तनधाराओं के पानकीश को समीकृत करने की चेष्टा और विभिन्न प्रांता, महानगरों एवं विदेशों के विस्तृत वर्णनों ने 'लोकायतन' को दार्शनिक जटिलता, कोशवत विस्तार और महाकार तो प्रदान किया है किन्तु महाकाव्योचित कथा-बन्धव दत्त संयोजन शिल्प, सश्लिष्ट चिन्तन की विराटता, गहन संवेदनशीलता और कही कही कलात्मक चारुत्व से वंचित भी किया है। इस दृष्टि से 'लोकायतन' की कटु आलोचना भी हुई है। डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार— "कथानक रचना की शिथिलता, अनुपातहीनता और रिपोर्टिंग की प्रवृत्ति से इस प्रबन्ध काव्य का प्रभाव बहुत कुछ आहत हुआ है। कथानक रचना इस कारण और भी शिथिल हो उठी है कि कवि ने अपनी अमीप्सित बात बार बार फेंट फेंट कर कही है। अनेक अनावश्यक प्रसंगों और दृश्यों को सिया है। 'लोकायतन' के प्रारम्भिक अंश में

^१ समीक्षालोक सुमित्रानन्दन पंत विशेषाङ्क पृ० ६४

^२ वही पृ० १००

^३ आलोचना (त्रिमासिक) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक, जून १९६५ पृ० १००

^४ तुला और तारे, पृ० १५०

जो गठन समित हाती है वह या तो मूल्यम ही गम् है ।^{१८} यहाँ विनायीय यह है कि क्या कथा-तत्त्व की दृष्टि से ही साक्षात्कार को मान्यता प्राप्त है ? क्या तत्त्व की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिक प्रबंधकाव्यों में अनेक प्रयोग हुए हैं । कामायनी, कुरंगोत्र ऊर्मिलता एतत्तथ्य आदि में अल्पतः विरल कथागुण हैं । इनमें काल्पनिक विस्तार और ध्वनिधारा का ऐश्वर्य ही प्रमुख है । यद्यपि भी— आख्यान तत्त्व का ह्यम इम गुण की विनायता है । जो कथन महाकाव्य में नहीं करन सम्पूर्ण आधुनिक कथा साहित्य में परित्यक्त हाती है । आधुनिक कथा साहित्य की श्रुतियों में कथाकार का मूल्य माना शीघ्र हो गया है कि एक शक्तिमान् प्रसंग पर कहानी की रचना हा रही है और एक व्यक्ति के मन का विश्लेषण करते करते उपन्यास पूरा हो जाता है । दूसरे आज का युद्धजीवी पाठक घटनात्मक विवरणों में रचि सता भी गयी है चाह वे कथा साहित्य क हो या कथाकाव्य के ।^{१९} इस मततथ्य के आसोक में विचार करने पर लोकायतन के कथानक की श्रुतियाँ अदृष्ट हो जाती हैं । 'लोकायतन २०वीं शताब्दी के सातवें दशक का महाकाव्य है । इस ह्यम महाकाव्य रचना का एक नवीन प्रयोग' भी तो कथानक की दृष्टि से कह सकते हैं जिस का एक्य अविनि, विदास सुसंगठन, और श्रमवद्धता आख्यान तत्त्व में नहीं अपितु चिन्तन तत्त्व (जीवन-दशन) में है । श्री इलाचन्द्र जोशी ने उचित ही कहा है कि—“आज जब साहित्य के सभी अंगों के फाम बदल रह हैं तब नए महाकाव्य के लिए यह नियम लागू क्यों नहीं हो सकता ? इसलिए इस सम्बंध में इस दृष्टि से भी सोचा जा सकता है कि पन्तजी ने महाकाव्य की एक नया 'फाम — एक नया रूप 'विदास दिया है ।'^{२०} इसीलिए हम 'लोकायतन' के कथानक का विश्लेषण आधिकारिक प्रासंगिकता अवांतर कथा प्रसंगों के रूप में वर्गीकृत करके अथवा प्रारम्भ, विकास चरमसीमा निगति और फलागम आदि के निर्देश द्वारा नहीं कर सकते हैं । 'लोकायतन के कथानक की सिद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें काव्य के प्रतिपाद्य को सवहन करने की सामर्थ्य है या नहीं ? आख्यान में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा हुई या नहीं ? इतिवत्त नियोजन में कवि की कल्पना शक्ति कितनी सामर्थ्यपूर्ण है और घटनात्मक विस्तार में ऐतिहासिक या तथ्यमूलक विरोधाभास तो नहीं है ? आदि ।

^{१८} हिन्दी कविता तीन दशक पृ० १५४

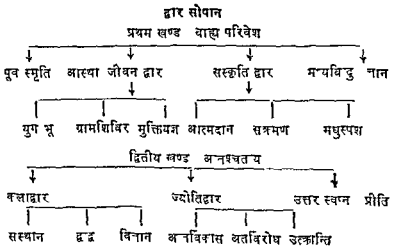
^{१९} हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, पृ० ३६५

^{२०} आलोचना जून १९६५, पृ० १६७

'लोकायतन' महाकाव्य दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड का शीपक— 'ब्राह्म परिवेश' और द्वितीय खण्ड का—'अतश्चतय' है। 'ब्राह्म परिवेश' शीपक खण्ड पुनः पुनः स्मृति आस्था, 'जीवन द्वार', 'संस्कृति द्वार' तथा 'मध्य बिन्दु ज्ञान' और 'अतश्चतय' खण्ड 'कला द्वार', 'ज्योति द्वार' और 'उत्तर स्वप्न प्रीति' नामक उपखण्डों में वर्गीकृत हैं। ये उपखण्ड द्वार पुनः निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किए गए हैं—

- १ जीवन द्वार—'युग भू', 'ग्रामशिविर' और 'मुक्तियज्ञ'
- २ संस्कृति द्वार—'आत्मदान', 'संक्रमण' और 'मधु स्पश'
- ३ कला द्वार—'सस्थान' 'द्वन्द्व' और 'विज्ञान'
- ४ ज्योति द्वार—'अतर्विकास', 'अतर्विरोध' और 'उत्क्रान्ति'

सम्पूर्ण काव्य के वर्गीकृत कथाक्रम को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—



उपरोक्त कायक्रम समयोजन है। 'लोकायतन' के दो प्रधान द्वार हैं— 'ब्राह्मपरिवेश' और 'अतश्चतय'। ये दोनों प्रधान द्वार तीन उपद्वारों तथा सात अतद्वारों में विभक्त हैं। कुल मिलाकर पन्द्रह द्वार हैं। 'लोकायतन' को एक प्रकार से पन्द्रह उपद्वारों वाले लोकचैतना से दीप्तिमान लोकग्रह के रूप में संस्थापित किया गया है। 'लोकायतन' के समग्रम की भाँति 'लोकायतन' की द्वार-योजना भी अथवत्तापूर्ण है। यह अथवत्ता मानवता के सचेतन

पीठ की स्थापना एक सस्थान’ के रूप में होती है। ‘द्वन्द्व’ की स्थितियाँ और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ सस्थान’ की योजनाओं को सफलता प्रदान करती हैं। ‘अतश्चतय’ की जागृति जिस जीवन को विकसित करती है उसमें ही ‘अन्विरोध’ की स्थितियाँ निष्पन्न होती हैं। ‘अन्विकास’ अतः ‘उत्क्रांति’ को जन्म देता है। ‘उत्तर स्वप्न’ के सोपान पर पहुँच कर कवि धरा पर स्वर्गारोहण की कल्पना का परस्पर ‘प्रीति’ भाव में प्रत्यक्ष होत हुए पाता है। नवमानव चेतना ‘प्रीति’ के द्वारा भू लाइन का प्रक्षालन कर जीवन की श्री शोभा सम्पन्न बनाती है —

“रस पूत प्रीति म वष स्त्री नर
तन बोध रहित, मन मे धे स्थित,
भू लाइन कल्प से ऊपर
प्राणों का सरसिज या शोभित ।
अब काम ग्लानि से मुक्त हृदय
श्री शोभा का करता आदर,
लौटी थी निवासित सीता
जन भू मन का कर स्थापन ।

(उत्तर स्वप्न, पृ० ६५६)

इस प्रकार ‘लोकायतन’ के कथा रूपक को सगन्धर्व’ की अविति में स्पष्टतः खोजा जा सकता है। यहाँ अति संक्षेप में कथाक्रम में अविन रूपक में विदुषों को उमारा गया है। वस्तुतः ‘लोकायतन’ के ‘द्वार सोपान’ के विभिन्न खण्डों, उपखण्डों और द्वारों में अनुबद्ध चेतना विकास के काव्य-रूपक का अनुसंधान अनेक अनुदधाटित रोचक तथ्यों को प्रस्तुत कर सकता है। निश्चय ही ‘लोकायतन’ के कथानक का अनुशीलन रूढ़ काव्यशास्त्रीय मानदण्डों के आधार पर नहीं किया जा सकता है। इस काव्य के कथाक्रम का परिशीलन प्रतिपाद्य के परिप्रेक्ष्य में ही विवेच्य है।

प्रथम ‘बाह्य परिवेश’ शीघ्र प्रथम खण्ड के पूर्व स्मृति आस्था नामक उपखण्ड से होता है। रामकथा के राम, सीता, लक्ष्मण आदि पात्रों के परिसरवात् तथा महाकवि बाल्मीकि का भाव चेतन प्रतिक्रियाओं के माध्यम से युग जीवन की विसर्गनियाँ मूयगन सक्रमणशीलता, मयावह धानावरण और सहारक प्रवृत्तियाँ का चित्रण करत हुए मानवता के सुख-सुविध्य की मगल-कामना की गई है। समशीलन युग-जीवन की शाश्वतीय दशा का श्रेष्ठ चित्र कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

‘वह विरक्त जीवन निषेध विष मूर्छित
जाति, पाति, मृत रुद्धि रीति से थी हत !
पर भाषा, पर सस्वृति ओढ़े युग से
अतर गौरव गूँथ, सिद्ध शुक्ल पढ़ि
मनोयत्र निष्क्रिय, पर धी सचय प्रिय
बहिरतर के दैत्यों म घत खण्डित !’

(पूर्व स्मृति, पृ० ६)

इस वपम्य और विषाद के युग-जीवन का युग कवि पत मगलायतनी हरि और लोककल्याणी वीणा पाणि सरस्वती से युगवाणी में जन मन को उद्वेलित करने वाला स्वर्णिम काव्य रचने की शक्तिप्राप्ति हेतु स्तवन करता है। वह नय कल्पक आदि काव्य का कथापट लोकजीवन के सूत्रों से बुनकर मानव मन और भ्रमण्डल को नूतन जीवन रचना से सम्युक्त करना चाहता है। शतिया के मृत-सस्कारों से मर्दित मानव मन के अन्मुत्थान का उपाय आत्म बोध की निष्क्रिय समरसतापूर्ण स्थितियों में नहीं है जैसा कि स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद ने ‘कामायनी’ में प्रतिपादित किया है—

वसे कहदू इडा लुघ युग मनु स
श्रद्धा सग वह करे मेर नग रोहण
आत्म बोध की निष्क्रिय समस्थिति को
जन भू पथ पर करना सन्निय विचरण !

(वही पृ० ७)

लोकायतन के रचयिता की जीवन दृष्टि कामायनीकार से यही तत्त्वन भिन है। कामायनी का जीवन ऋण जहाँ शवागमा की आत्म-दवादी अवधारणा पर आनृत ‘यक्तिनिष्ठ सामरस्य का प्रतिपादक है वहाँ लोकायतन का काव्य दशन अरवि द प्रतिपादित ऊँच और समशिक की सामजस्य भावना पर केंद्रित होते हुए भी लोकों मुख किबा समष्टिपरक है। इस दृष्टि से ‘पत का लोकदशन उस शिखर से आरम्भ होता है जहा पर ‘कामायनी का दशन समाप्त हुआ था।” यहा ‘यक्ति से समष्टि की आर कवि उ मुख हुआ है। ‘लोकायतन का कवि मानवता के जनक मनु के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता के सुखद भविष्य का मगलाकाक्षी है।

'पूव स्मृति' उपखण्ड म कवि ने कथानक के पौराणिक सूत्र को वदेही के निवासन की घटना स जोडा है। रघुवर की पात था कि जनक नदिनी निर्धोप हैं, फिर भी साक जीवन के सशय और अविश्वास का निराकरण करने के लिए उह निर्वासन किया था। कवि के अनुसार भारतीय इतिहास का यह घटना क्रम सनानन सत्य का उदघाटक है—

'जनरव भय से राघव न पत्नी को
छोडा या क्या ? क्या पुरातन रे यह

× × ×

यह इतिहास न हा तथ्यो पर कल्पित,
भारत भू भानस का सत्य सनातन
दशकाल पुलिनो का रहा डुवाता,
यहा चेतना के जीवन का प्लावन।"

(यही, पृ० १०)

इसी उपखण्ड' म राम और सीता के सवाद द्वारा कवि ने सृष्टि विकास के विभिन्न युगो का सचेतन तथ्यमूलक इतिहास दाहराया है। राम कहते हैं कि जड चेतन का सघपण चिर अनादि है। चेतन ही जड और जड ही चेतन होता है कि तु तकप्रवण बुद्धि नहीं समझ पाता है। ह्यास जोर विकास मन की ही गतिया हैं। रामराज्य राज्यतन्त्रीय व्यवस्था का युग सपण था। अब लोक तत्र का स्वर्णोदय हुआ है जिसमे नवान जीवन मूल्या पर शासन व्यवस्था आधृत है। राम धर्म, नीति सस्कृति विचार विरि, दशन शास्त्रान यन कम, नियम, व्रतसाधन, शासन पद्धति, चतुवण और चतुराश्रम व्यवस्था सीता को समर्पित कर नव सृष्टि सरचना का आह्वान करते है। जानकी उत समपण को स्वीकार कर नव रूप सृजन क लिए वृत मरल्प होती हैं। इसके पश्चात कवि ने सीता के विश्व प्रापी महत् रूप को याख्यायित करते हुए कहा है कि सीता ही आद्यत रहित जनत जगधानी हैं व ही चि मुक्ता अमल प्रीति है जो अणु अणु म ध्याप्त हैं। असह्य ब्रह्माण्ड, ताकग्रह दिशा, काल, गगन नीलिमा, सिंधु जल, पावक, हरितधरा समोरण परिवृत गदि म वही चेतना स्वरूपा आदि शक्ति विद्यमान है। राम और सीता की भांति कवि न रामकथा के अ य पाना क प्रतीकात्मक यकित्व एव सत्ता का स्पष्टीकरण किया है। उदाहरणार्थ हनुमान अजेय पौरुष क, विदहराज जनक मानस स्थिति क, रावण अह

वृत्ति का, ऊर्मिला शील की ओर निर्माणर युग की श्रुतता के प्रतीक थे। ये सभी पात्र अनश्वर हैं —

सीता जन भू हृदय, राम जन क बल
नर चरित्र घर मानस पात्र अनश्वर,
प्रीति प्रणत लक्ष्मण अनंत पोष्य बल
शील मूर्ति ऊर्मिला विरह रस गागर।
यह रूपक सक्षिप्त, प्रिये गत युग का
कात चित्र हो रहा, कल्प परिवर्तित'

(वही, पृ० १६१७)

राम सीता के संवाद की परिसमाप्ति पर सहमा उज्वल इन्द्रधनुष मण्डित नीलगगन में चित रश्मियों के दिक स्फूर्ति मण्डल में स्वर्ण शुभ्र नवचेतना एक सूक्ष्मावृत्ति के रूप में प्रादुर्भूत हुई। इस कवि न युग युग की चतय ज्योति कला है। भावना प्रेरित वाल्मीकि युगदेवी की बदना कर जगद्धात्री से लोक मंगल व लिए नवचेतना प्रसार का वर मागत हैं। शक्ति स्वरूपा सीता ने कवि को ध्वम भय और सशय का हरण करने के लिए महत्-सज्जन की प्रेरणा दी। क्राँच की कम्पा से डारू से कवि बने वाल्मीकि न सकल्प किया कि मैं युद्धानन्द जग को शांतिमंत्र दूंगा, लोक जुगुप्सा हिंसा क्षद्रता, श्रुत वृत्ति यत्र युग की विगहणा और सवनाशक उदजन जायाजनो का परिस्याग कर धरा प्रेम करणा श्रम समवय जातीय एकता और विश्व मानवतावादी मूल्या के प्रति निष्ठावान होगी। कवि ने ध्यानावस्थित होकर दया कि मानवता का भविष्य चित किरणा के स्वर्णिम प्रकाश से आलोकित है। शत शत इन्द्रधनुषों की ज्वाला से मण्डित नयी चेतना का विकास हुआ जिसके भाव बोध से इन्द्रियाँ मन, प्राण प्रह्वित हो उठ। नयी चेतना के शक्तिपात से सवत्र मधुरिमा और मागल्य को अभिवर्द्धि हुई—

'ज्याति प्रीति आनन्द मधुरिमा मंगल
जन जीवन में मूत हो रहे जग में
× × ×
रहस क्लामयी महाशक्ति जग धात्री
अणु में जा करती अनंत भवधारण।
देख रहा उठता भूनालक ऊपर,
उपर ज्योतिर्पिंडा से अभिनदिन

जड़ के मुख पर शक्ति पात चेतन का,
मन श्रृंग पर हो शत तडित प्ररूपित ।”

(वही, पृ० २४)

इसके पश्चात् कवि ने धरा अवतरण और धरित्री जीवन की विजम्बनाओं का निरूपण किया है। आद्र कठ ने सबसेहा वसुधरा ने भूमिजा सीता से कहा कि बंटी ! तुम्ह मेर मन का सधपण नात है। युग सध्या की इस वता म धग जग मे क्रांति मची हुई है। नए कल्प का जन्म जान जाना है नय नय परिवतन ससार म घटित हा रह है। विनाशकारी प्रयास और गान्ति प्रयत्न तथा अथ भौतिकता का ककश स्वर और तप त्यागजय विरति का रोशन एक साथ सुनायी पढ रहे हैं। कवि क अनुसार दा विरोधी गुटा म बटा विश्व जीवन मय भ्रम मे पसा हुआ है—

‘बुद्ध शेष फूत्कारा स दिशि घूमिल,
महामृत्यु मघो स मथित अवर,
मुझे विरोधी शिविरा का भय भ्रम हर
मृजन शान्ति स्थापित करनी भू तल पर !
भौतिक धमव के मद से उत्तेजित,
शापक शोपित म विमक्न भू प्राण
उधर अथ भौतिकता का ककश स्वर
उधर रिक्त तप त्याग विरति का रादन ।

(वही, पृ० २६)

कवि का मत है कि धरित्री जीवन की सभी व्याख्याएँ अपूण हैं। तत्त्व विदा ने धरा को मय वाग कह कर जरा रोग, मय, पाप तान का प्राण बनाया है। धमना ने त्याग विराग सिखा कर जगत का यथ, मिथ्या और माया बधन बना है। यतिया न मुक्ति मार्ग का विनाशन कर धरणी का निजन बनान का प्रयत्न किया है। स्वयं नरक और जड़ चेतन क द्वाद्व म फसे लाग जीवन का वास्तविकता स अपरिचित हैं। अपने आदिम किंबा भौतिक स्वरूप का प्रतिपादन करने हुए धरा ने कहा कि मैं मन स बडी, क्षण परिमित और नित्य अपरिमित हू। मैं ज्योतिप्रिय हूँ अन दीप्त गृहा क साथ नतन करती हूँ। रवि मरा शाश्वत प्रशि मुबदपण, उपा माँग की रोली और ज्योत्स्ना तन का उबटन है। घन मुझे रसधार से स्नान कराते है। वसुधरा न भूमिजा से कहा कि तुम मेर अन्तर की अकल्पु प्रीतिज्याति हो। तुम स्वय प्रकाशित

अधिमानस की काम धेनुआ को दुह
उच्च प्रेरणा स्रोतों को ला भू पर,
प्रज्ञाऽमृत से भरना नव सजीवन,
मानव उर का पोषक रस जो भास्वर ।

(वही, पृ० ३३)

महागौरी ने वरमुद्रा में ही कवि से कहा कि स्वर्गिक क्षितिजों के अक्षय वनव से सम्पुक्त शब्द सृष्टि द्वारा भावी मानवता के हित सरचना करो । तुम असत तमस पर सत्य ज्योति की जय का गान करा । कवि मन के भावना-ज्वार में भू-जनो का अंतर आप्लावित होकर भेद मुक्त होगा । कवि के उर से निःसृत भाव धारा शांति, ज्योति और आनन्द की त्रिवेणी बहा दगी । इस समद आह्लादक रसधारा से भू उर आलाकपूण तथा यौवन स्मित बनेगा । महागौरी ने कवि को मानवता का मंगल विधायक अमृतघट सौंप दिया—

“तुम्हें सौंपती लो, यह कनक अमृत घट,
नर नारी के रस मंगल से पूरित ।”

(वही, प० ३४)

कवि न मंगलघट का अधिगृहीत कर परमशिवा से यह वर पुन मांगा—

‘सहज प्रसन्न जननि वह, जन को दें वर,
बरस श्री शोभा मंगल पग-पग पर,
महत् मृत्यु से प्रेरित हा मानव उर,
धरा स्वर्ग ही सुदर से सुदरतर ।’

(वही प० ३५)

उमा ने मद स्मित मुख से 'तयास्तु' कहा और वे सीता से स्नह विनय युक्त वाणी में बोली कि तुम प्रति युग में विकसित होने वाली विश्व चेतना हो । तुम अत केन्द्रित परात्पर भिन्न ज्योति हो । अब तुम धरा चेतना के शिखरों के ऊपासित शृंगों से उत्तर कर हरित धरा पर स्वर्गिम तिल्वर सी शरों जिससे स्वर्ग मृत्यु के भेद तिमिर की छाड़ पट जाय और समूह जीवन में धुम्र शांति परिचाप्य हो । कविवर पत के अनुसार यह स्मृति पट का उद्घाटन था जिममें यह कामना की गई कि—

‘मगल प्र’ हो जन भू के जीवन हित
अतमन का मह पावन आरोहण,
भूत भविष्यत के ज्योतिष्पुतनी पर
बने पुण्य स्मृति स्वर्ग सेतु जन मोहन ।

(वही, पृ० ३६)

इस प्रकार पूर्व स्मृति के अन्तगत कवि ने सीता को भू चेतना का प्रतीक मानकर युगों और कल्पों में विवक्षित मानवता के भावी भाग्य की भूमिका प्रस्तुत की है। पूर्व स्मृति उपखण्ड ‘लाकायतन महाकाव्य के कथा-रस से असम्बद्ध होते हुए इस काव्य का प्रवेशद्वार है। ‘पूर्व स्मृति’ एक प्रकार से लोकायतन की प्रस्तावना भूमिका या प्राक्कथन है। इस काव्य खण्ड में वर्तमान युग जीवन की विसर्गियों का यथाथ मूलक दृष्टि से अवलोकन कर भू-जीवन को सुखद शांत और मगलमय बनाने के लिए महाकवि के दायित्व का भी निदर्शन किया गया है। वर्तमान भू जीवन की निश्चेष्टता को भाव चेतना से आदोलित कर नयी आशाओं उमगा और आनन्द तरंगों से प्रह्वित पुलकित करना ही मनीषी कवि का कर्तव्य है। वैदिक युग की विनाशकारी उपलब्धियों की चकाचौंध में दिगभ्रमित जड़ मानवता को मूल्यगत विघटन और विनाश के महागर्भ में गिरने में बचाकर उसे नवनिर्माण के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा सदीप्त करने का काव्य आज के कवि को करना है। लाकायतन के रचयिता ने इस गुरुतर दायित्व का सह्य सवहन किया है। पूर्व स्मृति में जो चिंतन-सूत्र उभारे गये हैं तथा मानवता के मगलविधान हेतु जिन चेतना स्तरों को रखाकित किया गया है उन्हीं के मिलन बिन्दुओं पर लाकायतन का विशाल काव्य भवन निर्मित है। यही पूर्व स्मृति उपखण्ड की रचना का मूल्य और साधक्य है।

लोकायतन के कथाक्रम का समारम्भ प्रथम खण्ड बाह्य परिवेश के ‘जीवन द्वार’ उपखण्ड के युग भू प्रगण्ड से होता है। नव युग जन्म जगत हित शुभ हो भू की प्रसव-यय जय गाजा’ इस कथन से कवि आरम्भ करता है। जाने कितने निवस मास वर्ष शरियाँ और युग बीत गए भारत की जन भू अनन्य प्रकार के उत्थान पतन रण दख चुकी है। इस भू ने दैत्य, दासना दस्यु जात्रमण और ह्यास की अमरय दारुण स्थितियों को सहा है। इसी भारत बसुधरा पर सुन्दरपुर नामक जन-पद अवस्थित है जिसके जन जीवन में मध्य युग की परम्परप्रियता और जड़ सस्कार शीलता परिचाप्य है। कवि के शब्दों में—

“घोर असुन्दर था सुन्दरपुर
 दय अविद्या का जड पजर
 रुद्ध रीतियों का निष्प्रिय गल
 विगत सम्यता का हत पडहर ।
 × × ×
 धरा गम का नरक कुड था
 सुन्दरपुर जनपद विपण्ण मन,
 भू दारिद्र्या का दुग्म गड—
 निज दुगति के प्रति विरक्त जन ।’

(जीवन द्वार, युग भू, प० ४२ ४३)

इस जनपद में झाड़फूँ में के नग्न धरील से घर थे जिनके निवासी राग द्वेष भय घृणा और कलह में डूबे हुए नराश्य अमंगल से भरा भाग्यवादी निष्फल जीवन बिता रहे थे । यहाँ तरुण वय विपय क्लुप विप पीकर दुगति पूण जीवन यापन कर रहा था । इसी जनपद में भावुक सहृदय युवक कवि वशी और उसका समवयस्क सखा हरि भी थे । जनपद की अवनति से वशी क्षुध और खिन्न था । वशी ने हरि से सुन्दरपुर जनपद की हासो-मुख शोचनीय दशा पर भीरु विमश कर जनपद को पतन के गत से निकालकर विकास मुक्त करन के उपाय पर विचार किया । वशी इस निष्कप पर पहुँचा कि—

‘जाति पातियों में दशो म,
 वण श्रेणिया में विभक्त जन,
 बाधक उनके योगक्षेम का,
 गत सस्कारो का बीता मन ।’

(वही, युग भू पृ० ५०)

वशी ने कहा कि दश दामता के गत में गिरकर हन चेतन है । ‘पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं है अतः हमारा सर्वप्रथम ध्येय है कि—

‘प्रथम देश स्वाधीन बन सके
 यही परम हा लक्ष्य हमारा,
 फूँके युग-जागरण शत हम,
 जन स्वतन्त्रता का दे नारा ।’

(वही, युग भू पृ० ५०)

वशी ने कहा कि देश मुक्त हान से ही गाव और जनपद गतिशील बनेंगे दश और जातियों के जावन में एम महत क्रांति क्षण आते हैं जब जा सम्यता के शव में भी सचेतन शोषित प्रवाहित हाने लगता है। जानाय गाधी के नेतृत्व में अहिंसा के युगवेनन के नीचे आज वही युगातरकारी वेल् आई है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की विगहणा से भारतीय जन जीवन ही प्रताडि नहीं अपितु विश्व के अन्य अनेक राष्ट्र भी पीडित ये अतः कवि के अनुसार—

‘भारत का ही यह न मुक्ति रण
विश्व मुक्ति का आया शुभ क्षण !’

(वही, युग भू, पृ० ५२)

जन शक्ति और अंग्रेजी शासन के अपरिमित पशु बल का सगर अदमु था। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रथम बार मानव की समूह शक्ति भीषण पशुबल से झुझने की संकल्पित हुई थी। मुटठी भर हडिडियों के ढाँचे वां गाधीजी शुभ्र अहिंसा का बल लेकर असहयोग सत्याग्रह आन्दोलनो का सचा लन करत हुए दैत्याकार क्रूर विदेशी प्रशासन से सघप कर रहे थे। हरि औ वशी भी स्वाधीनता भाव से आ दोलित थे। हरि ने कहा कि वह गाँव गति में सत्याग्रह का संदेश पहुँचा कर जनपद वासियों को राष्ट्र के लिए सवस्व समर्पण की भावना से अनुप्रेरित करगा। वशी सचेतन रचनाकार था, उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी भावना यापक और दृष्टिकान विश्वमानतावादी था। उसकी यह बद्धमूल धारणा थी कि—

भारत व जीवन मंगल में,
निहित भुवन सब जीवा का हित।
× × ×
लोक क्षेम रत रहा प्राण पण
विश्व कम ही भू पथ साधन।

(वही युग भू पृ० ५६ ५९)

‘जावन द्वार उपलण्ड व ग्राम शिविर शापक द्वितीय प्रलण्ड में पतनजी न मुन्तरपुर जनपद में ‘बलाशिविर की स्थापना स्वाधीनता आन्दोलन की भावना व प्रचार प्रसार और ग्रामीण जीवन की पुनर्थाभा का चित्रण किया है। कवि व अनुमार राग चेतना का विकास ही निवृत्त प्रगति का सार है। इस राग चेतना का सबहन शोभा दत्ता नारा करता है। किन्तु धरा पर स्वग

‘जीवन-द्वार उपखण्ड के तृतीय अर्थात् ‘मुक्तियन्त्र प्रखण्ड में कवि ने सन् १९२१ से १९४७ तक के स्वाधीनता मधय की प्रमुख घटनाओं को छद्मबद्ध किया है। इस काव्यखण्ड के नायक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं। डा० सावित्री सिंहा के अनुसार— ‘मुक्ति यज्ञ प्रसंग लोकायतन का ही एक अंश है परन्तु अंश होने भी वह अपने आप में पूरा है। मुक्तियन्त्र में उस युग का इतिहास अंकित है जब भारत में एक हलचल मची हुई थी और सम्पूर्ण देश में आतंक की आग सुलग रही थी। मुक्तियन्त्र में गांधी युग के स्वर्ण इतिहास का काव्यात्मक आलेख है।’^{११} पातञ्जली ने स्वयं इस प्रखण्ड के सम्बन्ध में कहा है कि —

‘कथा नहीं यह वृच्छ साधना
भू जीवन मंगल की निश्चय,
सत्य अहिंसा की जय, कविते,
नव भू मानवता की युग जय !

(वही, मुक्तियज्ञ पृ० ८२)

भारतीय जन जीवन के स्वातंत्र्य हेतु किए गए मुक्तियज्ञ के पुरोहित (नेता) महात्मा गांधी थे। कवि ने गांधीजी की तुलना देवदूत से करते हुए उनके नमक-कानून तोड़ो आन्दोलन को स्वराज्य मुक्ति का प्रतीक कहा है।

कौन चल रहा वह नर भूधर
जन धरणी पर ऊँच चरण धर ?
ऋषि अगस्त्य सा लवण सिंधु को,
पी हस हस अजलि-पुट में भर ।

× × ×
लोक प्रगति का देवदूत वह,
तीस कोटि का रहा कृती जन !

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ८४)

कवि के अनुसार नमक बनाना बापू का ध्येय नहीं था। वस्तुतः भारतीय जनगण के लिए यह विद्रोह पत्र का प्रतीक था। यह एक ऐतिहासिक युग क्षण था जब बापू ने नमक कानून तोड़ा और दाढ़ी यात्रा की। गांधीजी ने अहिंसा की शक्ति द्वारा जो रक्तहीन रण किया वह इतिहास में विलक्षण है। दूसरे

^{११} मुक्तियज्ञ परिचय, पृ० २१

भारत का स्वाधीनता आन्दोलन इस अर्थ में विश्व-वापी था कि उसका प्रभाव और प्रतिक्रिया अ-तर्राष्ट्रीय हुई—

“भारतीय स्वानन्द युद्ध था,
मनुष्यत्व का भू पर युग रण
अन रिक्त बहि समृद्ध जग
हिंसा संधा का था प्रागण।”

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ८६)

इस आन्दोलन को प्रशमित करने के लिए अंग्रेजी प्रशासन ने तीव्र गति से दमनचक्र चलाया, बापू सहित छोटी के नेता कारागृह में ठूस दिए गए। किन्तु सत्याग्रहियों का उत्साह कम नहीं हुआ। कवि के शब्दों में—

‘भारत के कोने कोने में, फैल गया सदेश मुक्ति का,
उल्टा ही पत हुआ जगत में अमायी की दमन युक्ति का।
स्वग घीत बलवती बनी भू मत्स्याग्रह में रक्त स्नान कर,
हृष्ट शौरवाचित निरन्तर जन मुक्ति यत्न हिन आत्मदान कर।”

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९५)

‘मुक्तियज्ञ आन्दोलन में पुण्या के समान ही स्त्रियाँ ने भी अभूतपूर्व उत्साह से योगदान किया—

सच्चे साहस शीघ्र त्याग से
दीप्त, युवतियाँ थी उमेपित
जगी बहिंसा मृत रूप घर
भारत लक्ष्मी में अभिषेकित।
कोमल अंग भले हो विभक्त
धय मनावल में अप्रतिहत
पहन केसरी बाने फिरती,
रण चण्डी बन, लिए मुक्ति धन।

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९६)

एतन् जो के मनानुसार भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन व्यापक अर्थों में आध्यात्मिकता और भौतिकता का संगम था जिसमें आध्यात्मिकता अहिंसा के बल पर और भौतिकता प्रतीकार की शक्ति लेकर जूझ रही थी अतन् विजय अखण्ड भारत आत्मा की ही हुई—

पशुबल के ही हिंस्र क्षेप पर
 आत्मशक्ति की जय भौगोलिक ।
 भीतिवृत्ता के प्रतीकार म
 आभ्यात्मिकता का सक्रिय रण,
 × × ×
 विजय हुई भारत आत्मा की,
 स्रण्डित नहीं हुआ जन भू मन ।'

(वही मुक्तियज्ञ, पृ० ६७)

भारत स्वतंत्र हा गया । गाँवों और नगरों पर आस्था का केतन
 फहराया । काल ध्वस्त जजरित जन खडहरों में जीवन-ज्योति जगमगा उठी ।
 शक्तियों से हत पतझर बन म मधु यौवन का शाणित फूट पड़ा । युगों से जड़,
 निष्क्रिय और निद्रित जन जीवन में स्वातन्त्र्य चेतना की नवजागृति सबत्र
 दृष्टिगोचर हुई—

'जगे खेत खलिहान बाग फड, जगे बैल हसिया हल विस्मित,
 हाट बाट गोचर घर आगन बापी पनघट जगे चमत्कृत ।
 मोट गडारी नार जगत जग लगे माँडने मुक्ति शस्य स्मित,
 अँगड़ाई ले जगा पुरानन युग-युग से जड़ निष्क्रिय निद्रित ।'

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ६८)

इस युग रण म मुन्दरपुर जनपद के अनुदान का आलेख भी स्वर्णाक्षरों म
 अंकित हुआ । आत्म-त्याग के इस अलौकिक पक्ष पर रक्तबलि देकर जनता
 महिमान्वित हुई । हरी जैन म धन्द था और उसका घर ढूह बन गया था ।
 माधो गुरु नित नए हथकड़े चलाते थे । माधो गुरु की चाला स ही बशी की
 पिटाई हुई । बशी भी कारागृह गया । हरी और बशी के पकड़ जाने पर सिरी
 ने सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व किया । भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन को
 बलि ने 'सागर मयन क रूपक द्वारा प्रभावकारी ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत
 किया है—

'भारत भू उठेलिा सागर,
 कच्छप युग-नायक का दृढ पग,
 जनता दन जहि रज्जु बाटि फग
 मन्त्र गिरि स्थिर लोह-सगठन

आत्मशक्ति पशुवल जुट मथते,
नवयुग देवासुर सघपण,—
जब रामराज्य लक्ष्मी प्रकटी तब,
जन भू मगल हिन था गुम क्षण ।”

(वही, मुक्ति यज्ञ, पृ० ११२)

अगणित देशभक्तों के आत्मोत्सर्ग से प्राप्त स्वाधीनता भारत के रश्मि गोलाघ पर स्वर्ग स्मरण के रूप में दीप्तिमान हुई, किन्तु मानवता के मगल विधान की ओर यह प्रथम चरण था। कवि की दृष्टि में विश्व ऐक्य और मानव-प्रीति के महान् उद्देश्यों की सिद्धि ही अभीक्ष्ण है—

“राष्ट्र मुक्ति से केवल प्रथम चरण भर,
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित,
मनुज प्रीति के अमर सूत्र में गुफित,
स्वर्ग पीठ करनी भू-भर पर स्थापित ।”

(वही मुक्ति यज्ञ, पृ० ११५)

‘संस्कृति द्वार’ प्रथम खण्ड का द्वितीय द्वार है। ‘संस्कृति द्वार’ का प्रथम उपखण्ड ‘आत्म दान’ है। इस उपखण्ड में कवि ने भारत के विभाजन के पश्चात् हुए साम्प्रदायिक दंगों और उनके निवारक प्रयत्नों में बापू के महान् बलिदान (आत्मदान) का वाक्यात्मक समाधान किया है। विभाजन के दुष्परिणामों का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

“गत नियति । मुक्ति उपग्रम में
भारत का कर्ण विभाजन
लाया सग दुमति प्रेरित
कटु रक्तपात, खल गृह रण ।
× × ×
स्त्री, शिशुआ वृद्धा का वध
नर हत्याएँ क्षुर घातें
व्यभिचार, सुट लपटता
काली अनकहनी बातें ।”

(वही, आत्मदान, पृ० ११६)

विभाजन ने भाई भाई के प्रेम को घृणा रूपी विष में बदल दिया। नारकीय प्रतिहिंसा न बीजस घृणा का रज धारण कर लिया। विभाजन के

फनस्वरूप जमी द्वेषाग्नि के पागलपन का कारण मंदिरा जीर मस्जिदों में
 बैठे अल्ला ईश्वर भी सनस्त हो गए। धर्मांध साम्प्रदायिकता का यह दुर्लभ
 विध्वंसक रण वस्तु मध्य युग का ही अभिशाप था—

‘स रक्त काण्ड के पीछे ये मध्य युगों के सण्डहर,
 उच्छिष्ट जीण ससृष्टि के, स्वार्थों के कट्टर पत्थर।’

(वही, आत्मदान, पृ० १२२)

इस अवसर पर बापू ने साम्प्रदायिक एकता और हिंदू मुस्लिम धर्म
 समन्वय का महाप्रयास किया। मीनो लम्बी पत्र यात्राएँ करके दूरस्थ गाँवों में
 घर-घर पहुँच कर पीड़ित शोषित और सनस्त जनो को आश्वस्त किया। बापू
 के प्रेम सन्देश ने जात हिंदू मुसलमानों के नराशय विपाद को दूर किया।
 नाआसली पंजाब दिल्ली और त्रिहार में मन्त्र साम्प्रदायिक दंगों की ज्वाला
 घसक रही थी। सेना के बगैर दिल्ली में शांति स्थापित हो गई थी, किन्तु
 यह कृत्रिम ही थी क्योंकि भीतर ही भीतर विश्वास और हिंसा उबल रही थी।
 अपनी प्रार्थना समाप्ता में बापू ने रक्तपात समाप्त कर दिया प्रेम का माग अनु-
 सरण करने का उपदेश दिया। बापू कहते थे कि—

गीता कुरान दोनों ही जो हम न सुन सकेँ सविनय
 तां व्यय प्रार्थना करना मरा सीधा सा आशय।
 भारत मय धर्मों की भू सब का हो यहाँ सम बय
 प्रिय राम रहीम उभय ही ईश्वर के नाम न सशय।’

(वही आत्मदान, पृ० १२८)

गांधी जी को यह भी चिन्ता थी कि यदि भारतवर्ष ही अहिंसा के
 पापेय का परित्याग कर देंगे तो विश्व जीवन निमिगच्छन्न हो जायगा। अस्तु
 बापू ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। इन नारकीय प्रतिनिमा रूपी नाटक का
 समाप्ति अन्त में बापू के चिन्तन में हुआ—

इस नारकीय हिंसा के नाटक का कारण समाज
 प्रिय बापू की चिन्ता हो ! ओ अक्षयीय अघटित क्षण ॥
 प्रार्थना समाप्ति जाने साकार प्रार्थना से न
 वे नर निधवार भू पर नर-नगु प्रहार में आहत ।

(वही आत्मदान पृ० १३०)

बापू के निधन के पश्चात् जन जावन में जो मन्त्र विपाद और सृष्टि
 के प्राण में नाक मउत्ता परिष्कार हा गये उगवा कति न ममस्पर्शी वजन

किया है। बापू के प्रति अपनी भावाञ्जलि समर्पित करते हुए कवि ने उन्हें गौतम और ईमा की समुज्ज्वल परम्परा में स्थान दिया है। यज्ञ-युगीन जन जीवन को बापू ने सत्कर्म चेतना का मंगल आह्वान किया। तप, त्याग, शील, क्षमा, करुणा जैसे जीवन मूल्यों की साग्रह प्रतिष्ठा कर बापू ने भारतीय संस्कृति के चिरन्तन मूल्यों का पुनराख्यान किया। इसीलिए बापू को राष्ट्रपिता महामानव, युगपुरुष आदि अभिधानों से अलङ्कित किया है—

“जय राष्ट्रपिता, जय मानव, जय शुभ्र पुरुष, युग समव,
जय आत्मशक्ति के पवत, भू स्वर्ग दूत, युग नर नव।
तुम छू जन जीवन के बहु, जजर पक्षाहत अवयव,
भू संस्कृति को युग मन की दे गए ऊँच नव गौरव।”

(वही, आत्मदान, पृ० १३६)

वर्तमान युग की पीठिका पर बापू का व्यक्तित्व नर भूधर के समान है। कवि ने बापू को स्फटिक सत्य का दपण सकल्प शक्ति का निष्कर, सचस्व त्याग की प्रतिमा नव युग का प्रथम पुरुष और नव युग का अंतिम मानव कहा है। गांधी जी ने अहिंसा का अमोघ अस्त्र प्रदान कर निचलो म भी अपरिमित आत्म शक्ति का संचरण किया। गांधी जी ने यह प्रमाणित कर दिया कि पशुबल केवल सामूहिक सहार शक्ति से ही परिचित था। जीवन की मंगल रचना करने वाली वास्तविक शक्ति अहिंसा है। युद्ध नद्ध जग के लिए बापू ने आत्मशक्ति का दर्शन और सांस्कृतिक साधन उपलब्ध कराए। पन्त जी के अनुसार बापू का योगदान यह था कि उन्होंने—

“जडवाद घस्त जग में ले,
अध्यात्म शक्ति का केतन,
ध्यापक गभीर आस्था में
संगठित कर गए जन मन !
भौतिक मूल्यों से पीड़ित
सदेह दग्ध थे भू जन
तुम सत्य शिष्या ले आए,
घर सौम्य अहिंसक का तन !”

(वही आत्मदान, पृ० १४०)

बापू ने युग की राजनीति में भी ध्रुव मय, निष्काम लोक सेवा, परहित, निबल निघन के प्रतिनिधित्व और आत्म उन्नयन पर बल दिया। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में बापू ने पशुबल की चरम परिणति आत्मिक बल में देखी। सत्साध्य

शुद्ध साधनों की स्थापना, नतिक एतता की घापणा और मानव प्रेम की सश्रिय जीवन-गति को स्थापित करने में बापू का योगदान असाधारण रहा। भारत सदा से ही विश्व को यह संदेश देता रहा कि शुद्धगति की स्थापना अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है, बापू ने भी यही किया। कवि के अनुसार—

“भू के समृद्ध देशों तो
भारत से शक्ति तपो-बल,
दिव्यास्त्र अहिंसा उर के
कलुषा को करती घायल !
भौतिक बमब मदिरा पी
मत बना ध्वस हित पागल
नतिक समृद्धि ही भू निधि,
खोलो निरुद्ध अतस्तन !”

(वही आत्मदान, पृ० १४३)

पन्त जी के अनुसार दासी भारत भू के उद्धारक के रूप में शक्तियाँ तक जन मन बापू का वृत्तज्ञ रहेगा। वे अणु मत जन भू के तारक के रूप में भी सदा स्मरण किए जायेंगे। लोकायतन के रचयिता के मतानुसार बापू ने एक जीवन में सौ जीवन लिए और प्रतिक्षण सौ युगों में मुक्त-संचरण किया। वे ऐसे महापुरुष थे जिनके माथ एक कल्प का समापन हो गया। अस्तु बापू के बलिदान पर नव युग नतमस्तक है और उनके पद चिह्नों पर चलने के लिए वृत्त सकल्प है—

‘सौ जीवन जो जीया एक महत जीवन में
सौ युग जिसके संग नित चलते थे प्रतिक्षण में !
एक कल्प उसके संग साधक आज समापन
पद चिह्ना पर नव युग करता मौन पदापण ।

(वही आत्मदान पृ० १४४)

सस्कृति द्वार के द्वितीय उपखण्ड का शीपक ‘सत्रमण’ है। देश के स्वाधीन हान पर बानी मुक्कन हुए। बशी और हरी भी वृशतन किन्तु उद्वलित मन से सुन्दरपुर जनपद लौटे। जनपद के नर-नारिया ने उनका अभिनन्दन किया। हरी की बहन श्री उसके उर से स्नेह माल की भाँति निपट गई। मा न सिर सूषा गीर पिना रघु ने गर्वोन्नत मस्तक से पुत्र को सराहा। हरी के स्वागत

अभिनन्दन सम्बन्धी समायोजन के परिदृश्य का चित्रानन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

‘उत्कृष्ट कला शिविर ने गाया कुसुमित अभिवदन,
सज्ज वदनवार पुलक के रच अपलक चितवन तोरण ।
वह प्रथम मुक्ति उत्सव था, वह श्रौडा, रग प्रदर्शन
प्रिय लोक नृत्य गीतो का युग पव मनाते थे जन ।

(वही, सत्रमण पृ० १४६)

किन्तु वशी एकांत अजिर म बठा युग चिंतन म रत था । वह सोचता था कि स्वतंत्रता स्वयं म सिद्धि नहीं है । वशी का सज्ज मन रक्त स्वद अभिप्रे कित भू जीवन की रचना का संकल्प कर रहा था । उसकी कामना थी कि जन भू पर जीवनोत्सास तभी सम्भव है जब बहिरंतर विभव समन्वित हो । शांति की प्रतिष्ठा और प्रेम के प्रकाश से ही कामनाएँ चरिताथ हो सकेंगी । जन जीवन देश और जातिधो की सोभा लाघ कर ही बसुंधरा को स्वग बना सकता है । वशी की चिन्ता यह थी कि उपनिषदा की ज्योतिमय चेतना से जन भू क्यों वंचित है ? तभी वशी के उपचेतन मे भारत व उस प्राचीन आध्यात्मिक युग का परिदृश्य उमरा जिसे आलोक जागरण का युग कहा जाता है जिस युग के ज्ञान मे जगत हित का दिव्य निदर्शन था । इसी ज्ञम म वशी की दृष्टि चतुर्दिक परिवेश की ओर उन्मुख हुई । उसने देखा भारत के कर्ण विमाजन के कारण राष्ट्रीय जीवन आहत हो गया गृह कलह की कात्तिमा जमिष्ट रेखा के रूप मे राष्ट्र मस्तक पर अंकित हो गई । भारतीय जन-जीवन म जा वट्टु कोलाहल हुआ उसक कारण घृणा और द्वेष के कदम से धम दीप्तिन मन भी सन गये । तभी वशी ने मानवता विकास के विभिन्न युगा पर हकपात किया तो उस पात हुआ कि कृषि युग की समाप्ति के पश्चात से धरा पर ह्रास विवृति और विघटन का तम छाया हुआ है—

‘कृषि वृत्त चरम विकसित हा
जब क्रमश हुआ समापन
छाया हत माग्ग धरा पर,
जड ह्याम, विवृति तम विघटन ।’

(वही सस्कृति द्वार सत्रमण पृ० १५१)

विभिन्न युगा पर हकपात करते हुए वशी की दृष्टि मध्य युग पर केन्द्रित हुई । सामन्ती व्यवस्था के अभिशापा की अनुभूति का कवि ने इस प्रकार शब्दांकित किया है—

शुद्ध साधना की स्थापना, नतिक एकता की घोषणा और मानव प्रेम की सन्धिय जीवन-गति को स्थापित करने में बापू का योगदान असाधारण रहा। भारत सदा से ही विश्व को यह संदेश देता रहा कि 'गुप्तशांति' की स्थापना अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है, बापू ने भी यही किया। कवि के अनुसार—

“भू के समस्त देशों, लो
भारत से शक्ति तपोज्वल
दिव्यास्त्र अहिंसा, उर के
कलुषों को करती धायल !
भौतिक बभ्रव मदिरा पी
मत बनो ध्वंस हित पागल
नतिक समृद्धि ही भू निधि
सोलो निरुद्ध अतस्तन !”

(वही आत्मदान, पृ० १४३)

पत जी के अनुसार दासी भारत भू के उद्धारक के रूप में शक्तियों तक जन मन बापू का श्रुत रहेगा। वे अणु मत जन भू के तारक के रूप में भी सदा स्मरण किए जायेंगे। लोकमत के रचयिता के मतानुसार बापू ने एक जीवन में सौ जीवन किए और प्रतिक्षण सौ युगों में मुक्त-मचरण किया। वे ऐसे महापुरुष थे जिनके साथ एक कल्प का समापन हो गया। अस्तु बापू के बलिदान पर नव-युग नतमस्तक है और उनके पद चिह्न पर चलने के लिए हम सब कल्प है—

सौ जीवन जो जीया एन महत् जीवन में
सौ युग जिसने मग निरु चलते थे प्रतिक्षण में !
एक कल्प उमर सग साधक आज समापन
पद चिह्न पर नव युग करना मौन पत्थापन ।

(वही आत्मदान पृ० १४४)

महात्मा के द्वितीय उपमण्डल का गीतक 'सत्रमण' है। अणु के स्वाधीन मान पर यही मुक्त है। वही और हरी भी श्रुतता किन्तु उद्भवित मन से श्रुतपुर जनक मोक्ष। जनक के नर-नाशिया न उनका अधिनता किया। हरी की कल्प थी उमर उर में अनेक नाम का मोक्ष निरुत्तर्द्ध। मोक्ष निरुत्तर्द्ध थी वित रघु न श्रुतता महात्मा म पुत्र का गराश। हरी के स्वाधीन

'संस्कृति द्वार उपखण्ड के सत्रमण प्रखण्ड का कवि ने दो वर्गों में प्रस्तुत किया है। 'ह्रास' का विवेचन ऊपर किया गया है। अत्र विपत्तन की स्थिति द्रष्टव्य है। वशी ने देखा कि भारत मा का ग्राम्यावल दारिद्र्य के कदम से मला है। दारिद्र्य के कारण ही अविद्या और अज्ञान ग्राम्या में पना हुआ है। वशी का अंतर पदताकार अज्ञान तम में आशा की विरण खोज रहा था कि हरि और सिरी ने प्रवेश किया। हरि ने कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के चौदह बत्सर बीतने पर भी हमारा जीवन निष्प्राण प्रेरणा गूँथ और तामस रत है। दारिद्र्य और अशिक्षा सभी दानव जन जीवन पर मुँह बाय खट हैं। निज निवाचित शासन में भी दिन प्रति दिन चारित्रिक विघटन हो रहा है। राम राज्य के स्वप्न निराश्रित हो रहे हैं। मुय सुविधाएँ मत्रिग तक ही परिधीमित हैं। रक्षक मन्त्रक बन गए हैं। राष्ट्रीयता का दशवासिया को कोई आकषण नहीं। कवि के शब्दा में—

कदम कटने में पलते मजने कर जन साधारण,
परत न देश से दुष्कर स्वाधीन धरा का जीवन ।
यह गांधी का गौरव-युग गण लोकतंत्र का प्रागण,
हन विला घरोंदों में घुस रँगता लाक कृमि जीवन ।
बसते ऊँचे मटलो में स्वार्थी नर, लोक प्रतारक
जन रक्षक से भक्षक बन, सेवक से प्रभु भू शासक ?
× × ×

जन मन का बाध न पाया राष्ट्रीयता का आकषण
एसा कुछ कही नहीं जो, पूँके जन में नव जीवन ।

(वही, सत्रमण (विघटन), पृ० १५६)

हरि ने कहा कि हमने भी लठिया गाई थी वाराणसी की सासन मोगी था, चन्की पानी घानी पली और ककड डूटे थे किन्तु स्वतन्त्र्य जावन का मुय मुटठी भर लाग भाग रहे थे। जन सबके अत्र शामन बनकर नगरा में मुख सुविधा पुण जीवन बिना रहे हैं और जन जावन दूषित खाद्यान्न के कारण रोग, निराश और विपात्तपूण है। ग्रामीण जीवन मुधार के नान पर मन्योग (सहकारिता) और ग्राम पचायत जादि मस्थान समुचिन नदृत्व के वनाव में भ्रष्ट प्रजासैनिक सम्थान बन गए हैं। बडे उशाग दग की अथव्यवस्था का जनाय बना रहे हैं। मुटठी भर लाग का सुविधा के लिए अगणित निरीह जन पिस रहे हैं—

“सामंती युग की पद्धति सश्रुति, विचार, विधि, दत्ता,
निसार ही पुरं ध सव, जीवन विकास के साधन,
आध्यात्मिक दुबसता से संकीर्ण मतों में गणित
समु स्वार्थों में रत थे जन, मव विगद दृष्टि से शक्ति,
निष्प्रम निर्जीव, पिनीना बट्टर हिन्दुता उमर कर,
लगडाता निष्क्रिय भू पर थी बुद्धे युग टग घर ।
भू मानस का बल्मप था व मध्य युग का मानस
श्लय पराधीन शक्तिया तज, मन, आत्म पराजिन आरूत् ।

(वही, सत्रमण, पृ० १५२-१५३)

कवि के अनुसार शकर, शतय शबीर तुलसी, भास्वर, बल्लभ, रामा
नुज स्वामी दयानन्द रामरूपण प्रभृति धम गुरुओं और महापुराणों ने आध्या
त्मिक प्रकाश प्रसार के समय समय पर प्रवास किया । विभाजन के अभिशाप पर
चिन्तित कवि कह उठा कि यह मध्य युगीन मानस का संकीर्ण चिन्तन और
जन जीवन का दुभाग्य था कि वह 'इस्लाम और मुसलमानों को आत्मसात्
न कर सका—

दुर्भाग्य समेट न पाईं निज विस्तृत बाह्यो में भर
यह भूमि मुसलमानों को तमसावृत था जन अन्तर ।

(वही, सत्रमण, पृ० १५६)

कवि के अनुसार संकीर्ण धार्मिकता के युग बीत गए । अब वैज्ञानिक युग
की विद्युत्-चेतना सस्पश से निष्क्रिय सामंती स्थितियाँ समाप्त हो गई हैं ।
इसलिए कवि की मंगलकामना यह है कि—

‘गत जाति धम कदम से
बाहर निकले युग मानव,
मव मानवता का स्वर्णिम
भू स्वग रचे वह अभिनव ।
लाकोदय की रचना हो
बहिरतर सत्य समवित
भू जन की सित समता पर
जग में हो ऐक्य प्रतिष्ठित ।

(वही, सत्रमण, पृ० १५७)

‘संस्कृति द्वार’ उपखण्ड के ‘सत्रमण प्रखण्ड का कवि ने दा वर्गों में प्रस्तुत किया है। ‘ह्रास का विवेचन ऊपर किया गया है। अब ‘विघटन’ की स्थिति द्रष्टव्य है। वशी ने देखा कि भारत माता का ग्राम्याचल दारिद्र्य के बंदम से भला है। दारिद्र्य के कारण ही अविद्या और अनान ग्राम्यों में फला हुआ है। वशी का अंतर पवताकार अज्ञान तम में आशा की किरण खोज रहा था कि हरि और सिरी ने प्रवेश किया। हरि ने कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के चौदह बत्सर बीतने पर भी हमारा जीवन निष्प्राण प्रेरणा शून्य और तामस रत है। दारिद्र्य और अशिक्षा स्त्री दानव जन जीवन पर मुँह बाय खड हैं। निज निवाचित शासन में भी दिन प्रति दिन चारित्रिक विघटन हो रहा है। राम राज्य के स्वप्न तिराग्नि हो रहे हैं। मुग्ध सुविधाएँ मंत्रिया तक ही परिमिता हैं। रक्षक भक्षक बन गए हैं। राष्ट्रीयता का दशवासिया को कोई आकषण नहीं। कवि के शब्दों में—

‘बंदम कर्म न में पलते, मरते कर जन साधारण
परत त्र दश स दुःकर, स्वाधीन घरा का जीवन ।
यह माघी का गौरव युग गण लोकतंत्र का प्रागण,
हत बिलो घरोंदो में घुस रँगता लाक कृमि जीवन !
बसते ऊँचे महलो में, स्वार्थी नर, लोक प्रतारक
जन रक्षक से भक्षक बन, सेवक से प्रभु भू शासक ?

× × ×

जन मन का बाध न पाता, राष्ट्रीयता का आकषण
ऐसा कुट्ट कहीं नहीं जो, पँके जन में नव जीवन ?

(वही सत्रमण (विघटन) पृ० १५६)

हरि ने कहा कि हमने भी तठियाँ खाई थी वाराणसी की मासन भोगी थी, चक्की पासी, धानी पेली और ककड़ कूटे थे किंतु स्वातंत्र्य जीवन का मुग्ध मुटठी भर लाग भाग रह हैं। जन सबक अब शामक बनकर नगरी में मुग्ध सुविधा पूर्ण जीवन बिता रहे हैं जोर जन जीवन दूषित स्वाद्यात के कारण रग्ण, तिराग और विपात्पूर्ण है। ग्रामीण जीवन मुधार के नाम पर सहयोग (सहकारिता) और ग्राम पंचायत जादि सस्यान समुचित नेतृत्व क अभाव में भ्रष्ट प्रशासनिक सस्यान बन गए हैं। त्रें उद्योग दश की अव्यवस्था का अनाथ बना रह हैं। मुटठा भर लाग का सुविधा के लिए जगणित निरीह जन पिस रह हैं—

सहयोग प्राप्त पंचायत सभा कीर युग प्रगता,
समुष्णित नेत्रों बिसा क्या आ सजता उतम जीवता ?
चारित्र्य का त ऐसा दगा इन भू ने मानन,
मुट्ठा मर की मुविधा तिन दिगा निराह अगणित जा ?

× × ×

तू मही कुम्भ उदेलित, दुगाय मर जन प्राणन
दूषित गाछात सजता मरास्य विद्या मुष्णित म ।
मातृभू उदगात विरहित सहस्रया शून्य विमुक्त जा
जीवता पंचायत पुरसा विगता थी गरिमा निधन !

(वही, संक्रमण पृ० १६१)

इसी बीच तृतीय विवाह आया। विभिन्न राजाधिकार दल अपने भण्डे पहारा हुए गांधी की चार दीपे। गामोणा का आरवागन तिन और बोट लिए। कवि क अनुसार देश क विच्छेप का कारण गांधी और नगरों क जीवन म असामंजस्य विद्या यथम्य है। त्रिस्त परिणामी प्रभाव और औद्योगीकरण म नगरों का जीवन रंगा वही ग्रामीण जीवन क लिए अमिशाप सिद्ध हा रहे हैं। हमारी भावा नीति अयनीनि राष्ट्रीय एकता स संबंधित प्रश्न और याजनाएँ सभी म समन्वय का अभाव है। विदेशी शृणो पर चलने वाली योजनाएँ देश के आर्थिक ढाँचे को जारित कर रही हैं। कवि के अनुसार जन श्रम ही सच्ची सम्पत्ता है और यदि जनश्रम स राष्ट्रजीवन की विकास योजनाएँ निमित्त होनी तो जनचतना जागृत हाती और सम्पन्नता भी आती—

जन श्रम से होता क पित्त
यदि नए राष्ट्र का जीवन,
वधता गति लय म जन मन
जाग्रत युग प्रति हो जन ।'

(वही संक्रमण (हास) पृ० १६७)

अस्तु हरि उस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राष्ट्रीय जीवन के विकास हेतु नविष्य म हम जन मन म नवचतना और नवप्रेरणा का संचार करना होगा। ग्रहिन्य के साथ अन्तमन का भी विकास करना होगा। वशी युग जीवन के प्रति जागृत था। उसने हरि क आहत वचनों का समर्थन किया और कहा कि भारत की जात्मा जनताधिकार ढाँचे में ही अक्षम रहेगी कि तु आवश्यकता कमठ लोक पुराधाजा (प्रतिनिधियों) को चुनने की है। नववृत्त खनन नहरो

बांधो, परिवहन विद्युत, इस्पात सीमट आदि व विकास के साथ जन मन को जातिवाद के विप से मुक्त करना भी आवश्यक है—

'गत जाति पाति वर्णों व
विप से विमुक्त कर जन मन,
जड रुढि रीति का तम हर,
युग दीपित कर भू प्रागण,—
हमको निर्मित करना नव
राष्ट्रिय मानस दिग विस्तृत,
चत य घरा जीवन का,
मन का कर पूण समन्वित ।'

(वही, सजमण (विकास), पृ० १७१)

वशी ने यह भी मत प्रगट किया कि लोकतन्त्र व सुसंचालन के लिए नवल प्रतिपक्ष भी आवश्यक है। वास्तव में एक सजगता का जन मन में व्याप्त होना भी जनतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है। कवि के अनुसार—

यह भी अनिवार्य हम अब ऊचा करना अपना स्वर,
नव लोक क्रांति की भेरी जन मन में पठ करे घर ।

×

×

×

सामाजिक क्रांति अपेक्षित भारत जन के मंगल हित
हो जाति वर्ण में विखरी चतना राष्ट्र में केन्द्रित ।”

(वही सक्रमण (विकास) पृ० १७२)

शासन व्यवस्था के साथ साथ जन मन के चेतना स्तर में भी क्रांति आवश्यक है। मानव मन अवचेतन कूटाजा से मंदित हो चुका है, विज्ञान की उपलब्धियाँ ध्वंसकारी सिद्ध हो रही हैं। बीड मकोडा की तरह जन-सतति प्रतिक्षण बढ रही है। ऐसी स्थिति में भारतीय जन मानस को उध्वगामी बनाने के लिए युगचेतना का स्पष्ट कराना परमानिवाय है। इसके लिए विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय कर सांस्कृतिक नवचेतना का विकास आवश्यक है। सांस्कृतिक चेतना विकास आर्थिक जीव प्रशासनिक सजगता की सम्पूर्ति से भी महान है। इसलिए—

“सांस्कृतिक चेतना का नव भू पर करना आवाहन,
जा रचे शुभ्र जीवन पथ अनिष्टम कर युग मानव मन ।

आपिच तापिच आश्रितन पाद, जाएँ जब, सम्मुख,
साष्टांग संहरण आत तव उग्रमत हो जीया मुग !'

(पद्मी, सप्तमः, पृ० १८२)

साष्टांगि-द्वार उपगच्छ क मधु-स्य प्रगच्छ म कवि ने एक कल्पनातीत स्वप्न का निरूपण किया है त्रिमय यगी मातवा-सुख के लिए उस स्थिति का सघात करता है जो विहरध्याता और सयोगि है। मयप्रथम प्राति क सुन्दर दृश्य सपाजित है कि ८ दगकर यगी १ मन म यह प्रश्न उठता है कि की शक्ति यगत और पातर दाता का समया विधान करती है। प्रातिव गुपमा का सूक्ष्म अनुपातण करा तरो कवि का नारी का मनोहर छवि का आभास हुआ। उस प्राति सु-री का चन्द्रमा मुग गिरि गिरि उराज, पृथु शल माला जपाए हरित तटी कटि प्रण उठते सग चचल दग, अघटित मुकुल अरण अघर, आद्वयन गोरन मुगश्नात, विक-स्वर प्रणय वचन और सध्या का ढाता तम श्यामन यगी प्रतीत हुआ। यगी शोभा प्रेमी या और शोभा के रूपसा यमव का यह प्रातिव-गुपमा म ही निरखता था। जगतहित म कवि ने एकाका जीवा यान करना ही श्रेष्ठ भी माना—

जग म एकाकी जीवन
समक्षा उसने श्रयस्कर,
जब तव न प्रेम का पकज
उबर बहम स ऊपर।

(पद्मी मधुस्पश, पृ० १९६)

यगी को बार बार आभुव होता था कि घरा का जीवन सकीण और अचान-तम बदलित है। लाग जीवन स पलायो मुझ हो रहे हैं। लोगो को आस्थाए परनिदा अहमयता और याये मूल्यो म सपापित होने के कारण जीवन को निराशापूर्ण बना रही हैं। कवि का मन जग से विरक्त हो गया। वह अपने आप म गोया रहने लगा। भावुक कवि दिवा स्वप्न दशन म त मय हो गया। अतीन्द्रिय लोक म भ्रमण करत हुए कवि ने देखा कि युग म की दारण छाया बहा भी परि याप्त है। उसने अनुभूति की कि तन मन आहत और प्रकम्पित है। अग जग से भीषण अग्नि रज्जुए लिपटी हैं और मग्न जाकाक्षाएँ सपदश जसी वेदना उत्पन्न कर रही हैं। अभाव क विपान की प्रतिक्रियाओं का कवि ने इस प्रकार अंकित किया है—

“उस मंदिर दश ज्वाला स रति विह्वल उसका अन्तर
 लोटा करता शोभा की दरियों में तृपित निरन्तर !
 उसको न ज्ञात था, कस मुख की अतृपति पर पा जय,
 आकुल अशांत सलिला में खोजे वह सत का आश्रय !”

(वही, मधुस्पश, पृ० २००)

इस भीषण परिदृश्य के अयलाकन और दारुण अनुभूति क पश्चात योग,
 तत्र पड-दशन, नृतत्व शास्त्र आदि के आधार पर उसने जब अन्तर्जगत में
 प्रवेश किया तो नात हुआ कि जन भू-ममाज का महान भविष्य रचा जा सकता
 है। इसी सचेतन समाधिदशा में कवि को वासव न दशन दिय और कहा कि
 तुम काल्पनिक मुक्ति-नामी बन कर आत्म शून्य म लय मत हा। तुम्हारा चरम
 लक्ष्य धरा को स्वर्ग बनाना होना चाहिए—

“जीवन का ध्येय नहीं यह, मन ब्रह्म रश्मि स उड कर
 खो जाय रिक्त गगन में, खग सा झुलसा मति क पर !
 मैं जग धरणी का प्रेमी तुम से कहने आया कवि
 निज प्रतिमा पट पर आका तुम धरा स्वर्ग का नव द्यवि !

× × ×
 ऊपर के सूर्योदय से, नव भू जीवन कर निमित्त,
 बहिरतर संयोजन भर तुम गढो मुक्ति जन जन हित !

(वही मधुस्पश, पृ० २००-२०६)

इस प्रकार कवि क मन क्षितिज के आलोक से उद्भूत वासव देव कवि
 की अतृपति को सदीप्त तथा कर्तव्य पथ को प्रशस्त कर अन्तर्लोक में तिरो
 हित हो गये।

‘प्रथम खण्ड के मध्य विन्दु (नान) भीषक तृतीय उपखण्ड में कवि ने
 एकांगी अतृपिती साधना की व्यथता प्रमाणित करत हुए मानवता के भगल विधान
 हेतु व्यक्ति और समूह के ऐक्य की साधना का रूप निदशन किया है। वासव
 देवता से प्रेरणा प्रकाश पान के पश्चात वशी व्यथित विश्व को राग द्वेष के
 कल्मष से मुक्तकर नव उभेपा से आदालित कर स्वर्णिम सोपाना पर अग्रसर
 करने के लिए कृत सक्ल्प होता है। वशी श्रुतिया सन्ता और सदग्रन्थो क
 पान रूपी चित्कणा को चुनकर मानवता को देश जाति की सकाण सीमाओ
 से मुक्त कर मागलिक भविष्य की ओर उन्मुख करने के लिए प्रयत्नशील है।
 भावी मानव के आदर्शरूप की परिवर्तना करत हुए कवि ने मानवीय चेतना
 विकास का इस प्रकार अन्त दशन किया—

'सित स्वप्न मास देही ये भावी मात्र गत देश जाति बन्धन विमुक्त युग सभव ।
कटु मनोग्रथिया कूठाओ से विरहित राष्ट्रों के मय सशय स्पर्धा स वचित ।
विद्रवित हो रहा युग युग का निमम मन भू जीवननव श्रद्धा आस्था का प्रागण ।
आ रहे निकट सब देश विदेशों के जन, स्त्री पुरप निकटतर मुक्त काम अहि दशन ।
लघु गृह पुर आंगन लाघ मुक्त नारीनर, सामाजिक शतदल के से अवयव सुन्दर ।
सांस्कृतिक पीठिका पर नव युग की शोभित श्रम लग्न, सौम्य रचना मंगल म योजित ।'

×

×

×

स्वर्णम रेखाओ म सौ सम्मुख अन्वित चेतना हो रही नव रूपो म विकसित ।
रस रहा ऊध्व समदिन जीवन म वितरित छायाभा के ताना बाना म गुफित ।"
(वही मध्य बिंदु (ज्ञान), पृ० २१७-२१८)

कवि ने चेतना स्तर पर समासूढ होकर प्राण गुहा के भीतर प्रविष्ट होकर युग जीवन के सवेदन सत्यो को अनुभूत किया । उसे अनुभूति हुई कि नराश्य ग्लानि, विद्वेष प्रमान भेदभाव आदि के कारण भू उर जजर है । रस तत्त्व खोजती कवि दृष्टि ने पूणकला के समान जागृत नव चेतना के महत्तर रूप का साक्षात्कार किया । कवि को काल बोध हुआ । उसने कालदेवता की भविष्य वाणी को सुना—

मैं शक्ति देव वह कहता युग अधिनायक
मेरे कर म सवस्व नाश अणु सायक ।
मैं पीता जीवल ज्वाला भौतिक हाला
मैं मृत्यु गरल पेनिल मिट्टी का प्याला ।
भावी मनुष्य के सम्मुख दिग दारुण रण
टूटते मुकुट शत लुप्त नृप सिंहासन ।
भू कप मनो भू पर आने को भीषण
मूल्यो म घटन को मौलिक परिवतन ।
गत रुडि रीति की कारा से बढ जन मन
नव युग भू पर करन का मुक्त पदापण ।
मैं काल, पान मुक्तको जीवन वा इति अथ,
उडने को दिव पथ म भू मानव का रथ ।'

(वही, मध्य बिंदु पृ० ३१६)

कवि युग प्रबुद्ध और विश्व नियति का चाता था । युग द्रष्टा होने के कारण उस यह भी जान था कि विश्व सम्पत्ता वनमान म वहाँ स्थित है और भविष्य

म गत ससृष्टियाँ किम प्रकार सयाजित हागं । वह चाहता था ससार में प्रेम मट्टि हो मौदय शान्ति आनन्द और क्षेम का निम्कर घरा पर झरे । तभी कवि ने नव युग चेतना का महान आह्वान किया—

‘जागो, हे जागो घरा चेतने, जागो
युग-युग की ईर्ष्या, कुठा, स्पर्धा त्यागो ।
× × ×
जागो हे भू की राग चेतन, जागो
निज काम द्वेष वधव्य वेश अब त्यागो ।
× × ×
जागो हे भू की प्राण चेतने, जागो,
जीवन के मधु म मन के पल न पागो ।
× × ×
जागो-जागो, जन मनश्चेतने जागो,
देखो मुठ अन्तमुल यह विवि, मत मागो ।
× × ×
जागो, भू की अध्यात्मचेतने जागो,
गत सम्कारो धर्मो के गुण्ठन त्यागो ।’

कवि ने चेतना-स्तर पर उमरते हुए काल्पनिक परिदृश्य में देखा कि जन भू का अवद्वन्द्व मन सकीण सीमाजा का लाध कर आलोक स्पश से सचेतन हो रहा है । इस नव चेतन प्रकाश के अवतरण से जाति, समाज और देश के बाधनों से विमुक्त होकर राष्ट्र एक दूसरे के समीप आ रह हैं । विनाश के वैभव के समन राजनीतिक और आर्थिक सघप घूमिन प्रनीत हो रहे हैं । दूसरी ओर विनाश की विभीषिका के फलस्वरूप दा प्रतिस्पर्धी गुटा में बटा जन-जन विनाशकारी आयोजनों म भी जुटा हुआ है किन्तु कवि इस तमिया आहत घातावरण म श्रेय और सजन का आवाप्ती है—

जन भू कुरूप डाग्दिय तमिस्रा आहत,
अधी आम्धा अस्मिता अविद्या शान्ति ।
मन राग द्वेष तन राग शोक ने मन्ति —
हो सजन प्राण नर सत्र श्रेय हित अपित !’

वशी का अभिमत है कि पुत्र गोत्रा ने लघु मेट्री द्वारा म बँट कर घरा जड़ तामस यण्डहर का गयी है। युगों की निमम सीमाओं में विद्वद् रहने के कारण पतय धरोहर और सुर-गम्पण में बद्धि न हुई। समाज में नारी का स्थान आज भी हेय और निरक्षार पूण है। उसे निर्वासन, अपहरण, लोका पवाद लांछन और मृत्युमय से सन्मन रहना पड़ता है। सामाजिक और पारिवारिक जीवन का वपम्य गनमुता का अभिगाप है। गत युगों में व्यक्ति केन्द्रित विधान होने के कारण सामूहिक स्तर पर मानवता विनाम के प्रयत्न सफ़्त नहीं हो सके थे। किन्तु इस युग में विज्ञान ने नए मनुष्य का दृष्टि विस्तार कर सामूहिकता के प्रति मानवीय आस्थाओं को दृढ़ किया है। कवि के शब्दों में—

‘आधिक तांत्रिक सामूहिकता की भू पर,
नव मनुष्यत्व अवतरित हो रहा मास्वर ।
गत युग की जबिक सीमाएँ कर विस्तृत
आता सामाजिक मानव अतर्विकसित ।
सामूहिकता का भौतिक जड़ युग दशन,
गढ़ रहा लौह पीठिका शात हो युग रण ।
× × ×
मू मन को बनना अतश्चतन दपण,
विश्वित हो जिसमें नव ईश्वर का आनन ।

(वही मध्य बिन्दु पृ० २२४)

पत जी के अनुसार सभी द्रष्टा कवियों का यही मत है कि चिर अभिनव नित्यत्व (ब्रह्म) मन-वाणी से परे है, तब विश्लेषण से उसे नहीं जाना जा सकता। कवि घरा पर ऐसी अम्यात्म चेतना के जागरण का आकाशी है जो अन्तजगत में स्वयं प्रकाश पूण और जन भू का मगल करने वाली है—

आनन्द सूय ने भीतर स्वयं प्रकाशित,
मगलमय, शाश्वत एवाकी, आत्मस्वित ।
अनुपम, अनत शोभा समुद्र अतरगित,
अगणित स्वर्गों में सजित एक अखण्डित ।
छाईँ हिरण्यमय ज्योति, रत्न रज मास्वर,
निज स्वण पख द्यायाएँ वरसा भू पर ।
× × ×

रस मरकत भू से विणद कौनसा मंदिर
नर नारी से उढ जोर कौन स्वर्गिक धन ।

× × ×

जन मगल हित श्रम पूजन कर अपण,
श्रद्धा न प्राण प्रतिष्ठा करनी नूतन ।”

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २२५)

वशी के विचार से आत्मोन्मुखी एवागी साधना भू कौ भगवत प्राण बनाने में असमर्थ रही है। प्रस्तर प्रतिमा में चिन्मय प्राण प्रतिष्ठा करके भी मानव मति ईश का साक्षात्कार न कर सकी। वस्तुतः जनधरणी ही मूल चिद्ब्रह्म है। इसके अनिरिक्त ईश्वर की खोज निरर्थक है। इश का सर्वथेष्ठ स्तवन भू रचना श्रम ही है। जन म को छोड़कर अयन कोई स्वर्ग नहीं है। परलाकमुखी जीवन निषिद्ध भुक्ति का आदर्श यथ है। वास्तविक भुक्ति का अर्थ है—जन भू का प्राण शुभ्र शांति सुख सम्पन्न हो तथा प्राणिमात्र में आप्तकाम प्रभु की शक्ति का प्रतिनिधि बने। अस्तु नयी पीढी के सवाहक रचनाकारों को मानवता के मगल विधान हेतु जनभू पर ही स्वर्ग संरचना करनी है। कवि की यह धारणा निश्चयत युगीन है कि—

‘जन भू को छोड़ न स्वर्ग कहीं रे ऊपर,
आनन्द मधुरिमा मगल का जग हो घर ।
वास्तविक भुक्ति वह जब जन भू का प्राण,
हो शुभ्रशांति सुख स्वर्ग मृजन श्रम रत मन ।

× × ×

जीवन की ही रे पूण चेतना ईश्वर
जो व्याप्त निखिल जीवों में, प्राश्रवत निजर ।’

(वही—मध्य बिन्दु पृ० २२६)

गत युगों के मानस का सिंहावलोकन करने पर पात होता है कि विविध धर्म नियमों में अवगुठित करके ईश्वर को दुहृह अगम्य और तिरोहित कर दिया गया था। अनेक प्रकार के मंत्र तंत्र पंच और वादों में खंडित ईश विषयक विचारणा विश्वास शून्य कुठित आस्थाओं को ही जन्म देती रही। द्रष्टाओं साधकों जोर सत्ता ने ईश और नर जगत (माया) का माध्यम रक्ष कर विमक्त किया। मन कर्मों का फल नियति (प्रारंभ) का बंधन, परलोक की धारणा, पुनर्जन्म की परिकल्पना और मायावादी चिन्तन मनुष्य का प्रमित

करते रहे। बहिरन्तर जन जीवन के सम्पन्न—समाजित और समग्र विकास की ओर चेतना उभूख नहीं हुई। इसीलिए इस घरा जीवन को दुःखपूर्ण और सघनमय बहकर कात्पनिक स्वयं की खोज की गई। किंतु सच यह है कि—

“जग जीवन म ही समव ईश्वर दशन,
सुदर से सुदरतर हो जन भू प्रागण !

× × ×

यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असशय,
मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय !”

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३०-२३१)

कवि की मायता है कि भू सामूहिक जीवन ही यनस्थल है। सर्वात्म भाव का सदविकास ही आत्मोत्थान है। व्यक्ति की साधना का सर्वोत्तम स्वरूप वह है जिसमें क्षत्र स्वायों का परित्याग कर सामूहिक हित में व्यक्ति कमनिष्ठ होता है। व्यक्ति और समूह की समन्वित साधना का स्वरूपाकन कवि ने इस प्रकार किया है—

‘हो विश्व मनस से व्यक्ति मनस सचालित
आत्मा से जीवन, जीवन से मन शासित !
जन भू मगल ही धम लोक श्रम पूजन
गत अध तमस से रूढि मुक्त हो जन मन ।
ध्यानस्थ सत्य सम्मुख स्थित देखें दुःखजन
बहिरन्तर भव सच्चिदानन्द का प्रागण ।’

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३२)

ब्रह्म की सत्ता और सृष्टि स्रचना के विकास क्रम को पतञ्जी ने अरविन्द दशन की मूलभूत अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करते हुए कवि ने कहा है कि आदि हेतु ब्रह्म स्वयं का सामित कर सित स्वण गम में सजित हुआ। वह हिरण्यगम स्वर्णम डिम्ब ही बँट कर स्वर्ग भू सूक्ष्म स्थूल और सुर नर बना। विश्वात्मा ब्रह्म स्वण रश्मि से जावृत स्वयं प्रकाशित नि सीम, अखण्डित सजन मुक्त शिव शक्ति ग्रथित तथा प्रणाममेघ भास्वर है। जब मूल प्रकृति आदि शांति में लय रहती है तब ब्रह्म उसम वशी में व्याप्त स्वर की भांति तमय रहता है। ईश्वर सृष्टि नहीं रचता वरन स्वयं सृष्टि बन जाता है। अतः शाश्वत तत्व से ही क्षण भगुर पदाय का उदभव होता है—

“प्रभु सृष्टि न रचते स्वयं सृष्टि वन जाते
निज से ही निज म अभिव्यक्ति वह पाते ।

× × ×

शाश्वत ही से मगुर पदाय का उद्भव,
सप्रति मे गुठिन मुक्त भविष्य का चिर नव !”

(वही, मध्य विन्दु पृ० २३३)

महापि अरविंद ने भी यही विचार व्यक्त किया है कि—“The Brahma alone is and because of it all are for all are the Brahma This Reality is the Reality of everything that we see in self and Nature ” अर्थात् सबत्र एव ब्रह्म ही है और उसी के कारण सम्पूर्ण पदार्थों की स्थिति है क्योंकि सभी ब्रह्म हैं । इसीलिए 'लोकायतन' के कवि ने मुक्त कठ से स्वीकार किया है कि जगत मिथ्या नहीं है यह जगत् सत्य और ब्रह्म अवलम्बित है । ब्रह्म स्वयं जीवन का जीवन, सत्यो का सत्य तथा जगत् का कारण है—

“मिथ्या न जगत वह ईश्वर का घर अंगन

× × ×

वह परम न जीवन शून्य अखण्ड परात्पर
भव जीवन का न विनाश, त्रिमिद रूपांतर ।
वह जीवन का जीवन, आनन्द अमृत घन,
सत्या का सत्य, अकारण, जग का कारण ।
उस परम सत्य के पलने में पालित जग,
वह अमृत प्रसव उद्भव विकास गर्भित भग ।

× × ×

यह जगत् सत्य रे नित्य ब्रह्म अवलम्बित !”

(वही, मध्य विन्दु पृ० २३४)

— ब्रह्म और जगत् की व्याख्या के पश्चात् जीव का स्वरूप विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि वह जीव जा श्वास-सूनो से गुफित है सित पुरुष के

हृदय-पुर शतदल में निवसित रहता है। वह प्राणों से उपचेतन जीवन धारण करता है तथा चेतन गतियों से मन संचालित होता है। आत्मा और विश्वात्मा का ऐश्वर्य सबका बाह्यनीय है। मनुष्य का यह दायित्व है कि वह भू पर शंकराचाय, माधवाचाय, रामानुज प्रभृति आचार्यों द्वारा चर्चित मौलिक दिव्य एकता की स्थापना करे। हम सब विश्व चेतना के अविनश्वर अंग हैं, इसलिए हम मृण्मय को चिन्मय का ज्योतिष्क बनाना है अस्तु यह आवश्यक है कि—

‘जग म जो कुछ सब में यापक ईश्वर स्थित,
भोगो जग को निज को कर प्रभु को अपित ।
मत उसे बाट सोचा मेरा तेरा धन
ईश्वर, जग तुम जब एक, न कम प्रसित मन !’

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३६)

कवि के अनुसार आज का मानव बीना अध गनानी, अहरत और बबर है। उसे विद्वेष रहित तजस्वी और मनस्वी बन कर लोकमंगल का विधान करना है। जब जनगण का श्रम सब श्रेय हित में निरत होगा तभी यह धरा स्वर्ग बनेगी और भू पर सुर विचरण करेंगे। मन युग के सम्प्रदाय धर्मों तथा वर्गों से ऊपर उठकर मानवता निश्चयत विकासोन्मुख होगी। इस सब के लिए जन जीवन में एक महान सांस्कृतिक जाति अपेक्षित है। ऐसी क्रान्ति नवचेतन नवसृजन और नव मानवता का विकास करने वाली हो। परत जो न मनीषा कवियों की भाँति सृजन चेतना के जागरण का जाह्वान भी किया है—

“जागा जागो, जन सृजा चेतने जागा
निज जन्म मत्व अनुराग मुक्ति तुम मागो ?
सौम्य प्रेम का भू पर कर आराधन,
आनन्द दीप्त तुम करो जनो के तन मन ।
प्रिय हो मानव प्रिय भू प्रिय शशि गृह अवर
प्रिय पूलविहग प्रिय ऋतु प्रियगिरिसरि सागर ।
प्रिय शिशुआ के मुख प्रिय हा स्नेही सहचर
जन्मराग मधुर हो वधुओं के प्रति अंतर ।

×

×

×

नव हृदय जन्म ले रिक्त मनुज के भीतर
नव मनुष्यत्व का अमृत भुवन रस सुंदर ।

जिगने रगिनिम शनन्त म उनरे ईस्वर,
नव रचना मगल का दे जन भू को वर !”

(वही मध्य विन्दु पृ० २४३ २४४)

इस प्रकार ‘लोकायतन’ महाकाव्य के प्रथम खण्ड का यह परिवेग के अन्तर्गत कवि ने पूर्व स्मृति आम्पा के अनन्तर ‘जीवन-द्वार और ‘संस्कृति द्वार उपखण्डों में राष्ट्रीय स्वाधीनता सगर का विराट रचना फलक पर निरूपित कर ‘स्वतंत्रता प्राप्ति’ के पश्चात् भारत की जन-जीवन का यथाथ-मूलक दृष्टि से चित्रण किया है। यह चित्रण निश्चयतन्त जी का युग द्रष्टा कवि सिद्ध करना है। ‘प्रगतिवाद युग’ की ‘युगवाणी’, ‘युगात’ और ‘शाम्पा’ प्रभृति काव्यकृतियों की भाँति ‘संस्कृति-द्वार’ उपखण्ड के ‘संक्रमण’ प्रखण्ड का युगचित्रण मात्र वीरद्विज महानुभूतिपूज्य या सनही नहीं है। यह युग चित्रण जनजीवन की उबलते समस्यारो से सत्रात और ह्रासो-मुक्त मानवीय चेतना की सत्रस्त मन स्थितियों के अनुभूत संवदन सत्यो से सम्पृक्त है। देश के विभाजन और साम्प्रदायिक विद्वेष की भूमिका का सघन मध्ययुग की सांस्कृतिक संक्रमणशीलता के परिपाश्वर्य में उभारने तथा उसकी मध्ययुग की ह्यामशील चेतना से सगनि निर्धारित करने में ‘लोकायतन’ के कवि ने मौलिक चिन्तन शक्ति और विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। विवेचना के इन्हीं स्तरों पर ‘लोकायतन’ सच्चे अर्थों में एक महाकाव्य प्रमाणित होता है।

लोकायतन महाकाव्य के द्वितीय खण्ड का शीपक—“अन्तर्चैतय” है। द्वितीय खण्ड के प्रथम उपखण्ड का शीपक ‘बला द्वार’ है जिसे ‘संस्थान’ ‘द्वन्द्व’ और ‘विधान’ नामक तीन प्रखण्डों में वर्गीकृत किया गया है।

‘संस्थान’ नामक प्रखण्ड में कवि ने सुन्दरपुर जनपद में एक आदश कला शिविर (संस्थान) की स्थापना का वर्णन किया है। इस कला-संस्थान में ग्रामीण जन जीवन के अन्तर्बाह्य विकास शिक्षा-नीक्षा अथव्यवस्था, जीवन चर्या, सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अभ्युत्थान की सश्रिष्ट रचना-पद्धति का विस्तृत समायोजन दर्शाया गया है। ‘संस्थान’ प्रखण्ड के समाारम्भ में सरस्वती का आह्वान करते हुए कला की सिद्धि लोक-मगल में मानी है—

कला के लिए कला का राग वरद कवि वाणी का व्यभिचार !
लोक जीवन के भीतर पैठ, स्वर्ण शोभा में उस सँवार !

×

×

×

सूक्ष्म रस सृष्टि तूनि का ध्येय, लोक मगल-सुख प्रेरित मात्र

× × ×

लक्ष्य कवि का न मात्र आनन्द, न रस ही उसकी अंतिम सिद्धि ।”

(वही, कलाद्वार सस्थान, पृ० २५४)

स्वाधीनता प्राप्ति के दस वर्ष पश्चात् हरि का स्वप्न साकार हुआ । उसने रुद्र राजा ठाकुर से सुरम्य प्राकृतिक वातावरण में एक भू खड प्राप्त कर जन कला लोक प्रासाद (कला सस्थान) का निर्माण किया । इस कला सस्थान में छात्र छात्राजो, शिक्षको, नट, नतक, छविकार कलाकार, कृषक श्रमिक व्यवसायी आदि को बुलाकर बसाया गया । हरि ने सबप्रथम सभी को कम निष्ठ बनने की प्रेरणा दी । हरि ने कहा—

‘प्रथम शिभा हरि कहता, बाह्य कम पर हो निष्ठा विश्वास
कम का प्राण स्पश पा गूढ जनो का समव मनोविकास !
कम प्रेरणा करे जन प्राप्त रिदत जीवन वजन से मुक्त ।
कम प्रेरणा शक्ति का स्रोत, जनो को कर लौह सयुक्त !’

(वही कलाद्वार सस्थान पृ० २५७)

इस कला-केंद्र के जन जीवन को सम्प्रेरित करने में वशी का अशदान भी महत्वपूर्ण रहा । युगकवि वशी ने आत्मप्ररक स्वरादधोप द्वारा केंद्र के जनमन को आदोलित करके नवचेतना और कम उत्साह प्रदान किया । वशी हरि की बताता था कि यदि जन मन को समुन्नत करके घरा पर स्वग उठाना है तो वर्तमान की विपन्न स्थितियों के बीच “यापक साम्य की खोज करना पड़ेगी । जाति वर्गों के वेष्टनों को खोमकर, रण रणियों के बंधनों का उच्छेदन कर देश राष्ट्र की सीमाओं का लाघ कर धर्मांध जन जीवन को द्वय और भय से मुक्त करना होगा । अतीत और वर्तमान युग जीवन के परि वर्तित चतय (बोध ?) का अनुर स्पष्ट करते हुए वशी ने कहा—

शूर गत भू स्थितियों से रुद्र
पूण हो सका न मनोविकास
विचरना बोना शुद्र मनुष्य
मनुष्यता का भू पर उपहास !
जन्म नता अब नव चतय
विश्व मानस मे—वृत्त महान्

गुह्य मू गम तिमिर को चीर,
विहंसता कल्प मूय अम्बान ।'

(वही, सस्थान, पृ० २६०)

हरि की बुद्धि सारग्रही थी, उसने क्रातदर्शी कवि वशी के उर का सत्य और विश्व कल्याण का विशाल सबल्य समझ कर कला केन्द्र के जीवन का उद्बुद्ध किया। पौर जना के प्रिय सहयोग से शिविर का अभीष्ट विक्रम हुआ। विश्व-मानवता तथा लोक साम्य के आदर्शों को साकार करने के लिए केन्द्र में सभी धर्मों के देवी-देवताओं की स्थापना की गई। जिस चतुर्मुखी युग ब्रह्मा की प्रतिमा कला प्रागण में प्रस्थापित की गई वह विविध रूपा का आत्मसात् किये थी—

"कला प्रागण में स्थापित उच्च, चतुर्मुख युगब्रह्मा की मूर्ति—
राम संग बुद्ध मुहम्मद यीशु, विविध रूपा की करते पूर्ति ।
चतुर्ल नील पद्म के मध्य, काल का काल हीन सित हाय,
लिए नव ज्योति शिखा था ऊर्ध्व-सत्य का युग प्रतीक ही साथ ।"

(वही, सस्थान, पृ० २६३)

कला केन्द्र के छान छात्राएँ और स्त्री-मुख्य अपनी प्रायनात्रा में भी यही कामना करते थे कि ह जग के कर्ता हम शक्ति प्रदान करो जिससे हम लोक हित करें। हम मन, वाणी और कर्म से लोक निर्माण के कार्यों में मग्न हो आदि। उस जनपद का निर्माण करने में सभी ने अपेक्षित योगदान किया। पूम और खपरला से पटी भोपडियाँ जनसंस्थाना में बदल गईं। स्वच्छ और विस्तीर्ण माग स्वास्थ्यगृह तथा अतिथि शालाएँ निर्मित हुई। जनपद की कृषि और उद्योग सहकारिता के आधार पर निर्मित किए गए। परिवार नियोजन के महत्व से भी जनपद निवासियों का हरी ने अवगत कराया—

पना का हरि आकर प्रति वार
सिखाता सजति निग्रह मत्र,
नियोजित यदि न मनुन परिवार,
न समव पुण काम जन तत्र !
अशिक्षित, निधन रूग्ण अपाग
दटाउ व्यव कष्टन भू मार,

नरक क्या बने न जन भू स्वर्ग
नहीं जब प्रजना पर अधिकार ।

(वही, मस्थान, पृ० २७०)

कला-केन्द्र के छात्र छात्राभा की जीवनचर्या नितांत सयमिन, सौहादपूर्ण और सहयोग भाव पर आधारित थी। पोथी ज्ञान के स्थान पर अनुभूत सत्या वेधी शैक्षा पद्धति पर विशेष बल दिया जाता था। हरि छात्रों को बताता था कि समक्ष भू के पाशों को धुण कर उध्व चेतना निधि को जीवन में प्रत्यक्ष करो। छात्रों को चित्र नृत्य संगीत आदि विविध कलाओं का ज्ञान कराया जाता था। कला व्याख्या करते हुए उसकी सादृश्यता पर हरि इस प्रकार प्रकाश डालता था—

कला क्या ? कहता हरि सो-मेघ
असगति म सगति भर नव्य,
असुन्दर म सुन्दर की खाज
रूप गढ़ना जन भू का मव्य !
× × ×
अचेतन तम का मुल मद धूम
कला को करना रस सस्कार !
सत्य से आक महत्तर सत्य
कला की रचना नव ससार !

(वही मस्थान, पृ० २७८)

केन्द्र के शिक्षार्थियों की दृष्टि गहनतर होती जाता थी। उन्हें यह पूरा परिचय हो गया था कि सभी कलाओं का चरम लक्ष्य लोक माणलिक विधान है। कवि के शब्दों में—

कला के स्पर्शों से उस भाति देह मन का निज कर निर्माण
घरा को करन गोमा मूत जिविर जीवन करता श्रमदान !
न प्रयो तक सीमित हो काय, पटा म हीन सुरक्षित चित्र
कला जन भू का कर शृंगार लोक जीवन को करे पवित्र ।

(वही मस्थान पृ० २८५)

कला जिविर न विद्यार्थी नाटय अभिनय द्वारा ग्राम जावन की नुटिया पर प्रय करत व। जाति घमगत विद्वप स्वाथ कलह भाग्यवाद की विडम्बना विद्या दैय निराशा श्रुट प्रथाओं पर कुठाराघात नाटय क मुख्य विषय व।

सहनृत्य प्रदर्शन, प्रहसन, कठनुनली-नाच आदि के द्वारा शिविर युग सत्य का प्रचार प्रसार करता था। छान छा-नाएँ साथ साथ रहते थे किन्तु उनके पारस्परिक सम्बन्ध शुद्ध प्रेम भाव और समय मदाचार से अनुशासित थे। नारिया का कला शिविर में उच्चिन् अधिकार प्राप्त थे। आत अवताओ, विघवाआ, परित्यक्ता, पति पीडिता और अनाथ स्त्रियों के लिए वेद की ओर से 'करुणा कक्ष' खुले हुए थे। प्रौढ शिक्षा विभाग में रात्रि को स्त्री पुरुष अपना दैनिक काय समाप्त कर पढत थे। शिशु कक्ष में बालकों को रचि के अनुकूल अध्यापन कराया जाता था। अनेक सग्रहालय और ग्रंथागार थे। इस प्रकार 'कला सस्थान' एक आदर्श वेद था जो कवि वशी की प्रेरणा और हरि की कर्मनिष्ठा से संचालित था—

चेतना वशी हरि मत्र देह
परम्पर प्राणो मे सित स्नेह
प्रेरणा था कवि, हरि युग कर्म,
वेद भू श्री शोभा का गह ।'

(वही कलाद्वार सस्थान, पृ० २६६)

'कलाद्वार' उपखण्ड का द्वितीय प्रखण्ड 'द्वन्द्व' है। इस प्रखण्ड के प्रारम्भ में ही कवि यह स्वीकार करता है कि पुरातन युग का रूढिया समाप्त होकर नवचेतना का विकास हो रहा है। जो कल तक सत्य था, आज नवयुगो मेय म असत्य हो गया है—

'सत्य था कल जो आज असत्य,
जगत जीवन रहस्य इतिहास।
समापन प्राय पुरातन वस्तु
क्षितिज तम से छन नय प्रकाश
निवप पर स्वर्ण रेख पा गुञ्ज
विहसता भू चेतना विकास।'

(वही, कलाद्वार द्वन्द्व पृ० ३१२)

सत्य और असत्य का द्वन्द्व चिर नन है। सुन्दरपुर जनपद के कलाकूट्र की प्रतिस्पर्धा में माघो गुरु द्वारा एक मठ का निर्माण किया गया जिसे शान्ति आश्रम' सना गी गयी। 'शांति आश्रम' में अष्ट विधि योग साधना द्वारा मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया जाता था। शान्ति आश्रम की शिष्य मण्डली प्रातः साथ गंगा स्नान कर सत्या, जप तप, ध्यात और वेद मन्त्रों से हवन

करती थी। माघा गुरु ब्रह्मचारी शिष्या को वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुपालन, द्विज-सेवा तथा वराग्य वृत्ति सधारण करने का उपदेश देते थे। पूव-व्रम, नियतिवाद, जन्मांतर और द्वायोग में उन की दृढ आस्था थी। नारियो को वे पतिव्रत धर्म का उपदेश देते थे। नारी स्वातन्त्र्य में उनकी अनास्था थी। विधवाओं को वे जप तप त्याग समय उपवास आदि के द्वारा जग से विमुख रहकर जीवन-यापन के लिए कहते थे। जगत को मायाजाल बताकर वे लोगो को विरक्त होने के लिए प्रेरित करते थे। संक्षेप में माघो गुरु की जीवन दृष्टि पलायनवादी अमानवीय, दवाधीन अब्यावहारिक, परम्परागत और अमावात्मक थी। कवि के शब्दा में माघो गुरु एक विलक्षण मिश्रण थे—

‘विलक्षण मिश्रण थे गुरु गूढ —

धर्म का परम्परागत पक्ष,

मानते,—कर्मों में स्वाधीन

कुतर्कों, वाग जालों में दक्ष !

×

×

×

जगत को बतला माया जाल

धरा जीवन प्रति बढा विरक्ति

मृत्यु परलाकवाद से प्रस्त,

बची जन में न प्रेरणा शक्ति !’

(वही, द्वन्द्व पृ० ३१७)

कवि के अनुसार धर्मों का इतिहास बताता है कि उनका पुनरुत्थान असम्भव है। धर्म मनुजता का बाटते रहे है। जगत से ईश्वर को भिन्न बताकर मनुष्य का संसार से पलायन का उपदेश देने में दार्शनिक तर्कवाद संवित हुआ है। सत्य शब्दों और तर्कवाद के जाल में उलझता रहा है। पुरोहितों और पण्डों ने स्वार्थाघ्न होकर धर्म की मनमानी व्याख्या की तथा देश को अधकार में डकेला है—

विरस वैराग्यवाद ने धेर

किया नर ईश्वर का अपकार

पारलौकिक जीवन का सङ्ग

सष्टि मुख पर आसुरी प्रहार !

पुरोहित पण्डे ह्ये स्वार्थाघ्न,

अथ विश्वासा का बुन जाल,

नरक में जन को गए ढवेल
 देश को अन्धकार में डाल !
 घणित पाखण्डों की कर सृष्टि
 धम के ये लोनी बक्काल,
 बेच खा गए सत्य का दाय
 खड़े कर कम काड बकाल !'

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३१६)

धम की इस सकीण व्याख्या का प्रभाव यह हुआ कि लोग घर आँगन छोड़ जीवन भ्रात होकर सायास ले बन का चर गए । इससे सामाजिकता की नींव हिल गयी । शांति आश्रम व आचार्य माधो गुरु भी इसी विचारधारा का प्रचार प्रसार करते रहें । वे लोगों को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने और जगत के मिथ्यात्व का उपदेश देते थे । मध्य युग के धार्मिक आदर्शों का पुनराख्यान करके वे लोगों के मन मस्तिष्क में पराजय, दुःख और नैराश्य भाव को जगाने थे । कमी व यम नियम प्राणायाम और इडा पिंगल सुषुम्ना नाडियों में प्राण-वायु को रोकने तथा कुडलिनी शक्ति जागृत करने की बात कहते थे । माधो गुरु का बाह्याडम्बर प्रभावशाली था । उनके अनेक भक्त थे जो पूजा अर्चन करते थे । आत्मा नन्द हरिपाद सहस्र उनके घेले आरती कीर्तन आदि के द्वारा भक्तों की अभिभूत किए रहते थे । कवि के अनुसार—

“पूजत उनको श्रद्धा मूढ,
 मेट कर अथ भक्ति, धन धाय ।
 गेरुआ बरन, साधु का वेश,
 देश में सहज सब जन माय ।”

(वही द्वन्द्व, पृ० ३२३)

आश्रम में बहुत से पंडितजन प्रवीण और शास्त्र ज्ञान निष्णात पंडित भी थे जो विभिन्न परम्परागत दशना और धार्मिक भाष्यताओं पर आश्रमवासी मण्डलों के समक्ष प्रवचन करते थे । इन प्रवचनों में नागाजून कणाद, ऋद्धि नाग वाचस्पति मिथ्य, जयन्त, पतञ्जलि, जमिनी कुमारिल मट्ट, मडनमिथ्य, रामानुज शंकर आचार्य उदयन प्रभृति विचारका की वैशेषिक, परमाणुवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, सत्त्ववाद साख्य नास्तिक, आस्तिक वेदांत मीमांसा, पराविद्या विलतवाङ्ग प्रनिविम्ववाद, प्रोढ़िवाद, मायावाद सम्बन्धी विचारधाराओं का विवचन किया जाता था । माधो गुरु मुक्त हस्त

से दान देते थे। उनका व्यक्तित्व रहस्यमय आर्यान बना हुआ था। वशी से द्वेष रखने के कारण वे मन ही मन कूठिन भी थे। उन्हें दस बात से असतोष था कि लाग वशी का सम्मान करते हैं और उन्हें वशी के समान कीर्ति नहीं मिली—

“काष्ठ उर म रहती ज्यो अग्नि, प्रवृत्ति मे था माधो के द्वेष,
प्रीति का मुखड़ा पहन उदात्त हृदय मे पाते गोपन क्लेश ।
न आका जग ने उनका मूल्य, मिला जन से न कीर्ति धन दाय
एँठ सी गई अहता रज्जु, उपेक्षित देख अमर यश काय ।
छीनकर उनका कीर्ति किरौट घूमता वशी बन सम्राट
सालता उर म निष्ठुर शूल, क्षुद्र बन जाता सिमट विराट ।”

(वही, द्वंद्व, पृ० २३२)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लोकायतन के कतिपय समीक्षकों ने वशी को पत जी और माधो गुरु को निराला का प्रतीक कहकर यह स्थापित करने का असफल प्रयास किया है कि पन्त जी ने निराला जी के प्रति अपने आक्रोश को अभिव्यक्ति दी है। उदाहरणार्थ डा० सावित्री सिंहा लिखती हैं— वशी कवि और माधो गुरु के व्यक्तित्व में स्वयं पत जी और निराला के व्यक्तित्वा की छाया मिलती है। लोकायतन का हर आलोचक इस तथ्य की ओर इङ्गित कर चुका है। कलाद्वार के उत्तम द्वंद्व नामक उपखण्ड में माधो गुरु का रुढ़िवादी जड़ परम्परावादी और मूल्यों के प्रतिनिधि रूप में चित्रित किया गया है। वही वही व्यक्तिगत स्पर्शों के सतत विलकुल स्पष्ट हो गए हैं।^१ डा० ब्रजबिहारी तिवारी के अनुसार— पन्त जी ने गांधी, रवींद्र अरविंद आदि के साथ साथ वाल्मीकि व्यास वासिदास प्रसाद और महादेवी को भी श्रद्धा प्रसून चढ़ाय है। निरालाजी की उपेक्षा सब को खटकगी। इससे ही कुछ लोग को यह कहने का मौका मिला है कि माधो गुरु निराला और वशी पत।^२ मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि 'लोकायतन का मूल्यांकन करते समय इस प्रकार के आक्षेप आलोचकों के पूर्वाग्रह और सकीर्ण अध्ययन दृष्टि के परिणाम हैं। वस्तुतः पत जी सदृश्य मनीषी कवि का अभिप्रेत कदापि भी निराला के व्यक्तित्व पर कीचड़ उछालना नहीं रहा। महाकाव्य के विराट रचना फलक

^१ तुला और तारे (निबंध सङ्कलन) पृ० १६१

^२ समीक्षालोक सुमित्रानंदन पन्त विनयाङ्क पृ० १०२

पर अनेक व्यक्तित्व उमरते हैं, किन्तु उनकी सगति कवि के व्यक्तिगत जीवन में जोड़ना सबया काम्य नहीं है। जहाँ तक माघो गुरु का सम्बन्ध है 'लोकायतन' के रचयिता ने स्पष्ट शब्दा में उन्हें ह्रास युग के दम, अहंकार, अंध विश्वास और परम्परा प्रियता का प्रतीक माना है। पत जी के ही शब्दों में दृष्टव्य है कि—

‘व्यक्ति माघो थे मात्र प्रतीक,
ह्रास युग अंधकार के शूल,
उलट कर अहि सा दे विष दश,
जिसे हो जाना था निर्मूल।’

(वही, कलाद्वार (द्वंद्व), पृ० ३४५)

अस्तु स्पष्ट है कि माघो गुरु को किसी व्यक्ति विशेष (निराला ?) का यथाथ प्रतीक मानना भयंकर भूल है। माघो गुरु भी वस ही काल्पनिक पात्र और प्रतीक हैं जैसे—हरी, सिरा, मेरी, बशी, सीता राम, लक्ष्मण, राधा आदि प्रमथ कमठ पुरुष, प्रवृत्ति शक्ति, पश्चिम की वैज्ञानिक चेतना, नव युग चेतना रचनाकार, लोक मानस, मर्यादा अनंत पौरुष, धरा की रसात्मकता के प्रतीक हैं। माघो गुरु के प्रति कवि के श्रद्धा भाव का प्रतिपादन मैंने सप्रमाण आग यथा प्रसंग किया है।

माघो गुरु के चिन्तन और आचरण पद्धति के विपरीत बशी युग चेतना में सम्पन्न रचनाकार था। वह अतः मन से विश्व के भीतर ज्योतिर्विश्व का निस्तरंग आनंद छूटता था। आत्म साक्षात्कार के सृजनात्मक क्षणों में उसे विलक्षण अनुभूतियाँ होती थी। उदाहरणार्थ—

‘एक दिन छाया सा हट विश्व, गया पीछे कवि हुआ समक्ष
नाभि से जग अश्वमुख नाद शीत उत्समित हुआ उर कम।’

नित्य होती अभिनव अनुभूति समयित हूँ शक्ति पा प्राण,

× × × ×

चित्त में कवि के ज्योति गवाक्ष खुला रहता शोभा अनिमेष—

विश्व से उसका मन संयुक्त, वहन करता स्वर्गिक उमप !’

(वही द्वंद्व पृ० ३३३)

माघो गुरु जीण शीण जीवन मूल्यों का पुनरोद्धार कर सनातन परम्पराओं के संस्थापन में सलग्न थे। किन्तु बशी दुष्प प्रतिरोधी दल से सघष करते हुए नवीन युग चेतना के आलाक में युगीन जीवन मूल्यों का प्रतिष्ठाता था। पर

म्परा की जड़ता से सुपरिचित होने के कारण पुरातन के प्रति उसका कोई व्यामोह नहीं था। कवि के अनुसार वशी नवयुग का प्रतीक था—

‘नए युग का वशी प्रतिकरूप
चेतना का फहरा नव केतु—
पार करता भ्रू मन का सिन्धु,
लोक मंगल हित रच ऋच सेतु ।’

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३४६)

माघा गुरु स्पर्धा टूटि और ईर्ष्या के कारण वशी का घोर विरोध कर रहे थे। उन्होंने लोगो को कहा कि वशी को स्थान न दें। माघो गुरु क शिष्य भी सक्रिय रूप से कला के द्र का विरोध कर रहे थे—

गिरोहा म बँट गुरु के शिष्य
जनों में फलाते थपवाद,
शिविर क सस्कृत छाना छान,
बचाते अप्रिय वाद विवाद !
केन्द्र के प्रति कर कुत्सित व्यग्य
असत्यो का बुनते थे जाल !
सदस्यों पर करते आक्षेप,
कोटि फन हो कुत्सा विषम्याल ।’

(वही कलाद्वार पृ० ३५३)

हरि और शंकर न जाकर माघो गुरु से घट्ट शिष्या को समर्पित करने का अनुरोध किया। गुरु ने स्वयं के द्र म जाने और वशी से भेंट करने का विचार प्रगट किया और एक दिन पूव सूचना-केन्द्र म पहुँच गया। अपने प्रिय शिष्य के साथ माघो गुरु वशी के कक्ष में पहुँच गए और वशी से हाथ मिलाते समय उसक उर में गुरु ने गोपन प्रहार किया और कवि को हतचेतन अवस्था में छोड़ लौट गए। द्वेद निमम गुरु ने जिसे तमकूप में ढकेल दिया था उसे वशी भाग्यवश बच गया। सयोगवश कवि को विदेश भ्रमण का निमन्त्रण मिला और उसने हरि को सत्यान का भार सौंपकर विश्व राष्ट्रा क तत्र विधान को जानने के लिए प्रस्थान किया।

कलाद्वार उपरलण्ड के तृताय प्रलण्ड विधान म कवि ने वशी द्वारा विश्व भ्रमण और पाश्चात्य सभ्यता सस्कृति क वनानिक उपलब्धियाँ परि-

प्रेक्ष्य मे प्रमार का निरूपण किया है । यान पर आसीन होकर व्योम मे भ्रमण करते हुए वशी को विलक्षण अनुभव हुए । नक्षत्रों से मडित नभ को देख कर कवि की कल्पना दृष्टि निवर्ध और निर्वाध दिशा विस्तार से परे पहुँचकर प्रकृति के दिव्य और विराट रूप का दर्शन करने लगी । नीलाकाश कवि को एक विराट नि सीम विस्तार प्रतीत हुआ—

“नील केवल, अकूल अति-नील,
निभूत, निस्तल, नि सीम, विराट
सौर चक्रा वा दिव्य विरीट,
घरे या सिर पर दिक् सम्राट ।

(वही कलाद्वार (विज्ञान), पृ० ३६६)

अन्तरिक्ष के विराट विस्तार और छो लोका की शक्ति-दीप्ति देखकर कवि विस्मय स्तम्भित था । वह सोचता था कि वह कौन सबव्यापी शक्ति है ? जो अपरिमित महा शून्य म काटि शत अधिवर्षों से असंख्य ज्योति पिण्डों को भ्रमण करा रही है । वशी के मन मे यह प्रश्न भी उभरा—

“महत् किस आकषण से खींच सजा किसने अखण्ड ब्रह्मांड,
असंख्यो लोका से कर पूण भर दिया महाकाल का मांड ।
परम ज्योतिमय का क्या ध्येय ? ब्रह्म सगति का क्या उद्देश्य ?
विहंसता महाशून्य नि शब्द—सृष्टि मे निहित स्वत संदेश ।”

(वही विज्ञान, पृ० ३६८)

इसी अन्तरिक्ष विस्तार के मापन का साहसिक काय विज्ञान युग के मानव ने किया । कवि की दृष्टि में युग-नर के साहसिक अन्तरिक्ष अभियानों का साथक्य क्या है ? जब जन भू सकटा सं घिरी है । मनुष्य जब घरा के ही दायित्वों क निर्वाह म अक्षम है तो अन्तरिक्ष स यान मे क्यों प्रवृत्त हुआ है—

'लाम क्या बहिशून्य म घूम
पुन बन युग त्रिशकु सपाति
रिक्त करतल सा फला देश
खेत चींटो सी उडुगण पाति ।
घरा के प्रति अपना दायित्व
निमा क्या चुका मनुष्य समग्र ?
ग्रहा पर जो अब मत्य प्रभुत्व
प्रतिष्ठित करने को वह व्यग्र ।”

(वही, विज्ञान, पृ० ३७०)

आणविक युग का मैं यशास्य, प्रलयकर प्रनेपास्त्रा का निर्माण कर घृणा, स्पर्धा और हिंसा के जो बीज धरती पर बो चुका है, उन्हीं को उगाने उद्योति विडो की ओर अतिरिक्त अभियानों के माध्यम से प्रयाण कर रहा है। कवि के स्मृति पट पर प्राचीन भारत का वह स्वर्णिम युग उभरा जब द्रष्टा ऋषि गुह्य मनोनम अन्वेषण में लीन रहने थे। वे ध्यान का दिव्यान निर्मित कर अन्तर्मानस का नीलगगन भेद कर प्राण पथ से ऊर्ध्व आरोहण करते थे। भारत के द्रष्टा ऋषि शुभ्र समाधिस्व ज्ञान के बल पर प्राण के मरकत सोपान पर चढ़ कर शांति सौन्दर्य, प्रीति और आनन्द के दिव्य बमब से अतिप्रोत प्रकाश खात त्योजने में समर्थ हो सके। वे ऋषि चेतना के सित स्वर्णिम शृंग लाधकर ध्रुव ध्यान में तन्मय होकर एक अणु में ही अक्षण्ड ब्रह्माण्ड देखने में सक्षम थे। वस्तुन सच्चिदानन्द रूप चतुर्षु ही सम्पूर्ण जगत में परिचाप्य है, उसका दशन प्राण मन का अति त्रम कर अतिश्चतुर्षु स्तर पर ही सम्भव है—

“प्राण मन की अतिक्रम कर श्रणि
देख अक्षय सूर्यो का सूर्य
मृत्यु तम पर अमृतत्व प्रकाश
विजय का फूँक अमय स्वर तूय।
जगत जिसके विकास का क्षेत्र
स्वभू जो शुद्ध स्व-शुद्ध, अनय,
एक वह बहु भूतो में चाप्य,
सच्चिदानन्द रूप चेतय।

(वही, विज्ञान पृ० ३७१)

ऐसे विश्वात्मा दिव्य स्वप्न ब्रह्म के साक्षात्कता मनीषी ऋषि अनन्त काल से मनुज जीवन को श्रेय प्रेय से समुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। किन्तु उनकी आत्मचेतना की अन्वय उपायों में भू का पथ प्रशस्त नहीं कर सकी है। आज भी मनुष्य हिंसा, बबर और विध्वंसक बना हुआ है। कवि के अनुसार आध्यात्मिक ज्ञान और भौतिक विज्ञान दोनों ही अद्भुत युग सत्य हैं। वे समन्वित रूप में ही युग जीवन का पूण सत्य बन सकते हैं। कवि के चिन्तन के अनुसार ज्ञान विज्ञान की सम्पन्न स्थिति इस प्रकार है—

ज्ञान विज्ञान अथ युग-मत्य,

पृथक रह जगल रहे वे यय
नामि से भाव वस्तुमय ऋण ।
नान आत्मा, विनान शरीर
अथ वाणी से सतत अभिन,
अथ विनान ज्ञान चिर पगु
रहे जग मे यदि व विच्छिद्र ।

(वही, विज्ञान, पृ० ३७२)

इसी प्रकार सोचते सोचते कवि पश्चिम की भूमि पर जा पहुँचा । उसने देखा पश्चिम के नगर वद्रपुर के समान विशाल और विपुल बमव सम्पन्न हैं । वहाँ के हाटबाट उच्चान स्वच्छ स्मिन् और मय हैं । औद्योगिक क्रांति और यत्र युग की उपलब्धिया ने वहाँ के जीवन को भौतिक सुख सुविधाओं से परिपूर्ण बना दिया है । पश्चिम के लिए आधुनिकता वरदान सिद्ध हुई है । वहाँ की नारी पुरुष के समकक्ष नय सत्वा के गौरव से युक्त है । डारविन् के विकासवाद और काल मावस के फ्रात विचारदशन ने वहाँ के जीवन में बोध के नय क्षितिजा को विकसित किया है । रसायन, भौतिकी, चिकित्सा शास्त्र गणित, वनस्पति और जीवन विनान के क्षेत्रों में हुई खोजों ने जीवन को सम्पन्न बनाया है । किंतु भौतिक प्रगति की चरम परिणति साम्राज्यवादी, पूँजीवादी अधिनायकवादी आदि प्रवृत्तियों के विकास में भी दृष्टव्य है । अणु परमाणु विज्ञान विध्वंसक उपादानों के विनाश में निरन होने के कारण मानवता के कल्याण विधायक नहीं है । कवि के अनुसार पश्चिम की नान सम्पदा मृत तथ्यों का ही ढेर है—

‘नान सम्पदा मधय यह बाह्य, रिक्त मृत तथ्यों का जड ढेर
सत्य दीपित हो अतश्चित्त अभी युग सयोजन मे ढेर ।
दय पवत बाहर से सभ्य मनुज भीतर से आदिम खब,
आज भी वह दिन दारुण दूर, एक हो भू मानवता सब ।”

(वही कलाद्वार (विनान), पृ० ३७६)

एशिया और अफ्रीका के अनेक भू खण्ड मधय करते हुए पश्चिमी उपनिवेशवाण के जुए को उतार कर स्वतंत्र हो रहे हैं । ससार भर में शक्ति सधय छिडा हुआ है । कवि की धारणा है कि विनान की उपलब्धियों से जड तत्त्व में प्रसुप्त चतय की खोज की जा सकती है । आवश्यकता इस बात की है कि भौतिक विज्ञान भूमा का वरदान वनें । अयथा भौतिकता का आधिक्य विपदा

और भय का सूचक है। दलित वर्ग में जाति जन्म ल रही है। यदि इतिहास की गति को न बदला गया तो इतिहास वर्तमान जीवन की गति को बदल देगा—

“स्यूल भीतिवता का आधिपत्य विपद् भय का सूचक अविद्या,
छा रहा मानव जग में गूढ़, मनोवशातिव जड अवसाद।

×

×

×

शान्ति का होता मन में जन्म विजित हो रहा शक्तिमत् मोह,
रुद्ध युग मन में उठना ज्वार दलित जा में भीषण विद्रोह।
न हम यदि बदलेंगे इतिहास, हम बनेंगे बड़ इतिहास,
शक्ति का भू वितरण अनिवाय, शक्ति गुण की सम-वृद्धि विकास।’

(वही बन्नाद्वार (विज्ञान) प० ३८२)

कवि की मायता है कि बाह्य विस्फोट युद्ध जनजातियाँ और मानविक सामाजिक सघन अन्तत गूढ़ अन्विकास के विह्वल हैं। आज के युग नू मानस में भ्रातियाँ अग्निमुखी आवेश के रूप में उमड़ रही हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान और चेतना के सत्य मिलकर जगत जीवन के अन्त बाह्य विकास में योग दें—

‘बन रहा अब नव भव इतिहास,
बज रहा बानानिक युग तूय
मनुज अन्तमन का तम भेद
प्रकट क्या हुआ सत्य का सूय ?
चेतना-स्वर्णिम कवि आलोक
जगत जीवन विकास हित काम्य
पूण सयोजित जिसमें सत्य
भीतरी ऐक्य, बाहरी साम्य।

(वही, विज्ञान प० ३८५)

वशो ने विशेष भ्रमण करते हुए रोम यूनान, मिथ, जर्मनी इटली, फ्रांस, नार्वे, स्वीडन इंग्लड जापान, रूस और अमेरिका आदि देशों को देखा। बाल्पस की पहाडियों, फ्रांस के कलाशिल्प आइफिल टावर रोम दिगत स्मित सग्रहालया दाते बर्जिल की कीर्ति फ्लोरेंस के कला केन्द्रो एथेंस के अवशेषों, स्वीडन की प्राकृतिक सुपमा स्टाक होल्म की कला, नेक्सपीयर के जन्मस्थान लेनिनग्राड, रेडस्क्वायर, बोलगा, अमेरिका के औद्योगिक सस्थानों तथा टोकियो

नगर की सुपमा ने कवि को विगेष रूप से आकर्षित किया। इन सभी देशों की सांस्कृतिक समृद्धि का कवि ने यशोगान किया है। सोवियत भूमि के प्रति कवि विगेष रूप से आकर्षित हुआ, क्योंकि—

मित्र भारत के सब भू देश, रूस का उनमें अपना स्थान,
दलित भू जन को जिसने भव्य, स्वप्न जीवन का दिया महान।”

(वही, विज्ञान, पृ० ३६८)

इस भू भाग (सोवियत रूस) का प्रशस्ति गान करते हुए कवि ने लिखा है—

‘नय जाग्रत यह जन भू भाग
धरा की अब समृद्ध जन शक्ति
महत सामाजिकता का अग
यहाँ का जीवन सक्रिय व्यक्ति।
घृणित शोषण पीडन से मुक्त
मनुजता पाती युग अभिव्यक्ति,
लोक मंगल सामूहिक ध्यय,
श्रेय के प्रति अखण्ड अनुरक्ति।”

(वही विज्ञान प० ३६८)

भू-जीवन का वैचित्र्य देखकर कवि दृष्टि बाण-मजल हो उठी। वह सोचने लगा प्रकृति-सुमगा सृष्टि कब एक होगी? मानवता के हित में यह ऐक्य परमानिवाय है। भारत और पश्चिम के भू-जीवन में उसे बहिर्मुखी दृष्टियों का पायक स्पष्टतः परिलक्षित हुआ। पश्चिमी जीवन में बहिर्मुखी भौतिक सम्यता ने स्वाथ, अनास्था, कटु सदेह रणभय, शक्तिमोह और राष्ट्रीय दप को उत्पन्न किया है तो भारतीय जीवन की अन्तर्मुखी जीवन दृष्टि में पलायन, पाप-पुण्य भय, कम विरक्ति, पारलौकिकता अधविश्वास, रुढ़िवाद और जड नीतियाँ विकसित हुई हैं। विश्व मंगल की दृष्टि से दोनों ही स्थितियाँ दुर्भाग्यपूग हैं। कवि के शब्दों में—

‘देख पश्चिम भू सीष्ठवचित्र हुआ कवि के मन में आभास,
बहिर्मुख जीवन में जन मग्न न अन्तर्जीवन पर विश्वास।
विश्व मंगल हित यह दुर्भाग्य, कि पश्चिम बहिर्जगत में लौन
भाव-जीवी भारत जन भूमि, वस्तु जीवन महत्त्व से हीन।

ह्रास-तम का भारत म रूप, पलायन, पाप-पुण्य की भीति,
पारलौकिकता, कम विरक्ति, अध विश्वास, एडि जड रीति ।
सभ्य पश्चिम म स्थापित स्वाय, अनाभ्या, रण भय, बटु सदेह
शक्ति का मोह, राष्ट्र का दप, बहिमुख भीतिक जाडय सदेह !”

(वही, कलाद्वार (विधान), पृ० ४०८)

कला दशन से अधिक जहाँ सशस्त्र रण यात्रो को महत्व दिया जाता है, उस पश्चिमी सभ्यता से घबस के अनिरिक्त क्या अपेक्षा की जा सकती है ? पूर्वी जगत ने दुख स निवृत्ति का उपाय त्याग (व्रतग्य) बताया है । उभय पथ एकांगी हैं । मानवता समन्वय का आदर्श अपनाकर ही विकासो-मुख हो सकती है । इसके लिए आवश्यक है कि महत्ता के साथ सौजन्य शक्तिमत्ता के साथ कारण्य धर्म के साथ आर्थिक न्याय बुद्धि के साथ श्रद्धा भाव और बहिजगत के साथ अतश्चैतन्य हो । नव मानवता विकास क लिए देश की सकुचित सीमाओ और परिभाषाओ को भी बदलना पडेगा । कवि के शब्दो मे—

‘मात्र मानवता रे अद्य देश
और सब देश प्रगति पथ रोध,
निसिल सस्कृतियो का नवनीत
शुभ नव मनुष्यत्व का बोध ।
सभ्यता को करना सघष
मितें राष्ट्रो की रेखा स्थूल
मर्थे जन गत इतिहास समुत्
दिखें नव मानवता के बूल ।’

(वही विधान, पृ० ४०९)

तमो कवि से पश्चिमी जगत ने प्रश्न किया कि भारत पर यदि आक्रमण हा ता क्या वह जहिंसा से ही प्रतिरोध करेगा ? कवि का उत्तर था—भारत अपनी अत शक्ति से ही लडेगा । यह वीर भोग्या वसुधरा है किंतु वीरता के अनेक रूप हैं । सत्य के हेतु जो युग युद्ध लडा जायगा वह विश्व मंगल बारी होगा और मानवता के विकास का माग प्रशस्त करेगा । अध भय से जर्जरित विश्व को एक स्थितप्रज्ञ देश चाहिए ना सत्य के लिए ही जिये मरे और जनास्था का तमस दूर कर चिद् ज्योति स नन मन को आसाकित करे । लोक अतमन का निमाण करने वाली ईश्वरत्व की शक्ति अजित करने

के लिए यदि युद्ध और बलिदान भी हो तो कवि उसका समर्थक है। कवि के अनुसार—

'युद्ध यदि युग भू पर अनिवाय
मनुजता हित दे निज बलिदान
अध मू तम का मुख कर दीप्त
करे भारत जन भू कल्याण !

× × ×

युद्ध यदि दुनिवार युग सत्य,
रक्त वह घोर घरा कलक
सिले नव जीवन शोभा पद्म
जन्म दे नव युग को मू पक !"

(वही, विज्ञान, पृ० ४१३)

विश्व जीवन का परिचय प्राप्त कर कवि दक्षिण सागर के तट पर महर्षि अरविन्द के दशनाथ पहुँचा। निभूत आत्थम मे आत्म प्रशात योगरत श्री अरविन्द दिव्य मानस के स्वर्ण प्रतीक प्रतीत हो रहे थे। कवि को वहाँ शुभ्र चतय मूय का आलोक दृष्टिगत हुआ। महर्षि के दशन से कवि के उर में दिव्य दवी चेतना का निपात हुआ। उस दिव्य चेतनालाक की अलौकिकता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"निम्बिल शेषों का अक्षय बोध, बिना जिसके जग मूत विनाश,
स्पर्श मणि जड जिससे चतय ज्योति तम से पर, स्वय प्रकाश !

× × ×

गुह्य निश्चेतन से नम व्याप्त, दिव्य अतिचेतन तक सोपान,
योग्य सक्रिय था, दिक्षा निगूढ विश्व का अतर्दीप्त विधान !
कोटि सूर्यों सा हो जाज्वल्य ऊँच चिद विशुल्लोक विशाल,
रहा आश्चर्य चकित, हतवाक ज्याति तमय कवि उर कुल्ल काल !
दिक्षा कवि को विशुद्ध चित् तत्व, सन्निधानद अनिबचनीय
आदि जो अत रूप का रूप, शुभ्र सौवर्ण, परम कमनीय !
प्रीति, आनन्द, शांति, नीरध्र, ज्योति रस, श्री शोभा कर पान
जगा कवि उर म नव उभेप, हुए विस्मय रोमाचित प्राण !"

(वही, विज्ञान, पृ० ४१७)

इस ऊँच चेतन शक्ति पात से कवि के प्राण वृताय हो गए । माघो गुरु के व्रण का चिह्न भी मिट गया । अरवि आश्रम की रुपहनी शांति और निस्तरंग गम्भीर वातावरण का कवि के मनम जगत पर शुभ प्रभाव हुआ । वशी इस चिन्तन में निमग्न हो गया कि घरा पर भगवत-ज्योति किस प्रकार साकार हो ? ऊँच जीवन क्या है ? समन्वित पथ का अवरोध कहाँ है ? आदि प्रश्न उसके समक्ष उपस्थित हो गए । इस चिन्तन क्रम में कवि इस निष्पत्ति पर पहुँचा कि मनुज के सत् पर सादेह करना जगत को मिथ्या कहना, और जीव को अशुभ स्वभाव मानना भेद मति का परिणाम है । जप तप सयम, ज्ञान विराग मोक्ष या इष्ट सिद्धि के द्वार नहीं हैं । मन्त्रों में प्रस्तर प्रतिमा में ईश्वर को स्थापित कर निष्क्रिय बना दिया गया है । आध्यात्मिक आस्था के नाम पर साम्प्रदायिक वमनस्य पनपा है और नैतिक मूल्य डूबे हैं । इस विडम्बना और विश्रुखलन को दूर करने का उपाय बहिरःतर जीवन शक्ति का सामजस्य और ऊँचो-मुख्य चेतना विकास है ।

द्वितीय खण्ड (अतश्चतय) का द्वितीय उपखण्ड—‘ज्योतिद्वार है । ‘ज्योतिद्वार’ उपखण्ड के प्रथम प्रखण्ड का शीपक—अतर्विकास है । विदेश भ्रमण से लौटकर वशी ने कला-शिविर को समुचित रूप में विकसित पाया । केन्द्र वासियों की साधना के फलस्वरूप वहाँ के जीवन में नवचेतना विकास और सांस्कृतिक प्राप्ति के लक्षण स्पष्टतः परिलक्षित हुए—

गूढ सांस्कृतिक प्राप्ति हृदय भीतर
चलती कला शिविर भू रम मधित
× × ×
मुक्त युवक युवनी जन निज मन में
गाढ एकना का करते अनुभव,
देह भाव की रज को अतिश्रम कर
वृच्छ जन्म लेता समग्र मानव !
× × ×
विस्मित लगती भू प्रहसित अवर
रस क्षितिजों में उड़ता प्रेरित मन
अह बोध से निखर खव स्त्री नर
मुक्त भोगते आत्मा का यौवन !

(वही, ज्योतिद्वार, अतर्विकास, पृ० ४३१)

वशी के सौटन पर कुमुमित धदनवार से पय रचकर, गिविर प्राण म मगल घट सजाकर, शल-ध्वनि और स्वागन गायन से क्षेत्र यामियों न उसका अमिन दन किया । छात्रा द्वारा अर्पित पुष्पहार वशी न हरी का पहना दिया । और स्नेह उच्छ्वसित हृष विह्वल हृदय स लगा लिया । हरी की प्रेरणा और अनुशासन से क्षेत्र के युवकों म नव चेतना उद्भूत हुई थी । वशी के मनस शिखर पर श्रद्धा-आस्था का जो प्रकाशघन उमडा था वह शत शत रस धाराआ म निभरित हा बना पीठ को संचतन करने लगा । कवि ने बताया कि ध्यान, धारणा और प्रणति भावना म ही सृष्टा व पूजन की इति नही, न ही प्रभु प्रतिमा, देवालय या तीर्थस्थल तक ही परिमीमित हैं । पूजा विधि का निरूपण करते हुए कवि न कहा—

“रचना मगल धम से ही जन व सम्भव जीवन ईश्वर का अचन,
जन मन की उन्नत आकाशा ही, प्रभु पद पूजन की पवित्र साधन ।
निश्चय उर नवेद्य अनघ निश्चय, सरल दृष्टि ही अपलक नीराजन,
अस्थि मास की स्तस्य दह मंदिर, जन जीवन गरिमा ईश्वर दशन !”

(वही, ज्पातिद्वार, अन्तर्विवास पृ० ४३४)

कला-क्षेत्र द्वारा प्रशिक्षित युवक युवतियाँ दय और निराशा का दारुण-
वम दूर करने तथा लोकजीवन को सामूहिक धम की महत्ता से अवगत कराने
के लिए ग्रामों मे जाने थे । पन्त जी के शब्दों म —

“नव ससृष्टि सदेशवाह बनकर
युवक युवति जन गावों मे जाते,
नव युग का अभियान कुटीरो मे
कम बचन, तन मन से पहुँचाते ।
मानवता के दूत जनो म धुल
भू मन की रचना करते नूतन
× × ×
लोक प्रेरणा की किरणें बरसा
प्रातमाहित करते सामूहिक धम ।
स्फटिक स्वच्छ श्रीसुन्दर हो भूतल
जीवन भूल्यों पर दत्त व बल,
धम की गति लय म निर्मित हा मन,
जीवन रचना धम ही म मगल ।

(वही, अन्तर्विवास, पृ० ४३७)

इस प्रेरणा के फलस्वरूप रुद्ध जन मन और ग्रामधरा का रूपान्तर हो रहा था। जम-जम फल के कदम से निष्प्रिय और रुद्धि रीतियां से जजरित जन मन विगत युगो के जातिवाद कटुता स्वाथवृत्ति, वश कुल-धर्म राग-द्वेष, स्पर्धा, परनिन्दा, कामुकता आदि असत्य अभिशापा स्रस्त था। ग्रामवासियों का जीवन मानो खेत खलिहान, हल बल, घेत मड और घर पुर तक ही परिसीमित था। शिविर के कमठ कायकर्त्ताओं की प्रेरणा से नव चेतना जागृत हुई, वे व्यापक दृष्टि अपना कर नवीन भावबोध से आगोलित हुए। किन्तु दूसरी ओर कुछ दुमति ग्रामीणा का एक ऐसा भी दस था जिसका मन म ईर्ष्या-द्वेष का गुप्त विराधानल धधक रहा था और हीन भावना से पीड़ित हाकर वे लाग कला शिविर का विरोध कर रहे थे। धृणाद्वेष व विप से दशित उनके मन सांस्कृतिक अभ्युत्थान और ऊर्ध्व चेतना विकास के उदात्त आशयो को समझन में असमथ थे। माधो गुरु के वे अनुचर कवि वशा के प्रति अनुक्षण विप वमन कर रहे थे—

‘समझ न पाते कला पीठ आशय लघु साधारणता में खोए जन,
जनरव फला माधो के अनुचर जाग उगलते कवि के प्रति अनुक्षण।
अहम्मय पागलपन के पूजक विश्वहास विघटन का था युग रण !’

(वही, अन्तविकास पृ० ४३९)

इस विरोध के होत हुए कला शिविर के प्रतिनिधि प्रशांत भाव से नव्य सभ्कृति का प्रेम श्रद्धाजनित सदेश जन जन तक पहुँचा रहे थे। वे नगरो की माति ग्राम धरा व विकास के पक्ष धर थे। ग्रामवासियों को सबीणसाम्प्र दायिकता और भेद भाव मूलक धार्मिक आचरण से मुक्त कर सूक्ष्म चेतना के अनेकानेक पक्षो का उदघाटन करते हुए रचना उमेपो के पावक से प्रदीप्त पथ पर जग्रसर कर रहे थे। उनके प्रयत्नो का परिणाम यह हुआ कि—

रुद्धि स्रस्त मय कल्मष गढ गत मन
स्वम्य घात पा रस चिति का भीतर
सुनग उठा नव शामा लपटा म
ऊर्ध्व अभीप्सा के नम का झू कर !

× × ×
जन नुर म पठ नाति चुपके
बरसानी जागृति चिनगी प्रतिक्षण !’

(वही, अन्तविकास पृ० ४४२)

युग कवि वशी का मन अ तद्र प्टा था । वह भावी जीवन के वस्तु सत्य का स्वप्न देख रहा था । कवि दृष्टि में भारतीय जन जीवन ही नहीं अपितु विश्व जीवन सश्रमण काल से जूझ रहा है । कवि क शब्दों में—

‘भू पर था सश्रान्ति काल भीषण
 बँटते जात दशा के जन, मन,
 अकुलात नर वदी अणु दानव
 भरता मन ही मन विनाश गजन ।
 रिक्त मतो, जड जीवन मूल्या म
 पथरा से थे गए नागरिक जन
 राजनयिक आर्थिक पद्धतिया क
 पाटा में पिसता हत जन जीवन ।’

(वही, अतर्विकास, पृ० ४४५)

ऐसे सश्रमणशाल जन जीवन को अतःआस्था से आलोकित करके ही सक्त मुक्त किया जा सकता है । जरिआक्रमण की आशका भी जन मन में व्याप्त थी । इस स्थिति में भी कवि उत्सवों और पर्वों पर नव रस मूल्या क वितरण द्वारा जन जीवन में शोभा विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता था । चासती सौन्दर्य पव आया । लोक नृत्य गीतों का साल्लास सयोजन किया गया । कला के द्र में सभी प्रदेशों के लाग जाते थे, अतः परम मागलिक वसत पव पर युवक युवतिया अपनी प्रातीय वेशभूषा में रागरगित हाकर मधु वभव लुटा रहे थे । पजामी युवती मल्लमली साटन ज्वाला में लिपटी थी तो आभिजात्य की गरिमा से मडिन रूप गविता राजस्थानी बधू लहन धूनर में शोभायमान था । इसी प्रकार भाव यौवना वग युवतिया कला रगिनी सौम्य सुससृत्त गुजराती बालाएँ दीप शिखा सी तजस्वी तनिमा दीपानन महाराष्ट्र कायाएँ मृदु गिरि मुकुलो की कोमलता और हिम श्रृंगा की भी अनिच गरिमा से परिपूण काश्मीरी सलनाएँ नृ य भगि त्रिपुणा ममृग रेशमी शाया में विभूषित दक्षिण वामाएँ तथा शोभा गुठिन शशिवाला सी यवन नारिया स्वकीय वेश भूषा में उत्सव की गीना वृद्धि कर रही थी । इन युवतिया क तन मन उन्नत उरोज, मकुटिविलास, मधु स्मिनि चचलनयन, सुन्दर रूप और नव छवि से कुसुमित थे । वसी प्रकार क द्र क युवक बल पौरुष क प्रतिनिधि थे । इनके सम्बन्ध में कवि की धारणा है कि—

“विविध विदेशों की किशोर सहणी
बला शिविर सस्कृति में थी दीक्षित,
मुग्ध भाव सौंदर्य परिप्लुत छवि,—
जीवा मधु रस बभ्रव में झालित ।”

(वही, अतर्विकास, पृ० ४५१)

बला शिविर के युवक युवनियाँ रस स्पन्दित और भाव प्रह्व से उल्लसित मुक्त विचरण करते थे। उनकी राग चेतना नवश्री बभ्रव से सदीप्त और ऊर्ध्वमुखी थी। अतः उनका पारस्परिक प्रणय भाव मोह, शका और कुठा से विरहित था। यौन क्रम उनकी दृष्टि में—

‘यौन क्रम ही रस पवित्र सस्कृत,
देह प्रणय स्वप्ना की मुग्धशयन ।’

इसी प्रसंग में कवि ने एक नाट्य रूपक के अभिनय द्वारा स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्धों का निरूपण किया है। शकर और प्रीति के माध्यम से महाकाव्यकार ने प्रेम के शाश्वत स्वरूप, रागारमक सम्बन्धों आसिगन-समोग आदि काव्यिक चोटियों का विश्लेषण किया है। ‘समोग प्रक्रिया’ के भौतिक परिदृश्य को कवि ने एक सशक्त विषय द्वारा इस प्रकार अंकित किया है—

‘स्फीत ज्वार में गिर गया फूल युग्म
ऊब डूब करते गति जब ताडित,
प्राणसिन्धु में तृणदत् दो देहें
तिरतीं तमय, मुग्ध आत्म विस्मृत ।
घञ्ज स्तन सी थीं बलिष्ठ जाघें
तिग्म काम ज्वाला से परिवर्षित
उमड़ अचेतन से प्रमत्त सहरे,
दृप्त भुजगों सी लगनीं नतित ।
तडितवान हाता रम का दुधर
अग्निपून का घसना उर भीतर
गत सस्य अहि दगा से विन्दन
प्राण सौत्रत मरकत मर !

(वही, अतर्विकास पृ० ४७८)

कवि ने अनुभार रूपक धरना ने युवक-युवनियों की प्राण रश्मि को

विकसित कर दिया था। वे देह मिलन के सुख का अतिश्रम कर भाव मिलन के रस प्रहृष में तमय थे। यही नवजीवन का अरणोदय था।

माधो गुरु के समक्ष अब भी कला केन्द्र के विरुद्ध कुचक्र करते रहते थे। शकर अस्वस्थ माधो को देखकर लौट रहा था कि उसे यात्री में पठा हुआ नवजात शिशु मिला, जिसे लाकर उसने वशी को सौंप दिया। हरि ने इसका विरोध भी किया कि केन्द्र कोई अनायालय नहीं है जो अज्ञात शिशुओं का भरण-पोषण करो। किंतु प्रत्युत्तर में वशी ने कहा—

“निलिखित विश्व ही आज अनायालय
मुलन मनुज को जहां न मुख साधन,—
अकथनीय जन भू विकास की स्थिति
मानव भक्षी अभी मनुज का मन !
कला पीठ क्या !-कहा दीप्त कवि न
नूतन प्रावतन का युग सघषण,
नय चेतना में कर आरोहण
जन मन को करना भू पर विचरण !”

(वही, अंतविकास, पृ० ४८८)

अन्ततः वशी ने बालक का केन्द्र में रख लिया। उस का नाम अतुल रखा गया तथा थढ़ा नवजात शिशु का लालन-पालन करने लगी। इस प्रकार वशी ने शिशु के पालन का दायित्व स्वीकार कर उदात्त भाव बोध का परिचय दिया।

कवि वशी का कृत्य यद्यपि श्लाघनीय था किंतु उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कला केन्द्र में ही उसका विरोध प्रारम्भ हो गया। हरि और सिरी के अन्तर में भी असतोष उत्पन्न हुआ। कवि वशी की मायताओं के अनुरूप केन्द्र के जीवन विकास को न पाकर हरि ने एक दिन कला शिविर के संचालन में अपनी असमर्थता वशी के समक्ष प्रकट की, और कहा कि मुझे आज्ञा दो मैं घर जाकर हमिया हथ लेकर गांव में खेती करूँ तथा सिरी के लिए योग्य वर खोजूँ। अश्रुपूरित नेत्रों से कवि ने कहा हरि तुम कला पीठ के जनक हो ! अभी केन्द्र न अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया है। हरि ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

‘प्रकृति जात शिशु को आश्रय लेकर
तुम विरुद्ध कर चुके क्रुद्ध जनमत,
अब सुन्दर आस्था के कुल कृमि से
स्वर्ग कल्पना नरक कुड परिणत ।

× × ×
वमन करेगी घरा कोख कल्मष
कुल कलक उपजोगे नित सकर,
वग चयन गत कुल सस्कारो का
भू जीवन होगा जघन्य लडहर ।

(वही ज्योतिद्वार अन्तर्विरोध, पृ० ५०४)

कवि ने अपने ढंग से सामाजिक जीवन की युग सम्मत धारणा, प्रजनन कम, विवाह बंधन और नतिकता पर प्रकाश डालकर हरि को आश्वस्त किया। कवि के प्रति श्रद्धावनत होकर शिविर में कमरत रहना स्वीकार किया। किन्तु जार पुन में प्रीति के कारण केन्द्र और कवि का विरोध मध्य युगीन सामाजिक आदर्शों में आसक्त जना द्वारा चलता रहा। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर माधो के अनुयायी जनमत को उकसाते रहें। अतः जनमत को पूणत विरुद्ध करके माधो गुरु के नेतृत्व में उनके दल के शिष्य और अन्य लोग कला केन्द्र पर जा घमके। तिरकुश युधको न के द्र में घसकर मार पाट शुरू कर दी। वे कवि वशी पर दूट पड़े। बलिष्ठ हरि ने कवि को बाह्य में भर कर अपनी आठ कर दी। तभी किसी ने छुरी के अधम घात से हरि पर घातक प्रहार कर उमरु प्राणान्त कर दिया और भीड़ भाग गई। हरि के निधन पर उसकी बहिन श्री ने कर्मण विनाप किया। वशी ने भी पश्चाताप और वदना मिथित वाणी से हरि के बलिदान का पुण्य स्मरण करते हुए उसकी चरित्रगत विगपनात्रा का निरूपण किया। हरि के वध से केन्द्रवासी भी उग्र होकर प्रतिश्रियात्मक जाचरण के लिए सततदृष्टि हूण किन्तु कवि ने उच्चकटाक्ष के प्रवाधान द्वारा शान्त कर लिया। कवि पुन भू मगत के महत् अनुष्ठान में निरत हो गया—

करना मुन से घा कवि विप पर दण
भू मगत प्रति हुआ पुन अपित
सगा गानन ज्ञानि गुरु तूतन
अध घरा मन हा त्रिगत मगहन ।

(वही अन्तर्विरोध पृ० ५२६)

हरि के वध की घटना से माधो गुरु का अन्तर भी ग्लानि कवलित हो गया। यह ऐसा असाध्य व्रण उनके उर में उपजा कि क्षीण और विघटित होते होते वे दिवगत हो गए। गुरु के देह निधन से भी वशी के कुसुम मम को गोपन आघात पहुँचा। सुन्दरपुर के चौराह पर वशी ने माधो गुरु की पूर्णा कृति प्रतिमा स्थापित की और सख्द नमन करते हुए कहा—

“गुरु को हम करते शत नम्र नमन
 युग मन की सपद, श्रद्धा पूजन
 गुरु चरणों पर करते नत जपण ।
 × × ×
 ज्याति स्तम्ब वह विगत अस्मिता के
 करने रहे दिशा पथ निर्देशित,
 × × ×
 नूतन प्राक्कन के सघपण में
 रहे मदा माधो जन नायक—”

(वही, अन्तर्विरोध, पृ० १३४)

कवि वशी की श्रद्धाजलि से स्पष्ट है कि जन मन में यह मृपा धारणा थी कि कवि का गुरु से गोपन वैमनस्य था। कवि के इस सदाचरण से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि ‘लोकायतन’ के कतिपय समीक्षकों की यह धारणा भी खण्डित हो जाती है कि ‘माधो गुरु’ निराला के प्रतिबिम्ब हैं और काव्य में उनके प्रति विगहणा प्रगट की गई है। पंजजी ने तो वशी (कवि) के मुख से माधो गुरु के चरित्र की प्रशस्ति भी कराई है जो अविकल रूप से नीचे उद्धृत है—

‘गुरु उदार थे, पर उपकार निरत दान त्याग तप की प्रतिमा जीवित
 तेजस्वी द्रष्टा, शिल्पी सजक दप दीप्त प्रतिमा के रवि निश्चित ।
 दुबल के यत्न, दुनिया के रक्षक, स्वामिमान के उत्तम सूर्य शिखर,
 जन सघपण के अजेय नायक युग पथ निर्माता, प्रबुद्ध, तत्पर ।
 सह सक्त्त अयायन पर शोषण, घृणा श्राप, अपमान, दम, लाछन,
 बुद्धि जीवियों के निमय प्रतिनिधि, कविता कानन के गजेन्द्र गजन ।
 हास्य व्यंग्य प्रिय मुक्त प्रवृत्ति दुजय, पान दृष्टि थे माधो युग नायक
 मन्त्र तत्र विधि दीप्ति सारक धर, व स्वतन्त्र चेता रुचि निर्मायक ।

×

×

×

×

सामाजिक दुष्टतियों से आहत, अत्याचारा से भर निमग्न रण,
आत्म विजय का बतन पहारने, जिया उहोंने निज जीवन अपण ।'
(लोकायनन ज्योतिद्वार अंतविरोध, पृ० ५११-५१२)

'ज्योतिद्वार' उपलब्ध के तृतीय प्रलम्ब उत्प्राप्ति में कवि ने अन्तश्चतना के ऊर्ध्वो-मुखी विकास का सशक्त निरूपण किया है। अन्तश्चतन प्राप्ति की प्रतिक्रिया का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

'बरस रही युग स्वप्नों की शोभा
अंतर्वेग से भर उर विस्मिन
नव प्रकाश के रस सित स्पर्शों से
भाव मुग्ध प्राणों को भर पुलकित !

× × ×

प्राप्ति प्राप्ति का करती अतिश्रम
बहिरंतर का होता रूपांतर,
आत्मा के रस पावक में तप कर
निखर, पूर्णतम ढलता स्वर्णिम नर !

(वही उत्प्राप्ति, पृ० ५३६-५३७)

कवि ने कल्पना दृष्टि से अनागत जीवन के अन्तश्चतन विकास का दिग्दर्शन किया। उसे अनुभूति हुई कि मनुष्य के साथ पशु पक्षी और वनस्पतियाँ भी नव चेतन सुपमा से अभिमण्डित हैं। वशी का अतजगत ज्यो ज्यो जग जीवन को आत्मसात करता हुआ ऊर्ध्वो-मुखी समदिक सचेतन होता था, उसमें नव चेतना अवतरित होती थी—

'ज्यो ज्या ऊपर उठता कवि अन्तर
आत्मसात करता वह जग जीवन
समदिक बनता ऊँच समदिक,
मीन अवतरण करता नव चेतन !

(वही उत्प्राप्ति पृ० ५३८)

वशी ने अनुभूत किया कि भू जीवन की पूर्णता को लाँचकर प्रबुद्ध नूतन भाव दिव्य चेतना के रूप में जन्म ले रहा है। ज्ञान चक्षुओं से आत्मा का इन्द्रिय कुसुमित बमब दिखता। आत्मा की सित शरद नीलिमा में अकल्पित चेतन सुपमा का उगता शशि और सित प्रकाश का निभर वरसाता माणिक

रवि दृष्टिगत हुआ जो जन भू को श्री शोभा, आनन्द और प्रीति से स्नात किए है। सप्त वषण ज्वाला-आ मे लिपनी चतनाएँ भू पर उतर रही हैं। लोक एक्य की लौह पीठिका पर भावी भू मानव अवतरित है। कवि ने उवशी, मनका, रमा आदि अप्सराओं को भी दिवामिसार करते हुए देखा। कवि ने इन शोभा छायाओं को जन भू के विकास हेतु रचना श्रम करने को कहा। कवि के चेतना पट पर अप्सराओं का आगमन प्राणों की जाकाशा का छल था।

वशी के स-देश को केन्द्र के युवक युवतियाँ सुन्दरपुर जनपद के क्षेत्रों में फला रहे थे। इसी बीच हरि की बहन मिरी का भी स्वगवास हो गया। शुभ्र त्याग की प्रतिमा सिरी के निधन के अवसर पर कवि ने प्राणवायु (श्वास) को अनिल तत्त्व में तदगत हात हुए देखा। इस प्रकार कवि ने मृत्यु के सुन्दर रूप को देखा। किन्तु वह अविचलित भाव से युग विकास का आप्रह लेकर कर्तव्य पथ पर बढना रहा। सचेतन साधना और अन्तर्दशन से कवि को जो दिव्य अनुभूतियाँ होती थी उन्हें वह गूढ प्रतीकों त्रिम्बों और चिह्नों के माध्यम से उदघाटित करता था। कवि को यह अनुभव होने लगा था कि नव-युग कल्पा-तर दूर नहीं है—

‘अतस्तल से निखर मेह हिमवत्
प्राण सि धु जल स उठते ऊपर
भावी मानव सङ्घति शृगा—से,
मेह सानु था चित स्वर्णिम सुन्दर।’

× ∨ ×

शिव सा शशि गगा अहि गण परिवत
या अन्तश्चतय भूति मास्वर,
अध ऊर्ध्व स्तर भव जीवन सक्रिय—
दूर न था अब नव युग कल्पातर।

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५४८, ५४९)

कवि ने ध्यानावस्थित अवस्था में अन्तर्दृष्टि से देखा कि अज्ञान घूम छट कर चित्त का स्वर्णम शिखर ज्योति अकित हो गया है। ज्योति-ज्योति-सूत्रों से भू जीवन का छायाबल बुना जा रहा है। मानवता का भविष्य भी उसे प्रकाशपूर्ण दिखाई दिया—

तेजोमय मण्डल धलयित रवि सा
मनुष्यत्व का भावी मुख दीपित—

नव भू जीवन गरिमा का दपण,
सूक्ष्म दृष्टि म कवि के हुआ उदित !”

(वही, उत्प्राति, पृ० ५५१)

विश्व भ्रमण के अवसर पर कवि यशो ने कुछ बौद्धिकों को आमंत्रित किया था। अनेक बौद्धिकों ने कलापीठ का आतिथ्य ग्रहण किया। समागत विद्वानों से कला-त्रेड के छात्र छात्राओं ने भौतिक आध्यात्मिक युग विषया राजनयिक-आर्थिक युग सङ्कट और एकांगी वैज्ञानिक उन्नति पर विचार विमर्श किया। वाद विवाद का निष्कप यह निश्चय कि—

‘पश्चिम जग की दृष्टि न ऊर्ध्वगहन
बहिर्गत विश्लेषण म सीमित—
वास्तवता से शून्य पूव की मति,
अतभुवनो के नम मे केन्द्रित !

× × ×

निष्प्रिय नियति निषेध प्रस्त भारत
शशक शृगवत् आदर्शों म रत
शक्ति मत्त स्वायाध, भोगवादी
पश्चिम जड वास्तवता का अनुगत !’

(वही उत्प्राति, पृ० ५५५ ५५६)

अस्तु आवश्यकता इस दान की अनुभव की गई कि पूव और पश्चिम, बाह्य और आंतरिक आध्यात्मिकता और विज्ञान स्वदेशी भावना अन्त र्राष्ट्रीयता तथा रूढ रीतियों और प्रगतिशील जीवन मूल्यों में सामंजस्य स्थापित किया जाय। केन्द्र म जो विदेशी आये उहोने भी इसे नवीन विधि से संचालित किया। रोज नाम की अनुपम सुदरी ने भी अपना जीवन भारतीय आध्यात्मिक निष्ठाओं के अनुरूप ढाल लिया। कवि युग मन को निरंतर भावयोग साधना के लिए प्रबोधन कर रहा था। उसकी दृढ धारणा थी कि ऊर्ध्वमुखी अत साधना जन जीवन को सस्कारित कर आत्म गौरव प्रदान कर सकती है—

ऊर्ध्व निखारे अन्तर्मानस को शुचि सस्कार करे जन जीवन का ।

× × ×

जन मन का हो अन्तरव्य सितबल, मनुष्यत्व सम्राट लोक प्रतिनिधि,
आत्मिक गौरव हो जीवन प्रेरक, क्षमा शील नियमन हो सहृदय विधि ।

जो मू मानव के अतजग म करे ज्योति साम्राज्य शुभ्र स्यापित,
क्षण मगुर जीवन सघपण को गारजत के पट म कर सयोजित ।'

(वही, उत्क्रांति, पृ० ५६७)

केन्द्र के जीवन मे यद्यपि ऊर्ध्व चेतना का विनाश हो रहा था किन्तु कवि देख रहा था कि भारतीय ग्रामीण जीवन स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् रुढ़ि जजरित ही था । विगत युगो के अभिशाप बगवान्, रुढ़िवाद, जातिवाद, छुआ छूत, अविद्या, अपविश्वास के रूप मे ग्रामीण जीवन का आश्रान्त किए हुए थे । नगरीय जीवन के विगान शक्ति ध्वम उपकरण जुटाकर महाप्रलय का आवाहन कर रही थी । पूँजीवादी शक्ति उपनिवेशवाद के रूप मे जन शोषण कर रही थी । कवि की दृष्टि मे इस स्थिति का निम्न राजनीतिक नहीं अपितु सर्वोन्धी विचार धारा के प्रसार और अवसर की समानता मे निहित है—

'सामाजिक युग क्रान्ति अहिंसा रत
नव सर्वोदय की हो निर्मायक ।

× × ×

अन वस्त्र गृह द्वार मिने जन को,
शिक्षा सस्कृति से दीपित हो मन,
सुन्दर हो मू सुन्दरतर स्त्री नर,
मानव गरिमा बहन करे मू मन ।'

(वही, उत्क्रान्ति पृ० ५७६)

किन्तु कवि की भावना के विपरीत सघपण की दावा सबत्र फल रही थी । अणु शक्ति के आविष्कार और विकास ने विश्व जीवन मे विनाश का आतक फला दिया था । विश्व की शक्तियाँ सघपण की भूमिका तैयार कर रही थीं । इस सघपण युग-बला का निरूपण पत जी ने इस प्रकार किया है—

"कल्पानर का था वह लिग्घोपक
युग सध्या थी महा ह्लास का तम,
पहन सम्पता का मुत्त आदिम पशु
उपजाता मानव होने का भ्रम ।
जीवन मरण खडे थे अब सम्मुख
आलोडित मू का त्रिगूढ अंतर
उमड रहा था प्रस्तर युग का तम
उबल रहा था विश्वतन गङ्गार ।

(वही, उत्क्रांति, प० ५८३)

दानवीय प्रक्षेपणास्त्रों के संचालन हेतु अनेक जडडे बनाये गये। सुंदर जनपद की पार्श्व भूमि में भी हवाई अड्डा बना। वशी ने अपनी आंतरिक प्रेरणा और अंतर्दृष्टि के द्वारा महानाश का पूर्वमास पा लिया था—

‘मनोदृष्टि से देखा युग कवि ने गुह्य बोध से जीवन परिचालित,
वही शक्ति जो रचना मगलरत अणु विनाश के हित भी रण सज्जित।

× × ×

देखा कवि ने नरक दृश्य दारुण विश्व ह्लास से अवहण विघटन का।”

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५८८ ५८९)

अस्तु कवि वशी अपनी प्रिय शिष्य विदेशी महिला मेरी को ऊर्ध्वोन्मुखी ज्ञान चेतना का महामाव सौंप कर आत्म साधना के लिए अन्तर्धान हो गया—

‘भावात्मा दे विनत आत्मजा को स्वर्ग स्वप्न से भरा मुक्त अंतर,
उसे छोड़ तद्गत स्थिति में चुपके, हुआ कक्ष से कवि द्रुत बाहर।
और उसी क्षण छोड़ केन्द्र प्राण अंतर्धान हुआ वह चिद्वन में,
बढता रहा पथिक शाश्वत पथ का काय समापन कर भव जीवन में।’

(वही उत्क्रान्ति, पृ० ६०६)

पन्त जी के शब्दों में कवि वशी की स्रष्टा के प्रति रस कृताघ मन की चरम परिणति थी। उसने प्रेम सत्ता में तमय होकर सत् चित् आनंद लोक का अनिक्रमण कर उस बोध को प्राप्त कर लिया था जिसे दिव्य प्रेम कहते हैं यही त्रिव्य प्रेम विश्व प्रेम का उद्गम है। इस प्रकार अमत यौवन विश्व चेतना का कला पीठ एक स्वर्ग क्षण के समान था, जिसे वशी ने अपनी जीवन साधना द्वारा निर्मित किया। किन्तु अणु बम विस्फोट से वह केन्द्र ध्वस्त हो गया—

“मान घ्रष्ट अणु बम से सुंदरपुर
ध्वस्त हो गया भर विदोष गजन।
ज्ञान नहीं फिर कला केन्द्र का क्या
अंत हुआ सत्राति बाल दुबह,
ज्याति द्वार मानव उर में शाश्वत
भगवन पीठ घरा पथ चित् विग्रह।

(वही उत्क्रान्ति पृ० ६०९)

उत्तर स्वप्न प्रीति त्रितीय स्रष्ट (अन्तर्चैनय) का तृतीय और अंतिम काव्य प्रसंग है। इस प्रसंग में पन्त जी ने नवयुग चेतना के अवतरण और नए

मानव (अति मानव) के आविर्भाव का अरविन्द दशन की मूलमूल अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में किया है। वस्तुतः पतञ्जी की काव्य साधना के श्रम में विचारणा के तीन स्तर स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं जिन्हें मैंने निम्नावित प्रकार से अपने एक लेख में वर्गीकृत किया था—

- १ सौन्दर्यमूलक दृष्टिकोण से आदोलित छायावादी (प्रकृतिवादी) काव्य चेतना।
- २ माक्सवादी विचार दशन से प्रभावित प्रगतिवादी (मानवतावादी) काव्य चेतना।
- ३ महर्षि अरविन्द के ऊर्ध्वचेतन भाव घोष से अनुप्रेरित सांस्कृतिक (अ तश्चेतनावादी) काव्य चेतना।^{११}

इस सम्बन्ध में पतञ्जी काव्य के समीक्षक सामान्यतः एकमत हैं कि सन् १९४० के पश्चात् से पतञ्जी की रचनार्थमिता (Creative Urge) दार्शनिक अनुचिन्तन की तन्त्रायपी गहराइयों का स्पष्ट करने लगी थी। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी के शब्दों में—‘सन् ४० के पश्चात् पतञ्जी का व्यक्तित्व उत्कट वचारिक सधर्षों के पश्चात् जिस भूमिका पर आवर स्थिति हुआ वह मूलतः दशन की भूमिका ही कही जायगी। काव्य और दशन के इस सधर्ष में दशन की ही विजय हुई यह सत्य स्वीकार करना ही होगा।’^{१२} डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार भी—‘सन् १९४० के बाद से आज तक पतञ्जी ने जो कुछ लिखा है उसमें अरविन्द दशन को ही वाणी दी गई है।’^{१३}

इस सम्बन्ध में स्वयं पतञ्जी का मत यह है कि—“मैंने अपना जीवन दशन युग की आवश्यकताओं एवं मानव विकास की सम्भावनाओं को सम्मुख रखकर अनेक महान् ग्रन्थों तथा महापुराणों की प्रेरणा ग्रहण कर उनके उपयोगी तत्त्वों को आत्मसात कर, लोक कल्याण एवं भूमण्डल की भावना के उद्देश्य से अपने काव्य पट में गुफित करने का साहस किया है।”^{१४} पतञ्जी के

^{११} ‘पतञ्जी काव्य चेतना शोधक लेख—समीक्षात्मक, वष ३ अंक १२, अक्टूबर १९७१

^{१२} सुमित्रानन्द पन्त स्मृतिचित्र प० ११७

^{१३} पतञ्जी का नूतन काव्य और दशन प० १२८ १२९

^{१४} चिदम्बरा, चरणचिह्न, पृ० २५

काव्य रचना (जीवन-रचना) की विधि में विभिन्न युगीय विचारधाराओं और महात्मा विचारकों का योगदान हो चुका है, महान् अरवि का अनुमान सर्वत्र मिल सकता है। यदि वे स्वयं स्वीकार किया है कि— मैं अपना युग जिसे पतन देश की प्रायः सभी महात्मा विभूतियाँ से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ हूँ। धीमा-गल्लय नाम में मुझ पर कबोत्र रबोत्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा युगांत और बाद की रचनाओं में महात्माजी के व्यक्तित्व तथा भावना-रचना का किंतु इतना सब एक परिपूर्ण एवं संतुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव सादृश्यता या, उगरी पूर्ण मुझे श्री अरवि के जीवन-दर्शन में मिली, और इस अन्तर्दृष्टि का मैं इस विषय संश्रान्त बात के लिए अपेक्षा महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य मानता हूँ। विषय बलयाण के लिए श्री अरवि की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के यज्ञानियों का अणु शक्ति की देन सुच्छ है।"

उपयुक्त विवेचन के आलोक में यदि हम लोकायतन महाकाव्य के अन्तिम प्रकरण— उत्तर स्वप्न प्रीति की मूलभूत भावनाओं को समझने का प्रयास करें तो अन्ततः अरवि रचना की उपपत्तियों को अधिशृंखलन करता ही होगा।

अणु युद्ध के कारण सतार का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। अणु विस्फोट के कारण सुन्दरपुर जनपद का सांस्कृतिक कला पीठ भी नष्ट हो गया। तब मेरी ने हिमगिरि की प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न शुभ प्राणण में 'लोकायतन नामक नवीन सांस्कृतिक-आध्यात्मिक केंद्र की स्थापना की। आणविक युद्ध की यंत्रणाओं से सप्रस्त और विज्ञान की विमीयिकाओं से सतप्त स्त्री पुरुष देश विदश से इस केंद्र में अन्ततः शांति और चिदानन्द की अकल्पनीय अनुभूति प्राप्त हेतु आये। पतन की वे शर्तों में—

“उस दारुण क्षण से जब कुछ जन
आये प्रयात हिम प्रातर मे
हिमगिरि अचल में मेरी ने
जन लोक बसाया लोकोत्तर ।
× × ×
मेरी पहलाती सयुक्ता,
लोकप्रिय अब उसका आश्रम,

दे लौकायतन उसे सजा
जन रचते नव जीवन उपक्रम ।”

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६१४)

इसी काव्य प्रखण्ड में कवि श्री पन्त ने हिमगिरि के विश्व विधुत गौरव और महानता का भी निरूपण किया है। हिमाद्रि शुभ्र पखो वाला सौंदर्य हस, भूमा-स्वर्ग का दिग भास्वर अथवा चैतय लोक का हिल्लोलित आनन्द सिन्धु सा प्रनीत होता है—

‘सामने खड़ा था दिग विराट भू स्वर्ग सेतु सा हिम पवत,
महिमाविन करता अबर को भू का गौरव मस्तक उगत ।
दखा गिरि उसने प्रथम बार आनन्द सिन्धु सा हिल्लोलित,
जड जीवन मन की श्रेणि लाँघ, चतय लोक हो सित शोभित ।”

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६१७)

लौकायतन-केन्द्र का ही एक छान अतुल था। कवि वशी के संदेश को उसने हृदयगम कर लिया था। यह संदेश था—भू पर स्वर्ग उतारने का, चेतना विकास तथा नव स्रष्ट का अतिक्रम कर मानव को ऊर्ध्वोमुखी बनाने का। अतुल यह जान चुका था कि आध्यात्मिक मूल्यों के बल पर धरा का रूपांतर नहीं हो सका न ही तप, व्रत, योग साधना करने वाले पानी मुक्त और बरागी ईश्वर का यथाथ दिग्दर्शन करा सके हैं क्योंकि ये सभी मानव और ईश्वर, भौतिक जगत और अतीन्द्रिय चेतना लोक, भू और स्वर्ग, विज्ञान और अध्यात्म तथा जीवन यापन और ईश साधना में अभेद दृष्टि से नहीं देख सके हैं। जबकि कवि वशी के चिंतन का सार यह था कि—

सित प्रीति काम से नहीं पृथक मन भू जीवन का ही दपण,
समव न समगत मनोप्रायन रस शुद्ध न यदि जीवन प्रागण !
समव कवि का था यही लक्ष्य जीवन से विलग नहीं ईश्वर,
इन्द्रिय हो आत्मा का गवाय्य हो धरा स्वर्ग ही प्रभु का घर !

× × ×

नव मूल्यों से रच मानव जग, गत मनोदृष्टि को कर विस्तृत,
ईश्वर को भू जीवन पट में करना जन को चेतना प्रथित !”

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६२२ ६२३)

मूल प्रश्न है कि यह अन्तर्वाह्य सामजस्य तथा धरा पर लिख्य चेतना का अवतरण समव कैसे होगा? महर्षि अरविन्द का मत है कि नवयुग की जीवन

प्रक्रिया में हम जिस ओर अनात रूप से बढ़ रहे हैं उससे यह सुनिश्चित है कि हम बुद्धि के स्थान पर अतश्चेतना, उपयोगितावादी मानदण्ड के स्थान पर आत्म विफलपण, प्रकृति ज्ञान के बाह्य नियमानुसरण के स्थान पर गुप्त ईश्वर रेच्छा-अनुसरण प्रयोग करेंगे।³¹ महर्षि अरविन्द की इसी धारणा का उत्तर स्वप्न' में पतंजी ने प्रतिपादित किया है।

एक दिन अतुल निमग्न होकर हिमगिरि के उच्च शिखरों पर रोहण करने चुपके से निकल गया। जीवन के चित शिखर की खोज में वह उस नान प्रखर सित अक्षि पथ पर अविरत बढ़ता गया। अतुल को उत्तुंग शृंग पर स्वर्णिम उमेषों के प्रभात का दशन हुआ। उसने स्वयं में रस पूषण तेजोमय स्वरूप का आत्म साक्षात्कार किया। उन रजत नील नीहारा में उसने जाना कि वह स्वयं आत्मा का चि मर अस्थि धवल है। हिमाद्रि शृंग पर लय होने से पूर्व उसने निखिल चराचर में जीवन विकास और दवी सत्ता का साक्षात्कार किया। आत्म-साक्षात्कार हिमाद्रि रोहण से प्राप्त कर अतुल पुन जगत में नहीं लौटा। यद्यपि उसके प्रिय सुहृदों ने यथ खोज भी की।³² अतुल का कथारूपक वस्तुतः आत्मचेतना के आरोहण अर्थात् ऊर्ध्वो-मुग्धी विकास का ही द्योतक है। 'लोकायतन के रचयिता की यह बद्धमूल धारणा है कि यात्रिकता मानव चेतना को भौतिकता के पाश में निरंतर निबद्ध नहीं रख सकती। अन्ततः वह ऊर्ध्वो मुखी होगा ही—

समदिग यात्रिकता में घबकर
घन सक्ता मनुज न चक्र दत

³¹ In this process the rationalistic ideal begins to subject itself to the ideal of intuitional knowledge and a deeper self awareness the utilitarian standrad gives way to the aspiration towards self consciousness and self realization the rule of living according to the manifest laws of Physical Nature is replaced by the effort towards living according to the vield law will & power active in the life of the world and in the inner and outer life of humanity —*The Human Cycle*, p 31

³² लोकायतन उत्तर स्वप्न, पृ० ६३०

वह सजनात्मा, यशो,—उसका
चाहिए ऊर्ध्वमुख चिद दिगन ।”

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६३२)

अस्तु, युग प्रबुद्ध देशो के जन भी मन साधना के लिए हिमाचल में एकत्र होकर गिर अधित्यका में पण कुटी बनाकर साधको के रूप में रहने लगे । वे अन्तमुख सिन चिंतन में रत होकर अधिमान शिखरो पर आरोहण करते थे । चिन्मूल्या के अनुशीलन हेतु उनका मन विमान भूमा में रहता, ऋद्धि सिद्धि उन्हें सुलभ थी तथा अस्त्र बंद कर वे प्रभु दर्शन कर लेते थे । आश्रम वासिया के सम्बन्ध में कवि का यह कथन कितना सटीक है कि वे—

‘जीवन विकास गति प्रति चेतन,
अध्यात्म तत्त्व व अभिलाषी !
अन्तमन के वज्ञानिक थे,
कुछ श्रांत दृष्टि आधमवासी !’

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६३४)

आधमवासी सृष्टि, जीव आत्मा, ईश्वर, पाप-पुण्य श्रद्धा पथ, आस्था, भू संयोजन के सम्बन्ध में प्रश्नात्तर करते थे । इसी प्रश्नोत्तर क्रम में कवि ने स्पष्ट किया है कि जड़ चेतन जगत की निमाता इच्छा शक्ति ही है और इच्छा शक्ति चेतना का ही रूपान्तरण है । यह विवेचन तत्त्वतः अरविन्द दर्शन की विचारणा के ही अनुरूप है ।” इस सदन में हिमाद्रि शृंग पर अतुल का आत्म बोध दृष्ट्य है—

“जानद रूप मैं हूँ अपूण, मैं स्वत एक से बहू बन कर
इन्द्रिय मासल भू जीवन में रस मूत्त सत्य शिव में सुंदर !

×

×

×

आत्म स्थित भी जन भू ही का, मैं शिखर नहीं इसमें सशय,
या मात्र शून्य दिक् कावन विधि मैं तुम न, जगन न, जगन जाधय ।
ले प्रेम वणु छेड़ी मैंने रस त मय विश्व सृजन की लय,
मैं प्रवृत्ति पुरुष वन, महत् बुद्धि, अब जड़ चेतनमय जीवाशय ।

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६२८ ६२९)

३३ 'The Energy that creates the world can be nothing else than a will and will is only consciousness applying it self to a work and a result —The Life Divine p 22

अरवि द दशन की सबसे महत्वपूर्ण उपपत्ति अतिमानस (Super Mind) या अतिमानव (Super Man) है। जीवन विकास के तीन सोपान माने गये हैं—जड़ (Matter), जीवन (Life) और मास (Mind)—इस विकास की पूर्ण या चरम परिणति अतिमानस (Super Mind) तक होनी है—ऐसी अरविद की धारणा थी। महर्षि अरविद 'मानव को सृष्टि विकास का अन्तिम सोपान नहीं मानते हैं। उनके मतानुसार— मानव विकास का अंतिम परिणाम आत्म विस्तार और आत्मोत्तर स्थिति के विचित्र प्रारूप में होगा। अति मानव की व्याप्ति केवल ईश्वर साक्षात्कार तक ही नहीं है वरन् वह हमारी भौतिक मानवीय चर्चा में भी ईश्वर का जीवन्त अभिव्यजन करता है।' लोकायतन के रचनाकार ने अरविद दशन की इसी मायता को उत्तर स्वप्न प्रखण्ड में रूपायित किया गया है। उदाहरणार्थ—

धीरे धीरे पीढ़ि पीढ़ि होता अमृत मानव विकसित
जीवन विकास त्रम सहयोगी भू ईश्वर प्रतिनिधि वन अविजित ।

× × ×

जग में ही समस्त प्रभु दशन, भव ब्रह्म सत्य यह निःसंशय
ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव रज रूप मत्य नर स अतिशय ।'

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६३५ ६३६)

मेरी द्वारा हिमगिरि के अचल में स्थापित लोकायतन नामक सांस्कृतिक केन्द्र के जन जीवन में कवि ने महत् चेतना शक्ति का अवतरण का अंकन किया है। इस केन्द्र के नव जीवन में स्वर्णिम संगीत तथा व्यक्तित्व प्रेम के स्थान पर समष्टि प्रीति भावना का विकास हुआ। अथ मानव का मन अतर्णीय था। राजनीति को पीछे छोड़कर संस्कृति रथ युग पथ पर गतिशील था। अणु रण ध्वंस ने युग मानव का मन का भौतिक जीवन के प्रति ध्वस्त मुक्त कर दिया। वह आस्था प्रीति और प्रतीति युक्त अतमूल्यों के प्रति जाकर्षित हो गया। इस नव अन्तमन अरणोत्थ का जन भू मानस ने अभिनन्दन किया। अथ रण बंदी जड़ विपान भी मुक्त होकर रचनात्मक कार्यों में सलग्न हुआ। नव युग चेतना प्रभाव का विवेचन कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—

पा नयी दृष्टि नव युग मानव जीवन का करता मूल्यांकन,
देश। राष्ट्र। स्त्री पुरुषों का सुल गण भाव गत के बचन !

भव मूल्य शुभ्र चिति म परिणत, परिवेश विश्व का परिवर्तित,
जीवन पदाथ रस सिन, पावन भू आध्यात्मिक मंगल हृषित ।
शुभ्र शान्ति लोक मन म स्थापित, अणु अस्त्र सिन्धु जल म मञ्जित
कटु पूवग्रहा से मुक्त घरा दिशि म सहस्रदल सी प्रहसित ।

×

×

×

अब भाव वस्तु जग सयोजित अन्त प्रबुद्ध मानव अंतर,
अन्तमुख आध्यात्मिक जीवन ले चुका जन्म नव जन भू पर ।”

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६४५ ६४६)

इस अन्तमुखी आध्यात्मिक विकास न जीवन म भौतिक और अभौतिक
श्रद्धा सिद्धि का नव भू मानव के कर गत कर िया है । अन्त श्री से कुसुमित
सित राग भावना का मुक्त छात प्राणो म आनन्द का सृजन करके उर को
तमय विस्मृत रखता है । नव मानव का अन्तर जगत भगवत चरणा के
प्रति रति रखकर उसी की अनन्त शक्ति का सचय करने म निरत है । अन्त
श्चिति के प्रति जाग्रत जन क लिए ‘कर्मयोग’ सबसे बड़ा दर्शन है । भगवत
शोभा और आनन्द ज्योति ने सत प्रीति और शान्ति का विकास जीवन मे
कर दिया है । अब यह धरा ही स्वर्ग बन गई है क्योंकि—

“अज्ञान तिमिर से मुक्त दृष्टि
सुन्दर सुन्दरतर बन भू पर ।
धर सत्य महत्तर सत्य चरण
विकसित होता शिव बन शिवतर ।”

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६४६)

इस नवीन भावादय के कारण लोग दमित कामना ग्रथियो से मुक्त होकर
सहज सयमिन और शीलनमिन थे । जाति, वण कुल का अनिश्चमण कर मानव
कुटुम्ब के सदस्य बनकर जीवन यापन करत थे । अनेक सांस्कृतिक केन्द्रो की
स्थापना हुई । इन मन्ना लोक केन्द्रो का एक ही ध्येय था ‘मानव विकास ।
भौतिक जीवन आध्यात्मिक मूर्स्था स नियन्त्रित हो गया । समुक्त कर्म, भगवत्
चिन्तन, मागाय विधायक सजन और सामूहिक सरक्षण क प्रति नव आस्था
जन्मी । मू प्रवृत्ति और नव प्रवृत्ति म भी इस परिवर्तन क्रम की प्रतिक्रियाएँ
स्पष्टत दृष्टिगत हुई । यथा—

भू प्रवृत्ति हा गई थी नीचज
परिवेश स्वच्छ जाहार शुद्ध,

उन्नत विचार, सौम्य धर्म,
अथ कम न सृष्टि क विद्वत् ।
रस सौम्य शरत्-सौम्य सुघ्न
आता पापकर्म न अतमय पर,
विज्ञान पात क परिणय स
परित्राय मनुज का महिम्नर ।

(वही, उत्तर स्वप्न, प० ६५१)

नारी के प्रति भी जीवन दृष्टि म नयी मावा मय हुआ—

'नारा अथ मात्र न काम तल्प,
यह प्रीति गुधा रग सजीवन
जो हृदय गिराया म यह सित
जीवन मन का करती पापण ।

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६५५)

आत्म-स्पर्शों ने ज्यातित अन्तश्चेतन मन की पूजा पद्धति का भी स्वरूप
भिन्न था । उदाहरणार्थ—

'अथ भू मगत ही जन्म भू धन,
जीवन रचना ही तप साधन
अपित मन का श्रम पूण योग
भव शोभा मुख म प्रभु दशन ।
सत प्रेमापण ही पाणि ग्रहण
मानव कुल हा शिशु कुल पावन,
ससृष्ट अतर ही जन सपद
भू आंगन मव का घर आगन ।'

(वही, उत्तर स्वप्न प० ६५८)

स्वर्ग चेतना का प्रतिनिधित्व मानव जब भू पर उन्मुक्त भाव से विचरण
करता है । जगत अथ ईश्वर से पृथक् नहीं माना जाता । नव मानव का मन
ऊर्ध्व सोपानों पर निमग्न रहण करता है । शाश्वत शोभा समदिग जीवन पथ
पर विचरण करती है । इस युग मानव के विराट ब्रह्म का वणन करते हुए
कवि ने लिखा है कि—

मन से ऊपर जगदात्मा का
प्रतिनिधि अथ विवक्षित भू मानव

वह सूप किरण मणि पानों से
पीता स्वर्णिम चित रस-आसव ।
शशि अमृत पाणि वीणा उसकी,
सागर भरकत विगलित अतर,
गिरि उसके चिन्तन मोन सिखर,
नीलिमा दृष्टि नीरव, मास्वर ।

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६६२)

नव युग चेतना के अनुरूप ही ज्ञान और मक्ति की अवधारणा में परिवर्तन हुआ । नवीन धारणा के अनुसार—

'नव आध्यात्मिकता म न मक्ति
केवल अब जप तप व्रत पूजन,
वह ईश्वर तमय रह, मू पर
विकसित जन जीवन की साधना ।
अब ज्ञान न निःश्रय आत्मबोध,
या शास्त्रों का अध्ययन मनन,
वह जग म प्रभु, प्रभु म जग के
शाश्वत अखंड करता दशन ।

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६६३)

इसी काव्य प्रखण्ड में कवि ने सयुक्ता (मेरी) और हिमगिरि के एक महत्वपूर्ण परिसंवाह का संयोजन किया है । एक बार सयुक्ता ने विराट मीन नगपति का गरिमामण्डित आनन देखा । वे राजाचित मनुज देश में नवतृण आसन पर आसीन थे । विस्मय हत सयुक्ता ने कहा हे देव । मैं किस प्रकार आपका पूजन-अर्चन करूँ ? सयुक्ता को नगपति के मन्त्री पापदग्ध सिंह ऋक्ष, गज, वृष, खग, पशु भी नरतन धारण किए हुए दिखाई दिए । उमने प्रतीक परिधान धारण किए वृष, लता, खग मृग का देखा । सयुक्ता ने अनुभव किया कि सर सरिता, सिन्धु कानन, पर्वत, रवि शशि, ग्रह, गगन, पवन पावक आदि सभी नव मानवता के स्वागन हेतु आए हैं ।¹¹ सयुक्ता ने देखा कि वृष पशु-पक्षियों और हिंस्र जीवों के साथ केन्द्र के किशोर किशोरियाँ मुक्त विहार कर रहे हैं । उस भूमा के बहुमुखी मूत रूप एक ही चेतना के पावक कण

¹¹ लोकायतन, उत्तर स्वप्न (प्रीति) पृ० ६६७-६६८

के प्रतिरूप प्रनीत हुए। विरमय अथाह समुक्ता को देगजर नगपति ने समस्त स्वर म प्रबोधित किया। हिमगिरि की घन मद्र प्रतिध्वनिवा शिखरो से उठकर अबर म मर रही थीं। हिमाद्रि न कहा कि मर गिलरो का विद् यमय जन भू के चरणो पर समपित है। प्रिय मुने ! गुणात्मक परिवर्तन की इस बला म मेरी मगल-वामना यही है कि—

‘यह प्रम मृष्टि हो प्रेम धम,
जन म प्रतीति समता स्थापित,
मन पाप पुण्य फल प्रति तटस्थ
जन हो न नरक मय त तापित !
वह पूण दया रा भी अनिशय
सिन प्राति परस्पर, हा अपित
हा लोक कम सुख निरत प्राण,
उर सृजन शाति रस म मञ्जित !

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६७१)

हिमाद्रि ने आग कहा कि मैं शिखरो का अधिपति तुम्हें क्या दीक्षा दूँ ? तुम श्चतु रस स्थित हो। तुम जावन ईश्वर को पूजो जीवन ईश्वर वह प्रेम है जो परम अनिवचनीय, घट घट वासी और अक्षय रस के समान है। ईश्वर प्रेम का ही पर्याय है। यही युग का जीवनदर्शन है। हिमगिरि ने कहा—

मैं लाघ विश्व मानस समस्त
प्राची पश्चिम को अतिश्रम कर
इतिहास धम, सस्कृतियों के
शिखरो पर नवयुग के पग धर—
दे रहा तुम्ह जीवन दर्शन—
यह महत कल्प परिवर्तन क्षण—
निर्माण करो नूतन भविष्य
भू जीवन हो मगवत दपण !

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६७३)

यह कह कर हिमाद्रि सहसा जटश्य हो गए। लग पशु गिरि वन प्रातर आदि का परिदृश्य भी ओभ्ल हो गया। वस्तुत समुक्ता को अत स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करने वाला यह सचेनन कल्पना दृश्य था जिसे समुक्ता ने अनुभूति स्तर पर देखा। इसके पश्चात् न् य दकी चतनालोक से समुक्ता

अभिभूत हो गई। उसने मनस् जगत में भूमा का ऐसा निरवधि प्रागण देखा जिसमें दिशा जान बालगति में लय हो चुका था। जहाँ का सचराचर प्रीति पाश में बँधकर भू जीवन को शोभा मम्पन कर रहा था। सयुक्ता के मनस जगत में देवी चेतना के अवतरण परिदृश्य का विम्बाजन कवि ने इस प्रकार किया है—

“नीहार सरोवर में तिरता,
ज्यो शुक्र रजत जल में विम्बित
निवसन तरती सयुक्ता
सित मानस शोभा में परिवत ।
× × ×
देखा, उसने मन के दृग से—
वह स्वप्न लक का था भागन
विद्रुम आभा छाई नम में
माणिक प्रम घरा पटल शोभन !
ऊपाएँ परिक्रमा करती
स्मित अप्सरिया करती ननन
उड अंतरिक्ष में देव दूत
सित पुष्प वटि करत प्रतिक्षण !

(वही, उत्तर स्वप्न पृ० ६७५)

इसके पश्चात् सयुक्ता को साधनावस्था में निरन्तर दिव्य अनुभूतियाँ होती रहीं। सयुक्ता की देवा प्ररणा से लोकायतन-केन्द्र के साधका का जीवन भी अभिभूत हुआ। अतः उसी ऊर्ध्वोमुखी चेतना का प्रसार निखिल विश्व जीवन में हो गया। लक्षणा के माध्यम से इस तथ्य का प्रतिपादन कवि ने इन शब्दों में किया है—

“वह तन मन से प्रभु में लय हा
छा गई निखिल जग में गापन
रस पूत चेतना जीवन की,
वन कर जन मन में पुण्य स्तवन ।

(वही उत्तर स्वप्न पृ० ६७८)

पन्त जी के अनुसार एक कवि के कल्पना जगत में भावी मानवता के मागलिक स्वरूप को उत्तर स्वप्न में दर्शाया गया है। प्रथम बार जगत् ब्रह्म

म और ब्रह्म को जगत में प्रतिष्ठित किया गया है। नू जीवन में यह अदभुत नव सांस्कृतिक कल्प है जिसमें युग मानव ऊर्ध्वोन्मुखी दिव्य चेतना से अभिभूत हुआ है। लोकायतन महाकाव्य का समापन पत जी ने समपण भाव के इस छंद के साथ किया है—

जन्म ले चुका अब नव मानव
जड़ चित को कर रस संयोजित,
धरा स्वर्ग कल्पना में रह अब
जन जीवन में होता भूतित !
कवि मन के रस सित स्पर्श में
देख भविष्य मनुज का आनन,
आओ, मैं मन के विपाद को,
करें प्रेम के प्रभु को अपण !

(वही उत्तर स्वप्न, पृ० ६८०)

इस प्रकार लोकायतन महाकाव्य के विराट कलेवर में पत जी ने नव युग चेतना का यापक रचनात्मक आधार प्रदान किया है। जहाँ तक आलोच्य काव्य की शिल्प संरचना का प्रश्न है—कथानक और चरित्र विधान के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक आरम्भिक भाग में विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। भाषा शैली की गरिमा और अभिजात्यता काव्य में आद्यत द्रष्टव्य है। पत जी भाषा के शिल्पी हैं। उनकी भाषा सवत्र भावानुगामिनी रहती है। कोमलकांत पदावली पद लालित्य व्यंजना कौशल आत्मक अलंकृति सशक्त विम्ब योजना सटीक प्रतीक विधान और सम्प्रेषणीयता पत जी की रचना शैली की सामान्य विशेषताएँ हैं और ये लोकायतन में भी सवत्र अनुपलब्ध हैं। लोकायतन की भाषा का वशिष्ठय वस्तुतः उन स्थलों पर विशेष रूप से द्रष्टव्य है जहाँ दशनशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली सश्लेष भाव संवेदनाओं और गूढ़ व्चारिक मायताओं का सफल अभिव्यक्ति हुई है। रूपको के माध्यम से अरविन्द दशन की आधारभूत मायताओं को योजित करने में कवि पूर्ण सफल रहा है। हाँ, छंद की दृष्टि से लोकायतन में ध्विष्य का अभाव खटकता है। कवि ने यदि दीर्घमानिक छंदों का भी ग्रहण किया होता तो लोकायतन में महाकाव्योच्चिन्ना शिल्प गरिमा आ जाती।

वस्तुतः लोकायतन की उपलब्धियों का संधान शिल्पगत वशिष्ठय में नहीं अपितु प्रतिपाद्य की संयोजना में है। लोकायतन युग चेतना का काव्य

है। 'लोकायतन' के स्रष्टा ने समकालीन जीवन परिवेश और परिस्थितियों के परिसर-दम में मानवीय चेतना विकास के जा विभिन्न रूपांतर अंकित किए हैं तथा युग सत्य के यथार्थी गुप्त आदर्शवादी रूप का जो चित्रण किया है उसके कारण वह 'महाकवि अभिधान का निश्चयत अधिकारी बन गया है। चरा चर जगत में व्याप्त दिव्य देवी चेतना को मानवता के मंगल विधान हेतु जिस साधना-अनुष्ठान का रूप निदर्शन पतंजी ने किया है, वह सर्वथा श्लाघनीय है। 'लोकायतन' का कवि युगद्रष्टा और भविष्य द्रष्टा दोनों रूपा में हमारे सामने आया है। विज्ञान युग की विभीषिका से सत्रस्त मानवता को सहज प्रीति साधना और समष्टिमूलक उध्वो-मुखी भाव-बोध का सम्बल प्रदान कर पतंजी ने मनीषि कवियों में स्वयं का पकिनबद्ध कर लिया है। 'लोकायतन' की सिद्धि एक काल्पनिक विचार दर्शन को युगसर्वेय रूप में प्रस्तुत कर तक सम्मत आधार प्रदान करने में है। समष्टि रूप में 'लोकायतन' जीवन दर्शन की महत् सिद्धियों के कारण हिन्दी महाकाव्य परम्परा का गौरव ग्रन्थ है। 'लोकायतन' सचमुच महाकाव्य है और उसका रचयिता महाकवि।

‘कैकेयी’ महाकाव्य
पश्चात्ताप-पूता नारी की मनोव्यथा का
पुनर्मूल्यांकन

‘कैकेयी’ महाकाव्य

पश्चात्ताप-पूता नारी की मनोव्यथा का पुनर्भूल्याकन

आधुनिक काल की साहित्यिक-संरचना के अनुक्रम में मनोविज्ञान के प्रवेश ने रचनाकारों में एक ऐसी अन्तर्दृष्टि का विकास किया है जिसके फलस्वरूप पौराणिक इतिवृत्तों का बुद्धिप्राप्त रूप में तथा पौराणिक पात्रों को युग जीवन की संवेदनाओं के अनुरूप अंकित किया गया है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में काव्य और काव्य के नाना रूपों में आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की सजना में रचनाधर्मों दृष्टिकोण की मनोवैज्ञानिकता और तदविषयक परिवर्तनों की प्रक्रिया स्पष्टतः परिलक्षित होती है। आधुनिक महाकाव्यों के इतिवृत्त विधान चरित्र विनियोजन, शिल्प संगठना सृजन प्रेरणा, रचनात्मक-सोद्देश्यता और जीवन दर्शन सम्बन्धी विवेचना सभी में मनोवैज्ञानिक संस्पृश मिलता है। रूप विधायक तत्वों की दृष्टि से वर्तमान युग के अधिकांश महाकाव्य चरित्र प्रधान हैं और अनेक महाकाव्यकारों ने चरित्र विश्लेषण में अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के विस्तार का प्रभूत परिचय दिया है। उदाहरणार्थ महाकाव्य के नायकत्व के सम्बन्ध में कायाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट गुणों लक्षणों और योग्यताओं (जैसे—धीरोदात्तता उच्चकुलीनता आदि) की उपेक्षा करके आधुनिक महाकाव्यों में पुरा आख्यानों के कालकृत उपेक्षित और निरन्वृत पात्रों को महाकाव्योचित गरिमा से भडित करके प्रस्तुत किया गया है। रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को आधार बनाकर स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त और प० बालकृष्ण शर्मा नवीन द्वारा प्रमश साकेत और ‘उर्मिला तथा निपाद पुत्र एकलव्य और सूत पुत्र कणक चरित्र पर डा० रामकुमार वर्मा, श्री राम घासीसिंह दिनकर श्री आनन्दकुमार और प० लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा प्रमश ‘एकलव्य’, ‘रश्मिरथी’, अगराज और ‘सैनापति कण शीपक महाकाव्य रचे

गये। हिरण्यकशिपु, हिरण्याग, बनि असाद पातागुर आदि दैव्यों तथा रावण कुम्भकरण आदि राक्षसों के परित्रमूनन आधार पर श्री हरपातुमिह द्वारा दत्तपर्वण और 'रावण' नामक महाकाव्यों का प्रणयन हुआ। इन्हीं परम्परा में श्री चन्द्रमल चन्द्र द्वारा रामचर्या की कलकिता कवेयों के वितरण व्यक्तित्व और वारमन्य भाव से परिपूर्ण चरित्र को आधारमान बनाकर 'कवेयों' महाकाव्य की रचना हुई है। परम्परित रामचर्या और रामकाव्यों में कवेयों का चरित्र अत्यन्त अनुपिन और निरस्तुत रूप में प्रकित किया गया है। कवेयों द्वारा वर प्राप्ति व ऐतिहासिक कारणों के अनुसंधान और नारी-मनोविज्ञान की विश्लेषणात्मक अन्वष्टि के अभाव व कारण रामकाव्य के विपायकों की दृष्टि में बहु निनांत उपेक्षा और कलकिता बनी रही है। इस दृष्टि से आत्मोच्य महाकाव्य के प्रणेता श्री चन्द्र जी द्वारा कवेयों के काव्योद्धार का यह प्रयास सवया प्रनापनीय और अमिन-दनीय है।

कवेयों' महाकाव्य की रचनात्मक सोच्यता को स्पष्ट करते हुए श्री चन्द्र जी ने लिखा है कि—'नारी व प्रति पत्नी से ही एक विशेष उच्च भावना मरी रही है। रामायण के नारी पात्रों के अध्ययन के समय कवेयों की ओर मेरा ध्यान गया। राम वनवास की एक मात्र घटना व अतिरिक्त कवेयों के चरित्र में वहाँ कोई कल्प नहीं जियायी दिया। अतः उस घटना के ऐतिहासिक कारणों की सोच एवं नारी मनोविज्ञान का विश्लेषण ही प्रारम्भ में 'कवेयों' महाकाव्य की रचना के लिए प्रेरणा बना। 'श्री चन्द्र जी के उदघृत मत-य से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अनुसंधान यत्ति और मनोवज्ञानिक अन्वष्टि क्षेत्र के 'कवेयों' महाकाव्य के प्रणयन में प्रवृत्त हुए हैं। मत्स्योपाख्यान' और वाल्मीकि रामायण' के सादर्य के आधार पर श्री चन्द्र ने यह धारणा बनाई कि—'कवेयों के पुत्र को राज्याधिकार देने की शत पर ही कवेयों का दशरथ के साथ विवाह हुआ था।' काव्य के एकादश सर्ग में वरपाचा के अनन्तर यही बात वह राम से कहती है—

^१ कवेयों महाकाव्य पाश्व भूमि, पृ० ६

^२ मत्स्योपाख्यान, अध्याय ८ श्लोक १३ १४ १६, २०

^३ पुरा भ्रात पित न म मातर ते समुद्रहन।

माता महे समा श्रीपीद राज्य शुल्क मनुत्तमम ॥'

—वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, सर्ग १०७, छंद ३

^४ कवेयों, परिपाश्व, पृ० ६

'होगा तात न तुम्हे तात कुळ यह महनी वात पुरानी ।
 ब्याह समय केकय स्वामी की, शत इहोने मानी ॥
 ज्येष्ठा भी पुत्र उहें हो, अबसर यदि ऐसा आये ।
 फिर विवाह जिस अथ करें ये, राज्य पुत्र मेरा पाये ॥'^१

ककेयी की वर प्राप्ति के फलस्वरूप भरत के राज्याधिकारी बनने और राम-वन-गमन की सूचना से आवेशपूरित होकर जब लक्ष्मण भरत के विरुद्ध विद्रोह करने को उद्यत होते हैं, तब भी राम उन से यह रहस्योदघाटन करते हैं कि—

'केकय-कया ब्याह समय,
 तुम हम जन्मे भी न अब ।
 किया गया अधिकार नियत
 अवध राज्य पर उमका तब ॥'^२

इस प्रकार के काव्य सन्दर्भों से प्रमाणित है कि रामकथा के ऐतिहासिक घटना क्रम के अनुसार महाराज दशरथ ककेयी के पुत्र को राज्य देन के लिए वचनबद्ध थे और ककेयी ने उस अवसर पर जबकि उसे रामके राज्याभिषेक की तयारियों से अनभिज्ञ रक्खा गया उसके पुत्र को ननिहाल भेजकर रहस्यात्मक ढंग से राजमाता के पद से वंचित किया जा रहा था तो उसने पूव प्रतिबद्ध सवल्प की संपूर्ति कराके कोई अनध नहीं किया । अस्तु वर प्राप्ति के आधार पर ककेयी के चरित्र की विगहणा और भत्सना राम के उन रचयिताओं और समीक्षका द्वारा की गयी है जो इस ऐतिहासिक तथ्य से अपरिचित रह हैं कि महाराज दशरथ ककेय नरेश से ककेयी के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए वचनबद्ध थे और रघुबुल की रीति के अनुसार भरत को राज्य देकर अपने कौलिय भव की अमिष्टुद्धि ही की थी । वचनबद्धता के अतिरिक्त वर प्राप्ति के ही परिसदभ म यह भी उल्लेखनीय है कि दानों वरदान ककेयी ने अपने सारथ्य-कौशल के बल पर महाराज दशरथ के प्राणा की रक्षा करके प्राप्त किये थे । घटना क्रम इस प्रकार है कि—एक बार शवासुर के आतंक से सन्नस्त होकर देवराज इंद्र ने महाराज दशरथ स त्राण के लिए अनुनय विनय की । शरणागत को अमयदान देने की 'रघुवशी रीति' के अनुसार महाराज

^१ वही, सग ११, छंद ४४, पृ० १०६

^२ वही, सग १२ छंद ५४ पृ० १२५

दशरथ शवासुर से लोहा लेने के लिए कटिबद्ध हो गये, तभी कैंकेयी ने उनके साथ युद्धक्षेत्र में सारथ्य कम करने की अभिलाषा प्रगट की और जब महाराज दशरथ ने कैंकेयी को युद्धक्षेत्रीय योग्यता के सम्मुख प्रश्नचिह्न लगाकर उस साथ न चलने को कहा तो कैंकेयी ने स्वामिमानिनी राज्य महिषी के समान दर्पोक्त वाणी में कहा कि—

“न भूलो कि मैं अश्वपति की सुता,
 न भूलो अवघ नाथ की वल्लभा ।
 कि वीरागना आय नारी विदित,
 भारत स्रण्ड गरिमा, जगत दुलभा ।
 समर जान सारथ्य पारगता,
 महाभाग ! रणभूमि छाया बनी ।
 रहूँ साथ ज्यो सूर्य के सग विभा,
 महत चाद के साथ ही चादनी ॥”

(सग ३, पृ० २८)

और कैंकेयी ने जो कहा, युद्ध क्षेत्र में चली कर दिखाया । युद्ध-क्षेत्र में कैंकेयी ने अश्व चालन कला का अदभुत प्रदर्शन किया । महाराज दशरथ का रथ कभी उरग सा रेंगता था तो कभी हवा में उड़ता था । शत्रु के बाहिनी-व्यूह में रथ को प्रविष्ट करावे पुन चपल दामिनी की भाँति कैंकेयी उसे निकाल लाती थी । एक अवसर पर रथ की घुरी टूट गई और चक्का डगमगाने लगा । तभी शवासुर ने महाशक्ति का प्रहार किया । इस अवसर पर कैंकेयी ने रथ को भूमि से सटा कर निकाल लिया और महाराज दशरथ महाशक्ति के मय कर प्रहार से बाल बाल बच गए । विजय के पश्चात् महाराज दशरथ ने प्रसन्न मुग्ध में कहा कि—

‘सिली स्मित नराधिप-अधर “आज की,
 प्रिये ! यह विजय तो तुम्हारी विजय ।
 वचा प्राण दो बार तुमने लिए,
 कहो दें तुम्हें कौन वरदान द्वय ॥’

(सग ३ पृ० २८)

कैंकेयी एक माँ थी । माँ की ममता और वास्तव्य भाव के अतिरिक्त ने ही उसे अपने पुत्र भरत के लिए राज्य प्राप्ति हेतु प्रेरित किया । काव्य में अनेक

स्थल इस तथ्य की संपुष्टि करते हैं। मन्दरा की कुमत्रणा की पहली प्रतिक्रिया ककेयी के मन मस्तिष्क पर भरत के ही सम्भाव्य म हुई। वह साचने लगी कि—

‘क्या गया कोई रघा पड्यत्र सचमुच ?
छा रही क्या सत्य ही या—
भरत के सद्भाग्य पर काली घटाएँ ?
क्या बने स्वामी स्वय विश्वासघाती ?
जानकर भेजा गया भोले भरत को
क्या किसी ऐसे अशुभ उद्देश्य से ही ?’

(सग ८, पृ० ६४)

ककेयी का ममत्व भाव ही उसे शकालु बनाता है। भरत के अशुभ भविष्य की परिवर्तना मात्र से वह काँप जाती है। कवि के शब्दों में—

‘लाल को मेरे अरे क्या ज्ञाननी ?
छाया असित कोई ?
कही क्या चाहता प्रसना ?
गई वह काँप ही इस कल्पना से
बल्लरी ज्यो तीव्र ज्ञानि से पवनके ॥’ (सग ८, छंद ४१)

ककेयी की आशकाओं को निमूल नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रथम तो भरत ननिहाल में और दूसरे महाराज दशरथ द्वारा परिपद-सचिव को यह कूटनीतिक आदेश था कि कक्य नगर निमत्रण देर से पहुँचे तथा ककेयी तक भी कोई दास दासी यह सदेश न पहुँचाये—

‘भेज दें सबको निमत्रण, अमरपति भी आयें ।
वृत्त पर केक्य नगर को देर से भिजवायें ॥

× × ×

यह रहे पर ध्यान छोटी राज रानी पास ।
से न जाय वृत्त वाइ क्षुद्र दासी दास ॥’

(सग ६ पृ० ४८ ४९)

राम के वन गमन के अवसर पर प्रजाजना के प्रति अगाध निष्ठा और स्वकृत्य के प्रति आश्रित देखकर ककेयी के मन में पुनः यही शका उठती है कि इस सब के कारण कहीं भरत की क्षेम सबट म न पड जाय। वह यह साचने को विवश थी कि—

‘किन्तु यही तो भय जनता का अतुल राम पर प्रेम ।

पढ न कही खतरे में जाये, सरल भरत का क्षेम ॥’

(सग १३, पृ० १४०)

राम के वन गमन और महाराज दशरथ के निघन के पश्चात भरत ने ननिहाल से लौटकर वस्तुस्थिति से अवगत होने के पश्चात रोप और आवेश में ककेयी को महान् अनथकारिणी, दरिन, घातिनी, कुनारि, पिशाचिनी और सघातिनी तक कह डाला । (सग १४, छं० ३५, पृ० १४७) प्रत्युत्तर में ककेयी ने भरत को अपने वृत्त्य का औचित्य बताते हुए कहा कि मैंने केवल तेरे हित रक्षण हेतु राज्य मागा है । मैंने कोई पाप नहीं किया । किन्तु माँ के मन की विवशता को कौन जानता है ? ककेयी ने कहा कि—

समय पर वर न यदि दो माग लेती, विमाता क्या न जाने पास देती ।

मुझे चिंता नहीं लवलेख भेरी, अभीप्सित नित मुझे तो कुशल तेरी ॥

×

×

×

हृदय यदि पुत्र की ममता सजाई, बनी जो माँ, किया क्या पाप कोई ।

तजे माँ प्राण यदि हो भय सुवन को, समभता काश, काई मातृ मन को ॥’

(सग १४, पृ० १४८)

उपर्युक्त विवचन के आलाक में यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि ककेयी ने वात्सल्य भाव के उद्भव और ममत्व से अनुप्रेरित होकर ही स्वपुत्र हित सरक्षण हेतु महाराज दशरथ से भरत के लिए राज्य माँगा, जो उत्पन्न परिस्थितियाँ के परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक माता के लिए सबथा स्वाभाविक एवं अवश्यभावी था । अब प्रश्न यह शेष रहता है कि राम को वनवास दिलाने में ककेयी का क्या प्रयोजन था ? राम के शील और सौजन्य तथा भरत की प्रति उनके अतुलनीय अनुराग एवं सौमनस्य भाव से सुपरिचित होने हुए भी उन्हें वन भेजने में क्या ककेयी की कुटिलता, क्रूरता और कुबुद्धि नहीं प्रगट जाती ? क्या दूमर वर की याचना के कारण ककेयी का चरित्र कल्पित और कलकित नहीं होता ? वस्तुतः इन्हीं प्रश्नचिह्नों के सम्मम में ककेयी के वृत्त्य के औचित्य अनौचित्य पर यहाँ विमर्श अभीप्सित है ।

ककेयी महाकाव्य के प्रणेता ने राम वन गमन विषयक चरित्रानुसंधान का सायबय नानाविध सिद्ध किया है । काव्य के अन्तर्द्वन्द्व शीघ्रक अष्टम और नवम सर्गों में ककेयी के मानसिक संघर्ष की अभिनयजना में सबप्रथम तो मानव भाव का अनिग्न दर्शाया है जो उस भरत हित में राज्याधिकार प्राप्त करने के

लिए अनुप्रेरित करता है। तदनन्तर ककेयी के अवचनन में सकल्प विकल्प और आशा आशंका का जो द्वन्द्व जाविभूत होना है, वह उत्प्रेक्षणीय है। ककेयी सोचती है कि मेरे नाथ मुझे प्राणायुधिवा मानते हैं। वे सुरपुर विजित करके उसका राज्य मेरे चरण तल में विछाने के लिये सन्नद्ध रहते थे तो राम के राज्याभिषेक रूपी महान् आयोजन को मुझसे गोपनीय क्या रखा ? हो सक्ता है कि शासन-काय में व्यस्त हूँ। वह दूसरे ही क्षण सोचती है कि मैं भी किन्नी मूल हूँ, ऐसा सवाद सवक द्वारा कैसे प्रेषित कर सकते थे ? वे तो स्वयं ही यह सूचना देकर मुझे चौंकाना चाहते होंगे अथवा इस काय में मेरी मौन स्वीकृति मानकर उन्होंने जनपद और पौर गणों को राज्याभिषेक की तैयारी के लिए कह दिया होगा। अकृत मन ककेयी पुनः सोचने लगी कि कहीं मेरी असहमति की आशंका से हाँ ताँ उ होने मुझे राज्याभिषेक की सूचना से वंचित नहीं रखा ? और यह विचार आते ही ककेयी के नारीत्व भाव पर आघात लगा। उसका हृदय चीत्कार कर उठा कि—

‘पति सदा विश्वास जिनका, मान जिनका,
ध्यान जिनका, प्राणधन ससार जिनका,
आयकुल की नारियाँ इहलोक की हम
सगिनी, अनुगामिनी परलाक में भी।
फिर करे स देह कोई तरह तो,
तन सुलगता लोट उर पर साप जाता ॥

(सर्ग ८ पृष्ठ ६७)

ककेयी के अन्तर्द्वन्द्व ने नवीन दिशा ग्रहण की। वह सोचने लगी कि मैं राम को सौत का सुत नहीं मानती फिर आय सुत ने अभिषेक की सूचना सबसे पहले मुझे क्यों नहीं दी ? ककेयी अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँची कि—

“मरत का, मुझको व केकयराज को भी
इस महोत्सव से निपट अनात रक्वना,
क्या न इनक मन-रूपट का प्रगट करता ?

(सर्ग ८, पृ० ७२)

अतः उमने मरत को युवराज बनाने के साथ-साथ राम को वनवास दिलाने का भी निणय यह साच कर कर लिया कि कौन जाने इस द्वेष के कारण गृह कलह की आग भडक उठे या जन विद्रोह ही विषम स्थिति उत्पन्न कर दे। अस्तु सुत के हित रक्षण हेतु कठोर वनना ही पड़ेगा—

‘द्वेष की वह वहि भीतर और भी क्या,
तब भयकर रूप धारण कर न लेगी,
कौन जाने गृह कलह की आग भडके,
या कि जन विद्रोह का तूफान आए,
कौन जाने इट से बज इट जाये,
या रचा कोई नया षडयन्त्र जाये ।

× × ×

चोट खाय वायुभक्षी नाति भीषण,
व वनेंग, वव डसेमे कि न जाने ।
सुत हिताय कठार बनना ही पड़ेगा ॥’

(सग ८, पृष्ठ ७५)

कवेयी के अतद्दृष्ट से स्पष्ट है कि उसने स्वसुत के हित संरक्षण और राजनीतिक दूरदर्शिता की भावना से अनुप्रेरित होकर ही राम के लिए वनवास मांगा था ।

नवम सग के अतद्दृष्ट में राम वन गमन विषयक वरदान के अर्थ प्रयो जनो का भी उद्घाटन हुआ है । कवेयी क स्मृति पटल पर एक अर्थ विचार उभरा कि आज देश की विषम स्थिति है । दक्षिण दिशा क असुर वनवासियों पर घोर अत्याचार कर रहे हैं । वे गुप्त देश धारण कर लोगो को लूटते और घर जलाते हैं । यन् ध्वंस करते हुए तपलीन ऋषियों का सिर काटकर खल प्रजा रक्षित का पानकर सबत्र आतक फला रहे हैं । सीमावर्ती प्रदेश की प्रजा मे मयाश्रात हाने क कारण मनोबल का निरन्तर ह्रास हा रहा है । यह अवसर है कि राम दक्षिण दिशा जानन मे जाकर आमुरी रल शक्तियों को पराजित करें । कवेयी के मन मे एक अर्थ विकल्प जमा कि कयो न विश्वामित्र मुनि को कह कर पुन राम को वन गमन कराके यह काय पूण कराऊँ ? किन्तु उसने सोचा—

नाथ वैसे ता न भजेगे स्वयम ही

किन्तु क्या ?

मैं ही न क्या हम काय को पूरा कर अव ?

राम का वन भ्रमकर

वरदान क मिम ॥

(सग ९ पृ० ८०)

ककेयी यह सोचकर पुन चिन्तित हो उठी कि दुष्ट हिंस्र पशुओं को मिटाने के लिए क्या राम को अबेले ही भेज दना उचित होगा ? क्या बिना सय और शस्त्रास्त्र सज्जा के विपम रिपु से जूमने की कल्पना करना नीति युक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण है ? किन्तु उसने फिर सोचा कि व्योम पर सहस्रों तारे जो नहीं कर पाते वह अकेला चन्द्रमा कर भेता है । एक ही नाहर सब वनचरो पर राज्य करता है । एक ही सूय समस्त प्राणियों का प्राणदाता होता है । फिर राम तो शक्ति सम्पन्न, तेजस्वी, मनस्वी साहसी और शूरवीर हैं । बाल्यावस्था से ही राम में युग पुरुष के लक्षण प्रकट होते रहे हैं । अत उहें वन भेजना सवथा उचित है । दूसर ही क्षण ककेयी के मन में यह भाव जमा कि—

‘किन्तु यो वरदान का लेकर सहारा,
राम को यदि विपिन भेजूँ
गलत समझी क्या न जाऊँगी मला मैं ?
दुनिया कहेगी क्या न जाने ?
कोन समझेगा हृदय की भावना को ?
स्वयम् स्वामी राम, परिजन भी न जाने,
कल्पना क्या - क्या करेंगे—
राज्य लोलुप, स्वाधिनी, निठुरा,
न जाने और क्या क्या ॥’

(सग ६, पृ० २०३)

ककेयी ने साचा कँसी विपम स्थिति उपस्थित है ? राम को वन न भेजूँ तो काय नहीं होता और वरदान के मिस राम को वन भेजू तो जग बुरा कहेगा । जो भी हो मुझे लोक कल्याण के लिए यह कठिन काय करना ही पडेगा—

कुछ कहें, कह ले जगत,
अपवाद भी सहना पडे, समावना यह ।
किन्तु मानव-मात्र कल्याणाय कोई,
काय ऐसा कठिन कग्ना ही पडेगा,
वध्य सा करके कलेजा ॥’

(सग ६ पृ० २३)

और अतत ककेयी न दृढ प्रतिज्ञ भाव से माता के क्तव्य की संपूर्ति, लोकमगल की कामना और राष्ट्र हित हेतु स्नेह को क्तव्य पर बलिदान करके राम को वन भेजने का निणय ते ही लिया—

"उचित निश्चित कुलिश बनकर,
अब उपक्रम राम को वन भेजने का ही करूँ,
यो पूण हो क्तय मा का
देश का भी लोक मगल कामना का,
× × ×
शक्ति साहस दो करूँ भगवान,
स्नेह का क्तय पर बलिदान ।
साक्ष्य तुम हा, स्वाथ प्रेरित मम न अन्तर्द्व द्व,
विश्व मानवता रहे निद्व द्व ॥

(सग ६, प० ८७)

यही कारण था कि राम के वन गमन के अवसर पर जहाँ 'मानस' की ककेयी बठोर और उग्र बनी रहती है वहाँ आलोच्य महाकाव्य की ककेयी मनस्सताप से द्रवित हो जाती है। किंतु भावी सकट की कल्पना से दृढता धारण किये रहती है। कवि के शब्दों में—

हुई ककेयी विचलित आखिर,
दृश्य निरख हृदय द्रावी ।
पर सोचा दृढ रबना होगा
मुँह धाम सकट भावी ॥"

(सग ११, पृ० ११६)

ककेयी को अपने इस कृत्य क लिए ममा तक वेदना भी भोगनी पड़ी। क्तव्य की व्यथा स्वपुत्र द्वारा तिरस्कार परिजना की भत्सना और पुरजनों का राप-आफ़ोश सभी उसने सहा। ककेयी क मनस्सताप का अनुमान चित्रकूट की समा म सचक समक्ष राम का सम्बाधित वरत हुए इस आत्मस्वीकृति स लगाया जा सकता है कि—

'वहाँ परिणाम स अवगत रनी तब ?
कूँ क्या कम । मैं जड रोग की सब ।
समय मैं ने उचित जा कृद्य किया जब ।
वहाँ इयकी मुझ दुक कल्पना तब ॥

वनी जड स्वाधिनी, पतिघातिनी मैं ।
हुई हा हन्त ! आप अभागिनी मैं ।”

(सग १४, पृ० १४५)

अथवा

“सोचा जिसमे जग कल्याण,
राष्ट्र-कम, माँ का कतव्य
सिद्ध हुआ मेरा अज्ञान,
सवनाश हित, हा ! भवितव्य ॥”

(सग १५, पृ० १६५)

काव्य का पाठश सग (पश्चाताप) ककेयी की ममात्तक मनोव्यथा का ही व्यञ्जक है। इस सग म कवि ने पडऋतुओ के माध्यम से ककेयी के पश्चाताप का करुण स्नात प्रवाहित किया है। पश्चाताप की व्यथा में ककेयी कहती है कि ऐसी घटना कैसे घटित हो गई ? क्यों मैं असमय में मूख बन गई ? मयरा का क्या दोष, ये सारी विडम्बना विधि की कुटिलता या दुर्भाग्य दोष ही है। अतुल गुणों के घनी श्री और शीघ्र के पुञ्ज, सत्यवादी देवोपम स्वामी के प्रति अविश्वास और दैवीय गुणों की विभूति से युक्त जीजी (कीशल्या) का अहित करके मैंने अपने मस्तक पर कलक का वह टीका लगाया है, जिसके कारण आने वाली पीड़ियाँ भी मुझे अभागी और वशघातिनी ही कहेगी—

“टीका ऐसा सिर पर लगा, मेरे मिटेगा न जो ।
भावी पीड़ी यथित मन रो रो कहेगी कथा,
ऐसी कोई तरणिकुल म रानी अभागी रही ।
अनानी सी खुन बन गई जो वश की घातिनी ॥

(सग १६, पृ० १६७)

ककेयी को मनस्सताप के कारण चतुर्दिक वातावरण दम घाटने वाला लगता है। सरयू के प्रवाह में उसे रुदन-स्वर मुनाई देता है। वह तिल तिल दीप समान, मौन में जलती रहती है। वर्षा के मिस ककेयी अपने अश्रु स्रोत को ही प्रवाहित मानती है। शरद कौमुदी उसके तन मन को भुलसाती है। शीत ऋतु के तुषार पात को देखकर उसे सीता का स्मृति दश याकुल कर देता है। वह कहने लगती है कि—

अपराधिनी मैं बहू ! तुम्हारी भारी ।
कसा किया अन्ध, यथ बन नारी ॥

हिम शर सर प्रासाद गडे जब तन म ।
तुम कोमल-तन चरण भटकती बन म ॥

(सग १६, पृ० १७२)

शिशिर अजिर म हहराते पतझर की प्रनिप्रिया ककेयी अपने पीत वण और विवण वन्न म देखती है । ककेयी की आकुलता इन शब्दों म व्यजित हुई है—

"जीण शीण क्या प्राण, न मम झड पडते ?
इस पिजर म अटक, वृथा फडफडते ॥'

(सग १६, पृ० १७३)

वसत को देखकर तो ककेयी की विषम केना चरम भीमा पर पहुँच जाती है । वह कहती है कि वसत की बहार का क्या अर्थ जब मरे हृदय म भीषण होली जल रही है । ककेयी की मानसिक व्यथा का चरम निदशन निम्नोद्धत छंद मे द्रष्टव्य है—

"सपन जानकी, राम विपिन के भागी ।
मरत माण्डवी, भवन बिरागी, त्यागी ॥
प्रिय स्वामी सुरधाम, व्यथित मन मेरा ।
फिर मधुहनु ! क्या काम अवध म तेरा ।

(सग १६, पृ० १७५)

कवि न काव्य के अंतिम सग म ककेयी को राम के वा से आगमन की प्रतीक्षा मे अत्यंत आकुल दर्शाया है । अवधि की परिसमाप्ति पर आशा आशका और उत्कठा चिन्ता का आवेग ककेयी के मन मस्तिष्क को आज्ञात किए रहते हैं । कवि के शब्द मे—

अकथनीय ककेयी की स्थिति
उत्सुक भी शक्ति भी ।
आशाचित्त उर स्नेह सिंचित,
हुलसित भी, चिंचित भी ॥
रह न सके चुप अति धातुर मन
कह न सके प्रकटित भी ।
स्मरण पूर्व कृति कर विचलित भी
वत्सलता—पूरित भी ॥'

(सग १६ पृ० १८६)

इस प्रकार कवेयी द्वारा राम-वन-गमन विषयक वरदान के प्रौचित्य और तद् विषयक प्रतिक्रियाओं के प्रत्यावनन में श्री चन्द्र जी ने तब और मनाविधान दोनों का प्रथम लिया है। “कवेयी” महाकाव्य के भूमिका^१ लेखक डॉ० बल्लभ प्रसाद मिश्र के शब्दों में—“कवेयी की चरित्र विषयक परम्परागत भावना तो यही रही कि उसने नारी विषयक दुबलता ही दिखाई है—त्रियाहठ, सौतियाहाह, ‘तीय-अधर बुद्धि’, निज पर भाव आदि। वतमान युग नारी के श्याम पक्ष पर नहीं, किन्तु उसके उज्ज्वल पक्ष पर अधिक ध्यान देता है। अतएव इस युग के कवियों और चिंतकों ने कवेयी का राम वन गमन विषयक कृत्य का अपनी कल्पना के नेत्रों से उज्ज्वल पक्ष—उत्पात्त कारण—देखने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार कवेयी का यह वरदान माँगना उसकी क्लृप्त्य परायणता का, उसकी ‘शठे शाठ्यम वाली नीतिमत्ता का, उसकी दूरदर्शिता का और उसकी राष्ट्र हितपिता का चोतक है। श्री चन्द्र जी की कवेयी इन्हीं गुणों से युक्त चित्रित की गई है। राम वन गमन विषयक वरदान को कवेयी के केवल क्षुद्र स्वाय का परिणाम न बताकर उन्होंने उसे राक्षस वध विषयक अथवा या कहिए कि राष्ट्र संरक्षण विषयक कवेयी की दूरदर्शिता का परिचय भी बताया है। उनका विरोध बल इस अपर पक्ष पर ही है। क्षुद्र स्वाय भी केवल भरत के विषय में क्लृप्त्य प्रेरित स्वाय है। डा० मिश्र के उद्धृत मतव्य से स्पष्ट है कि कवेयी महाकाव्य के प्रणेता ने राम वन गमन विषयक वरदान को कवेयी की क्लृप्त्यपरायणता, नीतिमत्ता दूरदर्शिता और राष्ट्र हितपिता का चोतक माना है। आधुनिक युग के कतिपय अन्य महाकाव्यकारों ने भी राम वन-गमन की घटना को अन्य दृष्टियों से व्याख्यायित किया है। स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त विरचित साकेत महाकाव्य के सुधी समीक्षक डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मत है कि—‘राम तो साकेत को छोड़कर वन में इसलिए जाते हैं कि जनसाधारण में धम का प्रचार हो, अधम का विनाश हो सबत्र वेद की वाणी गूँजनी रहे आकाश में यज्ञ धूम उठता हुआ दिखाई दे, उससे वसुधा हरी भरी बनी रही सबत्र ज्ञानी जन तर्षा का चिन्तन करते रहें ध्यानी जन निर्विघ्न ध्यान में लीन रहें यज्ञ की अग्नि में निर्विघ्न आहुतियाँ पड़ती रहें और सबत्र तपस्त्रयाग की विजय रहि है।’^२ ‘साकेत’ के राम स्पष्ट शब्दों में यह कहते हैं—

^१ कवेयी भूमिका, पृ० ८, ५

^२ साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ३५१

‘मुनियो को दक्षिण देश आज दुगम है,
बबर कीणप गण वहाँ उग्र यम सम हैं ।
यह भौतिक मद से मत्त यथेच्छाचारी,
भेदोंगा उसकी बुगति-शुभति में सारी ॥’^१

इसी सम्बन्ध में ‘ऊर्मिला’ महाकाव्य के रचयिता प० बालकृष्ण नवीन ने लिखा है कि—‘मैंने राम वन-गमन को एक विशेष रूप में देखने और उपस्थित करने का साहस किया है । राम की वन यात्रा मेरी दृष्टि में एक महान् व्यय पूरा आय-संस्कृति प्रसार-यात्रा थी । ‘ऊर्मिला’ में लक्ष्मण के मुख से मैंने यह बात कहलवाई है, वह कदाचित् पुरातन विचारवादियों को न रुचे, पर, जितना भी मैं इस राम वन-गमन पर विचार करता हूँ उतना ही मैं इस बात पर हड़ होता जाता हूँ कि राम की वन-यात्रा भारतीय संस्कृति प्रसारण एक महान् यज्ञ के रूप में थी ।’^२ कवि नवीन ने लिखा भी है कि—

“आज विजित करने उस भौतिक, दहिक, शारीरिक बल को,-
राम लखन वन गमन कर रहे, सग ले आत्म पान-दल को ।

× × ×
आय सम्यता आय पान थी—आर्यों की संस्कृत वाणी
परास्वरा विद्या का वमव वेद भारती कल्याणी,-
आर्यों की ये सब विभूतियाँ, वन में प्रसारिता होगी,
जटिल कुटिल अपान भावना निश्चय पराजिता होगी ।
आय सांस्कृतिक विजय पताका घन वन में फहरायेगी,
देखो यह तो ज्ञान ध्वजा अब कहीं कहीं सहारायेगी ।

× × ×
यह वन गमन नहीं है यह तो मेरी तीर्थ यात्रा है,
इस प्रवास में आदर्शों की विमल सम्पुट मात्रा है ।”

(ऊर्मिला, सग ३, पृ० १६८, २००)

सवशी भयिलीशरण गुप्त और बालकृष्ण नवीन के प्रबन्ध-काव्यों में राम-वन गमन विषयक तक दृष्टि सम्पन्न अवधारणाओं से प्रगट है कि इस घटना के लिए कैंकेयी की स्वाथ परता अथवा सरस्वती का मथरा की जिह्वा पर बैठकर कैंकेयी की बुद्धि को भ्रमित करना आदि विकल्प रामकथा की

^१ साकेत (संस्करण स० २०१५), सग ६ पृ० २३६

^२ ऊर्मिला—श्री लक्ष्मणचरणापणमस्तु पृ० छ

गतानुगतिक तक शून्य कल्पना दृष्टि का ही प्रतिफलन है। "रामचरित मानस" में गोस्वामी तुलसीदास ने यही माना है कि मथुरा के गूढ कपटपूण वचनो को सुनकर स्त्री बुद्धि वाली रानी सुर माया वस वैरिनि को सुहृद जान कर उस पर विश्वास कर लिया और उसके कहने पर कुएँ में कूदने तथा पुन और पति को त्यागने के लिए सन्नद्ध हो गई—

‘गूढ कपट प्रिय वचन सुनि तीय अधर बुधि रानि ।
सुरमाया वस वरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥

× × ×

परउँ रूप तुअ वचन पर सकउँ पूत पति त्यागि ।
बहसि मोर दुशु देखि बड कम न करव हित सागि ।”

किंतु मानसकार का उपयुक्त दृष्टिकोण विज्ञान-युग के बुद्धिवादी पाठक को सहज स्वीकार्य नहीं हो सकता, क्योंकि वही कँकेयो जो राजनीति विशारद होने के कारण केवल प्रशासनिक कार्यों में ही महाराज दशरथ की परामर्शदात्री नहीं थी अपितु युद्ध-संचालन में भी सहायिका थी, वह तुच्छ दासी की मात्रणा पर पुत्र और पति का त्यागने तथा कुएँ में गिरने तक को तैयार हो गई। निश्चय ही कँकेयो की वर-याचना अधिक अद्यवत्तापूण एवं महत् प्रयोजन की सिद्धि हेतु की गई थी, और यह सत्ताप का विषय है कि हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यकारान, विशेष रूप से 'कँकेयो' महाकाव्य के रचयिता श्री चन्द्रजी ने वर याचना विषयक घटनाक्रम के ऐतिहासिक आयामों का मधान करते हुए उसे मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। डा० राम कुमार वर्मा के इस मत से मैं सहमत हूँ कि— 'कँकेयो के मनोविज्ञान को चन्द्रजी ने वास्तव्य और तक दानों की भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है।” इसी सन्दर्भ में गुप्त श्री महादेवी वर्मा का यह कथन कितना सटीक है कि—

कँकेयो रामायण की ऐसी पात्री है जिसके बिना रामकथा में न गति रहती है न मार्मिकता परन्तु वह युग-युगांतर से कविया और पाठका की धूना का भार वहन करती आई है। प्रसन्नता की बात है कि चन्द्रजी ने उसे पुरातन युगों से आरापित व्यक्तित्व से भिन्न और गरिमापूण व्यक्तित्व ही नहीं दिया सम्पूर्ण

“ रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड दोहा सं० १६ और २१

“ कँकेयो, नवान परिप्रेक्ष्य में—आवरण पृष्ठ से उद्धृत।

कथा को नवीन परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है।¹¹ जालोच्य काव्य के मुख पृष्ठांकन में कवि ने कँकेयी के सम्बन्ध में एक छन्द रचकर प्रस्तुत किया है कि—

“जग में जिसका नित विषमय पापाणी रूप निहारा ।

बहती उस पत्थर के नीचे, पर विमल सुधा की धारा ॥”¹²

और यह सच है कि विश्व अत्यावधि भी कँकेयी के विषमय पापाणी रूपको ही देख रहा था, किन्तु कवि श्री चन्द्रजी ने कँकेयी के चरित्र में विमल सुधासिंचित मातृत्व और उसको कर्तव्य परायणता दूरदर्शिता, नीतिमत्ता और राष्ट्र कल्याणी मनोभावना को दर्शाया है। इस प्रकार ‘कँकेयी’ महाकाव्य की रचना द्वारा कविवर श्री चन्द्र ने युग युगान्तर से उपेक्षित, तिरस्कृत एवं पश्चात्ताप पूता नारी के चरित्र का ही इतिहास एवं मनोविज्ञान की समन्वित भूमिका पर पुनर्मूल्यांकन नहीं किया है अपितु रामकाव्यों की परम्परा में भी गौरवान्वित अमिष्टि की है। इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी महाकाव्यों के संरचना क्रम में ‘कँकेयी’ का प्रणयन सर्वथा अभिनन्दनीय है।

¹¹ वही, आवरण पृष्ठ

¹² कँकेयी महाकाव्य, मुखपृष्ठ का पृष्ठांकन ।

